श्री कल्पसूत्र - बालावबोध

हिन्दी

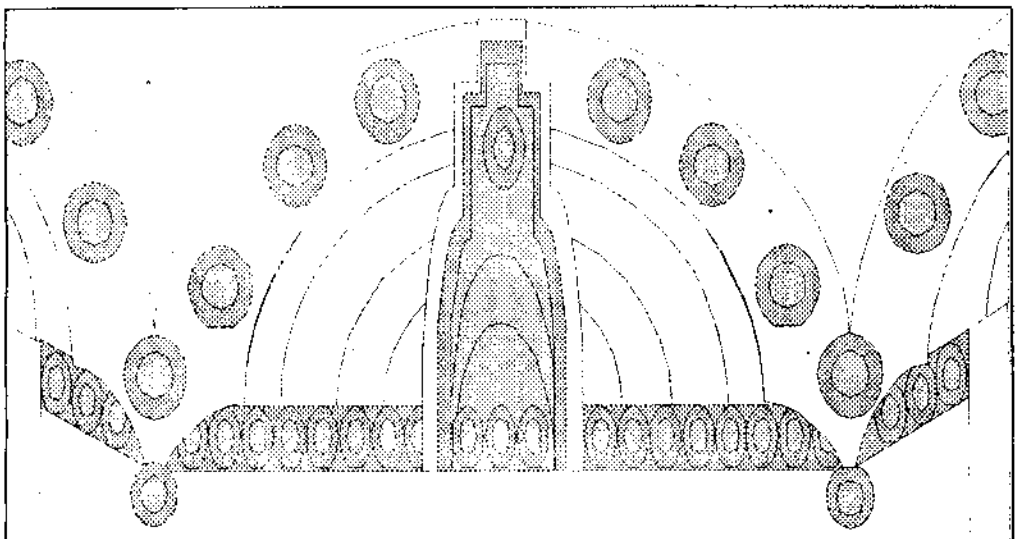

श्री कल्पसूत्र - बालावबोध

।। णमो समणस्स भगवओ महावीरस्स ।।

श्री अभिहाण-राइन्द महाकोशादि संस्कृत-प्राकृतमथानेक ग्रन्थकर्तृक, सूरि-शक्र-चक्र-चूड़ामणि, सकल जैनागम पारदृश्व, जंगम युगप्रधान परमयोगीराज जगत्पूज्य भट्टारक गुरुदेव
श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज संकलित

श्री कल्पसूत्र - बालावबोध

(हिन्दी)

द्वितीयावृत्ति संशोधक
व्याख्यानवाचस्पति उपाध्याय
श्रीमद् यतीन्द्रविजयजी महाराज
(परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज)

कुक्षी चातुर्मास स्मृति

हिन्दी आवृत्ति
परम पूज्य राष्ट्रसंत, शासनप्रभावक, आचार्यदेव
श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज

प्रकाशक
श्री राज राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट
श्री राजेन्द्रसूरि ज्ञानमन्दिर, रतनपोल, हाथीखाना,
राजेन्द्रसूरि चौक, अहमदाबाद

❑ पुस्तक : श्री कल्पसूत्र बालावबोध (हिन्दी)

❑ मूल ग्रन्थकार : प.पू. गुरुदेव आचार्य श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

❑ हिन्दी आवृत्तिकार : राष्ट्रसंत आचार्य श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज

❑ द्रव्य सहायक : श्री सौधर्म बृहत्तपागच्छीय त्रिस्तुतिक जैन श्रीसंघ, कुक्षी. जिला धार (म.प्र.)

❑ प्राप्तिस्थान : (i) श्री राज राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट
श्री राजेन्द्रसूरि ज्ञानमंदिर, रतनपोल,
हाथीखाना, राजेन्द्रसूरि चौक, अहमदाबाद
(ii) शाश्वतधर्म कार्यालय
स्टेशन रोड, ३०५, संघवी भवन,
कौपीनेश्वर मंदिर के सामने,
थाने - ४००६०१ (महाराष्ट्र)
(iii) परिषद भवन
बस स्टेण्ड, राजगढ़. जिला धार (म.प्र.)
(iv) श्री राज राजेन्द्र जैन तीर्थ दर्शन ट्रस्ट
श्री मोहनखेड़ा तीर्थ, राजगढ़ (धार) म.प्र.

❑ अवतरण : गुरुसप्तमी, वि.सं. २०५५
वीर संवत् - २५२५
श्री राजेन्द्र संवत - ९१
ई. सन् २५ दिसम्बर, १९९८

❑ पुनर्मुद्रण अधिकार प्रकाशकाधीन

❑ मूल्य : ५०/- रुपये मात्र

❑ प्रतियाँ : १०००

❑ मुद्रक : अर्चना प्रकाशन के लिए
रोहित ऑफसेट प्रा.लि.
९९, पोलोग्राउण्ड, इन्दौर (म.प्र.)

❑ टाइप सेटिंग : आर.वी. कम्पोजर एण्ड सेटर
५२, तिलकपथ, रामबाग चौराहा,
इन्दौर (म.प्र.)

प्रकाशकीय

विश्वपूज्य परम योगीराज श्री अभिधान राजेन्द्रकोशादि अनेक गद्य-पद्य ग्रंथनिर्माता चारित्रचूड़ामणि महामनस्वी भट्टारक पूज्यपादाचार्यवर्य श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज द्वारा संकलित श्री कल्पसूत्र-बालावबोध की प्रथमावृत्ति वि.सं. १९४४ में प्रकाशित की गयी थी।

इस ग्रंथ की द्वितीयावृत्ति वि.सं. १९८८ में साहित्य विशारद विद्याभूषण शान्तमूर्ति आचार्यदेव श्रीमद् विजय भूपेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के शासनकाल में तत्कालीन महामहोपाध्याय व्याख्यान-वाचस्पति श्रीमद् विजय यतीन्द्रविजयजी (पश्चात् आचार्यदेव व्याख्यान-वाचस्पति श्रीमद् विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी) महाराज साहब ने इसी ग्रंथरत्न का सुव्यवस्थित रूप से प्रकाशन करवाया था। अत्यन्त उपयोगी एवं पठन-पाठन-प्रिय-ग्रंथ होने के कारण अल्पावधि में ही इसकी द्वितीयावृत्ति प्रकाशित की गयी।

श्री अखिल भारतीय सौधर्म बृहत्तपागच्छीय त्रिस्तुतिक श्रीसंघ में सर्वत्र इस ग्रंथ के रुचिपूर्ण एवं श्रद्धापूर्ण स्वाध्याय के साथ ही अन्य विद्वद् समाज में भी यह ग्रंथ समादरणीय उच्च स्थान पा रहा है। इसका निःसंदेह हेतु यह है कि इस बालावबोध की भाषा लोकमानस को आकर्षित करने में पूर्णरूपेण सक्षम है।

साहित्याकाश में यह ग्रंथ एक दिव्य तेजोमय आत्मपथ-प्रदर्शन कराने में जाज्वल्यमान नक्षत्रतुल्य है। इसका प्रमाण स्वतःसिद्ध है कि वर्षों से पुनर्मुद्रण की आवश्यकता पुरजोर से सर्वत्र प्रतीत की जाने लगी है। हिन्दी भाषी लोगों के अत्याग्रह के कारण ही अब यह बालावबोध हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा रहा है।

ट्रस्टीगण
श्री राज-राजेन्द्र-प्रकाशन ट्रस्ट
अहमदाबाद

संवर्द्धित द्वितीयावृत्ति

इस परम पुनीत पूजनीय ग्रंथ की प्रथमावृत्ति विक्रम संवत् १९४४ में श्री संघ की तरफ से छपवाकर प्रसिद्ध की गयी थी। वह तत्काल समाप्त हो गयी। उसके बाद इसकी बहुत माँग होने लगी, पर कई अनिवार्य कारणों के कारण दूसरी आवृत्ति निकालने में बहुत विलम्ब हो गया और दूसरी तरफ इसकी उपयोगिता देख कर इस ग्रंथ को प्राप्त करने के लिए वाचकों का लक्ष्य बढ़ता ही गया। दूसरी आवृत्ति छपाने के लिए बार बार प्रेरणा-पत्र प्राप्त होने से आहोर (मारवाड़) निवासी श्रीमान् सद्गृहस्थ शाह रतनाजी भूताजी ने यह ग्रंथ दूसरी बार छपवाने का विचार किया। तदनुसार इस कार्य को हाथ में ले कर यह ग्रंथ छपवा कर प्रसिद्ध किया गया है।

इस ग्रंथ में प्रथमावृत्ति की अपेक्षा अनेक स्थान पर सुधार कर के वृद्धि की गयी है। प्रत्येक विषय के आरम्भ में शीर्षक भी जोड़े गये हैं। इससे चलते विषय का ज्ञान वाचकों को सहज हो सकेगा। कई बालजीव चित्र देख देख कर फाड़ देते हैं और आशातना करते हैं। इसी कारण से इस द्वितीय संस्करण में अधिक चित्र नहीं जोड़े गये हैं।

वाचकों की तरफ से बार-बार यह शिकायत हुआ करती थी, कि इस ग्रंथ का विस्तार बहुत अधिक होने से यह पाँच दिन में पूरा करने में बहुत कठिनाई होती है। इस शिकायत को ध्यान में ले कर इस संस्करण में हमने नियम से पढ़ने योग्य मेटर वन्निक ब्लेक टाइप (बड़े अक्षरों) में रखा है और समय कम हो, तो पढ़ते समय छोड़ देने लायक मेटर ग्रेट ब्लेक टाइप (छोटे अक्षरों) में रखा है। इससे वाचकों को सूचित करते हैं कि पढ़ते समय यदि समय अधिक हो, तो बड़े-छोटे दोनों टाइप का मेटर पढ़ना और समय कम हो, तो छोटे टाईप वाला मेटर छोड़ कर बड़े टाइप का मेटर ही पढ़ कर पूर्ण करना। छोटे टाइप वाला मेटर छोड़ कर पढ़ने में किसी प्रकार का दोष (हरकत) नहीं है।

ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !! ॐ शान्तिः !!!

-व्याख्यानवाचस्पति उपाध्याय मुनि यतीन्द्रविजय

प्रातः स्मरणीय विश्व पूज्य गुरुदेव
श्रीमज्जैनाचार्य श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी म.सा.

व्याख्यान वाचस्पति
प.पू. आचार्य देवेश श्रीमद् विजय यतीन्द्र सूरीश्वर जी म.सा.

राष्ट्रसंत प.पू. आचार्य देव श्रीमद विजय जयंतसेन सूरीशश्वरजी म.सा

भट्टारक श्रीराजेन्द्रसूरिकृता
श्रीकल्पसूत्रस्य बालावबोधिनी वार्त्ता
।। एक अध्ययन ।। नेमीचन्द जैन ।।

मध्यकाल में संस्कृत, प्राकृत और मागधी में लिखे ग्रंथों की सरल टीकाएँ लिखने की परम्परा बनी। इसके कई स्पष्ट कारण थे। लोग इन भाषाओं को भूलने लगे थे और जीवन की अस्त-व्यस्तता के कारण इनसे सहज सांस्कृतिक सम्पर्क टूट गया था; अतः सहज ही ये भाषाएँ विद्वद्भोग्य रह गयीं और सामान्य व्यक्ति इनके रसावबोध से वंचित रहने लगा। वह इन्हें सुनता था, भक्ति-विभोर और श्रद्धाभिभूत हो कर, किन्तु उसके मन पर अर्थबोध की कठिनाई के कारण कोई विशेष प्रभाव नहीं होता था। 'कल्पसूत्र' की भी यही स्थिति थी।

मूलतः कल्पसूत्र श्रीभद्रबाहुसूरि (स्वामी) द्वारा १२१६ श्लोकों में मागधी में लिखा गया है (प्र.पृ. ५)। तदनन्तर समय-समय पर इसकी कई टीकाएँ हुईं, जिनमें पण्डित श्री ज्ञानविमलसूरि की भाषा टीका सुबोध और सुगम मानी जाती थी, यह लोकप्रिय भी थी और विशेष अवसरों पर प्रायः इसे ही पढ़ा जाता था। जब श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरि से 'कल्पसूत्र' की बालावबोध टीका करने का निवेदन किया गया, तब उन्होंने यही कहा था कि पण्डित ज्ञानविमलसूरि की आठ ढालवाली टीका है, अतः अब इसे और सुगम करने की आवश्यकता नहीं है। इस पर श्रीसंघ की ओर से आये हुए लोगों ने कहा : "श्रीपूज्य, इस ग्रंथ में थविरावली तथा साधु-समाचारी नहीं है, अतः एक व्याख्यान कम है तथा अन्य बातें भी संक्षेप में कही गयी हैं, अतः यह ग्रंथ अधूरा है। कहा भी है कि 'जो ज्ञान अधूरा है, वह ज्ञान नहीं है; जो आधा पढ़ा है, वह पढ़ा हुआ नहीं है; अधूरी रसोई, रसोई नहीं है; अधूरा वृक्ष फलता नहीं है; अधूरे फल में पके हुए फल की भाँति स्वाद नहीं होता, इसलिए सम्पूर्णता चाहिये।' आप महापुरुष हैं, परम उपकारी हैं, अतः श्रीसंघ पर कृपादृष्टि कर के हम लोगों की अर्जी कबूल कीजिए।" (प्र.पृ. ६)। इसे सुन कर श्रीमद् ने श्रावकों के माध्यम से ४-५ ग्रन्थागारों में से काफी प्राचीन लिखित चूर्णि, निर्युक्ति, टीकादि की दो-चार शुद्ध प्रतियाँ प्राप्त कीं और 'कल्पसूत्र' की बालावबोध टीका का सूत्रपात किया। इसके तैयार होते ही कई श्रावकों ने मूल प्रति पर से कुछ प्रतियाँ

तैयार कीं, किन्तु पाँच-पचास से अधिक नहीं की जा सकीं। लिपिकों (लेहियों) की कमी थी और एक प्रति ५०-६० रुपयों से कम में नहीं पड़ती थी, अतः संकल्प किया गया कि इसे छपाया जाए (पृ. ६)।

इस तरह 'कल्पसूत्र' की बालावबोध टीका अस्तित्व में आयी। टीका रोचक है और धार्मिक विवरणों के साथ ही अपने समकालीन लोकजीवन का भी अच्छा चित्रण करती है। इसके द्वारा इस समय के भाषा-रूप, लोकाचार, लोक-चिन्तन इत्यादि का पता लगता है। सब से बड़ी बात यह है कि इसमें भी श्रीमद् राजेन्द्रसूरि के क्रान्तिनिष्ठ व्यक्तित्व की झलक मिलती है। वस्तुतः यदि श्रीमद् हिन्दी के कोई सन्त कवि होते, तो वे कबीर से कम दर्जे के बागी नहीं होते। कहा जा सकता है कि जो काम कबीर ने एक व्यापक पटल पर किया, करीब-करीब वैसा ही कार्य श्रीमद् ने एक छोटे क्षेत्र में अधिक सूझबूझ के साथ किया। कबीर की क्रान्ति में बिखराव था, किन्तु श्रीमद् की क्रान्ति का एक स्पष्ट लक्ष्य-बिन्दु था। उन्होंने मात्र यति-संस्था को ही नहीं, आम आदमी को भी क्रान्ति के सिंहद्वार पर ला खड़ा किया। मात्र श्रीमद् ही नहीं, उन दिनों के अन्य जैन साधु भी क्रान्ति की प्रभाती गा रहे थे। 'कल्पसूत्र' की बालावबोधटीका के लिखे जाने के दो साल बाद संवत् १९४२ में सियाणा में श्रीकीर्तिचन्द्रजी महाराज तथा श्री केशरविजयजी महाराज आये। दोनों ही शुद्ध चारित्र के साधु थे। उन्होंने सियाणा में ही वर्षावास किया। अकस्मात् कोई ऐसा प्रसंग आया कि बागरा-निवासी किसी विवाद को ले कर सियाणा आये। यह एक अच्छा अवसर उपस्थित हुआ। इस समय जैन लोग तो एकत्रित हुए ही, कई अन्य जातियों के बन्धु-बान्धव भी वहाँ उपस्थित हुए। 'कल्पसूत्र' की प्रस्तावना में एक स्थान पर लिखा है : "तेमा वली ते वखतमां विशेष आश्चर्य उत्पन्न करनारी आ वात बनी के ते गामना रहेवासी क्षत्री, चौधरी, घांची, कुंभारादि अनेक प्रकारना अन्य दर्शनीओ तेमां वली यवन लोको अने ते गामना ठाकोर सहित पण साथे मली सम्यक्त्वादि व्रत धारण करवा मंडी गया।" इससे इस तथ्य का पता चलता है कि जैन साधु का जनता-जनार्दन से सीधा सम्पर्क था और उन्हें लोग श्रद्धा-भक्ति से देखते थे। अन्य जातियों के लोगों का एकत्रित होना और वध-निमित्त लाये गये पशुओं को छोड़ना तथा अहिंसा व्रत को धारण करना कुछ ऐसी ही घटनाएँ हैं, जो आज से लगभग नब्बे वर्ष पूर्व घटित हुई थीं। वह जमाना ऐसा था, जब सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से काफी उथल-पुथल थी और लोग घबराये हुए थे। सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक ढकोसलों के शिकंजे में लोग काफी संत्रस्त थे। ऐसे समय में ज्ञान का संदेश-वाहक 'कल्पसूत्र' और पर्युषण में उसका वाचन बड़ा

क्रान्तिकारी सिद्ध हुआ। श्रीमद् की इस टीका में कथाएँ तो हैं ही, उसके साथ ही विचार भी हैं, ऐसे विचार जो जीवन को जड़-मूल से बदल डालने का सामर्थ्य रखते हैं।

आरम्भ से ही श्रीमद् का बल स्वाध्याय पर था। यति-क्रान्ति के "कलमनामे" में नवीं कलम स्वाध्याय से ही संबंधित है। उन्होंने सदैव यही चाहा कि जैन साधु-साध्वियाँ और श्रावक-श्राविकाएँ स्वाध्याय की ओर प्रवृत्त हों, अतः विद्वानों के लिए तो उन्होंने "अभिधान-राजेन्द्र" कोश तथा "पाइयसद्दंबुहि" जैसी कृतियों की रचना की और श्रावक-श्राविकाओं के लिए 'कल्पसूत्र' की बालावबोध टीका जैसी सरल किन्तु क्रान्तिकारी कृतियाँ लिखीं। ज्ञान के एक प्रबल पक्षधर के रूप में उन्होंने कहा : "एमज केटलाएक विवाहादिकमां वरराजाने पहेरवा माटे कोइ मांगवा आवशे तो जरूर आपवा पडशे। एवो संकल्प करीने नवनवा प्रकारना सोना-रूपा हीरा-मोती आदिकना आभूषणो घडावी राखे छे, तथा वस्त्रोना वागा सीवरावी राखे छे, तेम कोइने भणवा वांचवाने माटे ज्ञानना भंडारो करी राखवामां शुं हरकत आवी नडे छे? पण एवी बुद्धि तो भाग्येज आवे।" (प्र.पृ. १५)। उक्त अंश का अंतिम वाक्य एक चुनौती है। श्रीमद् ने इन अप्रमत्त चुनौतियों के पालनों में क्रान्ति-शिशु का लालन-पालन किया। उन्होंने पंगतों में होने वाले व्यर्थ के व्यय का भी विरोध किया और लोगों को ज्ञानोपकरणों को सञ्चित करने तथा अन्यों को वितरण करने की दिशा में प्रवृत्त किया; इसीलिए धार्मिक रूढ़ियों के उस युग में 'कल्पसूत्र' के छापे जाने की पहल स्वयं में ही एक बड़ा विद्रोही और क्रान्तिकारी कदम था। इसे छाप कर तत्कालीन जैन समाज ने न केवल अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया वरन् आने वाली पीढ़ियों के लिए आधुनिकता के द्वार भी खोल दिए।

सभी जानते हैं, "पर्युषण" जैनों का एक सर्वमान्य धर्म-पर्व है। इसे प्रायः सभी जैन सम्प्रदाय बड़ी श्रद्धाभक्तिपूर्वक मनाते हैं। पर्युषण के दिनों में दिगम्बरों में "मोक्षशास्त्र" और श्वेताम्बरों में "कल्पसूत्र" के वाचन की परम्परा है। "मोक्ष-शास्त्र" के दस और "कल्पसूत्र" के आठ वाचन होते हैं। "कल्पसूत्र" की बालावबोध टीका इस दृष्टि से परिवर्तन का एक अच्छा माध्यम साबित हुई। इसमें कई विषयों के साथ कुछेक ऐसे विषय भी हैं, जिनका आम आदमी से सीधा सरोकार है। वाचक कैसा हो, वाचन की क्या विधि हो, शास्त्र-विनय का क्या स्वरूप हो; साधु कैसा हो, उसकी संहिता क्या हो, चर्या क्या हो इत्यादि कई विषय 'कल्पसूत्र' में सैद्धान्तिक और कथात्मक दोनों रूपों में आये हैं। असल में 'कल्पसूत्र' की यह टीका एक ऐसी कृति है, जिसे उपन्यास की उत्कण्ठा के साथ पढ़ा जा

सकता है। इसमें वे सारी विशेषताएँ हैं, जो किसी माता में हो सकती हैं। श्रीमद् का मातृत्व इसमें उभर-उभर कर अभिव्यक्त हुआ है। हम इसे क्रान्तिशास्त्र भी यदि कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कथा के कुछ हिस्सों को छोड़ कर यदि हम इसके सिद्धान्त-भाग पर ही ध्यान दें, तो यह सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक क्रान्ति का बहुत अच्छा आधार बन सकता है। प्रश्न यह है कि हम इसका उपयोग किस तरह करते हैं?

सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य 'कल्पसूत्र' के भाषिक व्यक्तित्व का है। यह मूलतः जांबुवा नगर में संवत् १९३६ में शुरु हुई और वहीं संवत् १९४० में सम्पन्न हुई। जांबुआ नगर की स्थिति बड़ी उपयोगी है। यहाँ गुजरात और मारवाड़ के लोग भी आते-जाते रहते हैं। इस तरह यहाँ एक तरह से त्रिवेणी संगम का सुख मिलता है। मालवा, गुजरात और मारवाड़ तीन आँचलिक संस्कृतियों के संगम ने जांबुवा को भाषा-तीर्थ ही बना दिया है। श्रीमद् के कारण यहाँ आसपास के लोग अधिकाधिक आते रहे। यातायात और संचार के साधनों की कमी के दिनों में लोगों का इस तरह एकत्रित होना और सांस्कृतिक मामलों पर विचार-विमर्श करना एक महत्त्वपूर्ण तथ्य था। यद्यपि श्रीमद् कई भाषाओं के जानकार थे तथापि मागधी, प्राकृत और संस्कृत पर उन्हें विशेष अधिकार था। राजस्थानी वे जन्मजात थे, अतः मारवाड़ी एक तरह से उन्हें जन्मघुटी के रूप में मिली थी, मालवा में उनके खूब भ्रमण हुए, गुजरात से उनके जीवन्त सम्पर्क रहे; और हिन्दुस्तानी से उन दिनों बच पाना किसी के लिए सम्भव था ही नहीं; अतः श्रीमद् प्राचीन भाषाओं के साथ मारवाड़ी, मालवी, गुजराती और हिन्दुस्तानी भी भली-भाँति जानते थे और अपने प्रवचन बहुधा इनके मिले-जुले भाषारूप में ही दिया करते थे। रोचक है यह जानना कि 'कल्पसूत्र' की बालावबोध टीका मूलतः मारवाड़ी, मालवी, गुजराती और हिन्दुस्तानी की सम्मिश्रित भाषा-शैली में लिखी गयी थी। जब इसे शा. भीमसिंह माणक को प्रकाशनार्थ सौंपा गया तब इसका यही रूप था; किन्तु पता नहीं किस भाषिक उन्माद में शा. भीमसिंह माणक ने इसे गुजराती में भाषान्तरित कर डाला और उसी रूप में इसे प्रकाशित करवा दिया। उस समय लोग इस तथ्य की गम्भीरता को नहीं जानते थे; किन्तु बाद में उन्हें अत्यधिक क्षोभ हुआ। सुनते हैं 'कल्पसूत्र' का मूलरूप भी प्रकाशित हुआ था (?) किन्तु या तो वह दुर्लभ है या फिर सम्भवतः वह छपा ही नहीं और शा. भीमसिंह माणक के साथ ही उस पांडुलिपि का अन्त हो गया। टीका के प्रस्तावना-भाग के ११वें पृष्ठ पर इसके मौलिक और भाषान्तरित रूपों की जानकारी दी गयी है। श्री सौधर्मबृहत्तपागच्छ के श्रावकों को इस प्रति का पता

लगाना चाहिए और उसे व्यवस्थित सम्पादन और पाठालोचन के बाद प्रकाश में लाना चाहिए। इससे उस समय के भाषारूप पर तो प्रकाश पड़ेगा ही, साथ में श्रीमद् के भाषाधिकार को ले कर भी एक नये अध्याय की विवृत्ति होगी।

टीका में कई अन्य विषयों के साथ ४ तीर्थंकरों के सम्पूर्ण जीवनवृत्त भी दिये गये हैं; ये हैं- भगवान महावीर, भगवान पार्श्वनाथ, नेमीश्वर तथा तीर्थंकर ऋषभनाथ। इनके पूर्वभवों, पंचकल्याणकों तथा अन्य जीवन-प्रसंगों का बड़ा जीवन्त वर्णन हुआ है। स्थान-स्थान पर लोकाचार का चित्रण भी है। अन्त में स्थविरावली इत्यादि भी हैं।

टीका के आरम्भिक पृष्ठों में श्रीमद् ने अपने आकिंचन्य को प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है : "हुँ मंदमति, मूर्ख, अज्ञानी, महाजड़ छतां पण श्रीसंघनी समक्ष दक्ष थइने आ कल्पसूत्रनी व्याख्या करवानु साहस करुं छुं। व्याख्यान करवाने उजमाल थयो छुं। ते सर्व श्रीसद्गुरुनो प्रसाद अने चतुर्विध श्रीसंघनुं सांनिध्यपणुं जाणवुं. जेम अन्य शासनमां कहेलुं छे के श्रीरामचन्द्रजी सेनाना वांदराओए महोटा-महोटा पाषाण लइने समुद्रमां नांख्या ते पथरा पोते पण तर्‌या अने लोकोने पण तार्‌या-ते कांइ पाषाण नो तथा समुद्रनो अने वांदराओनो प्रताप जाणवो नही, परंतु ते प्रताप श्रीरामचन्द्रजीनो जाणवो; केमके पत्थरनो तो एवो स्वभाव छे जे पोते पण बूडे अने आश्रय लेनारने पण बूडाडे. तेम हुं पण पत्थर सदृश छतां श्री कल्पसूत्रनी व्याख्या करुं छुं तेमां माहारो कांइ पण गुण जाणवो नहीं।" (क.सू.बा.टी. पृष्ठ १)। इस तरह अत्यन्त विनयभाव से श्रीमद् ने इसका लेखन आरम्भ किया और जैन समाज को नवधर्म शिक्षा के क्षितिज पर ला खड़ा किया।

इस टीका की एक अन्य विशेषता यह है कि यह गुजराती भाषा में प्रकाशित है; किन्तु नागरी लिपि में मुद्रित है। जिस काम को सन्त विनोबा भावे आज करना चाहते हैं; वह काम आज से करीब ९२ वर्ष पूर्व कल्पसूत्र की इस बालावबोध टीका के द्वारा शुरु हो गया था। सम्पूर्ण टीका नागरी लिपि में छपी हुई है; इससे इसकी पहुँच तो बढ़ ही गयी है, साथ ही साथ उस समय के कुछ वर्णों का क्या मुद्रण-आकार था, इसकी जानकारी भी हमें मिलती है। इ, भ, उ, द, द्र, ल, छ, क्ष इत्यादि के आकार दृष्टव्य हैं। अब इनमें काफी अन्तर आ गया है। इस तरह यह टीका न केवल धार्मिक महत्त्व रखती है, वरन् भाषा, लिपि और साहित्य; चिन्तन और सद्विचार की दृष्टि से राष्ट्रीय महत्त्व की भी है। हमें विश्वास है 'कल्पसूत्र' की मूल पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में पुनः छानबीन आरम्भ होगी और उसे प्राप्त किया जा सकेगा।

(तीर्थंकर जून १९७५ - श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वर विशेषांक)

विषय-प्रदर्शन

पीठिका सहित प्रथम व्याख्यान

क्र.	विषय	पृष्ठांक
१.	बालावबोधरूप ग्रंथरचना का हेतु	१
२.	पर्युषण पर्व में ग्रंथवाचन की विधि	१
३.	श्री पर्युषण पर्व, कल्पसूत्र और श्रमणसंघ का महत्त्व	२
४.	व्याख्या (बालावबोध) कार की लघुता	३
५.	श्री देवगुरु-नमस्कार-लक्षण मंगलाचरण	४
६.	दशविध कल्प का स्वरूप और किस तीर्थंकर के समय में कौन-कौन सा कल्प होता है? इसका संक्षिप्त वर्णन	४
७.	ऋजुजड, ऋजुप्राज्ञ और वक्रजड पुरुषों से संबंधित दृष्टान्त	१२
८.	दशविध कल्परूप धर्म पर वैद्य की कथा	१८
९.	कारणवश चातुर्मास में विहार और चातुर्मास योग्य क्षेत्र के उत्कृष्टादि गुण	१९
१०.	पर्युषण पर्व की सब पर्वों में उत्कृष्टता	२१
११.	ऋषिपंचमी का संबंध - अन्य दर्शनीओं में भी ऋषिपंचमी की मान्यता	२१
१२.	कल्पसूत्रश्रवण पर नागकेतु की कथा	२३
१३.	प्रसंगप्राप्त चौदह पूर्वों का मान	२६
१४.	व्याख्यान में कल्पसूत्र-वाचन का समय, वाचना कब से शुरु हुई? चतुर्थी के दिन पर्युषण पर्व करने की प्रवृत्ति	२७
१५.	कल्पसूत्र के वाचन-श्रवण से लाभ और उस पर वृद्धा के पुत्र की कथा	२९
१६.	पर्युषण में साधु-श्रावकों के करने योग्य धर्मकार्य	२९
१७.	कल्पसूत्र में तीन अधिकार-दर्शक गाथा	३०
१८.	परमेष्ठी-नमस्कार और कल्पसूत्र का प्रारम्भ	३१
१९.	संक्षिप्त वाचना से वीर प्रभु के पाँच कल्याणक	३२

२०.	विस्तृत वाचना और छह आरों का स्वरूप	३२
२१.	श्री महावीर प्रभु के सत्ताईस भव	३५
२२.	देवानन्दा ब्राह्मणी की कोख में वीर प्रभु का आगमन, देवानन्दा का स्वप्नदर्शन और ऋषभदत्त विप्र का स्वप्न-फल-कथन	४५
२३.	लक्षण किसे कहते हैं? लक्षण, व्यंजन, हस्तरेखा और मानोन्मान का स्वरूप	४७
२४.	कार्त्तिक सेठ की कथा (शक्रेन्द्र के पूर्व भव से संबंधित), इन्द्र का महत्त्व, नमुत्थुणं के पाठ से इन्द्र द्वारा किया गया प्रभु-स्तवन	५१
२५.	मेघकुमार की कथा (प्रभु सारथी के समान हैं, इस पर)	५५

द्वितीय व्याख्यान

२६.	शक्रेन्द्र के मन का संकल्प और दस अच्छेरे	५९
२७.	प्रभु का गर्भ परावर्तन और बलभद्र तथा मांधाता की पौराणिक कथा	८३
२८.	हरिणगमेषी देवकृत गर्भपरावर्तन और चंडादि चार महागतियों का योजन-परिमाण	८७
२९.	प्रभु का त्रिशला रानी की कोख में अवतरण और रानी द्वारा देखे गये स्वप्नों में से प्रथम चार स्वप्नों का विस्तृत वर्णन	८९

तृतीय व्याख्यान

३०.	पाँचवें से चौदहवें स्वप्न तक का विस्तृत वर्णन और सिद्धार्थ राजा द्वारा कहा गया चौदह स्वप्नों का सामान्य फल	९५
३१.	सिद्धार्थ राजा का (मल्लयुद्ध, तैलमर्दन, स्नान और सर्व श्रृंगार कर के) कचहरी में आगमन	१०४
३२.	संधिपाल की परीक्षा	१०७
३३.	स्वप्नपाठकों को आह्वान, उनका राजा के पास आगमन तथा निरंकुश-निर्नायक पाँच सौ सुभटों की कथा	१०९

चतुर्थ व्याख्यान

३४.	स्वप्नपाठकों का राजा को आशीर्वाद	११४
३५.	स्वप्नों के भेद और त्रिशला रानी को आये हुये चौदह स्वप्नों का फल	११५

३६.	मूलदेव की कथा	१२०
३७.	वणिक् स्त्री का दृष्टान्त	१२१
३८.	गांगा तेली की हास्य-विनोद-जनक कथा	१२५
३९.	गुणनिष्पन्न नाम स्थापन का मनोरथ	१२८
४०.	माता पर अनुकंपा कर के प्रभु गर्भ में निश्चल रहे	१३०
४१.	प्रभु की निश्चलता से माता को शोक-सन्ताप	१३०
४२.	भगवान गर्भ में एक देश से हिले	१३३
४३.	कलिकाल का दृष्टान्त	१३३
४४.	गर्भ के हिलने से माता को प्रमोद	१३४
४५.	गर्भ में ही प्रभु का अभिग्रह और गर्भ प्रतिपालन	१३५
४६.	त्रिशलामाता के दोहद (मनोरथ)	१३७
४७.	भगवान श्री महावीरस्वामी का जन्म	१३८

पंचम व्याख्यान

४८.	छप्पन्न दिक्कुमारी और सुरेन्द्रकृत जन्मोत्सव	१४०
४९.	अभिषेक-कलशों की संख्या और परिमाण	१४५
५०.	इन्द्र का संशय दूर करने के लिए प्रभु ने चरणांगुष्ठ से सुमेरुपर्वत कंपायमान किया, तीर्थंकरों का बल-वर्णन	१४७
५१.	सिद्धार्थ राजा के भवन में वसुधारादिक वृष्टि	१४९
५२.	पुत्रजन्म की बधाई और बन्दीमोचनादिक	१५०
५३.	बालक को चन्द्र-सूर्य के दर्शन कराने की विधि	१५३
५४.	भोजन-विधि	१५४
५५.	प्रकारान्तर से भोजन और आभरण की विधि	१५८
५६.	प्रभु का नाम-स्थापन	१६२
५७.	प्रभु की आमलकी क्रीड़ा व देव पर विजय	१६४
५८.	लेखनशाला-महोत्सव	१६५
५९.	अथ सार्थ भले प्रकरणम्	१७०
६०.	प्रभु का विवाह व परिवार	१७५
६१.	प्रभु को माता-पिता का वियोग, बड़े भाई के कहने से सचित्त-परिहारी के रूप में दो वर्ष तक पुनः घर में रहे	१७६
६२.	भगवान का दिया हुआ वार्षिक दान और उसकी महिमा	१७७
६३.	भगवान का दीक्षा-महोत्सव और स्त्रियों का मनोरंजक उत्साह	१८०

षष्ठ व्याख्यान

६४.	नन्दीवर्द्धन राजा की आज्ञा ले कर प्रभु का विहार, अधम किसान का उपसर्ग और इन्द्र द्वारा उसका निवारण	१८६
६५.	कामी पुरुषों, स्त्रियों तथा भ्रमरों का उपसर्ग	१८८
६६.	शूलपाणि यक्ष का उपसर्ग और भगवान के दस स्वप्न	१८९
६७.	उत्पल निमित्तज्ञकथित स्वप्नफल	१९१
६८.	अहच्छंदक निमित्तज्ञ का वृत्तान्त	१९२
६९.	निर्भाग्य सोमदेव विप्र की कथा	१९३
७०.	चंडकौशिक नाग का उपसर्ग और उसे प्रतिबोध	२०१
७१.	चंडकौशिक नाग की कथा	२०१
७२.	प्रभु को सुदंष्ट्र देव का उपसर्ग	२०३
७३.	कंबल-संबल का पूर्वभव	२०४
७४.	पुष्य निमित्तज्ञ और गोशालक का वृत्तान्त	२०५
७५.	प्रभु को कटपूतना देवी का उपसर्ग	२११
७६.	गोशालक पुनः प्रभु से आ मिला	२१२
७७.	प्रभु का अनार्य देश में विहार और वहाँ हुए उपसर्ग	२१३
७८.	वेश्यायन तापस की कथा	२१४
७९.	प्रभु को संगमदेव का उपसर्ग	२१६
८०.	जीर्णसेठ और चन्दनबाला का अधिकार	२१९
८१.	गोपालककृत कर्णकीलोपसर्ग	२२२
८२.	प्रभु की आचार-विचार-दिनचर्या	२२४
८३.	प्रभुकृत तप और पारणा की संख्या	२२७
८४.	तप-संख्या-यंत्र-स्थापना	२२८
८५.	चातुर्मास-संख्या और प्रभु को केवलज्ञान	२२९
८६.	प्रथम देशना की निष्फलता और रात्रि-विहार	२३०
८७.	गणधरादि संघस्थापना - १. श्री गौतम गणधर	२३१
८८.	२. श्री अग्निभूति गणधर	२५०
८९.	३. श्री वायुभूति गणधर	२५१
९०.	४. श्री अव्यक्त गणधर	२५२
९१.	५. श्री सुधर्म गणधर	२५२

९२.	६. श्री मंडित गणधर	२५२
९३.	७. श्री मौर्यपुत्र गणधर	२५३
९४.	८. श्री अकंपित गणधर	२५३
९५.	९. श्री अचलभ्राता गणधर	२५४
९६.	१०. श्री मेतार्य गणधर	२५४
९७.	११. श्री प्रभास गणधर	२५४
९८.	गणधरस्थापना और चन्दनबाला की दीक्षा	२५५
९९.	गौतमस्वामी की अष्टापद तीर्थ की यात्रा व १५०३ तापसों की दीक्षा	२५६
१००.	चातुर्मास संख्या और प्रभु महावीर का निर्वाण	२५७
१०१	श्री गौतमस्वामी को केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हुआ?	२५९
१०२.	दीपमालिका पर्व की उत्पत्ति और भाई दूज	२६१
१०३.	श्री महावीर प्रभु की सम्पत्ति	२६३
१०४.	दो प्रकार की मोक्षमर्यादा	२६४
१०५.	निर्वाण में इन्द्रादिकों का कर्त्तव्य	२६६
१०६.	पुस्तक लेखन कब और कैसे हुआ?	२६६

सप्तम व्याख्यान

१०७.	पश्चानुपूर्वी न्याय से श्री पार्श्वनाथस्वामी के पाँच कल्याणक	२६८
१०८.	पार्श्वनाथ प्रभु का च्यवन और उनके दस भाव	२६८
१०९.	पार्श्व प्रभु का जन्म, विवाह और नागोद्धार	२७३
११०.	श्री पार्श्वनाथ प्रभु की दीक्षा	२७५
१११.	कलिकुंड और कुकड़ेश्वर तीर्थ की स्थापना	२७६
११२.	पार्श्वनाथ प्रभु को कमठासुर का उपसर्ग	२७८
११३.	पार्श्व प्रभु का परिवार और मोक्षगमन	२८०
११४.	श्री नेमिनाथ भगवान का जन्म	२८१
११५.	यादवों और पांडवों की उत्पत्ति	२८२
११६.	वसुदेवजी का पूर्वभव	२८७
११७.	श्री कृष्ण वासुदेव का जन्म और उनके हाथों कंसवध	२९३
११८.	शौरीपुर से यादवों का निर्गमन और कालकुमार की प्रतिज्ञा	२९७

११९.	द्वारिका नगरी में यादवों का राज्य और श्री शंखेश्वर तीर्थ की स्थापना	२९९
१२०.	नेमिनाथ की बल-प्रशंसा और बल-परीक्षा	३०१
१२१.	प्रभु का आयुधशाला में गमन और कृष्ण के साथ बल परीक्षा	३०२
१२२.	प्रभु को विवाह मंजूर कराने के लिए गोपियों का प्रयत्न	३०४
१२३.	प्रभु का शृंगार और उनकी बारात	३०५
१२४.	प्रभु का तोरण से लौटना और राजुल का सन्ताप	३०८
१२५.	नेमिनाथ की दीक्षा और केवलज्ञान	३११
१२६.	रथनेमि की भोगपिपासा और राजीमती का प्रतिबोध	३१२
१२७.	श्री अरिष्टनेमि प्रभु का परिवार और निर्वाण	३१४
१२८.	इक्कीसवें तीर्थंकर से श्री ऋषभदेव तक का अन्तर	३१५

अष्टम व्याख्यान

१२९.	श्री आदिनाथ भगवान का चरित्र - उनके पाँच कल्याणक	३१९
१३०.	भगवान श्री ऋषभदेवजी के तेरह भव	३१९
१३१.	प्रभु ऋषभदेव का मरुदेवी की कुक्षि में अवतरण	३२८
१३२.	कुलकरों की उत्पत्ति और नीति-प्रचार	३२९
१३३.	प्रभु का जन्म, नाम-वंशस्थापन और विवाह	३३१
१३४.	ऋषभदेव की सन्तति, राज्याभिषेक और विनीता नगरी की स्थापना	३३३
१३५.	युगलिक धर्म निवारण और भोजन विधि निरूपण	३३५
१३६.	भगवान की दी हुई लेखनादि कला-शिक्षा	३३६
१३७.	प्रभु के सौ पुत्रों के नाम	३३८
१३८.	प्रभु की दीक्षा और तापसों की प्रवृत्ति	३३९
१३९.	ऋषभदेवस्वामी के पुत्ररूप में नमि-विनमि	३४०
१४०.	अन्तराय कर्म के उदय से प्रभु द्वारा किया गया वार्षिक तप	३४२
१४१.	प्रभु के वार्षिक तप का पारणा और कर-संवाद	३४२
१४२.	प्रभु के साथ श्रेयांसकुमार का आठ भव का संबंध	३४८
१४३.	प्रभु ने आहारान्तरायकर्म कैसे बाँधा	३४८
१४४.	धर्मचक्रपीठ की स्थापना और बाँग देने की प्रवृत्ति	३४९

१४५.	भरत के प्रति मरुदेवी माता का उपालंभ	३५०
१४६.	ऋषभदेव को केवलज्ञान और मरुदेवी का मोक्षगमन	३५१
१४७.	श्री चतुर्विध संघ की स्थापना	३५४
१४८.	भरत की षट्खंड-विजय और सुन्दरी तथा अठानबे भाइयों की दीक्षा	३५५
१४९.	भरत-बाहुबली का युद्ध और बाहुबली की दीक्षा तथा केवलज्ञान	३५६
१५०.	ब्रह्मभोजन और यज्ञोपवीत की प्रवृत्ति	३६३
१५१.	भरत चक्रवर्ती का निर्वाण	३६४
१५२.	श्री ऋषभदेव प्रभु का परिवार और निर्वाण	३६५
१५३.	शक्रादि इन्द्रकृत अग्नि-संस्कारोत्सव	३६६
१५४.	चौबीस तीर्थंकरों का परिचय दर्शक यंत्र	

नवम व्याख्यान

१५५.	श्री महावीरस्वामी के ग्यारह गणधर और नौ गच्छ	३६८
१५६.	श्री सुधर्मस्वामी और श्री जंबूस्वामी	३७१
१५७.	श्री प्रभवस्वामी का संक्षिप्त वृत्तान्त	३७७
१५८.	श्री शय्यंभवसूरिजी और मनकमुनि का संक्षिप्त वृत्तान्त	३७८
१५९.	श्री भद्रबाहु और वराहमिहर का संक्षिप्त वृत्तान्त	३८०
१६०.	श्री स्थूलिभद्रजी और वररुचि का संक्षिप्त वृत्तान्त	३८४
१६१.	आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ति और राजा संप्रति का वृत्तान्त	३९३
१६२.	वज्रस्वामी और वज्रसेनसूरि	३९६
१६३.	यशोभद्रसूरि से विस्तृत स्थविरावली	४०२
१६४.	त्रैराशिक शाखा और वैशेषिक मत की उत्पत्ति	४०६
१६५.	मध्यमा शाखा की उत्पत्ति	४०८
१६६.	ब्रह्मद्वीपिका शाखा की उत्पत्ति	४१०
१६७.	आर्यरक्षितसूरिजी का संक्षिप्त वृत्तान्त	४११
१६८.	वृद्धवादी, सिद्धसेन-दिवाकर व कालिकाचार्य	४१५
१६९.	तीन हरिभद्रसूरि का संक्षिप्त वृत्तान्त	४१६
१७०.	अट्ठाईस प्रकार की साधु समाचारी	४१८
१७१.	पाँच समिति के पालन पर भिन्न-भिन्न दृष्टान्त	४३०

१७२.	तीव्र गुप्ति के पालन पर भिन्न-भिन्न दृष्टान्त	४३२
१७३.	क्षमायाचना करके ही प्रतिक्रमण करना कल्पता है; इस पर उदायी राजा का दृष्टान्त	४३३
१७४.	कुम्हार और धूर्तों की कथा	४३७
१७५.	क्रोध न छोड़े, इस पर क्रोधी ब्राह्मण का दृष्टान्त	४३७
१७६.	कृत अपराध की क्षमा माँगने पर मृगावती का दृष्टान्त	४३८
१७७.	अलिया-गलिया करने पर सासु-दामाद का दृष्टान्त	४३९
१७८.	क्रोधपिंड पर घेवरिया मुनि का दृष्टान्त	४४१
१७९.	मानपिंड पर सेवैया मुनि का दृष्टान्त	४४१
१८०.	मायापिंड पर आषाढ़भूति का दृष्टान्त	४४४
१८१.	लोभपिंड पर सिंहकेसरिया मुनि का दृष्टान्त	४४५
१८२.	अथ प्रशस्तिः (ग्रंथकर्ता का संक्षिप्त परिचय)	४४८

प्राथमिक वक्तव्य

इस असार संसार में प्राणिमात्र का जीवितव्य जलतरंग-वत्, नाना प्रकार की संपत्तियाँ दुःखागारवत्, इन्द्रियों के विविध विषय संध्यारागवत् और स्वजनादिक का समागम स्वप्नोपम या इन्द्रजालवत् है; तो भी मोहनीय कर्म के उदय से प्राणी समझता है कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा ऐश्वर्य है, मैं महासत्ताधारी हूँ, संसार में मेरे सन्मुख बोलने वाला कौन है? इत्यादि मानसिक विनाशक संकल्पों में फँस कर प्राणिमात्र उनसे क्षणमात्र भी अलग नहीं हो सकते और वे दुराग्रह, दंभ, लोभादिक में पड़ कर प्राप्त मनुष्य जन्म को सफल नहीं कर सकते। पूर्व में कुटुम्ब, वैभव और स्वजनादिक के संयोगजन्य सुख जीव यद्यपि अनन्त बार प्राप्त कर चुका है; तथापि उनकी पुनः प्राप्ति पर मानो ये सुख अभी ही मिले हैं, ऐसा मान कर वह उनमें तल्लीन हो जाता है। परन्तु परमार्थ दृष्टि से देखने पर तो सांसारिक प्रत्येक सुख दुःखरूप ही है। वह संसारवर्द्धक, कुगति का कारण और निजगुणोच्छेदक है। इन कल्पित विषय-सुखों में गोते लगाते हुए अनन्त कालचक्र व्यतीत हो गये, पर अभी तक तृप्ति नहीं हुई और आगे होने की आशा भी नहीं है। इसलिए मिथ्या आशा छोड़ कर धर्मध्यान में तत्पर रहना ही उभयलोक में हितकर मार्ग है।

मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों में से जब अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार प्रकृतियों का समूल क्षय होता है, तब क्षायक सम्यक्त्व; क्षयोपशम होता है, तब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और उपशम होता है, तब उपशम सम्यक्त्व होता है। इन तीन में से कोई एक सम्यक्त्व जीव को जब मिलता है, तब जिनेन्द्रभाषित शुद्ध धर्म मिला; ऐसा कहा जा सकता है और उसके मिलने से जीव को स्वयमेव विचार उत्पन्न हो जाता है कि सांसारिक विषयसुख अनित्य है, यह पार्थिव शरीर क्षणभंगुर है, भोग रोग का घर है, जनादिक का समागम पँखेरुओं का मेला है, संसार में सकर्मी जीव अजर-अमर रहने वाले नहीं हैं, एक दिन मौत का डंका तो बजने वाला ही है; इसलिए काल का भरोसा न करते हुए जो कुछ शुभकृत्य करने का है; उसे त्वरा से कर लूँ, तो अच्छा है। ऐसे सद्विचार उसके मन में उद्भुत (उत्पन्न) होने से वह जीव तप-जप, प्रतिक्रमण, पौषध, व्रत-नियम, पूजा, प्रभावना और तीर्थयात्रा आदि शुभ कार्य कर के अपनी आत्मा को सफल बनाने में समर्थ होता है। ऐसे ही प्राणी द्विविध (अंतर्बाह्य) परिग्रह का त्याग कर के, संयम का आदर कर के, सबके मुख से मंगल बुलवा कर के तथा अपनी कीर्ति को

अजर-अमर बना कर कृतकृत्य होते हैं।

ऐसे सत्यधर्म (सम्यक्त्व) की प्राप्ति के लिए ज्ञान-क्रियायुक्त निर्ग्रंथ गुरु का योग मिले, तब उनके मुख से जिनेश्वरों द्वारा प्ररूपित या बहुश्रुताचार्यों द्वारा रचित शास्त्रों का श्रवण करना चाहिये अथवा पढ़ना आता हो तो उन्हें स्वयं पढ़ना चाहिये। यदि सांसारिक व्यवसाय (रोजगार) के प्रपंच से पढ़ने के लिए अधिक अवकाश न मिलता हो, तो भी रात-दिन में दो-चार घड़ी निर्धारित कर के उस समय शास्त्र-वाचन अवश्य करना चाहिये। घर की स्थिति अच्छी न होने से या कुटुम्ब-परिपालन के प्रपंच से प्रतिदिन वाचन-श्रवण न हो सके,तो पर्वतिथियों में ऐसा अभ्यास रखना चाहिये। यह भी न हो सके, तो पूर्वकृत अशुभ कर्मों के उदय का धिक्कार और आत्मगर्हा कर के पर्युषण पर्व के दिनों में तो इस कल्पसूत्र का श्रवण-वाचन अवश्य करना ही चाहिये। क्योंकि इस सूत्र का भी भक्ति बहुमान पूर्वक श्रवण या वाचन करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है। जैसे-जैसे क्षय होता जाता है, वैसे-वैसे क्षयोपशम की तरतमता होती है। उसे श्रवण-वाचनादि साधन भी सुलभ होते हैं और इससे कालान्तर में ज्ञानी होना संभव होता है। यह निर्विवाद सिद्ध है।

इस विषमकाल (पंचम आरक) में तो धर्मदेशक और सत्यप्ररूपक निर्लोभी निर्ग्रंथ मुनिवरों का योग मिलना बहुत मुश्किल है और कई गाँवों या शहरों में ऐसे मुनिवरों का योग मिलता है, तो श्रद्धालु और योग्य श्रोताओं की खामी देखने में आती है। वर्तमान समय में जैनों की बस्ती वाले बहुत से गाँव ऐसे भी देखने में आते हैं, जहाँ योग्य साधुओं का योग तो दूर रहा; परन्तु शिथिलाचारी नामधारी योग्य पढ़े-लिखे यतियों का योग भी नहीं मिलता। इन गाँवों में जैन लोग पर्युषण जैसे पवित्र पर्व दिनों में कल्पसूत्र श्रवण या धार्मिक क्रियाओं से भी वंचित रहते हैं। किसी-किसी गाँव के भावुक जैन नकरा निश्चित करा के पर्युषण पर्व के दिनों में यतियों को बुला कर कल्पसूत्र-श्रवण और धर्म क्रिया का आचरण करते हैं; परन्तु गाड़ी, बाड़ी और लाड़ी (स्त्री) के प्रेमी व किराये के यति अनेक नखरे कर के भाविकों को तंग करते हैं। इससे वे भाविक यतियों को पुनः बुलाने की इच्छा भी नहीं रखते।

कई यति सरल व शान्त स्वभाव वाले होते हैं। वे अपने पास कल्पसूत्र की टब्बावाली या बालावबोध वाली जैसी प्रति होती है, वही पढ़ कर सुनाते हैं और वैसे सुनाने वाले यति भी हर गाँव में नियमित आते नहीं है। वे हर वर्ष बदलते रहते हैं। इसी प्रकार कल्पसूत्र की प्रतियाँ भी सब एक जैसी नहीं होतीं। किसी प्रति में वर्णन या कथा भाग विस्तार से, तो किसी में संक्षेप में लिखा होता है। अब एक वर्ष एक

यति के पास संक्षिप्त वर्णन या कथावाली प्रति सुनी हो और दूसरे वर्ष दूसरे यति के पास विस्तृत वर्णन या कथावाली प्रति सुनने में आयी हो, तो श्रोताओं को सन्देह उत्पन्न होता है कि इसमें तो अमुक अधिकार आया नहीं है; इसलिए यह प्रति तो ठीक नहीं है।

ऐसे अल्पबुद्धि वाले श्रोताओं के लिए एक ही प्रकार का लिखा हुआ कल्पसूत्र पढ़ा जाता हो, तो उन्हें किसी प्रकार का संशय उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि कोई श्रावक या श्राविका उपाश्रय में सुनने के लिए आने में असमर्थ हो, तो वह अपने घर में पढ़ कर या किसी से पढ़ा कर, सुन कर लाभ ले सकता है। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य बहरा हो, तो वह दूसरों को सुन नहीं सकता; पर स्वयं को पढ़ना आता हो, तो वह भी कल्पसूत्र पढ़ कर पर्व की आराधना कर के लाभ ले सकता है। छोटे-छोटे गाँवों वाले जैन लोग, जिन्हें साधु या यति का योग नहीं मिल सकता हो, वे पढ़ कर लाभ ले सकते हैं। मालवा, मारवाड़ और मेवाड़ देश के कई गाँवों में स्त्रियों को परदे में रखने का रिवाज है। परदानशीन स्त्रियाँ व्याख्यान सुनने भी न जा सकें, ऐसा सख्त प्रतिबंध है। वे यदि पढ़ी-लिखी हों, तो पर्युषण जैसे पर्व के दिनों में कल्पसूत्र अपने घर में पढ़ सकती हैं। इसी प्रकार नवदीक्षित साध्वी बालावबोधमय कल्पसूत्र हो, तो पढ़ कर सुना सकती है या स्वयं पढ़ सकती है।

इत्यादि अनेक कारणों को लक्ष्य में रख कर मालवा, मेवाड़, मारवाड़ और गुजरात के जैन संघों ने प्रार्थना की कि यद्यपि कल्पसूत्र के टब्बे और ज्ञानविमलसूरि आदि के किये हुए बालावबोध हैं; तथापि उनमें कई बाबतें न होने से या अधूरी रहने से ये हर किसी को समान रूप से लाभकारक होने जैसे नहीं हैं। क्योंकि अधूरा ज्ञान, ज्ञान नहीं, अधूरा पढ़ा पढ़ा-लिखा नही, अधूरी रसवती रसोई नहीं, अधूरा वृक्ष वृक्ष नहीं, अर्द्धपक्व फल स्वादिष्ट नहीं; इसलिए सम्पूर्ण चाहिये। अतः आप कल्पसूत्र का ऐसा बालावबोध तैयार करने की कृपा कीजिये कि जिससे सब लोग समान रूप से लाभ प्राप्त कर सकें।

श्री संघ की प्रार्थना ध्यान में ले कर प्राचीन भंडारों में से पुरातन लिखित कल्पसूत्र की टीका, चूर्णी, निर्युक्ति तथा टब्बा और भाषा की दस-बारह प्रतियाँ जमा कर के यह बालावबोध लिखना शुरु किया। गुरुदेव की असीम कृपा से विक्रम संवत् १९४० वैशाख वदि २ मंगलवार के दिन यह निर्विघ्न पूर्ण हुआ। पूर्ण होते ही आहोर, जालोर, गुड़ाबालोतान, हरजी, शिवगंज, सियाणा, बागरा, भीनमाल, थराद, धानेरा, राजगढ़, राजपुर, कूकसी, रतलाम, जावरा, मंदसौर आदि गाँवों के संघों ने अपने-अपने लिए खास लिखने वालों को रोक कर एक या

अधिक प्रतियाँ लिखवा लीं और उन्हें पढ़ कर सब संघ सन्तुष्ट हुए। परन्तु प्रतियाँ लिखवाने में खर्च अधिक होने से छोटे-छोटे गाँवों के जैन लोग वैसी प्रतियाँ लिखवाने में असमर्थ हुए। तब श्री संघ ने विचार किया कि यदि इस बालावबोध को पुस्तकाकार में छपवा दिया जाये, तो इससे वे जैन भी लाभ लेने में समर्थ हो सकेंगे। यह सोच कर मारवाड़ वगैरह देशों के श्री संघों ने खर्चे का प्रबंध कर के निर्णयसागर प्रेस मुम्बई में इस कल्पसूत्र बालावबोध की दो हजार प्रतियाँ छपवा कर प्रसिद्ध कीं और पुनः छपवाने से संबंधित सब प्रकार का हक सरकारी कानून के अनुसार संवत् १९४४, सन् १८८८, शालिवाहन शक १८०९ मिति फाल्गुन सुदि ८ सोमवार के दिन रजिस्टर करवा के स्वाधीन रखने में आया।

छप कर प्रसिद्ध होते ही इस ग्रंथ की दो हजार प्रतियाँ हाथों-हाथ समाप्त हो गयीं। यही इसकी उत्तमता और उपयोगिता का प्रत्यक्ष प्रमाण जानना। इस प्रस्तावना में इसमें आये हुए विषयों का स्पष्टीकरण न कर के इसके आरम्भ में दिये गये विषय-प्रदर्शन और कल्पसूत्र पीठिका पढ़ने की वाचकों को भलामण हैं।

इस बालावबोध में अनेक विषयों पर कथाएँ दी गयी हैं। उन्हें भिन्न-भिन्न प्रतियों में से लिया गया है। उनमें यदि कोई फेरफार देखने में आये, तो इससे संदिग्ध नहीं होना, क्योंकि ग्रंथकर्ताओं ने अपनी-अपनी कृतियों में किसी जगह संक्षेप में तो किसी जगह विस्तार से कथाएँ लिखी हैं। यह परिपाटी परम्परागत है। इसलिए वाचनान्तर में किसी प्रकार का फेरफार दिखाई दे, तो उसमें सन्देह रखना नहीं, क्योंकि शास्त्र-वचन में सन्देह रखने से सम्यक्त्व का नाश होता है। सूत्रवचन भी है कि- संकाए सम्मत्तनासं।

पर्युषण पर्व सब पर्वों में श्रेष्ठ, मंगलकारक और परम पवित्र है। इसमें आरम्भ -समारंभ के व्यापार छोड़ कर और प्रमाद-कथाओं को देशनिकाला दे कर धर्माराधन तथा कल्पसूत्र-श्रवण या वाचन में तल्लीन रहना चाहिये। ऐसा करने से ही इस पर्व की आराधना का वास्तविक फल हासिल होता है। भला, जिन पर्व दिनों में परस्पर मैत्रीभाव रखना, प्रतिक्षण ध्यान में प्रवृत्ति करना, हर काम करते समय जयणा रखना और शान्त मन से महान् आत्माओं के चरित्र सुनना चाहिये; वहाँ वैसा न कर के यदि परस्पर बैर-विरोध बढ़ाया जाये, प्रतिक्षण व्यर्थ वाग्युद्ध किया जाये, हर कार्य में जयणा को देश निकाला दिया जाये और कलहकारी बातें सुनाई दें, तब पर्वाराधन का फल कैसे प्राप्त हो सकता है? ऐसा करने से फल की आशा तो दूर रही; पर दुगुने कर्म बँधते हैं।

कहा गया है कि पर्व के दिनों में कलह-कंकास से जो कर्म बँधता है, वह

अनेक जन्म तक रोते-रोते भी छूटता नहीं है। कल्पसूत्र के अंतिम भाग में स्पष्ट कहने में आया है कि- जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा। जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा। जो उपशम पाता है, उसे आराधना होती है। जो उपशम नहीं पाता, उसके आराधना नहीं होती। इसलिए जैन धर्म का परम ध्येय जो उपशम है, उसका जब तक आश्रय लेने में न आये; तब तक तप-जप आदि धर्म-कृत्य सफल नहीं हो सकते। चित्त में विवेक और श्रद्धा दोनों को समान स्थान दे कर तथा बैर-विरोध-जनक हिंसा से दूर रह कर पर्वाराधन में मशगुल रहना ही श्रेयस्कर मार्ग है। अस्तु।

अब अन्त में कतिपय प्रासंगिक सूचनाएँ सूचित कर विराम लेते हैं-

१. वीतराग के वचन पर दृढ़ श्रद्धा रखने वाला हो, शास्त्र-वाचन की रुचिवाला हो, शास्त्र का मर्म अच्छी तरह समझाने में दक्ष हो, प्रतिक्रमणादि क्रिया करने-कराने में आलसी न हो और शान्त प्रकृति वाला सहनशील हो; वही गृहस्थ वाचन-विधि के अनुसार यह बालावबोध सुनाने का अधिकारी है।

२. सुनाने वाला व्यक्ति सामायिक या पौषध ले कर ऊँचे आसन पर पुस्तक रख कर, मुख के आगे मुखवस्त्रिका रख कर और 'पुरिम चरिमाण कप्पो....' यह मांगलिक गाथा नवकारपूर्वक बोल कर श्रोताओं को पढ़ कर सुनाये। खुले मुख या नीचे आसन पर पुस्तक रख कर पढ़ना या सुनाना नहीं।

३. सुनने वाले श्रोता भी पुस्तक के सन्मुख दीप-धूप और गहुँली कर के विनय-बहुमानपूर्वक कोलाहल किये बिना स्थिर चित्त रख कर कल्पसूत्र का श्रवण करें और सुनने के बाद सूत्रपूजा और जयारव से सूत्र का बहुमान करें।

४. श्रोताओं की सभा में जितने दिन तक कल्पसूत्र बालावबोध पढ़ कर सुनाना हो, उतने दिन तक सुनाने वाले को सचित्त का त्याग करना चाहिये, गरम जल पीना चाहिये, भूमि पर शयन करना चाहिये, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये, कलह-कंकास से दूर रहना चाहिये, किसी को बुरा लगे, ऐसा वचन नहीं बोलना चाहिये, चिलम या बीड़ी आदि नहीं पीना चाहिये, आत्मा को संवर भाव में रखना चाहिये और कम से कम बियासणा का तप करना चाहिये।

५. अनिवार्य कारण से प्रथम सुनाने वाला यदि एक-दो दिन पढ़ कर छोड़ दे और उसकी जगह कोई दूसरा पढ़ने बैठे, तो उसे भी ऊपर (चौथी कलम) के अनुसार ही चल कर पढ़ना और सुनाना चाहिये। इससे विपरीत नहीं।

६. सुबह सात बजे से ग्यारह बजे तक और दोपहर एक बजे से साढ़े चार बजे तक का समय कालवेला कहलाता है। इसे छोड़ कर शेष समय अकालवेला है। इसलिए कल्पसूत्र बालावबोध कालवेला में ही पढ़ कर सुनाना, पर अकालवेला में पढ़ना या सुनाना नहीं।

७. पर्युषण पर्व के दिनों में कल्पसूत्र पढ़ने की यह परिपाटी प्रचलित है कि अमावस्या के दिन पीठिका सहित पहला और दूसरा, एकम के दिन तीसरा और चौथा, दूज के दिन पाँचवाँ और छठा, तीज के दिन सातवाँ और आठवाँ और चौथ के दिन नौवाँ व्याख्यान पढ़ कर पूर्ण करना। परन्तु उक्त नियम के अनुसार पाँच दिन में पूर्ण न हो सके, तो आठ व्याख्यान तो अवश्य पूर्ण करने ही चाहिये। नौवाँ व्याख्यान पंचमी या षष्ठी के दिन पूर्ण किया जाये, तो भी कुछ हरकत नहीं है।

८. दूसरों को यह ग्रंथ सुनाना न हो और स्वयं अकेले को ही यह ग्रंथ पढ़ना हो, तो भी भक्ति-बहुमान से, पवित्र हो कर, मुख के आगे मुखवस्त्रिका या आड़े पल्लू रख कर तथा अकालवेला टाल कर पढ़ना चाहिये।

९. इस ग्रंथ की वाचना शुरु करने के बाद अधूरी छोड़ना नहीं, क्योंकि वाचना अधूरी छोड देने से इसके सारासार का पता नहीं लगता और यह अमंगल भी होता है। कोई भी ग्रंथ आदि से अन्त तक पढ़ने या सुनने से ही हितकर होता है और उसमें से अनेक बातें सीखने योग्य मिलती हैं।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

-ग्रंथकर्ता

यत्किञ्चित्

विश्वपूज्य प्रातःस्मरणीय, परम योगीराज श्रीमज्जैनाचार्य दादा गुरुदेव श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. ने अनेक ग्रंथरत्नों की रचना कर हम पर बहुत बड़ा उपकार किया है। उन परमोपकारी दादा गुरुदेव ने कल्पसूत्र के महत्त्व को जान कर तत्कालीन गुजराती-मारवाड़ी-हिन्दी मिश्रित भाषा में उसका अनुवाद कर सर्वजनहिताय प्रकाशन करवाया था। इसका मूल कारण सामान्यजनों का प्राकृत भाषा का अज्ञान था। प्राकृत भाषा में जो गुरुभक्त कल्पसूत्र को न समझ सके, उसके लिए कल्पसूत्र बालावबोध का प्रकाशन बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुआ। कालान्तर में इस बालावबोध की माँग बढ़ने पर परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीमद् विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. ने पुनः प्रकाशन करवाया। तत्पश्चात् इसकी तृतीय आवृत्ति का भी प्रकाशन हुआ एवं चतुर्थ आवृत्ति का प्रकाशन भी हुआ।

समय के प्रवाह के साथ गुरुभक्तों की ओर से यह माँग प्रस्तुत की जाने लगी कि कल्पसूत्र-बालावबोध का आधुनिक हिन्दी संस्करण प्रकाशित होना चाहिये। गुरुभक्तों की यह माँग समयोचित थी। कार्य श्रमसाध्य और समयसाध्य था। विचारमंथन होता रहा और एक दिन हिन्दी आवृत्ति का कार्य शुरु कर दिया। अन्यान्य कार्यों में व्यस्त होते हुए भी श्री कल्पसूत्र-बालावबोध के आधुनिक हिन्दी रूपान्तरण का कार्य निर्बाध रूप से चलता रहा और कुक्षी वर्षावास समाप्त होते होते यह कार्य समाप्त हो गया। इस हिन्दी रूपान्तरण में और प्रूफ-संशोधन में भाई श्री बसंतीलाल जैन 'बागरावाला' का श्रम सराहनीय रहा है।

श्री सौधर्म बृहत्तपागच्छीय त्रिस्तुतिक श्रीसंघ, कुक्षी जिला धार (म.प्र.) ने इस ग्रंथ के मुद्रण में होने वाले व्यय-भार का वहन कर अपनी गुरुभक्ति का परिचय दिया, एतदर्थ वह साधुवाद का पात्र है।

श्री कल्पसूत्र बालावबोध के इस हिन्दी संस्करण का लाभ अधिक से अधिक गुरुभक्त उठायें, इसी मंगलमनीषा के साथ-

गुरुसप्तमी, २०५५ — आचार्य विजय जयन्तसेनसूरि

कुक्षी. जिला धार (म.प्र.)

२५.१२.१९९८

।। श्री सद्गुरुभ्यो नमः ।।

।। ॐ णमो अरहो समणस्स भगवओ महावीरस्स।।

जैनाचार्य श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज संकलित

श्री कल्पसूत्र-बालावबोध – हिन्दी

ग्रंथरचना का हेतु कहते हैं

श्री जिनशासन में सर्व पर्व-शिरोमणि श्री पर्युषण पर्व है। इस पर्व के दिनों में नगर-नगर में कल्पसूत्र पढ़ा जाता है; पर श्री तीर्थंकर भगवान ने योगवहन करने वाले साधु-मुनिराजों को ही सूत्र पढ़ने का अधिकार दिया है। अन्य किसी से सूत्र की व्याख्या नहीं हो सकती; इसलिए ऐसे मुनिराजों का आगमन सब जगह नहीं होने से जिस गाँव में साधु-मुनिराज बिराजमान न हों, उस गाँव में रहने वाले श्रावकों को कल्पसूत्र श्रवण में अंतराय होता है। उस अन्तराय को दूर करने के लिए पूर्वाचार्यों ने लोकोपकार के लिए पूर्व में अनेक प्रकरणों की रचना की है तथा वर्तमान काल में भी करते हैं। वे प्रकरण भी सूत्रों के अर्थरूप ही हैं और उनका पठन-पाठन चतुर्विध श्री संघ करता है। वैसे ही मैं भी श्री कल्पसूत्र बालावबोध प्रकरण रूप में बनाता हूँ; जिससे यह ग्रंथ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध श्री संघ को पढ़ने के उपयोग में आ सके। यह बालावबोध भी सूत्र का अर्थ रूप होने से इसे प्रकरण समान समझना चाहिये।

श्री पर्युषण पर्व में ग्रंथवाचन की विधि

जिस ग्राम-नगर में श्री मुनि महाराज चातुर्मास के लिए रहे हों, उस गाँव के श्रावक मिल कर साधुजी के पास से सूत्र की पोथी माँग कर किसी श्रावक के घर में रखें और रात्रि-जागरण करें। फिर दूसरे दिन श्रावक-श्राविका मिल कर एक बालक को अबोट-शुद्ध वस्त्र पहना कर उसे हाथी पर बिठा कर या अश्वप्रमुख उत्तम वाहन पर बिठा कर वह पोथी एक थाल में रख कर, थाल उस लड़के के हाथ में दे कर सबको श्रीफल, बदाम,

मिश्री, आदि की प्रभावना कर के बाजे-गाजे के साथ बड़े महोत्सव पूर्वक उपाश्रय में जा कर वह पुस्तक गुरु के हाथों में दें। गुरु वाचना करे। उसे सर्व श्रीसंघ सुने और गुरु के आगे श्रीफल आदि रखे।

अथवा यह पुस्तक जिस श्रावकादि के पास हो उसके पास से माँग कर प्राप्त कर के पंचों द्वारा निश्चित किये हुए अन्य किसी श्रावक के घर ले जा कर वहाँ रात्रि जागरण कर के दूसरे दिन सर्व संघ मिल कर पूर्वोक्त रीति से बड़े महोत्सव के साथ पौषधशाला में किंवा उपाश्रय में अथवा किसी श्रावक के घर में जहाँ सामायिकादि करने के लिए स्वच्छ निर्मल स्थान हो, उस स्थान पर अथवा जीवादि उपद्रव रहित अन्य कोई स्थान हो अथवा सर्व संघ ने मिल कर जहाँ पढ़ने का विचार किया हो, उस स्थान पर पहुँच कर ज्ञानभक्ति पूर्वक बहुत यत्न से सब प्रकार की आशातना टाल कर, पोथी किसी विवेकी सुज्ञ श्रावक के हाथ में दे कर वाचन करवाना चाहिये और अन्य सब लोगों को प्रमाद-निद्रा-विकथादि का त्याग कर विनयपूर्वक वहाँ बैठ कर एकाग्र चित्त से सुनना चाहिये।

श्री पर्युषण पर्व, कल्पसूत्र और श्रमणसंघ का महत्त्व कहते हैं

नैतत्पर्वसमं पर्व, न च कल्पसमं श्रुतम्।
न धार्मिकसमः संघ-स्त्रिरत्नानि जगत्त्रये।।१।।

इस संसार में दीपमालिकादि अनेक प्रकार के लौकिक पर्व हैं तथा चौमासी, श्री तीर्थंकर के पाँच कल्याणक, अष्टमी, पाक्षिक और तीर्थयात्रादिक अनेक पुण्य पर्व हैं। ये सब लोकोत्तर उत्तम पर्व हैं। इन सब पर्वों में शिरोमणि चिन्तामणि रत्न सदृश ज्येष्ठ सांवत्सरिक पर्व है। जैसे सांवत्सरिक पर्व समान अन्य कोई पर्व नहीं है; वैसे ही कल्पसूत्र समान कोई सूत्र भी नहीं है तथा चतुर्विध श्रीसंघ में श्री साधु-मुनिराज के संघ-समुदाय समान अन्य कोई संघ भी नहीं है। याने कि सब पर्वों में सर्वोत्तम पर्युषण पर्व है। इस पर्व के दौरान जो कल्पसूत्र पढ़ा जाता है, वह भी एकादशांगादिक सब सूत्रों में उत्तम है। इसी प्रकार कल्पसूत्र बाँचने वाले साधु-मुनिराज भी चारों

प्रकार के संघ में उत्तम हैं। इस प्रकार इस संसार में इन तीनों को साक्षात् रत्न के समान जानना चाहिये।

व्याख्याकार अपनी लघुता दिखाते हैं

व्याख्याकार कहते हैं कि- मैं मन्दमति, मूर्ख, अज्ञानी, महाजड़ होते हुए भी श्री संघ के समक्ष दक्ष हो कर इस कल्पसूत्र की व्याख्या करने का साहस करता हूँ- व्याख्या करने के लिए तत्पर हुआ हूँ, यह सब श्री सद्गुरु का प्रसाद और चतुर्विध श्री संघ की सान्निध्यता जानना। जैसे अन्य शासन में कहा है कि श्री रामचन्द्रजी की सेना के वानरों ने बड़े-बड़े पाषाण उठा कर समुद्र में डाले। वे पत्थर स्वयं भी तिरे और उन्होंने लोगों को भी तारा। इसे पाषाण का, समुद्र का और वानरों का प्रताप नहीं जानना चाहिये; परन्तु वह प्रताप श्री रामचन्द्रजी का जानना चाहिये; क्योंकि पत्थर का तो ऐसा स्वभाव है कि वह स्वयं भी डूबता है और आश्रय लेने वाले को भी डुबोता है।

वैसे ही मैं भी पत्थर सदृश होते हुए भी श्री कल्पसूत्र की व्याख्या करता हूँ। इसमें मेरा कोई भी गुण नहीं है। इसी प्रकार पौषधशाला या पुस्तक के पन्नों का भी कोई गुण नहीं है। वह गुण मात्र श्री सद्गुरु और श्री संघ का ही है।

तथा जैसे कोई भरतशास्त्र की जानकार, गीतकला और नृत्यकला में विशारद, छप्पन्न कोड़ी ताल-भरतशास्त्र में पारंगत नर्तकी होती है, वह गीत-गान करते हुए मृदंग-ध्वनि बजते हुए नृत्य करती है, अनेक चक्र-गोले घुमाती है और हावभाव से लोगों का मनोरंजन करती है; इसी प्रकार किसी गाँव की कोई ग्रामीण स्त्री हो, तो वह भी ताल के छंद पड़ते समय नृत्य करती है। तथा जैसे कोई महागंभीर समुद्र हो, उसमें भी लहरें उठती हैं और किसी गाँव का छोटा सा तालाब हो, तो वर्षा ऋतु में पानी से परिपूर्ण होने से उसमें भी लहरें उठती हैं। उसे कोई रोक सकता नहीं है तथा जैसे शुद्ध दूध में अखंड चावल डाल कर खीर बनाते हैं, तब वह भी

उफनती है और भूसी की राबडी बनाते हैं, तो वह भी उफनती है। इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं है। इसी प्रकार जिस एक ही स्थानक में एक ही क्षेत्र में अनेक गणधर, संपूर्ण श्रुतधर, महाशास्त्र के वेत्ता, नव रसावतार, महाव्याख्यान करने वाले व्याख्या करें और मैं भी व्याख्या करूँ, उसमें परस्पर इतना अन्तर जानना। याने कि भरत भेद जानने वाली नर्तकी तथा समुद्र और शुद्ध खीर के समान उन गणधरादिक को जानना और ग्रामीण स्त्री तथा गाँव का तालाब तथा भूसी की राबडी के समान मुझे जानना। ऐसा मैं श्री सद्गुरु और श्रीसंघ के प्रसाद से माननीय हुआ हूँ। जैसे कोई पाषाण जड़ तथा ज्ञानविवर्जित होते हुए भी जब उससे प्रतिमाजी बनायी जाती हैं, तब वह सब लोगों में माननीय, पूजनीय बन जाता है। उसी प्रकार श्रीगुरु तथा श्रीसंघ के प्रसाद से मैं भी माननीय हुआ हूँ।

श्री देवगुरुनमस्कार- लक्षण-मंगलाचरण-

नत्वा श्रीमन्महावीरं, गौतमादि गणाधिपान्।
कुर्वेऽहं कल्पसूत्रस्य, व्याख्यां बालोपकारिणीम्।।१।।

प्रथम श्री गुरु महाराज से आदेश प्राप्त कर जिस क्षेत्र में साधु-चातुर्मास करे; वहाँ चातुर्मास में भाद्रपद मास में पर्युषण पर्व आने पर मांगलिक निमित्त पाँच दिन तक श्री कल्पसूत्र का वाचन करे। कल्प नाम आचार का है। वह साधु का आचार दस प्रकार का है। जैसा कि कहा गया है-

दशविध कल्प का स्वरूप

अचेलुकुद्देसिय, सज्जायर-रायपिंड-किइकम्मे।
वय-जिट्ठ पडिक्कमणे, मासं पज्जोसणा कप्पे।।१।।

पहला अचेलक, दूसरा उद्देशिक, तीसरा शय्यातर, चौथा राजपिंड, पाँचवाँ कृतिकर्म, छठा व्रत, सातवाँ ज्येष्ठ, आठवाँ प्रतिक्रमण, नौवाँ मासकल्प और दसवाँ पर्युषण कल्प। ये दस प्रकार के कल्प याने कि आचार के नाम जानना।

१. प्रथम अचेलक कल्प कहते हैं- वस्त्र नहीं रखने को अचेलक कहते हैं। इसमें श्री ऋषभदेव भगवान तथा श्री महावीरस्वामी के साधु तो श्वेत मानोपेत जीर्णप्राय वस्त्र धारण करें। नाभि से चार अंगुल नीचा और गुदा से चार अंगुल ऊँचा साढ़े तीन हाथ का चोलपट्टा रखें तथा साढ़े चार हाथ की चादर रखें और अपने हाथ से एक बेंत चार अंगुल की मुहपत्ती रखें। इस प्रकार आधा शरीर खुला और आधा शरीर ढँका रखें। इस तरह पहने हुए वस्त्र बिना पहने जैसे समझना। इसलिए उसे अचेलक कहते हैं।

इसके ऊपर दृष्टान्त कहते हैं- जैसे किसी एक पुरुष ने धोती बनाने वाले से कहा कि मेरी धोती जल्दी दे, क्योंकि मैं नग्न फिरता हूँ। ऐसा वचन व्यवहार से कहा। अब उस पुरुष ने पुराने वस्त्र की धोती पहनी है, फिर भी 'नग्न फिरता हूँ' ऐसा कहा। पुनः अन्य दृष्टान्त कहते हैं- जैसे किसी पुरुष ने पगड़ी पहन कर नदी पार की। उससे किसी ने पूछा- भाई! तुमने नदी कैसे पार की? तब उसने उत्तर दिया कि मैंने नग्न हो कर नदी पार की। पुनः तीसरा दृष्टान्त कहते हैं- जैसे कोई बुढ़िया पुराने वस्त्र पहन कर जुलाहे के पास गयी और कहने लगी- अरे भाई! मेरे वस्त्र तैयार हुए हों,तो मुझे दे दो। मैं नग्न फिरती हूँ। इस तरह साधु को भी जीर्णप्राय पुराने श्वेत मानोपेत वस्त्र धारण करने पर भी वस्त्र रहित अचेलक ही कहते हैं।

इसी प्रकार इस वर्तमान चौबीसी में श्री ऋषभदेव और श्री महावीर को कुछ अधिक एक वर्ष के पश्चात् इन्द्रदत्त वस्त्र के अपगम से जावज्जीव पर्यन्त अचेलकपना था और चौबीसों तीर्थंकरों के आश्रय से तो दीक्षा लेते वक्त इन्द्र महाराज उनके कंधे पर देवदूष्य वस्त्र रखते हैं, वह जब तक कंधे पर रहता है, तब तक उन्हें सचेलक कहते हैं और वस्त्र गिर जाने के बाद उन्हें अचेलक कहते हैं। तथा इस चौबीसी में दूसरे श्री अजितनाथ भगवान से श्री पार्श्वनाथ भगवान पर्यन्त के बाईस तीर्थंकर मध्य के कहलाते हैं। उनके कन्धे पर देवदूष्य वस्त्र आयुष्य दो घड़ी शेष रहने तक रहता है; इसलिए उन्हें सचेलक-वस्त्र सहित कहते हैं। तथा इन बाईस तीर्थंकरों के साधु भी ऋजु याने शुभ मनवाले, सरल और दक्ष याने पंडित-समझदार व

चतुर होते हैं; इसलिए बहुमूल्य पाँच रंगवाले मानोपेतरहित वस्त्र रखते हैं। इसलिए उन्हें सचेलक कहते हैं; क्योंकि उनके लिए अचेलक कल्प की कोई मर्यादा नहीं है। इस कारण से उनके लिए यह कल्प अनियत है। तथा पहले और अन्तिम तीर्थकर के साधु-साध्वी के लिए यह कल्प नियत है याने कि निश्चय से है।

२. दूसरा उद्देशिक कल्प कहते हैं- साधु अथवा साध्वी के उद्देश्य से तैयार किये हुए आहारादिक को उद्देशिक कहते हैं। इसमें मध्य के बाईस तीर्थंकरों के समय में जिस साधु अथवा साध्वी के निमित्त से किसी गृहस्थ ने भोजन,पानी, औषधि, वस्त्र-पात्र आदि बनवाये हों, तो वे पदार्थ उस साधु अथवा साध्वी को वहोरना योग्य नहीं है; पर शेष अन्य साधुओं को वहोरना कल्पता है अर्थात् अन्य साधुओं के लिए वे पदार्थ वहोरने योग्य हैं। उन्हें आधाकर्मादि दोष नहीं लगते। तथा पहले और अंतिम तीर्थंकर के शासन में तो एक साधु अथवा एक साध्वी के लिए जो आधाकर्मिक आहारादिक बनवाये हों, वे सब प्रकार से किसी भी साधु अथवा साध्वी को लेना योग्य नहीं है।

३. तीसरा शय्यातर-पिंड कल्प कहते हैं- उपाश्रय के मालिक को. शय्यातर कहते हैं। अथवा जो साधु को रहने के लिए स्थान देता है, यानि कि जिसकी आज्ञा ले कर साधु किसी जगह पर ठहरते हैं, उस घर के स्वामी को शय्यातर कहते हैं। उसके घर का पिंड- आहारादिक बारह पदार्थ सब तीर्थंकरों के साधुओं को वहोरना कल्पता नहीं है। उन बारह पदार्थों के नाम कहते हैं- १. आहार, २. पानी, ३. खादिम, ४. स्वादिम, ५. कपड़ा, ६. पात्र, ७. कंबल, ८. ओघा, ९. सूई, १०. पिप्पलक, ११. नाखून काटने की नेरणी, (नेल कटर), १२. कान का मैल निकालने की चाटुई, ये बारह वस्तुएँ तथा अन्य भी छुरी, कैंची और सरपला प्रमुख चीजें किसी भी साधु को लेना कल्पता नहीं है। यह शय्यातर-पिंड लेने में अनेषणीय अशुद्ध दोष का संभव होता है। प्रसंग के अनुसार बड़े दोष भी लगते हैं, क्योंकि साधु के प्रति राग के कारण पारणा और उत्तर पारणा के लिए बार बार जाते-आते अशुद्ध आहारादिक दही-दूधप्रमुख स्निग्ध वस्तुएँ

भी वह गृहस्थ अर्पण करता है तथा रसगृद्धि भी होती है।

इससे ऐसा हो सकता है कि वह साधु उसका घर ही न छोड़े। कभी किसी दूसरे गाँव गया हो, तो भी मिष्टान्न के लोभ के कारण वह पुनः आ सकता है। इसके अलावा वस्त्रादिक की याचना करने पर वह गृहस्थ तुरन्त दे डाले। इससे उपधि की वृद्धि होती है और फिर उस शय्यातर का पिंड लेने से वह साधु गाँव में भ्रमण करने से वंचित रहे। इससे उसका शरीर मोटा हो जाये। और फिर उस शय्यातर का पिंड ग्रहण करने से कदाचित् गृहस्थ को ऐसा भय भी लग जाये कि जो उपाश्रय बनाता है या देता है, उसे आहारादिक भी देना पड़ता है। इस कारण से कोई उपाश्रय भी न बनाये और ठहरने के लिए कोई जगह भी न दे। इससे आहार, शिष्यादि मिलना भी दुर्लभ हो जाये। इत्यादि दोषों के प्रसंग से सब तीर्थंकरों ने शय्यातर के घर का आहार लेने का निषेध किया है।

कदाचित् किसी कारण से शय्यातर का पिंड लेना पड़े, तो रात्रि के चार प्रहर साधु क्रिया-सज्झाय करते हुए जागरण करे। नींद न ले और प्रभात का प्रतिक्रमण अन्य स्थान पर जा कर करे, तो उपाश्रय का स्वामी शय्यातर नहीं होता। और यदि वह साधु रात को नींद ले और सुबह का प्रतिक्रमण अन्य स्थान पर करे; तो दोनों शय्यातर होते हैं। याने कि दोनों स्थान पर आहारादिक लेना नहीं कल्पता। तथा १. तृण, २. मिट्टी का ढेला, ३. भस्म (राख), ४. मात्रा का पात्र, ५. बाजोट, ६. पाट-पाटली, ७. शय्या, ८. संथारा, ९. लेपप्रमुख वस्तु, १०. उपधि सहित शिष्य याने वस्त्रादि सहित शिष्य; ये दस वस्तुएँ शय्यातर के घर की लेना कल्पता है। यह कल्प सब तीर्थंकरों के साधुओं को निश्चय से होता है; इसलिए इसे नियत कल्प कहते हैं।

४. चौथा राजपिंड कल्प कहते हैं- जो महान छत्रपति, चक्रवर्ती आदि राजा होता है और सेनापति, पुरोहित, श्रेष्ठी, प्रधान और सार्थवाह इन पाँचों के साथ जो राज करता है; उसे राजा कहते हैं। उसके घर का आहारादिक पिंड प्रथम तीर्थंकर के साधु-साध्वी को तथा चरम श्री वीर भगवान के

साधु-साध्वी को लेना कल्पता नहीं है। क्योंकि राजद्वार में अनेक लोग मिलते हैं, वहाँ अधिक समय लगता है तथा कोई अमांगिलक समझता है। इसके अलावा वहाँ हाथी, घोड़े, रथ तथा स्त्रीप्रमुख को बार-बार देखने से राग उत्पन्न होता है। और फिर कोई चोर कहता है, कोई गुप्तचर भी कहता है, इत्यादि अनेक दोष लगते हैं। इसके अलावा लोग निंदा करते हैं कि देखो! यह साधु हो कर राजपिंड लेता है। अन्य दर्शन वालों के शास्त्रों में भी राजपिंड लेने का निषेध किया है: इसलिए प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं को राजपिंड नहीं लेना चाहिये। तथा बाईस तीर्थंकर के साधु तो ऋजु और पंडित होते हैं; इसलिए सदोष जानें तो नहीं लेते। इस कारण से उनके लिए इस कल्प की मर्यादा नहीं है।

५. पाँचवाँ कृतिकर्म कल्प कहते हैं- वन्दन करना सो कृतिकर्म है। वह दो प्रकार का है- एक तो खड़े होना और दूसरा द्वादशावर्त्त वन्दन करना। इसमें श्री जिनशासन में सब तीर्थंकरों के साधुओं की ऐसी मर्यादा है कि जिसने पहले दीक्षा ली हो, उस साधु को बाद में दीक्षा लेने वाला साधु वन्दन करे; पर बाप-बेटा अथवा राजा-प्रधान इत्यादि छोटा-बड़ा देखे नहीं। यदि पुत्र ने दीक्षा पहले ली हो और पिता ने बाद में ली हो; तो पिता पुत्र को वन्दन करे। इसी प्रकार राजा अपने प्रधान को भी वन्दन करे। तथा सभी साध्वियाँ तो पुरुषोत्तम धर्म जान कर सब साधुओं को वन्दन करें; पर छोटा-बड़ा ध्यान में न लें। यदि साध्वी सौ साल से दीक्षित हो और साधु एक दिन का दीक्षित हो; तो भी वह साध्वी साधु के आगे जा कर- 'हे पूज्य! पधारिये'। इस प्रकार विनयपूर्वक खमासमणा दे कर उसे वन्दन करे। क्योंकि धर्म में मुख्य प्रधानता तो पुरुष की ही कही गयी है, इसलिए पुरुष अधिक है। इस कारण से पुरुष स्त्री को वन्दन न करे। यदि साधु हो कर साध्वी को वन्दन करता है; तो अनेक दोष लगते हैं। क्योंकि स्त्री अहंकार करे, तो नीच गोत्र बाँधती है और फिर लोग निन्दा करते हैं; इसलिए साधु-साध्वी को वन्दन न करे। यह कल्प सब चौबीसों तीर्थंकरों के साधुओं से संबंधित नियत जानना।

६. छठा व्रतकल्प कहते हैं- प्राणातिपातादिक विरमणरूप पाँच महाव्रत हैं। याने कि प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह इन पाँचों से विरत होना सो पाँच महाव्रत कहे जाते हैं। इसमें श्री ऋषभदेव तथा श्री महावीर के साधु-साध्वी को तो वैसे ज्ञान का अभाव होने से पाँचों महाव्रत व्यवहार से हैं और मध्य के बाईस जिन के समय के साधु तो परिग्रह व्रत में परिगृहीत स्त्रीभोग का पच्चक्खाण जानते हैं तथा तीसरे अदत्तादान व्रत में अपरिगृहीत स्त्रीभोग का पच्चक्खाण जानते हैं। याने कि वे स्त्री को परिग्रह रूप मान कर पाँचवें परिग्रह व्रत के साथ ही लेते है; क्योंकि जहाँ स्त्री है, वहाँ परिग्रह है। इसलिए बाईस तीर्थंकर के साधु के लिए चौथा मैथुन विरमण व्रत छोड़ कर चार महाव्रत जानना। अथवा श्री ऋषभदेव और श्री महावीर के तीर्थ में रात्रिभोजनविरमण व्रत मूल गुण में गिना जाता है। इस कारण से रात्रिभोजनविरमण व्रत के साथ गिनें, तो साधु के छह व्रत होते हैं और बाईस जिन के तीर्थ में तो रात्रिभोजनविरमण व्रत उत्तर गुण में गिनते हैं, इसलिए चार ही व्रत जानना।

७. सातवाँ ज्येष्ठ कल्प कहते हैं- ज्येष्ठ नाम बड़े का है। इसमें श्री ऋषभदेव और महावीर के साधुओं को तो बड़ी दीक्षा देने के बाद छोटा-बड़ा गिना जाता है; इसलिए जिसने बड़ी दीक्षा पहले ली हो, वह बड़ा गिना जाता है। और जिसने छोटी दीक्षा पहले ली हो, पर बड़ी दीक्षा बाद में ले तो वह आगे वाले की अपेक्षा से लघु गिना जाता है। जैसे पिता-पुत्र, राजा-प्रधान, सेठ-मुनीम तथा माता-पुत्री इस प्रकार अनुक्रम से दीक्षा लें और फिर उपस्थापना होने पर बड़ी दीक्षा लें, तब मुख्य रूप से तो पिता, राजा, सेठ और माता ये चारों बड़े हैं। यदि ये पढ़ाई में अधिक हो जायें, तो ये ही बड़े माने जाते हैं। नहीं तो पुत्र, प्रधान, मुनीम और पुत्री ये चारों छोटे हैं; पर यदि ये पढ़ाई में अधिक हो जायें, तो गुरु इन्हें बड़ी दीक्षा दे कर बड़ा बनाये। और बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के लिए तो यह मर्यादा नहीं है; क्योंकि वे सब प्रवीण होते हैं। इस कारण से तुरन्त ही पढ़ लेते हैं। इसलिए वे दीक्षा के दिन से ही छोटे और बड़े गिने जाते हैं। इस कारण से उनमें जो

पहले दीक्षा लेता है, वही बड़ा गिना जाता है। यदि पिता और पुत्र, राजा और प्रधान, सेठ और मुनीम तथा माता और पुत्री ये चारों एक साथ दीक्षा लें; तो पिता, राजा, सेठ और माता ये चारों लोकरीति से बड़े माने जाते हैं तथा पुत्र, प्रधान, मुनीम और पुत्री ये चारों लघु माने जाते हैं; इसलिए बड़ी दीक्षा के योग्य यदि प्रधान और पुत्र हों तो राजा तथा पिता से पूछ कर बड़ी दीक्षा देते हैं; जिससे अप्रीति न हो। इस तरह यह अनियत कल्प है।

८. आठवाँ प्रतिक्रमण कल्प कहते हैं- आवश्यक का करना सो प्रतिक्रमण जानना। इसमें प्रथम और चरम जिन के समय में तो साधु को अतिचार दोष लगे या न लगे, तो भी दैवसिकादिक पाँचों प्रतिक्रमण करना आवश्यक है और बाईस तीर्थंकरों के साधु तो यदि पाप लगा है, ऐसा जानें तो ही दैवसिक अथवा रात्रिक प्रतिक्रमण शाम को अथवा सुबह करते हैं और पाप लगा है, ऐसा न जानें, तो नहीं भी करते। शेष पाक्षिक, चौमासी और सांवत्सरिक ये तीनों प्रतिक्रमण तो बाईस जिनेश्वरों के समय में होते ही नहीं है। इस तरह यह भी अनियत कल्प हैं।

९. नौवाँ मासकल्प कहते हैं- प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधु एक गाँव में एक मास तक रहें, उपरान्त न रहें। चौमासे के चार महीनों तक एक गाँव में रहें; परन्तु अन्य दिनों में एक महीने से उपरान्त रहें तो अनेक दोषों का संभव होता है। जैसे कि गृहस्थ के साथ प्रीतिबंध होता है, लघुता प्राप्त होती है, लोकोपकार नहीं कर सकता, देश-विदेश की जानकारी नहीं होती तथा ज्ञान की आराधना नहीं होती। इसलिए एक मास से अधिक रहने की साधु को आज्ञा नहीं है। कदाचित् दुर्भिक्षादिक के कारण से रहना पड़े अथवा विहार करने में असमर्थ हो; तो उपाश्रय पलटे, मोहल्ला पलटे, घर पलटे और कुछ भी न हो सके तो संथारा-भूमि पलट कर भाव से भी मासकल्प करे। इसीलिए तो लोक में भी कहा गया है कि-

स्त्री पीहर नर सासरे, संजमियां थिरवास।
एतां होय अलखामणां, जो मांडे घरवास।।१।।

और मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधु तो विहार करने में सामर्थ्यवान हों तो भी वे ऋजु और पंडित हैं; इसलिए उनके लिए मासकल्प का कोई

नियम नहीं है। यदि दोष न लगे और लाभ जानें तो कुछ कम पूर्वकोडि वर्ष तक भी वे एक ही क्षेत्र में एक ही स्थान में रह जायें। इसलिए यह अनियत कल्प है।

१०. दसवाँ पर्युषण कल्प कहते हैं- किसी एक स्थान पर रहने को पर्युषण कहते हैं। पर्युषण दो प्रकार के हैं। एक तो वह जिसे गृहस्थ जानता है और दूसरा वह जिसे गृहस्थ नहीं जानता। इसमें जब पर्युषण पर्व का प्रतिक्रमण करने से पहले साधु से लोग पूछते हैं, तब वह अपने रहने के विषय में 'वर्तमान योग्य' कहता है; परन्तु पर्युषण पर्व का प्रतिक्रमण करने के पश्चात् तो कार्त्तिकी पूनम पर्यन्त रहने का निश्चय से ही कहता है। वहाँ गृहस्थ की आज्ञा से पांच दिन यावत् रहना। इस तरह पाँच- पाँच दिन रहते हुए पचासवें दिन पर्युषण पर्व करना। उसमें कल्पसूत्र का गृहस्थों के सम्मुख वाचन करना। इसके बाद सत्तर दिन तक निश्चय से रहना। याने कि जिसे गृहस्थ जानता है, वह तो भाद्रपद सुदी पंचमी से ले कर कार्त्तिक सुदी पूनम तक रहना है और दूसरा जिसे गृहस्थ नहीं जानता वह आषाढ सुदी पूनम से ले कर भाद्रपद सुदी पंचमी तक रहना जानना।

क्योंकि कभी भी कोई गृहस्थ साधु से पूछे कि आप चातुर्मास के लिए रहे? उस समय साधु कहे कि जैसी क्षेत्रस्पर्शना अथवा पाँच दिन तक हैं; ऐसा जवाब दे। इस कारण से आगे के दिन गृहस्थ नहीं जानता। और पर्युषण करने के पश्चात् तो वह अवश्य वहीं रहता है; इसलिए गृहस्थ जान सकता है। इस प्रकार जघन्य से सत्तर दिन और उत्कृष्ट से छह महीने के पर्युषण जानना। यह कल्प श्री ऋषभदेव और श्री महावीर के साधुओं के लिए निश्चय से समझना और बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के लिए निश्चय से नहीं।

इस तरह दस कल्प कहे गये हैं। ये दसों कल्प श्री ऋषभदेव तथा श्री महावीरस्वामी के साधुओं के लिए निश्चय से जानना। तथा मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के लिए तो एक शय्यातर, दूसरा चार महाव्रत, तीसरा ज्येष्ठ और चौथा कृतिकर्म याने वंदन। ये चार कल्प निश्चय से होते हैं और

एक अचेलक, दूसरा उद्देशिक, तीसरा प्रतिक्रमण, चौथा राजपिंड, पाँचवाँ मासकल्प और छठा पर्युषण कल्प ये छह कल्प निश्चय से नहीं होते। जैसी मर्यादा बाईस तीर्थंकरों के साधुओं की कही है, वैसी ही मर्यादा महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के साधु-साध्वियों की भी जानना।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि साधु तो सब समान हैं, फिर उनके आचार में भेद क्यों हुआ? इसका उत्तर देते हैं- श्री ऋषभदेवजी के समय में लोग ऋजु और जड़ होते हैं। उन्हें धर्म समझाना बड़ा कठिन होता है। तथा श्री महावीर भगवान के समय में लोग वक्र और जड़ होते हैं। उन्हें धर्म का पालन करना बड़ा दुर्लभ होता है। और मध्य के बाईस तीर्थंकरों के समय में सब लोग ऋजु और प्राज्ञ होते हैं। इस कारण से उन्हें धर्म समझाना भी सुलभ होता है और धर्म का पालन करना भी सरल होता है। इस प्रकार मनुष्यों के परिणामों में भेद होने के कारण कल्प में भेद हुआ है, ऐसा जानना चाहिये, पर परमार्थ से कुछ भी भेद नहीं हैं। केवल पुरुषों के परिणाम के भेद हैं।

ऋजुजड़, ऋजुप्राज्ञ और वक्रजड पुरुषों से संबंधित दृष्टान्त

प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजु और जड़ होते हैं; सो दृष्टान्त से समझाते हैं- श्री ऋषभदेव के तीर्थ में किसी आचार्य का शिष्य स्थंडिल-भूमि गया। वह बहुत देर से वापस आया। गुरु ने उससे पूछा- 'हे शिष्य! तुझे इतनी देर क्यों लगी?' तब वह शिष्य ऋजुता से बोला- 'हे स्वामिन्! नाटक करने वाले खेल कर रहे थे, सो देखने के लिए मैं खड़ा रहा। इस कारण से अधिक समय लगा।' यह सुन कर गुरु ने कहा।- 'हे वत्स! हम साधु है। हमें नाटक देखने के लिए खड़ा नहीं रहना चाहिये। इससे पाप लगता है। इस कारण से यह हमारे लिए अकल्पनीय है।' तब शिष्य ने 'तहत्ति' कहा। याने कि जो आप कहते हैं वही प्रमाण है। आज के बाद फिर नहीं देखूँगा, ऐसा कहा।

पुनः एक बार वही शिष्य बाहर भूमि गया और बहुत देर से वापस आया। तब गुरु ने पूछा कि इतनी देर क्यों लगी? तब वह शिष्य बोला कि

हे स्वामिन्! रास्ते में नर्तकी नृत्य कर रही थी। उसे देखने के लिए मैं खड़ा रहा। इस कारण से देर हो गयी। तब गुरु ने कहा- 'तुम्हें पहले मना किया था, फिर भी क्यों देखने के लिए खड़े रहे?' इस पर शिष्य जड़ता के कारण मूर्खता पूर्वक बोला- 'महाराज! आपने तो नट देखने के लिए मनाई की थी, नर्तकी देखने के लिए तो मनाई नहीं की थी।' तब गुरु बोले- 'हे महाभाग! नर्तकी तो नट से भी अधिक राग का कारण है, इसलिए उसे तो सर्वथा नहीं देखना चाहिये।' यह सुन कर शिष्य बोला- ' हे स्वामिन्! पहले मैं ऐसा नहीं समझा था। अब आगे से कभी नहीं देखूँगा।'

इस दृष्टान्त में ऋजुता के कारण वह सत्य बोला और जड़ता के कारण वह इतना नहीं समझ सका कि यदि नट-दर्शन का त्याग किया है, तो नर्तकी-दर्शन का भी त्याग करना चाहिये।

अब दूसरा दृष्टान्त बताते हैं- कोंकण देश के किसी एक वणिक ने कुटुंब-परिवार का त्याग कर के धर्म प्राप्त कर वैरागी हो कर किसी स्थविर के पास वृद्धावस्था में दीक्षा ली। सब लोग उसे कोंकण-साधु कहते थे। एक दिन स्थंडिल-भूमि से लौट कर वह इरियावही प्रतिक्रमण करने लगा। उसमें काउस्सग्ग पारने में उसे बहुत समय लगा। तब गुरु ने पूछा- ' हे कोंकणिक साधु! काउसग्ग में तुम्हें इतनी देर क्यों लगी?' यह सुन कर वह ऋजुता से बोला- 'हे स्वामिन्! आज मैंने जीवदया का चिन्तन किया।' गुरु ने पूछा- 'तुमने किस प्रकार की जीवदया का चिन्तन किया' तब वह साधु बोला- 'जब मैं घर पर गृहस्थावस्था में रहता था, तब वर्षाकाल में खेत में वृक्षों को काट कर सफाई कर के जमीन को अग्नि से जला कर शुद्ध करता था। फिर अनाज बोता था। इससे मेरे घर में बहुत धान्य होता था और इसी कारण से मेरा परिवार सुखी रहता था।'

'और अब तो मैंने दीक्षा ले ली है। मेरे बेटे आलसी हैं। वे खेती के बारे में कुछ नहीं जानते। इसलिए यदि वे आलसी हो कर घर में निश्चिंत बैठे रहेंगे और सूड नहीं करेंगे; तो धान्य पैदा नहीं होगा और वे बिचारे भूखे मरेंगे। हे स्वामिन्। मैंने इस प्रकार की जीवदया का चिन्तन किया।' इस तरह ऋजुता से वह सच बोला। यह सुन कर गुरु ने कहा- 'हे भद्र! तुमने अशुभ विचार किया है। खेती का व्यवसाय पाप के बिना नहीं होता, इसलिए सावद्य की अनुमोदना करना साधु को उचित नहीं है। अतः 'मिच्छा मि दुक्कडं' दे कर शुद्ध हो जाओ।' यह सुन कर उस

साधु ने मिच्छा मि दुक्कडं दिया।

अब तीसरा दृष्टान्त कहते हैं- सोरठ देश में एक ब्राह्मण रहता था। उसका पुत्र ससुराल जाने लगा, तब उसके पिता ने उसे सीख दी कि बेटे! एक बार 'हाँ' कहना और एक बार 'ना' कहना। पिता की सीख धारण कर के वह ससुराल पहुँचा। वहाँ जब सास-ससुर ने पूछा कि भट्टजी! आप आ गये? तब उसने कहा- हाँ। फिर उन्होंने पूछा- घर में कुशल तो है? तब उसने कहा-ना। फिर पूछा- क्या तुम्हारे पिता स्वर्गवासी हो गये? तब उसने कहा-हाँ। फिर उन्होंने पूछा- उनके लिए कुछ खर्चा किया? तब उसने कहा-ना। इस पर उन्होंने कहा- तुम बिलकुल मूर्ख हो। तब उत्तर में उसने कहा-हाँ।

इतनी बातचीत के बाद वे सब ब्राह्मण मिल कर काण के लिए गये। वहाँ जा कर देखा तो जवाँई के पिता वहाँ बैठे हुए थे। वे जिंदा थे। वे सब उनसे राम राम जुहार कर के मिले। फिर दामाद के पिता ने उनसे वहाँ अचानक आने का कारण पूछा। तब उन्होंने बताया कि आपके पुत्र ने आपके स्वर्गवास की बात हम से कही; इसलिए हम यहाँ आये हैं। इस पर पिता ने कहा कि वह लड़का मूर्ख है। ऐसे जीव को भी ऋजु याने भोला और जड़ याने मूर्ख कहा जाता है। प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के तीर्थ के साधु ऐसे जानने चाहिये।

अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी के साधु वक्र और जड़ होते हैं। इस पर दृष्टान्त कहते हैं- महावीरस्वामी के तीर्थ का कोई एक साधु स्थंडिल गया। वह बहुत देर से लौटा। गुरु ने जब उससे विलंब होने का कारण पूछा; तब वह वक्रता से कहने लगा कि बाहर जाने पर देर तो हो ही जाती है। इसमें मुझसे क्या पूछते हैं? फिर गुरु के जोर दे कर पूछने पर कहा कि नाटक करने वाले नाटक करते थे, सो देखने के लिए खड़ा रहा था। तब गुरु ने कहा -'साधु को नाटक नहीं देखना चाहिये। नाटक देखने से तुम्हें पाप लगा है। इसलिए 'मिच्छा मि दुक्कड़ं' दो। तब शिष्य ने 'मिच्छा मि दुक्कडं' दिया।

कुछ दिन बाद फिर एक बार वह नर्तकी का नाटक देखने के लिए खड़ा रहा। इससे बहुत देर हो गयी। गुरु के कारण पूछने पर वह वक्रता से टेढ़े-मेढ़े उत्तर देने लगा, पर सच न बोला। गुरु ने जब बार-बार पूछा; तब उसने कहा कि नर्तकी का नाच देखने के लिए मैं खड़ा रहा था। यह

सुन कर गुरु ने कहा- 'मैंने मना किया था, फिर भी तुम नाटक देखने के लिए क्यों खड़े रहे?' तब वह वक्रता से बोला- 'आपने तो नट का नाटक देखने से रोका था। उस समय नर्तकी का नाटक देखने से क्यों नहीं रोका? इसमें मेरा क्या दोष है? आपका ही दोष है।' इस तरह वक्रता से गुरु को ही उलाहना दिया। वक्रता से संबंधित यह प्रथम दृष्टान्त जानना।

वक्र-जड़ से संबंधित अन्य लोकोक्त दृष्टान्त कहते हैं- किसी एक सेठ का पुत्र बड़ा दुर्विनीत था। वह अपने माता-पिता के साथ कलह किया करता था। माता-पिता उसे बहुत समझाते; पर वह किसी का कहा मानता नहीं था। फिर परिवारजनों ने उसे समझाया कि माता-पिता से प्रतिवाद नहीं करना चाहिये। तब उसने कहा कि आगे से मैं माता-पिता को जवाब नहीं दूँगा।

एक बार माता-पिता आदि सब लोग उसे घर सौंप कर किसी काम से अन्यत्र गये। पिता की सीख को ध्यान में रख कर पुत्र दरवाजा बन्द कर खाट पर सो गया। कुछ देर बाद पिता घर लौटे। उन्होंने बहुत आवाज दी। लड़का खाट पर बैठे बैठे सुनता रहा, पर बोला नहीं और दरवाजा भी नहीं खोला। अन्त में उसका पिता दीवार पर चढ़ कर घर में गया। उसने देखा कि पुत्र खाट पर बैठे बैठे हँस रहा है। गुस्से में आ कर पिता ने उसे मारा-पीटा। फिर पूछा- इतनी आवाज देने पर भी तूने जवाब क्यों नहीं दिया? दरवाजा क्यों नहीं खोला? तब लड़के ने कहा- 'आपने ही तो मुझे सिखाया था कि बड़ों को जवाब नहीं देना चाहिये। इसमें मेरी क्या गलती है?' तब पिता ने कहा- 'हे मूर्ख! काम हो तब तो बोलना ही चाहिये न ?' यह सुन कर लड़के ने कहा अब मैं काम होगा, तब बोलूँगा।

एक बार सेठ लोगों के बीच बैठे थे। इधर सेठानी ने घर में आटे की राबडी बनायी। उसने लड़के से कहा कि तू तेरे पिता को बुला ला, जिससे वे राबडी पी कर काम पर जा सकें। पुत्र पिता के पास गया। पिता बहुत से लोगों के बीच बैठे थे। वहाँ जा कर वह ऊँची आवाज में कहने लगा- 'पिताजी! घर पर राबडी तैयार है। मेरी माँ ने कहा है कि आप एक बार नाश्ता कर लें। फिर सुखपूर्वक काम-काज करें।' यह सुन कर सेठ शरमिंदा हो कर वहाँ से उठे। फिर पुत्र को एकान्त में समझाते हुए कहा- 'हे कुपुत्र! लोगों में अपनी इज्जत खराब हो, इस प्रकार तू क्यों बोला? तब पुत्र ने कहा- आपने ही तो मुझे सिखाया था। फिर मैं क्या करूँ?' तब पिता ने कहा-'फिर कभी यदि ऐसा कोई काम हो तो धीमी आवाज में बोलना।' पुत्र ने कहा- 'ठीक है। आगे से धीमी आवाज में बोलूँगा।'

एक बार सेठ के घर में आग लगी। तब सेठानी ने पुत्र को सेठ को बुलाने के लिए भेजा। पुत्र ने वहाँ जा कर देखा तो सेठ बहुत से लोगों के बीच में बैठे हुए थे। तब दूर खड़े रह कर वह धीमे-धीमे बोला। सेठ को कुछ भी सुनाई न दिया। बहुत देर के बाद सेठ ने उसे देखा। फिर उससे पूछा- 'अरे! तू यहाँ क्यों आया है?' तब सेठ के पास जा कर धीमे-धीमे सेठ के कान में कहने लगा- 'पिताजी! घर में आग लगी है।' यह सुन कर सेठ ने कहा- ' अरे मूर्ख! अब तक तो घर जल गया होगा। तू आते ही क्यों न बोला?' तब उसने कहा- 'आपने ही तो सिखाया था कि धीमे-धीमे बोलना। इसमें मेरी कोई गलती नहीं है। आपकी ही भूल है।' पिता ने कहा- 'अरे! तू इतना बड़ा हो गया, पर अभी तक तुझे अक्ल नहीं आई। जब धुआँ निकला तभी तुरन्त धूल डालनी थी। इससे आग बुझ जाती।' सेठ की यह बात लड़के ने गाँठ बाँध ली।

एक बार शीत ऋतु में सुबह के समय पिता दातुन कर रहे थे। उस समय उनके मुँह से धुआँ निकलने लगा। यह देख कर पुत्र ने अँजुली-भर धूल पिता के मुख में डाल दी। तब पिता के ध्यान में आ गया कि यह लड़का सचमुच मूर्ख है। एक दिन पिता ने उससे कहा- 'यह घोड़ा प्यासा है। इसे पानी पिलाना और नहला देना।' लड़के ने कहा-'मैं दो काम तो नहीं करूँगा।' तब पिता ने कहा- 'तू इसे स्नान करा ला।' फिर वह लड़का घोड़े पर सवार हो कर तालाब पर गया। उसने घोड़े का मुख बाँध कर उसे नहलाया और फिर घर ले आया। घोड़ा प्यासा था, इसलिए वह आकुल-व्याकुल होने लगा। यह देख कर सेठ ने पुत्र को मूर्ख जान कर घर से निकाल दिया। उस समय उससे कहा कि रास्ते में यदि कोई मिले, तो उसे ऊँची आवाज में जुहार करना।

लड़का आगे बढ़ा। जंगल में एक जगह पर एक शिकारी जाल बिछा कर बैठा था। आसपास कुछ हिरन चर रहे थे। उसने जोरदार आवाज में शिकारी को जुहार किया। उस आवाज से सब हिरन भाग गये। इस कारण से शिकारी ने उसे बहुत मारा। फिर मूर्ख जान कर उसे समझाया कि अरे पागल! रास्ते में लुकते-छिपते जाना। लड़का आगे बढ़ा। उस समय कोई एक कोटवाल किसी चोर की खोज में निकला था। उसने उसे छिपते हुए जाते देख कर चोर समझ कर पकड़ लिया और मारा-पीटा। फिर मूर्ख जान कर उससे कहा- 'बहुत से लोग दिखाई दें, तो उनसे कहना कि तुम्हारे लिए ऐसा कभी न हो।' लड़का फिर आगे बढ़ा। किसी गाँव में एक जगह विवाह का आयोजन था। वहाँ बहुत से लोग उपस्थित थे। यह

देख कर वह लड़का वहाँ जा कर बोला- 'तुम्हारे घर ऐसा काम कभी न हो।' यह सुन कर विवाह वालों ने गुस्से में आ कर उसे मारा-पीटा। तब लड़के ने कोटवाल द्वारा सिखायी गयी बात बतायी। फिर उन लोगों ने उसे मूर्ख जान कर उससे कहा- 'जब बहुत से लोग दिखाई दें, तो उनसे कहना कि तुम्हारे लिए ऐसा हमेशा हो। उनकी बात गाँठ बाँध कर लड़का आगे बढ़ा। रास्ते में किसी देश के राजा की मृत्यु हो जाने के कारण लोग उसकी मैयत (वैकुंठी) ले जा रहे थे। यह देख कर उसने कहा- 'तुम्हारे लिए सदा ऐसा ही हो।' इस कारण से वहाँ भी लोगों ने उसे मारा और मूर्ख जान कर छोड़ दिया। इस तरह भटकते-भटकते कई दिन बाद वह पुनः घर लौटा। यह श्री वीर भगवान के साधुओं पर वक्र-जड़ का दूसरा दृष्टांत जानना।

अब मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधु जो ऋजु और प्राज्ञ है; उनसे संबंधित दृष्टान्त कहते हैं- कोई एक अजितनाथ भगवान का साधु स्थंडिल से बहुत देर से लौटा। तब गुरु ने उससे विलंब का कारण पूछा। उस समय ऋजुपने से उसने कहा कि नट का नाटक देखने के लिए मैं खड़ा रहा था। तब गुरु ने कहा कि साधु को नाटक देखना नहीं चाहिये। इस पर उसने 'मिच्छा मि दुक्कडं' दे कर कहा कि अब आगे से कभी भी नाटक देखने के लिए खड़ा नहीं रहूँगा। फिर एक बार किसी दिन वह बाहर गया। रास्ते में नर्तकी नाच रही थी। यह देख कर उसने बुद्धि से विचार किया कि गुरु ने मुझे नट का नाटक देखने को मना किया है; और नर्तकी तो उससे भी अधिक विशेष राग का कारण है। इसलिए मुझे इसे सर्वथा देखना ही नहीं कल्पता। यह सोच कर वह वापस लौटा। यह ऋजु और प्राज्ञ का दृष्टान्त कहा। इस प्रकार ये जो दृष्टान्त बताये गये हैं, सो सब साधुओं के आश्रय से नहीं जानना; परन्तु किसी एक साधु के आश्रय से जानना।

आज के समय में मनुष्य वक्र और जड़ हैं, तो इसके अनुसार आज पाँचवें आरे में चारित्रवान साधु नहीं हैं; ऐसा भी नहीं कहना। कदापि अनाभोग से अतिचार दोष बहुत लगते हों; ऐसे भी साधु आज के समय में हैं; क्योंकि साधु के बिना धर्म नहीं रहता। इसीलिए व्यवहारभाष्य में कहा है कि श्री भगवंत के द्वारा प्ररूपित शास्त्र की जो सत्य प्ररूपणा करता है; उसे भी साधु कहना चाहिये। तथा-

जो भणइ नत्थि धम्मो, न य सामाइय न चेव य वयाइं।
सो समणसंघ -बज्झो, कायव्वो समणसंघेण।।१।।

इसलिए यदि पूर्व साधु की अपेक्षा से हीन कहो, तो भले कहो; पर दुषम काल में साधु हैं ही नहीं; ऐसा नहीं कहना चाहिये। इसलिए कि साधु तो आज भी हैं।

अब यह दस प्रकार का कल्प जो साधु का आचार-धर्म है, सो तीसरे वैद्य की औषधि के समान है। याने कि जैसे तीसरा वैद्य उपकारक हुआ, वैसे ही यह कल्प भी उपकारक जानना। उस तीसरे वैद्य की कथा कहते हैं-

दशविध कल्परूप धर्म पर वैद्य की कथा

किसी एक राजा के एक ही अत्यन्त वल्लभ पुत्र था। इसलिए उस राजा ने विचार किया कि यदि रोग आने के पहले ही इस पुत्र का मैं इलाज कराऊँ, तो फिर इसे कभी रोग ही नहीं होगा। यह सोच कर उसने वैद्य को बुला कर कहा कि इस लड़के के लिए ऐसी औषधि बनाओ कि जिससे इसे कभी कोई बीमारी न हो। तब वह वैद्य बोला -'राजन्! मेरे पास ऐसी औषधि है कि जिसके सेवन से यदि रोग हो, तो वह मिट जाता है; पर यदि रोग न हो, तो नया रोग प्रकट हो जाता है।' यह सुन कर राजा ने कहा कि सोये हुए सिंह को जगाने जैसी तेरी औषधि की हमें आवश्यकता नहीं है। यह कह कर उसे बिदा कर दिया।

फिर दूसरे वैद्य से पूछा। तब वह बोला- हे राजन्! मेरी औषधि के सेवन से रोग हो तो मिट जाता है और न हो तो कोई गुण-दोष नहीं होता। यह सुन कर राजा ने कहा कि राख में घी डालने के समान तेरी औषधि भी हमारे काम की नहीं है। इसके बाद तीसरे वैद्य को बुला कर पूछा। तब वह बोला- हे राजन्! मेरे पास ऐसी औषधि है कि जिसके सेवन से रोग हो तो मिट जाता है; पर यदि रोग न हो तो भी वह बल, बुद्धि, रूप और तेज बढ़ाती है। उसे नया कोई रोग नहीं होता। यह बात सुन कर राजा प्रसन्न हुआ। उसने उस वैद्य की दवा पुत्र को दिलवायी और वैद्य को पुरस्कार दे कर बिदा किया।

इस प्रकार यह कल्पसूत्र भी तीसरे वैद्य के समान गुणकारी है। इसके श्रवण से पूर्व में बाँधे हुए कर्मरूप व्याधि दूर हो जाती है और नये कर्मों का बंध नहीं होता। यह सब आपदाएँ दूर करता है, सुख-संपत्ति बढ़ाता है, चारित्रगुण को पुष्ट करता है और मोक्ष का सुख भी तुरन्त प्रदान करता है। इस कल्पसूत्र में प्रथम श्री वीरचरित्र है। वह बीज के समान है। श्री पार्श्वनाथ चरित्र अंकुर है, श्री नेमीश्वर भगवान का चरित्र थड है, श्री आदिनाथ चरित्र शाखा है, स्थविरावली फूल है, कथा सुगंध है और फल मोक्ष है। जो इस सूत्र के सब अक्षर सुनता है; वह आठ भव में मोक्ष प्राप्त करता है।

कारणवश से चातुर्मास में विहार और चातुर्मास योग्य क्षेत्रगुण

अब साधु जिस गाँव में वर्षावास करे, उस गाँव में इस कल्पसूत्र की वाचना करे। चातुर्मास पूर्ण होने के बाद याने कि कार्तिक सुदि पूनम हो जाने के बाद भी यदि वर्षा होने के कारण मार्ग में कीचड़प्रमुख हुआ हो, तो वहाँ साधु अधिक दिन भी रह सकते हैं। तथा जिस गाँव में साधु वर्षावास कर रहे हों और चातुर्मास समाप्त होने के पहले यदि उस गाँव में- १. महामारी आदि रोगों का उपद्रव हो, २. भिक्षा बड़ी मुश्किल से मिलती हो, ३.राजा कोपायमान हुआ हो, ४. कुंथुआ आदि अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हुई हो, ४. सर्प-अग्नि आदि का भय उत्पन्न हुआ हो, ६. रोग और वर्षा रुकते न हों, ७. अकाल पड़ जाये; इत्यादि कारण उत्पन्न हों तो चातुर्मास में भी विहार करने की आज्ञा भगवान ने दी है। इसलिए विहार करने में दोष नहीं है।

अब संयम निर्वाह के लिए साधु को जहाँ वर्षावास करना पड़े; वहाँ प्रथम उस क्षेत्र में उत्कृष्टता से तेरह गुण देखने चाहिये। वे इस प्रकार हैं- १. जिस गाँव में कीचड़ अधिक न हो, २. जिस गाँव में बेइन्द्रियादिक जीव अधिक न हों, ३. स्थंडिल जाने की भूमि निरवद्य हो, ४. स्त्री, पशु, षंडकादिक दोषरहित उपाश्रय निवास के लिए हो, ५. दही-दूध बहुतायत से उपलब्ध हो, ६. भद्रप्रकृति श्रद्धालु श्रावकों के घर हों, ७. निपुण वैद्य रहते

हों, ८. जहाँ औषधि सुलभ उपलब्ध हो, ९. जहाँ श्रावकों के घर धन-धान्य से भरपूर हों, उन्हें किसी बात की चिन्ता न हो, १०. राजा अतिभद्रक हो, ११. वह साधुओं की बहुत भक्ति करता हो, १२. जहाँ भिक्षा सुलभ मिलती हो, १३. जहाँ सज्झाय पठन-पाठनादिक सुखपूर्वक हो सकते हों। इन तेरह गुणों से युक्त गाँव में साधु को चातुर्मास करना चाहिये। यदि इतने गुण न मिलें, तो भी जघन्य से चार गुण तो अवश्य देखने चाहिये। वे चार गुण लिखते हैं- १. स्थंडिल भूमि बहुत अच्छी, शुद्ध और प्रासुक हो. २. जहाँ सज्झाय-ध्यान सुखपूर्वक हो सके ऐसा निवास स्थान हो, ३. जहाँ श्री जिनमंदिर हो, ४. जहाँ गोचरी अच्छी तरह मिलती हो। ये चार गुण क्षेत्र के देख कर चातुर्मास करना चाहिये।

इस तरह तेरह गुण उत्कृष्ट से और चार गुण जघन्य से बताये। पाँच से बारह गुण तक सब मध्यम गुण जानना। ऐसा क्षेत्र देख कर साधु वहाँ चातुर्मास करे। साधुजन पृथ्वीपीठ पर नवकल्पी विहार करते हैं। वे अनेक तीर्थयात्राएँ करते हुए, गाँव गाँव उपदेश देते हुए, मिथ्यात्व में पड़े हुए अनेक भव्य जीवों का उद्धार करते हुए विचरते हैं। जब चातुर्मास आता है, तब धरामंडल पर सजलधारा से वर्षा होती है। इससे कदम कदम पर पानी का प्रवाह चलता है, कोमल किसलय फूटते हैं और जगह जगह अनेक प्रकार के जीव जन्तु उत्पन्न होते हैं। इस कारण से जीवयतना करने वाले चारित्रवान को वर्षाकाल में विहार नहीं करना चाहिये। उसे एक ही स्थान पर रहना चाहिये और अनेक प्रकार के घोर अभिग्रह धारण करने चाहिये; क्योंकि साधु के तो बीस बीसा-शत प्रतिशत दया होती है। श्रीकृष्ण महाराजा जैसे सवा बीसा दया का पालन करने वाले श्रावकों ने भी चातुर्मास में सोलह हजार राजाओं को सभा में पधारने के लिए 'ना' कहा था और स्वयं भी सभा में नहीं गये थे। क्योंकि बरसात में कीड़ी, कुंथुआ आदि अनेक जीवों की हिंसा होती है। यह जान कर श्रीकृष्ण ने सन्देश भेजा कि ठाकुरजी शयन कर रहे हैं। तब से देवशयनी एकादशी लोक में प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार शुद्ध श्रावक भी वर्षाकाल में पाप जान कर देशान्तर से

व्यापार न करे। इसलिए साधु को भी चातुर्मास में एक ही स्थान पर रहना चाहिये। उस चातुर्मास में पर्युषण पर्व आने पर मांगलिक के लिए कल्पसूत्र का अवश्य वाचन करना चाहिये।

पयुर्षण पर्व की सब पर्वों में उत्कृष्टता दिखाते हैं

जैसे- १. मंत्रों में पंच परमेष्ठी मंत्र, २. तीर्थों में शत्रुंजय तीर्थ, ३. दानों में अभयदान, ४. गुणों में विनय गुण, ५. व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत, ६. संतोष में नियम, ७. तपस्याओं में इन्द्रियदमन, ८. दर्शनों में जैनदर्शन, ९. क्षीर में गोक्षीर, १०. जल में गंगाजल, ११. पट में हीर, १२. वस्त्रों में चीर, १३. अलंकारों में चूडामणि, १४. ज्योत्स्ना में निशामणि, १५. तुरंगों में पंचवल्ल किशोर, १६. नृत्य कलावन्तों में मोर, १७. गजों में ऐरावत, १८. दैत्यों में अहिरावण, १९. वनों में नन्दनवन, २०. काष्ठों में चन्दन, २१. तेजवन्तों में आदित्य, २२. साहसिकों में विक्रमादित्य, २३. न्यायवन्तों में श्रीराम, २४. रूपवन्तों में काम, २५. सतियों में सीता, २६. शास्त्रों में गीता, २७. बाजों में भंभा, २८. स्त्रियों में रंभा, २९. सुगंधों में कस्तूरी, ३०. वस्तुओं में तेज, ३१. पुण्यश्लोकों में राजा नल, ३२. फूलों में सहस्त्रदल कमल, ३३. धनुर्धरों में अर्जुन, ३४. इंन्द्रियों में नयन, ३५. धातुओं में सुवर्ण, ३६. दाताओं में कर्ण, ३७. गायों में कामधेनु, ३८. स्निग्धों में घृत, ३९. पेय में अमृत, ४० ज्ञानों में केवलज्ञान और ४१. सुखों में मोक्ष सुख सर्वश्रेष्ठ है; वैसे ही सब पर्वों में पर्युषण पर्व को महान जानना चाहिये। यह भाद्रपद सुदि पंचमी जैसे श्री जिनशासन में माननीय है, वैसे ही परशासन में भी यह ऋषिपंचमी का दिन माननीय है।

ऋषिपंचमी का संबंध बताते हैं

पुष्पवती नगरी में नीलकंठ नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सोमा था। इन्द्रदेव उनका पुत्र था, जो जन्म से ही दरिद्री था। कुछ काल पश्चात् इन्द्रदेव के माता-पिता मर कर उसी घर में पिता बैल हुआ और माता कुतिया हुई। इतने में श्राद्ध पक्ष आ गया। उस समय घर में धन न होने से वह सोचने लगा कि मैं अपने माता-पिता का श्राद्ध दिन कैसे सम्हालूँ? फिर उसने अपना बैल

किसी तेली को जोतने के लिए दिया और उससे किराया ले कर वह दूध, चावल, शक्कर, घी और गोधूम ले आया। फिर खीर पका कर उसने अनेक ब्राह्मणों को आमंत्रण दिया। इतने में अपने पूर्वजन्म का मकान देख कर उस कुतिया को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसने उस दूध में एक साँप को ऊपर से जहर डालते देखा। तब उसने सोचा कि अज्ञान के कारण यदि ब्राह्मण यह खीर खायेंगे; तो उनकी मौत हो जायेगी। इससे बड़ा अनर्थ होगा। ब्रह्महत्या का पाप लगेगा तथा मेरा पुत्र और बहू भी मर जायेंगे।

इतने में बहू वहाँ आ गयी। तब उस कुतिया ने बहू के देखते उस दूध में मुँह डाल कर उसे जूठा कर दिया। यह देख कर बहू को बहुत गुस्सा आया। उसने मूसल के प्रहार से उसकी कमर तोड़ दी; जिससे वह गौशाला में जा कर गिर गयी और तड़पने लगी। फिर ब्राह्मण ने दूसरा दूध मँगा कर खीर बनवायी और सब ब्राह्मणों को जीमा कर श्राद्ध का दिन मनाया। फिर थका हारा वह ब्राह्मण बाहर गौशाला में जा कर खटिया बिछा कर लेट गया। संध्या समय होने पर वह तेली भी बैल को वहाँ ला कर उसके स्थान पर बाँध गया। वह बैल दिनभर का भूखा-प्यासा और थका-हारा था। इतने में कुलदेवी ने वहाँ आ कर उस बैल और कुतिया के शरीर में संक्रमण किया। तब कुतिया बैल से कहने लगी- आज श्राद्ध तो अपना था और भोजन ब्राह्मणों को मिला। इतना ही नहीं, इस पापिनी बहू ने मेरी कमर तोड़ डाली; इसलिए मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। इस पर बैल ने कहा- अपना यह पापी पुत्र भी कुछ समझता नहीं है। इसने मुझे आज तेली के घर भेजा था। उसने पूरा दिन मुझे कोल्हू में चलाया और चारा-पानी दिये बिना मुझे यहाँ बाँध गया है। भूख के मारे मेरा बुरा हाल हो रहा है।

उनकी यह बातचीत खाट पर लेटे हुए ब्राह्मण ने सुनी। इससे वह बड़ा दुःखी हुआ। उसने सोचा कि ये तो मेरे माता-पिता लगते हैं। ऐसा निश्चय कर के वह वहाँ से उठा। फिर उसने कुतिया को खीर का भोजन कराया और बैल को अच्छी तरह चारा-पानी आदि दिया। फिर अपने माता-पता की सद्गति के लिए वह परदेश गया और अनेक तीर्थों की उसने यात्रा की। संयोग से उसे कोई महान ऋषि मिले। उनसे उसने पूछा- महाराज! मेरा पिता मृत्यु के बाद बैल बना है और मेरी माता कुतिया बनी है। उनकी सद्गति कैसे होगी? तब ऋषि ने कहा- उन दोनों ने ऋषिपंचमी के दिन अप्रस्ताव से कामक्रीड़ा की थी और मैथुनसेवन किया था। उसका पाप लगने से उन्हें यह अवतार प्राप्त हुआ है। इसलिए अब तू ऋषिपंचमी

याने भाद्रपद सुदि पंचमी के दिन बैल का जोता हुआ धान्य मत खाना, चउविहार उपवास करना और यदि बिना खाये न रहा जा सके, तो दस मुट्ठी उड़द के बाकुले खाना। ऐसा करने से तेरे माता-पिता की सद्गति होगी। फिर उस ब्राह्मण ने वैसा ही किया। उस दिन से लोगों में ऋषिपंचमी का नाम प्रसिद्ध हुआ। यह ऋषिपंचमी के पर्व से संबंधित कथा कही।

श्री पर्युषण पर्व आने पर महोत्सवपूर्वक जो मनुष्य तेले की तपस्या में अर्थात् अट्ठम तप कर के श्री कल्पसूत्र का श्रवण करता है; वह नागकेतु के समान केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष सुख पाता है।

कल्पसूत्र-श्रवण पर नागकेतु की कथा कहते हैं

चन्द्रकान्ता नगरी में विजयसेन राजा राज करता था। उस नगरी में श्रीकान्त नामक सेठ रहता था। उसके श्रीसखी नामक पत्नी थी। अनेक उपाय करने के बाद-देवीदेवताओं की मनौतियाँ मानने के बाद उसे एक पुत्र हुआ। अनुक्रम से उस पुत्र के पालन-पोषण में कुछ काल व्यतीत हुआ। इतने में पर्युषण पर्व के दिन आये। उस समय उस बालक के आसपास बैठे हुए लोग आपस में कहने लगे कि हम संवत्सरी का तेला याने अट्ठम तप करेंगे। यह बात सुन कर उस बालक को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसके योग से उसने अपना पिछला भव देखा। इस कारण से शिशु अवस्था में ही उसने अपने मन में अट्ठम तप करने का निश्चय कर के स्तनपान करना छोड़ दिया। इससे उसका शरीर कुम्हला गया। मरणतुल्य अवस्था दिखाई देने लगी। पुत्र की ऐसी हालत देख कर उसके माता-पिता बड़े दुःखी हुए। उन्होंने अनेक प्रकार के औषधोपचार किये; तो भी बालक ने स्तनपान नहीं किया। फिर भूख के योग से बालक मूर्च्छित हो गया। पुत्र को मृतवत् देख कर पिता को हृदयाघात हुआ। इससे उसकी मृत्यु हो गयी। इसी तरह उसकी माता भी चल बसी। बालक को मृत जान कर जातिवालों ने उसे जमीन में गाड़ दिया।

फिर निःसन्तान श्रीकान्त सेठ की मृत्यु के समाचार जान कर वहाँ के राजा ने सेठ की संपत्ति लाने के लिए अपने अनुचर भेजे। उस समय अट्ठम

तप के प्रभाव से धरणेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान से सब वृत्तान्त जान कर वह वहाँ आ पहुँचा। उसने बालक को अमृत-संचार से सचेत किया। फिर वह ब्राह्मण का रूप बना कर सेठ के घर के बाहर खड़ा रहा। उसने राजसेवकों को धन लेने से रोका। तब राजा के पास जा कर उन्होंने शिकायत की कि कोई ब्राह्मण हमें धन लेने से रोकता है। तब राजा स्वयं शीघ्रता से वहाँ जा पहुँचा। उसने ब्राह्मण से कहा- हमारे राज्य में यह परंपरा है कि जो मनुष्य निःसन्तान मर जाता है, उसका धन राजा ले जाता है। फिर तुम क्यों रोक रहे हो? तब ब्राह्मण ने कहा- हे राजन्! सेठ का पुत्र जीवित है। तब राजा ने पूछा- वहा कहाँ है? उस समय धरणेन्द्र ने उस बालक को जमीन में से जीवित निकाल कर बताया। यह देख कर सब लोग चकित रह गये। फिर राजा ने पूछा- आप कौन हैं? यह बालक कौन है? आपने यह बात कैसे जानी?

इस पर ब्राह्मण बोला- मैं नागराज धरणेन्द्र हूँ। तेले के प्रभाव से मैं इसकी सहायता करने आया हूँ। तब राजा ने कहा- इस बालक ने जन्मते ही अट्ठम तप क्यों किया? इस पर धरणेन्द्र ने कहा- हे राजन्! यह बालक पूर्वजन्म में एक वणिक का पुत्र था। बचपन में ही इसकी माता चल बसी। तब इसके पिता ने दूसरा विवाह किया। सौतेली माता उस बालक को छोटे से अपराध के लिए भी बहुत सताती थी, उस पर क्रोध करती थी और उसे मार-पीट कर बहुत दुःख देती थी। इस तरह वह लड़का हमेशा दुःख पाता था। एक बार उसने अपने श्रावक मित्र से अपनी दुःख भरी बात कही। तब मित्र ने कहा कि हे भाई! तूने पूर्व भव में धर्म नहीं किया; इसलिए अब तू दुःख पा रहा है। यह उपदेश सुन कर उसने यथाशक्ति तप करना शुरु किया। फिर वह अष्टमी-चतुर्दशी के दिन उपवास और अन्य दिनों में नवकारसी, पोरसी प्रमुख तप करने लगा। इस तरह अनुक्रम से पर्युषण पर्व आये; तब उसने अट्ठम तप करने का निश्चय किया। फिर वह रात को घास की झोंपड़ी में जा कर सो गया। इतने में वहाँ नजदीक में आग लगी। उस अवसर से लाभ उठा कर सौतेली माता ने उस झोंपड़ी पर आग फेंक

दी। इससे झोंपड़ी जल गयी और वह लड़का भी शुभध्यान में जल मरा। उसने अपने अट्ठम तप ध्यान के प्रभाव से यहाँ निःसन्तान श्रीकान्त सेठ के घर जन्म लिया। फिर जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त कर इसने अट्ठम तप किया। इससे भूख के कारण यह मूर्च्छित हो गया था; पर जीवित था। फिर भी लोगों ने इसे मृत जान कर जमीन में गाड़ दिया था। मैंने यहाँ आ कर अमृतसंचार कर के इसकी मूर्च्छा दूर की और इसे सचेत किया। हे राजन्! यह महापुरुष है और इसी भव में मोक्ष पाने वाला है; इसलिए इसे खूब यत्नपूर्वक रखना। यह तुम पर भी बहुत बड़ा उपकार करने वाला होगा। इतना कह कर अपने गले का हार बालक के गले में डाल कर धरणेन्द्र अपने स्थान पर गया।

फिर राजा उस बालक को हाथी पर बिठा कर बड़े ठाट-बाट से घर ले आया। परिवारजनों ने सेठ का मृत कार्य कर के उस बालक का नाम नागकेतु रखा। वह बचपन से ही जितेन्द्रिय परम श्रावक हुआ। वह अष्टमी-चतुर्दशी को उपवास, चातुर्मासिक का छट्ठ और पर्युषण का अट्ठम करता था और नित्य जिनपूजा तथा साधुसेवा करता था।

एक बार विजयसेन राजा ने किसी निरपराधी पुरुष पर चोरी का झूठा कलंक लगा कर उसे मरवा डाला। वह मर कर व्यन्तर देव हुआ। नगर का विनाश करने के लिए वह वहाँ आ कर नगर जितनी लंबी चौड़ी शिला आकाश में निर्माण कर लोगों को डराने लगा। उसने राजा को लात मार कर नीचे गिरा दिया। राजा के मुँह से खून निकलने लगा। यह कृत्य देख कर नागकेतु ने सोचा कि मेरे जीवित रहते श्रीसंघ का और श्रीजिनचैत्य का विनाश मैं कैसे देख सकता हूँ? यह सोच कर मन में जीवदया ला कर वह प्रासाद पर चढ़ गया। फिर उसने अपने हाथों पर गिरती हुई शिला को थाम लिया। वह व्यन्तर नागकेतु के तप की शक्ति सहन न कर सका। इसलिए अपनी मायानिर्मित शिला का संहरण कर नागकेतु के चरणों में गिर पड़ा। फिर नागकेतु के कहने से राजा को भला चंगा कर के अपने स्थान पर चला गया। इससे नागकेतु की बहुत मान्यता हुई। राजा ने भी उसका

सम्मान किया। फिर वह पूर्ववत् जप-तप आदि कर के अपना जीवन-यापन करने लगा।

एक बार भगवान की पूजा करते वक्त उसे तंबोली नाग ने डँस लिया। इससे उसके शरीर में जहर फैल गया; पर वह शुभ ध्यान में लीन हो गया। इससे उसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। शासनदेव ने उसे रजोहरण-मुहपत्ती प्रमुख साधुवेश अर्पण किया। फिर शेष काल तक विहार कर के अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध दे कर उसने मोक्ष प्राप्त किया। नागकेतु का यह अधिकार सुन कर जो भव्य प्राणी छट्ठ-अट्ठम तप कर के, याने कि बेला-तेला की तपस्या कर के श्री पर्युषण पर्व में कल्पसूत्र का श्रवण करेगा, वह शाश्वत सुख पायेगा।

यह कल्पसूत्र पाप-निवारक है, मनोवांछित पूर्ण करने वाला है, निकाचित चार घातीकर्मों का क्षय करने वाला है; इसलिए भव्य जीवों को प्रमाद, निद्रा तथा विकथा का त्याग कर के बेला अथवा तेला का तप कर के कल्पसूत्र सुनना चाहिये। श्री जीवाभिगम सूत्र में कहा है कि पर्युषण पर्व के आगमन पर सब देवेन्द्र मिल कर श्री नंदीश्वर द्वीप जा कर वहाँ अट्ठाई महोत्सव करते हैं; वैसे ही यहाँ श्रावक-श्राविकाओं को भी अट्ठाई महोत्सव करना चाहिये। इस विधि से यदि कल्पसूत्र श्रवण करे, तो बहुत लाभदायक होता है। यह कल्पसूत्र श्री महावीरस्वामी के छठे पाट पर होने वाले युगप्रधान श्री भद्रबाहुस्वामी ने चौदह पूर्वान्तर्गत नौवें प्रत्याख्यानप्रवाद नामक पूर्व के दशाश्रुतस्कंध सूत्र के आठवें अध्ययन के रूप में रचा है। जैसे दही का सार घी है; वैसे ही सब शास्त्रों का सारभूत यह सूत्र है।

प्रसंगप्राप्त चौदह पूर्वों का मान कहते हैं

प्रथम उत्पाद पूर्व-हौदे सहित एक हाथी जितनी स्याही के ढेर से लिखा जा सकता है। दूसरा अग्रायणी पूर्व दो हाथी जितनी स्याही से, तीसरा वीर्यप्रवाद पूर्व चार हाथी जितनी स्याही से, चौथा अस्तिप्रवाद पूर्व आठ हाथी जितनी स्याही से, पाँचवाँ ज्ञानप्रवाद पूर्व सोलह हाथी जितनी स्याही से, छठा सत्यप्रवाद पूर्व बत्तीस हाथी जितनी स्याही से, और सातवाँ आत्मप्रवाद पूर्व चौसठ हाथी जितनी स्याही से

लिखा जा सकता है। आठवाँ कर्मप्रवाद पूर्व लिखने के लिए एक सौ अट्ठाईस हाथी जितनी स्याही चाहिये। नौवाँ प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व लिखने के लिए दो सौ छप्पन्न हाथी जितनी, दसवाँ विद्या प्रवादपूर्व लिखने के लिए पाँच सौ बारह हाथी जितनी, ग्यारहवाँ कल्याणप्रवाद पूर्व लिखने के लिए एक हजार चौबीस हाथी जितनी, बारहवाँ प्राणावायप्रवाद पूर्व लिखने के लिए दो हजार अड़तालीस हाथी जितनी, तेरहवाँ क्रियाविशाल पूर्व लिखने के लिए चार हजार छियानबे हाथी जितनी और चौदहवाँ लोकबिन्दुसार पूर्व लिखने के लिए आठ हजार एक सौ बानवे हाथी जितनी स्याही चाहिये।

इस प्रकार चौदह पूर्व लिखना शुरु करें तो कुल १६३८३ हाथियों के ढेर जितनी स्याही चाहिये परन्तु आज तक किसी ने लिखे नहीं है और आगे कोई लिखेगा भी नहीं। मात्र प्रमाण बता कर श्री केवली भगवान ने उपमा बतायी है। यह सूत्र से मान कहा। अब इन चौदह पूर्वों का अर्थ से मान कहते हैं- सब नदियों की रेत के जितने कण होते हैं तथा असंख्यात समुद्रों के जल के जितने बिन्दु होते हैं; उनसे भी अधिक एक एक सूत्र के पद का अर्थ जानना।

व्याख्यान में कल्पसूत्र-वाचन का समय

पूर्वकाल में भाद्रपद सुदि पंचमी के दिन रात में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने के बाद आधी रात के समय कालग्रहण कर के श्री गुरु महाराज खड़े खड़े कल्पसूत्र के सूत्रपाठ का मुख से उच्चारण करते थे और अन्य सब साधु काउसग्ग कर के श्रवण करते थे तथा दिन के समय साध्वियों को भी सुनाते थे। पर श्री महावीर भगवान के निर्वाण के नौ सौ अस्सीवें वर्ष में आगम पुस्तकारूढ़ हुआ। श्री वीर निर्वाण के नौ सौ तिरानबेवें वर्ष में आनन्दपुर नगर में, जिसे आजकल बडनगर कहते हैं; वहाँ ध्रुवसेन राजा राज करता था। उसके अत्यन्त वल्लभ सेनांगज नामक एक पुत्र था। दैवयोग से उसकी मृत्यु हो गयी। इतने में पर्युषण पर्व का आगमन हुआ। पर राजा बहुत शोकाक्रान्त था, इसलिए धर्मशाला में भी आता नहीं था। और फिर जैसे राजा चलता है, वैसे ही प्रजा भी चलती है। इस हेतु से सेठ-साहूकार, व्यवहारी प्रमुख लोग भी धर्मशाला में आते नहीं थे।

राजा को ऐसा शोकातुर जान कर धर्म की हानि होते देख कर गुरु

ध्रुवसेन राजा के पास गये। वहाँ जा कर राजा से कहा- 'हे राजन्! तुम्हें शोकाक्रान्त हुआ जान कर नगर के सब लोग भी शोकाकुल हुए हैं। शरीर-धनादि सब अनित्य है, आयुष्य चंचल है और संसार असार है। संसार का ऐसा स्वरूप तुम जानते ही हो। जैन धर्म में अधिक शोक करना अनुचित माना गया है। इसलिए शोक निवारण कर के पंचमी के दिन पर्युषण पर्व होने से धर्मशाला में पधारो, तो कल्पसूत्र का वाचन करें। श्री भद्रबाहुस्वामी ने नौवें पूर्व में से इस कल्पसूत्र को उद्धरित किया है और यह महामांगलिक तथा प्राचीन कर्म का क्षय करने वाला है, तब पंचमी का दिन पुत्र-निधन के शोक की समाप्ति का दिन था तथा उस दिन इन्द्र महोत्सव भी था; इसलिए राजा ने कहा कि छट्ठ या चौथ का दिन निश्चित करें तो मैं आ सकता हूँ; पर पंचमी के दिन तो मैं नहीं आ सकता। तब 'अंतरावासे कप्प त्ति' यह सूत्रपाठ ध्यान में ले कर कारण विशेष से गुरु ने चौथ की स्थापना कर के चौथ के दिन कल्पसूत्र पढ़ना कबूल किया।

कालिकाचार्य से आमंत्रित बलमित्र और भानुमित्र अपने इन दो भानजों के साथ बडनगर का ध्रुवसेन राजा सभा सहित धर्मशाला में पहुँचा। उस समय प्रभावनासहित महोत्सवपूर्वक सब लोगों के सामने गुरु ने नववाचनायुक्त श्री कल्पसूत्र का वाचन किया। उस दिन से चौथ के दिन पर्युषण करने की परंपरा चली है और कई गच्छों में अब भी पंचमी के दिन पर्युषण करते हैं। इस प्रकार उस दिन से महोत्सवपूर्वक प्रभावनासहित सब लोगों की उपस्थिति में कल्पसूत्र पढ़ने की प्रवृत्ति चली। सो श्री गुरुपरंपरा से आज तक चली आ रही है तथा उसके अनुसार सब जगह कल्पसूत्र पढ़ा[१] जाता है। इसके

१. एक प्रति में ऐसा लिखा है कि- बड़नगर में गुरुजी का चातुर्मास था। पर्युषण नज़दीक आते ही ध्रुवसेन राजा का इकलौता पुत्र दाहज्वर से पीड़ित हो गया। इस कारण से चिन्तातुर राजा गुरु को वन्दन करने नहीं जा सका तथा धर्म ध्यान में प्रवृत्ति करने वाले बहुत से लोग पर्युषण पर्व में दिखाई नहीं दिये। तब गुरु ने इसका कारण ज्ञात किया और राजा को शोकमग्न जान कर वे स्वयं राजसभा में पहुँचे। वहाँ राजा को धर्मोपदेश दे कर समझाया। फिर महान लाभ का कारण जान कर मांगलिक के निमित्त कल्पसूत्र की प्रथम वाचना की। उसे सुन कर राजा के पुत्र को सुख चैन मिला। ऐसा करते करते नौ वाचनाओं के श्रवण से उसका संपूर्ण दाहज्वर समाप्त हो गया। इससे हर्षवन्त हो कर राजा ने महान महोत्सव किया। धर्म की महिमा

वाचन के अधिकारी योगवहन करने वाले साधु-मुनिराज हैं और इसे सुनने का अधिकार चतुर्विध श्रीसंघ को है।

कल्पसूत्र के वाचन-श्रवण से लाभ

इस सूत्र के वाचन से इसके अक्षर-माहात्म्य के कारण साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका का कल्याण होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस पर कथा कहते हैं- किसी एक वृद्धा का पुत्र जंगल में गायें चराने गया। वहाँ उसे साँप डँसा। इससे वह मूर्च्छित हो गया। लोगों के मुँह से यह समाचार सुन कर वह वृद्धा जंगल में गयी। वहाँ पुत्र को मूर्च्छित देख कर वह मोहवश पुत्र का नाम बार बार स्मरण करने लगी। रे हंस ! रे परम हंस!! इस तरह चार प्रहर तक उसने पुकार की। इससे उसके पुत्र का ज़हर उतर गया। वह अच्छा हो गया।

सुबह के समय माता-पुत्र दोनों गाँव में पहुँचे। नगर के सब लोग चकित रह गये। तब सँपेरों ने वृद्धा से पूछा- तुमने कौन सा उपचार किया, जिससे तुम्हारा पुत्र निर्विष हो गया? तब उसने कहा- मैं कोई मंत्र नहीं जानती तथा औषधि भी नहीं जानती। मैं तो सारी रात 'रे हंस! रे परम हंस!! इस प्रकार रुदन करती रही। इससे मेरा बेटा निर्विष हो गया। मेरी पुकार देवों ने सुनी। देवप्रयोग से वह निर्विष हुआ। यह सुन कर सँपेरा बोला कि यह मंत्र सत्य है। अक्षर-प्रयोग से मंत्र उत्पन्न होता है। वैसे ही यह कल्पसिद्धान्त पढ़ने से, सुनने से जन्म जन्म के पाप दूर हो जाते हैं। इतना बड़ा माहात्म्य कल्पसूत्र के अक्षरों का जानना। यह कल्पसूत्र सुनने से अनेक गुण-लाभ होते हैं तथा अनेक मांगलिकों की वृद्धि होती है।

पर्युषण में साधु-श्रावकों के करने योग्य धर्मकार्य

परि याने सामस्त्येन सर्व प्रकार से और उषणा याने सेवना आराधना

में वृद्धि हुई। राजा ने गुरु से प्रार्थना की कि श्रीसंघ के मांगलिक निमित्त यह कल्पसूत्र हर वर्ष श्रीसंघ को पढ़ कर सुनाया जाये। उस दिन से कल्पसूत्र चतुर्विध श्रीसंघ के सन्मुख पढ़ कर सुनाने की प्रवृत्ति चली है। उसके अनुसार वर्तमान में भी श्रावकों के आग्रह से कल्पसूत्र की वाचना साधु-मुनिराज करते हैं।

करना उसे पर्युषणा कहते हैं। ऐसे पर्युषण पर्व आने पर साधुओं को कौन कौन से धर्मकार्य करने चाहिये ? सो कहते हैं- १. चैत्यपरिपाटी करना याने सब चैत्यों में स्थित श्री अरिहंत की प्रतिमाओं के दर्शन वंदन भक्ति-भाव पूर्वक करना. २. लोच करना, ३. सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना, ४. सकल श्रीसंघ से आपस में खमत-खामणा करना, ५. तेला करना याने अट्ठम का तप करना तथा पाँच दिन तक कल्पसूत्र पढ़ना, ये पाँच प्रवृत्तियाँ करनी चाहिये, ऐसा श्री तीर्थंकर-गणधरों ने कहा है। तथा पर्युषण आने पर श्रावकों को निम्नलिखित धर्मकार्य करने चाहिये- १. आठ दिन तक अमारी-अहिंसा का पालन करना-करवाना, २. यथाशक्ति बेला-तेला का याने छट्ठ-अट्ठमादि का तप-जपादि करना, ३. आठ दिन तक सुपात्र को अविच्छिन्न दान देना. ४. सुपारी, नारियलप्रमुख की प्रभावना करना, ५. श्री वीतराग देव की प्रतिमा की पूजा करना तथा चैत्य-परिपाटी करना. ६. सर्व साधुओं को वन्दन करना, ७. श्रीसंघ की भक्ति करना, ८. सचित्त वस्तु का परिहार करना, ९. ब्रह्मचर्य पालन करना. १०. सब प्रकार के आरंभ से संबंधित कार्यों का त्याग करना. ११. अपनी शक्ति के अनुसार सन्मार्ग में द्रव्य खर्च करना, १२. श्रुतज्ञान की भक्ति करना, १३. अभयदान देना, १४. कर्मक्षयनिमित्त काउसग्ग करना, १५. प्रतिदिन दोनों समय प्रतिक्रमण करना, १६. महामहोत्सव करना, १७. कल्पसूत्र पढ़ने वाले की शुद्ध खान-पान आदि से सहायता करना, उसकी सुख-समाधि की खबर लेना, १८. श्रीसंघ का आपस में खमत-खामणा करना, १९. भावना का चिन्तन करना, २०. कल्पसूत्र संपूर्ण अक्षर अक्षर श्रवण करना। जो भव्य जीव हो, वह कल्पसूत्र सुने। यह कल्पसूत्र विधिपूर्वक सुनने वाला मनुष्य बारहवें देवलोक में उत्पन्न हो कर देवों के सुख भोगता है।

तीन अधिकार दर्शक गाथा

अब व्याख्यान पढ़ते समय प्रथम मंगलरूप गाथा बोलना-

पुरिम-चरिमाण कप्पो, मंगलं वद्धमाण जिण तित्थं।
इह परिगहिया जिणहरा, थेरावली चरित्तम्मि।।१।।

प्रथम श्री ऋषभदेव तीर्थंकर और अन्तिम श्री महावीरस्वामी तीर्थंकर हुए। इनमें श्री वर्द्धमान जिनेश्वर के तीर्थ में मांगलिक निमित्त यह कल्पसूत्र है। इसमें तीन अधिकार कहे हैं। प्रथम जिनावली याने श्री महावीर भगवान से ले कर पश्चानुपूर्वी से श्री जिनेश्वरों के चरित्र कहे जायेंगे। दूसरा स्थविरावली याने स्थविरों के चरित्र कहे जायेंगे। तीसरा चौसठ आलापों से अट्ठाईस प्रकार की साधु-समाचारी कही जायेगी। इसमें प्रथम श्री जिनेश्वरों के चरित्रों में अन्तिम श्री महावीरस्वामी शासन के अधिकारी हैं; इसलिए उनका चरित्र पहले कहा जायेगा।

।। इति कल्पसूत्र-पीठिका।।

卐 卐 卐

अब इस कल्पसूत्र का अर्थ अत्यन्त गंभीर है। एक एक अक्षर का अनन्त अर्थ है। वह सब अर्थ कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ, फिर भी जैसे पूर्वाचार्यों ने किया है; वैसे ही मैं भी उन महापुरुषों के ग्रंथों का अनुसरण कर के स्वल्प अर्थ करता हूँ। यद्यपि यह कल्पसूत्र स्वयं ही सब विघ्नों की उपशान्ति के लिए महामांगलिकरूप है, तो भी शिष्य की मंगलबुद्धि होने के कारण जैसे लौकिक कामों के प्रारंभ में प्रथम श्री देवगुरु का स्मरण कर के फिर उस कार्य का प्रारंभ करते हैं; वैसे ही इस कल्पसूत्र की रचनारूप कार्य के आद्य में भी सब मंगलों में महामंगलकारी, चौदह पूर्वों के सारभूत पंच परमेष्ठी मंत्र का उच्चारण किया जाता है; सो लिखते हैं।

परमेष्ठी नमस्कार और कल्पसूत्र का प्रारंभ

'नमो अरिहंताणं' - नमस्कार हो विहरमान श्री अरिहन्त भगवन्तों को। 'नमो सिद्धाणं' - नमस्कार हो जिन्होंने आठ कर्मों का क्षय कर के मोक्ष प्राप्त किया है; ऐसे सब सिद्ध भगवन्तों को। 'नमो आयरियाणं' - नमस्कार

हो श्री आचार्य भगवंतों को। 'नमो उवज्झायाणं' - नमस्कार हो श्री उपाध्याय भगवंतों को। 'नमो लोए सव्वसाहूणं' - नमस्कार हो ढाई द्वीपरूप मनुष्यलोक में रहे हुए सब साधु भगवंतों को। 'एसो पंच नमुक्कारों' - इन पाँचों को किया गया नमस्कार- 'सव्व पावप्पणासणो' - सब पापों का प्रकर्षता से नाश करने वाला है। 'मंगलाणं च सव्वेसिं' - और सब मंगलों में- 'पढमं हवइ मंगलं' - प्रथम याने मुख्य मंगल है।

संक्षिप्त वाचना से वीर प्रभु के पाँच कल्याणक

उस काल में याने चौथे आरे के अन्त में, उस समय में याने उस अवसर पर श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी के पाँच कल्याणक उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र में हुए। सो कहते हैं- एक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में देवलोक से च्यव कर देवानन्दाजी की कोख में, गर्भ में आ कर उत्पन्न हुए। दूसरा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में देवानन्दाजी की कोख से उठा कर श्री त्रिशलादेवी की कोख में उन्हें संक्रमित किया गया। तीसरा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उनका जन्म हुआ। चौथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में गृहस्थ जीवन त्याग कर उन्होंने साधु जीवन अंगीकार किया। पाँचवाँ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में अनन्त अनुपम- जिसे कोई दूसरी उपमा लग नहीं सकती तथा जिसका कहीं भी व्याघात नहीं होता; ऐसा श्रेष्ठ केवलज्ञान तथा केवलदर्शन भगवान को उत्पन्न हुआ। ये पाँच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुए। तथा स्वाति नक्षत्र में भगवन्त ने निर्वाण अर्थात् मोक्षपद प्राप्त किया। भगवंत के ये पाँच कल्याणक सामान्य से कहे।

विस्तृत वाचना और छह आरों का स्वरूप

अब विस्तार से वर्णन करते हैं- उस काल में उस समय में श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी ने ग्रीष्मकाल का चौथा महीना-आठवाँ पखवाड़िया अर्थात् आषाढ़ सुदि छठ की रात को महाविजय पुष्पोत्तर- प्रधान पुंडरीक नामक दसवें देवलोक के विमान में बीस सागरोपम की आयु का क्षय कर के, देवभव का त्याग कर के, देव से संबंधित शरीर छोड़ कर अन्तररहित

च्यवन किया। च्यवन कर के इसी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के दक्षिण भरत में इसी अवसर्पिणी काल का-

यहाँ अवसर्पिणी किसे कहते हैं, सो बताते हैं- जिस काल में समय समय पर वस्तु की हानि होती है; उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं और जिस काल में समय समय पर वस्तु की वृद्धि होती है; उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। इस प्रत्येक काल के छह छह आरे हैं। उनका स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है-

पहला सुखमासुखमा नामक आरा चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। उसमें मनुष्य और तिर्यंच की तीन पल्योपम की आयु होती है। उनका तीन कोस का देहमान होता है, उनके दो सौ छप्पन्न पसलियाँ होती हैं तथा वे अरहर (तूअर) की दाल जितना आहार तीन तीन दिन से करते हैं और उनचास दिन तक जन्मे हुए युगल का पालन करने के पश्चात् वे देवलोक जाते हैं। यह अवसर्पिणी का पहला आरा और उत्सर्पिणी का छठा आरा इनकी स्थिति-मर्यादा समान जानना।

दूसरा सुखमा नामक आरा तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। उसमें मनुष्य और तिर्यंच की आयु दो पल्योपम की होती है। उनका शरीर दो कोस का होता है। उनके एक सौ अट्ठाईस पसलियाँ होती हैं तथा वे दो दो दिन में बेर के जितना आहार करते हैं और चौसठ दिन तक संतानपालन कर के वे देवलोक जाते हैं। यह अवसर्पिणी का दूसरा आरा और उत्सर्पिणी का पाँचवाँ आरा इनकी स्थितिमर्यादा जानना।

तीसरा सुखमादुखमा नामक आरा दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। उसमें युगलिक मनुष्य और तिर्यंच की आयु एक पल्योपम की होती है। उनका शरीर एक कोस का होता है। उनके चौसठ पसलियाँ होती हैं तथा वे एकान्तर से आँवले जितना आहार करते हैं और उनासी दिन तक सन्तान-पालन कर के मर कर देवलोक जाते हैं। यह अवसर्पिणी का तीसरा आरा और उत्सर्पिणी का चौथा आरा इनकी स्थिति- मर्यादा जानना।

चौथा दुखमा-सुखमा नामक आरा बयालीस हजार वर्ष न्यून एक

कोड़ाकोड़ी सागरोपम का है। उसमें मनुष्य की आयु एक पूर्व कोड़ी वर्ष की होती है और पाँच सौ धनुष्य प्रमाण उसका शरीर होता है। इस काल में युगलिक नहीं होते। इस कारण से जिस समय जितना चाहिये, उस समय उतना भोजन करते हैं। मृत्यु के बाद वे चारों गतियों में से किसी भी गति में जाते हैं। कोई कोई जीव कर्मक्षय कर के मोक्ष भी जाते हैं। यह अवसर्पिणी का चौथा आरा और उत्सर्पिणी का तीसरा आरा इनकी स्थिति-मर्यादा जानना।

पाँचवाँ दुखमा नामक आरा इक्कीस हजार वर्ष का है। उसमें मनुष्य की आयु एक सौ बीस वर्ष की होती है और सात हाथ का उसका देहमान होता है। मृत्यु के बाद वह चार गतियों में से किसी भी गति में जाता है। इस आरे में सब कर्मों का क्षय कर के कोई भी मोक्ष नहीं जाता। यह अवसर्पिणी काल का पाँचवाँ आरा और उत्सर्पिणी काल का दूसरा आरा इनकी स्थिति-मर्यादा जानना।

छठा दुखमा-दुखमा नामक आरा इक्कीस हजार वर्ष का है। इसमें मनुष्य की आयु सोलह वर्ष की होती है और एक हाथ का उसका शरीर होता है। उसका निवास बिल में होता है। सब मनुष्य क्रूरकर्मी, न्यायमार्गरहित और दुर्गति में जाने वाले जीव होते हैं। यह अवसर्पिणी काल का छठा और उत्सर्पिणी काल का पहला आरा इनकी स्थिति-मर्यादा जानना।

इस तरह ये छह अवसर्पिणी के और छह उत्सर्पिणी के मिल कर छह दु बारह आरे होते हैं। इनका काल कुल मिला कर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होता है।

इसमें अवसर्पिणी का सुखम-सुखमा नामक पहला आरा संपूर्ण हुआ। फिर सुखमा नामक दूसरा आरा भी संपूर्ण हुआ तथा सुखम-दुखमा नामक तीसरा आरा भी व्यतिक्रम हो गया और दुखम-सुखमा नामक चौथा आरा भी बहुत बीत गया। याने कि उसमें से भी बयालीस हजार पचहत्तर वर्ष और साढ़े आठ महीने - इतने वर्ष न्यून एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम बीत गये। उसमें इक्कीस तीर्थंकर श्री इक्ष्वाकु कुल में हुए। उनका काश्यप गोत्र

था तथा श्री मुनिसुव्रतस्वामी और श्री नेमिनाथ भगवान ये दो तीर्थंकर श्री हरिवंश कुल में हुए। उनका गौतम गोत्र था। इस तरह सब मिल कर तेईस तीर्थंकर तो हो चुके। फिर जब इस अवसर्पिणी से संबंधित चौथे आरे के पचहत्तर वर्ष ऊपर साढे आठ महीने काल शेष रहा; तब श्रमण भगवान श्री महावीर अन्तिम तीर्थंकर ब्राह्मणकुंडग्राम नगर में ऋषभदत्त नामक ब्राह्मण, जिसका कोडाल गोत्र है; उसके देवानंदा नामक ब्राह्मणी भार्या है; उसकी कोख में मध्यरात्रि के समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में चन्द्रमा का योग आने पर देव से संबंधित आहार, देव का भव और देव का शरीर त्याग कर अवतरित हुए।

श्री महावीर प्रभु के सत्ताईस भव

अब भरत चक्रवर्ती के पूछने से श्री ऋषभदेव भगवान ने कहा था कि चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी होंगे। यह बात किस भव की है? यह बताने के लिए प्रथम श्री महावीरस्वामी के सत्ताईस भव कहते हैं-

इस जंबूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में प्रतिष्ठानपत्तन के राजा के गाँव की सम्हाल लेने वाला नयसार नामक एक चाकर था। एक दिन राजा के हुक्म से वह अनेक वाहन और चाकर साथ ले कर काष्ठ लाने के लिए जंगल में गया। वहाँ वह स्वयं एक पेड़ के नीचे जा बैठा और अन्य चाकर लकड़ी काटने का उद्यम करने लगे। इतने में सार्थ से भूले पड़े कई साधु वहाँ आ पहुँचे। नयसार ने उन्हें देखा। तब हर्षवन्त हो कर उनके आगे जा कर वन्दन कर के वह उन्हें अपने स्थान पर बुला लाया और उसने उनको भक्तिभाव से आहार वहोराया। फिर साधु ने उसे धर्मोपदेश दिया, जिसे सुन कर वह समकितवन्त हुआ। फिर उसने साधु-मुनिराजों को सही मार्ग बता कर बिदा किया। यह नयसार का प्रथम भव जानना।।१।।

जब से समकित प्राप्त हुआ, तब से भव की गिनती होती है। समकितप्राप्ति के पूर्व तो जीव ने संसार में अनन्त भव किये हैं। उनकी कोई गिनती नहीं होती। वे गिनती में नहीं लिये जाते। फिर नयसार वहाँ से आयु क्षय कर के

अन्त समय में नमस्कार सहित मृत्यु प्राप्त कर प्रथम देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ। यह दूसरा भव जानना।।२।।

फिर देवभव में एक पल्योपम की आयु भोग कर वहाँ से च्यव कर तीसरे भव में श्री ऋषभदेवस्वामी के पुत्र भरत चक्रवर्ती का पुत्र मरीचि हुआ। एक दिन श्री ऋषभदेव भगवान की देशना सुन कर उसने दीक्षा ग्रहण की। उस समय भरत राजा के पाँच सौ पुत्र और सात सौ पौत्र इस प्रकार बारह सौ लोगों ने भी दीक्षा ली।

एक दिन ग्रीष्मकाल में शरीर में अधिक ताप लगने के कारण मरीचि के मन में नहाने की इच्छा हुई। उस समय संयम का निर्वाह बड़ा कठिन था। इससे दीक्षापालन में असमर्थ हो कर घर भी जाया नहीं जा सकता; यह सोच कर साधु-वेष छोड़ कर उसने मनः कल्पना से नया त्रिदंडी वेश धारण किया। लोग जब उससे पूछते, तब वह कहता कि- साधु तीन दंड से रहित हैं और मैं तीन दंड सहित हूँ; इसलिए मेरे तीन दंड का चिन्ह है। साधु महाराज द्रव्य और भाव से लोच करते हैं; मैं लोच करने में असमर्थ हूँ; इसलिए मेरे मस्तक पर शिखा और मुंडन अर्थात् क्षुरमुंडन है। साधु सब प्राणातिपातादिक से विरक्त हैं, मुझसे वैसा पालन नहीं होता; इसलिए मुझे स्थूल प्राणातिपात की विरति है। साधु शील से सुगंधित हैं और मैं वैसा नहीं हूँ; इसलिए मेरे बावना-चन्दन का विलेपन है। साधु मोहरहित हैं और मैं मोह से ढँका हुआ हूँ; इसलिए मेरे एक छत्र ढँकने के लिए है। साधु पादुकाओं से रहित हैं और मैं वैसा नहीं हूँ; इसलिए मेरे पैरों में पाँवरी है। साधु कषाय से रहित हैं और मैं कषायसहित हूँ; इसलिए मेरे काषायिक याने गेरू के रंगे वस्त्र हैं तथा साधु स्नान से रहित हैं और मैं स्नान से रहित नहीं हूँ; इसलिए मेरे स्वल्प जल से स्नान है।

इस प्रकार का वेश धारण कर तथा हाथ में जल कमंडल ले कर वह भगवान के समवसरण के बाहर बैठता; परन्तु ऐसा विरूप वेश होते हुए भी उसे जो कोई पूछता उससे वह सत्य हकीकत कहता और अपने पास आने वाले को शुद्ध साधुमार्ग का उपदेश दे कर श्री ऋषभदेव भगवान के पास

दीक्षा दिलवाता। इस तरह वह भगवान के साथ विचरता था।

एक दिन श्री ऋषभदेवस्वामी का अयोध्या में आगमन हुआ। उस समय भरत चक्रवर्ती ने परमेश्वर को वन्दन कर के पूछा कि हे भगवन्त! इस समवसरण में क्या कोई तीर्थंकर का जीव है? उस समय भगवान बोले कि समवसरण में तो नहीं है, पर समवसरण के बाहर तेरा मरीचि नामक पुत्र जिसने त्रिदंडी वेश धारण किया है, वह चौबीसवाँ श्री महावीर नामक तीर्थंकर होगा तथा इसी मरीचि का जीव इस भरतक्षेत्र के पोतनपुर नगर में त्रिपृष्ठ नामक पहला वासुदेव होगा और श्री महाविदेहक्षेत्र की मूका नगरी में प्रियदर्शन नामक चक्रवर्ती होगा।

यह बात सुन कर भरत महाराज हर्षवन्त हो कर श्री भगवान से मरीचि को वन्दन करने की आज्ञा ले कर समवसरण के बाहर जहाँ मरीचि बैठा था; वहाँ आये और तीन प्रदक्षिणा दे कर उसे वन्दन कर के कहा कि हे मरीचि! मैं तुम्हें तथा तुम्हारे त्रिदंडी वेश को तथा तुम वासुदेव होगे, उस वासुदेवपने को तथा चक्रवर्तीपने को नमन नहीं करता; पर चौबीसवें श्री महावीर नामक तीर्थंकर तुम होगे; इसलिए तुम्हें वन्दन करता हूँ। इतना कह कर भरत महाराज अपने स्थान पर चले गये।

यह बात सुन कर मरीचि बहुत आनन्द से बोला कि मेरे दादा तीर्थंकर हैं, मेरे पिता चक्रवर्ती हैं और मैं भी पहला वासुदेव होऊँगा, फिर चक्रवर्ती होऊँगा तथा अन्तिम चौबीसवाँ तीर्थंकर भी होऊँगा। इसलिए मुझे वासुदेवादिक अधिक पदवियाँ मिलेंगी। इससे 'अहो! मेरा उत्तम कुल कितना महान है!' यह कह कर वह अपनी भुजा से ताल ठोंक कर हाथ से तालियाँ बजा बजा कर नाचने लगा। इस तरह उसने अपने कुल का मद किया। इससे उसने नीच गोत्र कर्म बाँधा। क्योंकि १. जातिमद, २. कुलमद, ३. लाभमद, ४. ऐश्वर्य मद, ५. बलमद, ६. रूपमद, ७. तपमद और ८. श्रुतमद ये आठ मद करने से जीव हीनजाति आदि प्राप्त करता है।

एक दिन मरीचि के शरीर में कोई रोग उत्पन्न हुआ। तब उसका भिन्न वेश देख कर असंयतीपने के कारण किसी भी साधु ने उसकी वैयावच्च-

सेवा-शुश्रूषा नहीं की। यह देख कर मरीचि ने मन में सोचा कि यदि मेरा रोग मिट जाये और मैं अच्छा हो जाऊँ, तो एक शिष्य बनाऊँ; जिससे रोगादिक उत्पन्न होने पर वह मेरी वैयावच्च करने के काम आ सके। फिर उसने यह निर्धारित कर लिया। कुछ दिन बाद उसका रोग मिट गया और उसके शरीर में शाता हुई। उसे सुख-चैन मिला।

एक दिन कोई कपिल नामक राजपुत्र मरीचि के पास आया। उसने धर्मोपदेश सुना। फिर प्रतिबोधित हो कर वह मरीचि से कहने लगा कि मुझे दीक्षा दो। यह सुन कर मरीचि ने कहा कि श्री ऋषभदेवस्वामी के पास जा कर दीक्षा लो। तब कपिल राजपुत्र श्री ऋषभदेवजी के समवसरण में गया। वहाँ भगवान को समवसरण में बिराजमान देख कर वह पुनः मरीचि के पास आया और बोला कि श्री ऋषभदेवजी तो राजलीला भोगते हैं; इसलिए उनके पास तो धर्म कुछ भी नहीं है। पर तुम्हारे पास कुछ धर्म है या नहीं? यह वचन सुन कर मरीचि ने उससे यथार्थ कहा, तो भी बहुलकर्मीपने के कारण उसने नहीं माना। तब मरीचि ने कषायसहित मतिभ्रंश से, मिथ्यात्वोदय के योग से, शिष्य के लोभ से अपना धर्म स्थापन करने के लिए विचार किया कि यह मेरे योग्य है। यह सोच कर वह बोला कि हे कपिल! कुछ जैन धर्म मेरे पास भी है। इसलिए तू सुखपूर्वक दीक्षा ले। मैं तुझे दीक्षा दूँगा। इस तरह अपने स्वार्थ के लिए उसने कपिल को दीक्षा दी। यह उत्सूत्र भाषण किया। फिर इस कर्म की आलोचना और प्रतिक्रमण नहीं किया। इस कारण से एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम संसार में परिभ्रमण करने से संबंधित कर्म उपार्जन किया।

इसके बाद मरीचि अनुक्रम से अपनी चौरासी लाख पूर्व की आयु भोग कर समाधि-मरण प्राप्त कर के।।३।। चौथे भव में पाँचवें ब्रह्म देवलोक में दस सागरोपम की आयु वाले देवरूप में उत्पन्न हुआ ।।४।। वहाँ की आयु पूर्ण कर, च्यव कर के पाँचवें भव में कोल्लाग सन्निवेश में अस्सी लाख पूर्व की आयुवाला कौशिक नामक विप्र हुआ। वहाँ भी अन्त में तापसी दीक्षा ग्रहण कर आयु पूर्ण कर मृत्यु के पश्चात् बहुत काल तक

संसार परिभ्रमण कर के ।।५।। छठे भव में थूणापुरी में पुष्पमित्र नामक ब्राह्मण हुआ। वहाँ त्रिदंडी तापस हो कर बहत्तर लाख पूर्व की आयु भोग कर ।।६।। सातवें भव में पहले सौधर्म देवलोक में मध्यम आयुवाले देवरूप में उत्पन्न हुआ।।७।। वहाँ से च्यव कर आठवें भव में चैत्य सन्निवेश में साठ लाख पूर्व की आयु वाला अग्निद्योति नामक ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी त्रिदंडी तापस हो कर मृत्यु के बाद ।।८।। नौवें भव में दूसरे ईशान देवलोक में मध्यम आयुवाला देव हुआ।।९।। वहाँ से च्यव कर दसवें भव में मन्दिराख्य सन्निवेश में छप्पन्न लाख पूर्व की आयु वाला अग्निभूति नामक ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी त्रिदंडी संन्यास ग्रहण कर मृत्यु के बाद ।।१०।। ग्यारहवें भव में सनत्कुमार नामक देवलोक में मध्यम आयु वाले देवरूप में उत्पन्न हुआ।।११।। वहाँ से च्यव कर बारहवें भव में श्वेतांबिका नगरी में चवालीस लाख पूर्व की आयु वाला भारद्वाज नामक ब्राह्मण हुआ। अन्त में त्रिदंडी संन्यास ग्रहण कर के वहाँ से मृत्यु के बाद ।।१२।। तेरहवें भव में चौथे माहेन्द्र नामक देवलोक में मध्यम आयु वाले देवरूप में उत्पन्न हुआ।।१३।। वहाँ से च्यव कर बहुत संसारभ्रमण कर पुनः चौदहवें भव में राजगृही नगरी में चौंतीस लाख पूर्व की आयु वाला थावर नामक ब्राह्मण हुआ। वहाँ त्रिदंडी संन्यास अंगीकार कर मृत्यु के बाद ।।१४।। पन्द्रहवें भव में पाँचवें ब्रह्म देवलोक में मध्यम आयु वाले देवरूप में उत्पन्न हुआ ।।१५।।

वहाँ से च्यव कर बहुत संसारभ्रमण कर सोलहवें भव में- राजगृही में चित्रनन्दी नामक राजा था। उसकी रानी का नाम प्रियंगु था। उसके एक पुत्र था विशाखनन्दी। चित्रनन्दी राजा के छोटे भाई का नाम विशाखभूति था। वह युवराज था। उसकी धारिणी नामक रानी की कोख में मरीचि का जीव आ कर पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। माता-पिता ने उसका नाम विश्वभूति रखा। अनुक्रम से उसने युवावस्था प्राप्त की, तब पिता ने उसका विवाह किया। वह अपनी पत्नी को साथ ले कर बगीचे में क्रीडा के लिए जाया करता था। एक दिन चित्रनन्दी राजा के पुत्र विशाखनन्दी ने विश्वभूति को वहाँ क्रीडा

करते हुए देख कर विचार किया कि देखो तो सही, मैं तो राजा का पुत्र हूँ और यह युवराज का पुत्र है। फिर भी मैं तो मेरे पिता के इस बगीचे में कभी भी क्रीडा नहीं करता हूँ और यह युवराज का पुत्र बगीचा रोक कर बैठा है। यह अनुचित है। इसलिए अब मैं भी अपनी स्त्रियों के साथ यहाँ आ कर बगीचे में रमण करूँ, तो ही मेरा जन्म सफल है; अन्यथा मेरा जन्म व्यर्थ है। यह निश्चय कर के उसने अपने पिता से कहा कि आप विश्वभूति को बगीचे से निकाल दें, तो मैं वहाँ जा कर बगीचे में क्रीडा करूँ। तब पिता ने कहा- हे पुत्र ! मैं कोई उपाय कर के विश्वभूति को वहाँ से निकाल कर तुझे बगीचा दे दूँगा।

इस प्रकार अपने पुत्र को आश्वासन दे कर फिर विश्वभूति को बगीचे से बाहर निकालने के लिए राजा ने कपट कर के एक पटह बजवाया कि सिंह नामक राजा को पकड़ने के लिए राजा चढ़ाई कर रहा है। यह ढिंढोरा सुन कर विश्वभूति ने राजा से कहा कि हे स्वामिन् ! उस बेचारे गरीब सिंह राजा पर आप क्यों चढ़ाई करते हैं? उसे तो मैं ही बाँध कर ले आऊँगा। यह कह कर लश्कर के साथ विश्वभूति ने सिंह राजा पर आक्रमण कर दिया। उसके जाने के बाद राजा ने विश्वभूति के अन्तःपुर को बगीचे से निकाल कर विशाखनंदी को बगीचा सौंप दिया।

इस तरह कई दिन बाद विश्वभूति ने भी सिंह राजा को पकड़ कर ला कर राजा को सौंप दिया। तब लोग उसका बहुत यशवाद बोलने लगे। अब पुनः विश्वभूति पहले के समान अपनी स्त्रियों को साथ ले कर क्रीडा हेतु बगीचे में गया। वहाँ दरवाजे पर विशाखनंदी के सुभट बैठे थे। उन्होंने कहा कि यहाँ विशाखनंदी अपनी स्त्रियों के साथ रमण कर रहा है; इसलिए अन्य किसी को आने का हुक्म नहीं है। राजा ने उसे बगीचा दे दिया है। यह सुन कर विश्वभूति ने जान लिया कि राजा ने उसके साथ कपट किया है। इसलिए 'धिक्कार हो इस संसार को' यह विचार कर वह विरक्त हो गया। फिर केवल अपना बल दिखाने के लिए उस बगीचे के द्वार के पास रहे हुए एक कोंठ के पेड़ को एक मुक्का मारा। इससे उस वृक्ष के सब

कोंठ जमीन पर गिर गये। फिर वह बोला कि इस कोंठ को जमीन पर गिराने में जितना समय लगा है; उतना ही समय मुझे शत्रु को मारने में लगता है, पर लोकापवाद के भय से मैं यह काम नहीं करता। यह कह कर उसने संभूतिविजय मुनि के पास दीक्षा ले कर मासक्षमणादिक बहुत तप किया।

एक बार विश्वभूति मुनि विहार करते करते मथुरा नगरी में आये। वहाँ मासक्षमण के पारणे के लिए गोचरी जाते वक्त किसी नूतन प्रसूता गाय ने उन्हें सींग मार दिया। इससे वे भूमि पर गिर गये। उस अवसर पर उनके चाचा का बेटा विशाखनन्दी भी उसी गाँव में अपनी ससुराल आया हुआ था। उसने गोख में बैठे बैठे विश्वभूति को जमीन पर गिरते देखा। उस समय वह हास्यपूर्वक बोला कि अरे विश्वभूति! जिस बल-पराक्रम से तुमने एक मुक्के में सब कोंठ गिरा दिये थे; वह तुम्हारा सारा बल अब कहाँ जाता रहा? यह वचन सुन कर मुनि ने उसे ऊँची नजर कर के देखा। फिर मन में अहंकार ला कर कहा कि अरे ! अब भी हँसी उड़ाता है? देख, अब भी मेरा बल कितना है? यह कह कर उन्होंने उस गाय को सींग से पकड़ कर आकाश में घुमा कर भूमि पर रख दिया। फिर वे विशाखनंदी से कहने लगे कि अरे! तू तो समझता होगा कि इसका बल खत्म हो गया होगा, पर मेरा बल खत्म नहीं हुआ है। फिर कहने लगे कि यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो, तो अगले भव में अधिक बलवान हो कर मैं तुझे मारने वाला होऊँ। ऐसा निदान कर के एक कोड़ी वर्ष तक चारित्र पालन कर अन्त में अनशन पूर्वक मृत्यु प्राप्त कर के ।।१६।। सतरहवें भव में महाशुक्र नामक सातवें देवलोक में पूर्ण आयु वाले देवरूप में उत्पन्न हुए।।१७।।

वहाँ से च्यव कर अठारहवें भव में– पोतनपुर नगर में प्रजापति राजा की धारिणी रानी की कोख में चार स्वप्न से सूचित गौतमस्वामी का जीव पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम अचल रखा गया।

इसी प्रजापति राजा के मृगावती नामक एक पुत्री हुई। एक दिन उसके विवाह की चिन्ता के कारण उसकी माता ने उसका श्रृंगार कर सुशोभित

वस्त्राभूषण पहना कर उसे राजा के पास भेजा। उसने सोचा था कि इस बड़ी कन्या को यौवनवय प्राप्त देख कर राजा किसी कुलवान राजकुमार के साथ इसका ब्याह कर देगा। पर राजा तो अपनी स्वरूपवती कन्या को अपने सामने देख कर काम पीड़ित हो गया और स्वयं ही अपनी कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा करने लगा।

फिर लोगों में अपमान न हो, इसलिए सभा में बैठे हुए लोगों से उसने पूछा कि हे बन्धुओ ! इस संसार में जो सब से अच्छी चीज होती है, वह किसकी कही जाती है? तब सभाजनों ने कहा कि जो उत्तम चीज होती है, वह आपकी ही कही जाती है। इस पर राजा ने कहा कि तुम्हारे मुँह से जो शब्द निकला है, वह निश्चय ही सत्य है। इसलिए यह सर्वोत्कृष्ट कन्यारत्न मैं किसी अन्य को नहीं दूँगा। इसके साथ मैं ही विवाह करूँगा। यह कह कर उसने अपनी पुत्री के साथ अपना विवाह किया और उसके साथ सांसारिक सुख भोगने लगा। ऐसा करते एक दिन उस विश्वभूति का जीव देवलोक से च्यव कर मृगावती की कोख में उत्पन्न हुआ। उस समय मृगावती ने सात स्वप्न देखे। फिर नौ महीने पूरे होने के बाद पुत्र का जन्म हुआ। तब राजा ने बड़ा महोत्सव कर के अपने पुत्र का नाम त्रिपृष्ठ रखा। अनुक्रम से वह बालक बड़ा हुआ।

उस अवसर पर शंखपुर नगर के पास तुंगी पर्वत की गुफा में विशाखनन्दी का जीव सिंह के रूप में उत्पन्न हुआ। उस समय अश्वग्रीव नामक प्रतिवासुदेव का शालि का खेत उस पर्वत के नजदीक था। उस शालि के खेत के रखवाले को वह सिंह मार डालता था। उस समय वह अश्वग्रीव राजा अपने सेवक राजाओं को प्रतिवर्ष क्रम से हुक्म भेज कर खेत की चौकी करने के लिए भेजता था। इस तरह एक बार क्रम के अनुसार प्रजापति राजा को चौकी करने का हुक्म प्राप्त हुआ। तब उस खेत की रक्षा के लिए राजा स्वयं जाने लगा। उस समय त्रिपृष्ठ ने उसे रोक लिया और वह स्वयं अपने अचल नामक भाई- जो गौतमस्वामी का जीव है और इस भव में बलदेव होने वाला है; के साथ खेत की रखवाली के

लिए गया। वहाँ बख्तर-टोप पहन कर रथ में बैठ कर अचल को सारथी बना कर शस्त्र धारण कर सिंह की गुफा के पास गया।

इतने में रथ की आवाज सुन कर सिंह भी गुफा से बाहर आ गया। उसे देख कर त्रिपृष्ठ ने विचार किया कि इस सिंह के पास रथ नहीं है, इसलिए मुझे भी रथ पर सवार हो कर लड़ना नहीं चाहिये तथा इसके पास शस्त्र और कवच नहीं हैं, इसलिए मुझे भी शस्त्र और कवच नहीं रखने चाहिये। फिर शस्त्र तथा कवच रथ में रख कर स्वयं रथ से नीचे उतर कर सिंह से कहने लगा कि अरे पशुभक्षक ! उठ, खड़ा हो कर मेरे सामने आ। उसके इतना कहते ही तुरन्त वह सिंह भी उठा और मुँह फाड़ कर लड़ने के लिए सामने आया। जैसे ही वह सामने आया, वैसे ही त्रिपृष्ठ ने तुरन्त उसके होंठ पकड़ कर दो टुकड़े कर उसे चीर डाला। फिर भी उस सिंह का जीव निकलता नहीं था; तब त्रिपृष्ठ के सारथी ने सिंह से कहा- हे सिंह! जैसे तू मृगराज है, वैसे ही तुझे मारने वाला भी नरराज है। अतः तुझे किसी साधारण मनुष्य ने नहीं मारा है। ऐसी बात सुन कर सिंह मर कर नरक में गया।

फिर उस सिंह का कलेवर गाँव में ला कर लोगों के बीच में रख कर त्रिपृष्ठ ने कहा कि इस उपद्रवी सिंह को मैंने मार डाला है। इसलिए अब मेरे प्रभाव से अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव सुख-समाधिपूर्वक चावल खाये। यह बात लोगों के मुँह से सुन कर अश्वग्रीव को बड़ा क्रोध आया। इस कारण से अपनी सेना ले कर वह लड़ने के लिए आया; पर त्रिपृष्ठ के साथ युद्ध में मुकाबला करने में वह हर तरह से असमर्थ रहा। अतः उसने चक्र घुमा कर उस पर फेंका। वह चक्र भी त्रिपृष्ठ के हाथ में आ गया। फिर त्रिपृष्ठ ने वही चक्र अश्वग्रीव पर चलाया। उसने अश्वग्रीव का मस्तक काट कर त्रिपृष्ठ के आगे हाजिर किया। यह देख कर देवों ने आकाश में जय जय करते हुए घोषणा की कि भरतक्षेत्र में यह त्रिपृष्ठ नामक पहला वासुदेव हुआ है। फिर त्रिपृष्ठ ने अनुक्रम से तीन खंड जीत कर वासुदेव की राजलीला के सुखभोग प्राप्त किये।

एक बार त्रिपृष्ठ के आगे नाटक हो रहा था। उस समय राजा को नींद आने लगी। तब उसने शय्यापालक से कहा कि जब मुझे नींद लग जाये तब इन नाटककारों को बिदा कर देना। पर उस शय्यापालक ने श्रोत्रेन्द्रिय के रस में लीन हो कर उन्हें गीतगान करने से रोका नहीं। इतने में त्रिपृष्ठ जागृत हो कर बोला कि अरे! इन नाटककारों को तूने छुट्टी क्यों नहीं दी? तब शय्यापालक ने कहा कि प्रभो! श्रोत्रेन्द्रिय के रस में लीन होने के कारण मैं छुट्टी देने में चूक गया। यह सुन कर त्रिपृष्ठ को क्रोध आ गया। उसने सीसा गरम करा के उसका गरम गरम रस उस शय्यापालक के कान में डलवाया। इससे वह मृत्यु प्राप्त कर नरक में गया। इस तरह वासुदेव के भव में अनेक बड़े बड़े पापोपार्जन कर के के चौरासी लाख वर्ष की आयु भोग कर, अस्सी धनुष्य प्रमाण शरीर का त्याग कर के मरने के बाद ।।१८।। उन्नीसवें भव में सातवीं नरक में नारकी के रूप में उत्पन्न हुआ।।१९।। वहाँ से मर कर बीसवें भव में सिंह हुआ ।।२०।। वहाँ से मर कर इक्कीसवें भव में चौथी नरक में नारकी के रूप में उत्पन्न हुआ।।२१।।

वहाँ से मर कर बहुत संसार-भ्रमण कर बाईसवें भव में रथपुर नगर में प्रियमित्र राजा की विमला रानी की कोख में पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। माता-पिता ने उसका नाम विमल रखा। अनुक्रम से वह सर्व कलाओं में पारंगत हुआ। तब पिता ने उसे राज्य सौंप दिया। एक दिन वह वन में क्रीड़ा करने गया। वहाँ उसने हिरनों को बंधन से मुक्त किया। इस दया के प्रभाव से भद्र परिणाम के कारण उसने मनुष्यायु का बंध किया। फिर दीक्षा ले कर उग्र तप कर के चक्रवर्ती की पदवी उपार्जित की। अन्त में एक महीने का अनशन कर देह त्याग के पश्चात् ।।२२।। तेईसवें भव में पश्चिम महाविदेह में मूका नगरी के धनंजय राजा की धारिणी रानी की कोख में आ कर पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। माता ने चौदह सपने देखे। फिर पूर्ण मास में पुत्र का जन्म हुआ। तब माता-पिता ने बड़े महोत्सवपूर्वक उसका नाम प्रियमित्र रखा। उसने अनुक्रम से छह खंड जीत कर चक्रवर्ती की पदवी

भोग कर श्री पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा ले कर करोड़ वर्ष तक चारित्रपालन किया। इस प्रकार कुल चौरासी लाख पूर्व की आयु पूर्ण कर के मृत्यु के बाद ।।२३।। चौबीसवें भव में वह शुक्र नामक सातवें देवलोक में सतरह सागरोपम की आयु वाले देव के रूप में उत्पन्न हुआ ।।२४।।

वहाँ से च्यव कर पच्चीसवें भव में इसी भरत क्षेत्र में छत्रिका नगरी के जितशत्रु राजा की भद्रा रानी की कोख में पच्चीस लाख वर्ष की आयु ले कर पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। माता-पिता ने राजपुत्र का नाम नन्दन रखा। वहाँ चौबीस लाख वर्ष तक गृहस्थावस्था में रह कर फिर श्री पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा ले कर एक लाख वर्ष तक दीक्षा पालन कर यावज्जीव मासखमण कर के उसने बीस स्थानक तप की आराधना की। इससे तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित उपार्जन कर अन्त में एक महीने का अनशन कर के वहाँ से काल कर ।।२५।। छब्बीसवें भव में वह दसवें प्राणत देवलोक में पुष्पोत्तरावतंसक नामक विमान में बीस सागरोपम की आयु वाले देवरूप में उत्पन्न हुआ ।।२६।।

देवानन्दा ब्राह्मणी की कोख में वीर प्रभु का आगमन

फिर वहाँ से च्यव कर मरीचि के भव में जो कुलमद किया था, उस नीच गोत्र कर्म के उदय से सत्ताईसवें भव में वह ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा नामक स्त्री की कोख में आ कर उत्पन्न हुआ। इस तरह प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान ने भरत चक्रवर्ती के आगे जो कहा था कि मरीचि का जीव तीर्थंकर होगा, सो निश्चय से हुआ।।२७।।

अब भगवान श्री महावीर जिस समय देवानन्दा की कोख में अवतरित हुए, उस समय वे तीन ज्ञान सहित गर्भ में आये। उसमें 'मेरा देवलोक से च्यवन होगा', यह वे जानते थे; पर च्यवन समय का जो वर्तमान एक समय जो सूक्ष्म काल है; वह नहीं जानते थे और वहाँ से च्यवन होने के बाद 'मैं देवलोक से च्यव कर देवानंदा की कोख में उत्पन्न हुआ हूँ' यह जानते थे।

अब जिस रात्रि में श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी देवानन्दा की

कोख में उत्पन्न हुए, उस रात्रि में देवानन्दा ब्राह्मणी कुछ सोते कुछ जागते अर्थात् अल्पनिद्रा में रहते हुए उदार, कल्याणकारी, उपद्रवरहित, धनकारी, मंगलकारी ऐसे चौदह महास्वप्न देख कर जाग गयी। उन चौदह सपनों के नाम कहते हैं- पहले सपने में हाथी देखा। दूसरे में वृषभ, तीसरे में सिंह, चौथे में लक्ष्मी, पाँचवें में फूलमाला, छठे में चन्द्र, सातवें में सूर्य, आठवें में ध्वजा, नौवें में कुंभ-कलश, दसवें में पद्म सरोवर, ग्यारहवें में क्षीरसमुद्र, बारहवें में देवविमान, तेरहवें में रत्नों का ढेर और चौदहवें में निर्धूम अग्नि; ये चौदह स्वप्न कल्याणकारी और महामंगल करने वाले देख कर जागती हुई हर्ष-सन्तोष को प्राप्त हुई। वह चित्त में आनन्दित हुई। उसका मन प्रेममग्न हो गया। उसे परम हर्ष उत्पन्न हुआ।

जिसके मन में अपार हर्ष समाया हुआ है, जिसका मन परम सौम्य है, जिसके मन में हर्ष-उल्लास उत्पन्न हुआ है, मेघधारा से आहत कदंब-पुष्प जैसे विकसित होता है, वैसे जिसका रोम रोम विकसित हुआ है, ऐसी देवानंदा ने पूर्व में देखे हुए स्वप्नों को याद किया। उन्हें याद कर के शयन-पलंग से उठी। उठ कर पादपीठ से नीचे उतरी। उतर कर न तो उतावल से और न ही धीमे धीमे, ऐसी दो गतियों के मध्य में ठहरती हुई राजहंसी की गति से चलते हुए जहाँ ऋषभदत्त ब्राह्मण था, वहाँ पहुँची। वहाँ पहुँच कर जय-विजय शब्द से ऋषभदत्त को बधाई दी। बधाई दे कर भद्रासन याने बाजोठ पर बैठी। फिर रास्ते में चलने की थकान मिटा कर, पसीना पौंछ कर, दोनों हाथ जोड़ कर, दसों नख मिला कर मस्तक पर अंजली चढ़ा कर कहने लगी कि हे स्वामिन् ! आज रात को मैंने शय्या में कुछ सोते-कुछ जागते हाथी आदि चौदह स्वप्न देखे हैं। उनका फल क्या होगा? और वे किस प्रकार का कल्याण करने वाले होंगे? तब ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानन्दा के मुख से यह सुन कर अपने मन में बहुत प्रसन्न हुआ। जैसे जलधारा से कदंब का फूल खिलता है; वैसे उसकी रोमराजि विकसित हुई। वह स्वप्नों का अर्थ सोचने लगा। सोच कर उसने देवानंदा ब्राह्मणी से कहा- हे देवानुप्रिये ! तुमने जो स्वप्न देखे हैं; वे मंगलकारी एवं उदारकारी

हैं। तुमने जो स्वप्न देखे हैं, उनका फल इस प्रकार है कि हमें धनलाभ होगा, पुत्रलाभ होगा और सुखलाभ होगा। अवश्य ही नौ महीने साढ़े सात दिन बीतने के बाद जिसके हाथ-पैर सुकुमार हैं, हीनांगरहित, संपूर्ण पाँच इन्द्रियों सहित जिसका शरीर है, लक्षण, व्यंजन और गुणों से सहित तथा मानोन्मान से युक्त संपूर्ण भला शरीर जिसका है, ऐसा पुत्र तुम्हारे होगा।

अब लक्षण किसे कहते हैं सो कहते हैं

पुरुष का जब जन्म होता है; तब उसके अंग में पुण्यरेखाप्रमुख रेखाएँ प्रकट होती हैं; उसे लक्षण कहते हैं। सहजं लक्षणं इति वचनात्। उसमें चक्रवर्ती तथा तीर्थंकरों के तो एक हजार आठ लक्षण होते हैं और बलदेव तथा वासुदेव के एक सौ आठ लक्षण होते हैं तथा सामान्य भाग्यवान पुरुषों के बत्तीस लक्षण होते हैं। उनके नाम कहते हैं- १. छत्र, २. पंखा, ३. धनुष्य, ४. रथ, ५. वज्र, ६. कछुआ, ७. अंकुश, ८. बावड़ी, ९. स्वस्तिक, १०. तोरण, ११. तालाब, १२. सिंह, १३, वृक्ष, १४. चक्र, १५. शंख, १६. हाथी, १७. समुद्र, १८. कलश, १९. प्रासाद, २०. मत्स्य, २१. यव, २२. यूप-यज्ञ का अंग, २३. स्तंभ, २४. कमंडल, २५. पर्वत, २६. चामर, २७. दर्पण, २८. बलद, २९. पताका, ३०. लक्ष्मी, ३१. माला और ३२. मयूर। ये बत्तीस लक्षण पूर्वकृत पुण्य के योग वाले पुरुष के हाथ-पैरों के तलवे में होते हैं। इनके साथ एक हजार आठ लक्षण भी ऐसे ही उत्तम प्रकार के जान लेना।

तथा पुनः अन्य प्रकार से बत्तीस लक्षण कहते हैं- जिसके नख, पैर, हाथ, जीभ, होंठ, तालु और आँखों के कोने ये सात रक्त हों- अच्छे हों, उस पुरुष को भाग्यवान जानना चाहिये। वह सप्तांग लक्ष्मी का भोग करता है। तथा बगल, छाती, गरदन तथा गले का मणका, नाक, नख और मुख ये छह जिसके ऊँचे हों, वह पुरुष सब प्रकार से उन्नति करता है। तथा दाँत, त्वचा, केश, अंगुली के पर्व याने अंगुली की रेखा और नख पतले हों- सूक्ष्म हों, तो वह पुरुष बहुत धनवान होता है। तथा नेत्र, स्तनों के बीच का

अन्तर, नाक, गले का मणका और भुजाएँ ये पाँच जिसके लंबे हो; उस पुरुष की आयु लंबी होती है, उसे बहुत धन प्राप्त होता है और वह पराक्रमी होता है। तथा ललाट, पेट और मुख ये तीन जिसके बड़े होते हैं, वह पुरुष राजा होता है। इसी प्रकार ग्रीवा, जंघा और पुरुषचिह्न ये तीन जिसके लघु होते हैं, वह भी राजा होता है तथा बोलने का स्वर, नाभि और सत्व ये तीन जिसके गंभीर होते हैं; वह पुरुष पृथ्वीपति होता है या प्रधान मंत्री होता है। इस तरह जिस पुरुष में जैसे लक्षण होते हैं, वैसा ही उसका आचार भी होता है; वैसा ही गुण भी होता है। ये प्रकारान्तर से बत्तीस लक्षण कह दिखाये।

अब अन्य भी कुछ लक्षण कहते हैं- पद्म, वज्र, अंकुश, छत्र, शंख ये जिसके हाथ-पैर में दीखते हैं, वह पुरुष लक्ष्मीपति होता है। जिसके नाखून चिकने ताँबे के रंग जैसे होते हैं; वह पुरुष सुखी होता है। तथा जिसके चमकदार, उज्ज्वल, अनारवत् स्नेहनिबिड पूरे बत्तीस दाँत होते हैं, वह राजा बनता है। जिसके इकतीस दाँत होते हैं, वह भोगी होता है। तीस दाँत वाला मध्यम कहलाता है और जिसके तीस से कम दाँत होते हैं, वह सामान्य पुरुष माना जाता है। इसी प्रकार जो पुरुष अत्यन्त ठिगना होता है, जो अत्यन्त लंबा होता है, जो अत्यन्त मोटा होता है, जो अत्यन्त दुर्बल होता है, जो अत्यन्त काला होता है तथा जो अत्यन्त गौरवर्ण वाला होता है, इन छह पुरुषों में सत्व होता है। सर्वं सत्वे प्रतिष्ठितं इति वचनात्।

जिसके मस्तक में दाहिनी ओर सीधा भ्रमर होता है, उसे शुभ जानना और उल्टा भ्रमर होता है, उसे अशुभ जानना। तथा जिसके हाथ में एक भी रेखा नहीं होती या बहुत रेखाएँ होती हैं; उस पुरुष का आयुष्य अल्प होता है। जिस पुरुष के देवपूजा की उँगली के अन्तिम पर्व से कुछ अधिक ऊँची कनिष्ठिका उँगली होती है, वह पुरुष धनवान होता है। उसकी माता का पक्ष अधिक होता है। जिसके मणिबंध से पितृरेखा तथा करतल से वित्तरेखा और आयु रेखा संपूर्ण होती है; उस पुरुष का गोत्र, धन तथा आयुष्य ये संपूर्ण होते हैं। अथवा आयुष्यरेखा जितनी उँगलियाँ पार करे, उतनी पच्चीसी आयुष्य के वर्षों की जानना। जिसके अंगूठे के मध्य भाग में यव

होता है, वह पुरुष विद्यावान यशस्वी होता है तथा उजले पक्ष में उसका जन्म जानना। जिसके नेत्र रक्त होते हैं, उसकी निकटता स्त्री नहीं छोड़ती तथा जिसके नेत्र पीले होते हैं, उसे धन नहीं छोड़ता।

जिसकी भुजाएँ दीर्घ होती हैं, उसे ईश्वरत्व होता है। जिसका शरीर दृढ़ होता है, उसे सुख अधिक होता है। जिसके हाथ-पैर में कमल, छत्र, अंकुश, शंख, मत्स्य प्रमुख होते हैं; वह पुरुष महान लक्षणवान होता है। तथा जिसके नख लाल होते हैं, उसे धन का सुख अधिक होता है। जिसके नख उजले होते हैं, वह भिक्षुक होता है। जिसके नख रूखे होते हैं, वह अनाचारी होता है। शरीर में मुख प्रधान है, मुख में नासिका प्रधान है और नासिका में नेत्र प्रधान हैं। इसलिए जिसके जैसे नेत्र होते हैं, उसका वैसा ही शील याने आचार भी होता है तथा जैसी नासिका होती है, वैसा ही आर्यत्व भी होता है। जैसा रूप होता है, वैसा वित्त होता है और जैसा शील होता है, वैसे गुण होते हैं। कहा भी है कि-

यथा नेत्रं तथा शीलं, यथा नासा तथा ऽऽर्ज्जवम्।
यथा रूपं तथा वित्तं, यथा शीलं तथा गुणाः ।।१।।

अब व्यंजन का स्वरूप कहते हैं- जन्म के पश्चात् जो शरीर में प्रकट होते हैं, उन्हें व्यंजन कहते हैं। जैसे कि मसा, तिल, लहसुन इत्यादि। ये सब व्यंजन जानना। ये पुरुष के दाहिनी ओर हों, तो शुभ जानना और स्त्री के बायीं ओर हो, तो शुभ जानना।

अब गुण का स्वरूप कहते हैं- जिसमें सौभाग्य, उदारता, शान्ति, गंभीरता और धैर्यता आदि होते हैं, ये सब उसके गुण जानना।

अब मानोन्मान का स्वरूप कहते हैं- पुरुष-परिमाण पानी से भरी हुई कुंडी में पच्चीस साल के पुरुष को बिठाना। उस पुरुष के बैठने से यदि एक द्रोण भार पानी कुंडी से बाहर निकले, तो उस पुरुष को मानोपेत याने सप्रमाण जानना और यदि तराजू में तौलने से उस पुरुष का तौल अर्द्धभार परिमाण हो, तो उसे उन्मानोपेत पुरुष जानना।

यहाँ तौल की वार्ता के प्रसंग में भार का परिमाण बताते हैं- छह

सरसव का एक यव होता है। तीन यव की एक गुंजा होती है। तीन गुंजा का एक वाल होता है। सोलह वाल का एक गदियाणा होता है। दस गदियाणों का एक पल होता है। डेढ सौ पल का एक मण होता है। दस मण की एक धड़ी होती है और दस धड़ी का एक भार परिमाण होता है। ऐसे अर्द्धभार से जो पुरुष तौला जाता है; उस पुरुष को उन्मानोपेत (मानरहित) जानना। इस प्रकार पौने चार मन उन्मान के होते हैं।

जिस पुरुष का शरीर उसके अपने अंगुल के नाप से एक सौ आठ अंगुल का होता है, उसे उत्तम पुरुष जानना। इसमें बारह अंगुल का मुख होता है। बारह को नौ से गुणा करने पर एक सौ आठ होते हैं। ऐसे पुरुष को मानोपेत जानना। जिसका शरीर छियानबे अंगुल का होता है; उसे मध्यम (सम) पुरुष जानना। जिसका चौरासी अंगुल का शरीर होता है, उसे हीन पुरुष जानना तथा तीर्थंकर का तो एक सौ बीस अंगुल का शरीर होता है, क्योंकि तीर्थंकर के सिर पर बारह अंगुल की उष्णीश-शिखा राखडी के स्थान पर होती है।

इसलिए ऐसे सर्वांग-सुन्दर, चन्द्रमासमान सौम्य आकार वाले, जिसका दर्शन मनोहर प्रीतिकारक है, ऐसे सुरूपवान देवकुमार समान पुत्र को तुम जन्म दोगी।

वह बालक कैसा होगा सो कहते हैं- वह पुत्र युवान अवस्था प्राप्त करने के बाद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद तथा पाँचवाँ इतिहास-पुराण-शास्त्र, छठा नामकोश-निघंटु-नाममाला इन सब छह शास्त्रों का अंग-उपांग सहित तात्पर्य जानने वाला होगा, चार वेद पढ़ाने वाला होगा, जो भूलेगा उसे बताने वाला भूल दिखाने वाला होगा, झूठ बोलने वाले को रोकने वाला होगा, शुद्ध को धारण करने वाला होगा, पारगामी होगा, छह अंगों का जानकार होगा, साठ अर्थ हैं जिसके ऐसे सृष्टितंत्र-शास्त्र और कपिलशास्त्र का जानकार होगा, गणितशास्त्र का जानकार होगा, अक्षरशिक्षा में निपुण होगा। इसी प्रकार वह क्रियाशास्त्र में निपुण, व्याकरण का जानकार, छन्द जोड़ने में दक्ष, टीका का जानकार, ज्योतिषशास्त्र

में प्रवीण और अन्य भी ब्राह्मणों के शास्त्रों में तथा परिव्राजकों के शास्त्रों में अत्यन्त निपुण होगा। ऐसा तुम्हारा पुत्र होगा। इसलिए तुमने अच्छे स्वप्न देखे हैं, यावत् आरोग्यकारक स्वप्न तुम्हें आये हैं। ऐसा बार बार कहते हुए वह स्वयं भी अनुमोदना करने लगा।

अब देवानन्दा ब्राह्मणी ऋषभदत्त ब्राह्मण के मुख से ऐसे अर्थ सुन कर, उन्हें मन में धारण कर हर्ष-संतोषयुक्त हृदय से सिर झुका कर अंजलीबद्ध हो कर कहने लगी कि हे देवानुप्रिय ! यह बात जैसी तुमने कही है, वैसी ही है। यह सत्य ही है, झूठ नहीं है। जो तुमने कहा है, वह सब सन्देहरहित है। इतना कह कर उन स्वप्नों को अच्छी तरह अंगीकार कर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण के साथ मनोहर भोग भोगते हुए अपना समय व्यतीत करने लगी।

उस काल में शक्रेन्द्र, जिसके हाथ में दैत्यों का विदारण करने वाला वज्र है और जिसने पूर्वभव में श्रावक की पाँचवी प्रतिमा एक सौ बार वहन कर के शतक्रतु ऐसा दूसरा नाम प्राप्त किया है; वह देवों का राजा था। पूर्व के कार्तिक सेठ के भव की अपेक्षा से उसका नाम शतक्रतु पड़ा था। उस कार्तिक सेठ की कथा कहते हैं-

कार्तिक सेठ की कथा

पृथ्वीभूषण नगर में प्रजापाल नामक राजा था। उस नगर में राजमान्य एवं अति धनाढ्य जैनधर्मी परम श्रावक कार्तिक सेठ रहता था। उसने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं में से पाँचवी प्रतिमा एक सौ बार वहन की थी। इससे उसका शतक्रतु नाम लोगों में प्रसिद्ध हुआ।

एक बार गैरिक नामक तापस जो महीने महीने बाद उपवास का पारणा करता था; उसने नगर के बाहर डेरा डाला। राजा आदि सब लोग उसे वन्दन करने गये, पर कार्तिक सेठ शुद्ध समकिती होने के कारण नहीं गया। इससे तापस उस पर क्रोध करने लगा। ऐसे में उस तापस को राजा ने अपने घर भोजन का न्योता दिया। तब तापस ने मन में सोचा कि अन्य सब लोग तो मुझे वन्दन करने आये; पर जैनधर्मी कार्तिक सेठ मेरे पाँव पड़ा नहीं है। इसलिए अब मैं उसे नमाऊँ। यह सोच कर उसने राजा से कहा कि हे राजन्! यदि कार्तिक सेठ अपनी पीठ पर खीर की

थाली रख कर भोजन कराये; तो मैं तुम्हारे घर जीमने आ सकता हूँ। राजा ने यह बात कबूल की। तापस को पारणे का आमंत्रण दे कर फिर राजा कार्तिक सेठ के पास जा कर बोला कि मेरा गुरु गैरिक तापस मेरे यहाँ भोजन के लिए आयेगा। उसे परोसने के लिए तुम आना। यह सुन कर सेठ ने कहा कि मैं सम्यक्त्व धारक हूँ, इसलिए मेरे लिए यह बात योग्य नहीं है; पर तुम्हारी बस्ती में रहता हूँ, इसलिए शास्त्र के 'रायाभिओगेणं' इस आगार के अनुसार तुम्हारी आज्ञा से उसे भोजन परोसूँगा; पर मेरे भक्ति-भाव से उसे नहीं परोसूँगा।

फिर तापस भोजन करने गया, तब सेठ ने खीर परोसी। पर तापस ने भोजन नहीं किया। उसने कहा कि सेठ पीठ माँडे, तो मैं पात्र रख कर भोजन करूँ। फिर राजा के कहने से सेठ ने अर्द्धविनत हो कर पीठ माँडी। सेठ ने हाथ की उँगली में अँगूठी पहनी थी। उसमें रही हुई जिनप्रतिमा को नमन किया। अब तापस सेठ की पीठ पर गरम खीर का पात्र रख कर भोजन करने लगा। भोजन करते करते उँगली से वह सेठ की नाक घिसता और मजाक में कहता कि देख! तू मेरे पाँव पड़ने नहीं आया। अब मैं तेरी नाक काटता हूँ। अब तुझे बार बार मेरे आगे झुकाता हूँ। ऐसे मजाक करते करते पारणा कर के तापस अपने स्थान पर गया। फिर गरम थाल सेठ की त्वचा से चिपक गया था, उसे बड़े कष्ट से राजा ने अलग करवाया।

अब सेठ ने सोचा कि यदि मैंने पहले ही दीक्षा ले ली होती, तो आज ऐसी अवहेलना नहीं होती। ऐसा चिन्तन कर के वैराग्य प्राप्त कर सेठ ने एक हजार आठ वणिक पुत्रों के साथ श्री मुनिसुव्रतस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। फिर द्वादशांगी का अध्ययन कर के बारह वर्ष तक चारित्र-पालन कर देहत्याग के पश्चात् वह सौधर्मेन्द्र हुआ। गैरिक तापस भी अज्ञान तप कर के मृत्यु के पश्चात् इन्द्र का वाहन ऐरावत हाथी बना। फिर वह देव हाथी का रूप बना कर इन्द्र के पास गया। जब इन्द्र उस पर सवार होने लगा, तब ऐरावत ने अवधिज्ञान से यह जान लिया कि अरे! यह तो कार्तिक सेठ है। फिर वह वहाँ से भागने लगा, पर इन्द्र उसे पकड़ कर उस पर सवार हो गया। तब शक्रेन्द्र को डराने के लिए हाथी ने दो रूप बनाये। यह देख कर इन्द्र ने भी दो रूप बनाये। फिर हाथी ने चार रूप किये; तब इन्द्र ने भी चार रूप किये। फिर इन्द्र ने अवधिज्ञान से पूर्वभव देख कर उस हाथी को तर्जना कर के चलाया और कहा कि अरे गैरिक ! अब तू कैसे छूट सकेगा? क्या तू पूर्वभव नहीं जानता? जब तूने मेरी पीठ पर थाल रख कर भोजन किया था? इसी कारण से तो अब तू मेरा वाहन बना है। बाँधे हुए कर्म भोगे बिना छुटकारा नहीं होता। यह

सुन कर अपने अपराध की क्षमायाचना कर मूलरूप धारण कर हाथी शान्त हुआ। यह इन्द्र महाराज के पूर्वभव से संबंधित कार्तिक सेठ की कथा कही।

शक्रेन्द्र के स्वाभाविक तो दो आँखें हैं, पर पाँच सौ देव उस इन्द्र का काम करने वाले हैं। उन पाँच सौ देवों की हजार आँखें उसके काम आती हैं; इसलिए उसका नाम सहस्राक्ष है। महामेघ उसके वश में है; इसलिए उसका नाम मघवा भी है। पाक नामक दैत्य को उसने सजा दी थी; इसलिए उसका नाम पाकशासन भी है। ऐसा शक्रेन्द्र दक्षिणार्द्ध लोक का स्वामी, ऐरावत जिसका वाहन है, सुरों का इन्द्र, बत्तीस लाख विमानों का मालिक, रजरहित स्वच्छ निर्मल वस्त्र धारण करने वाला, लंबायमान माला, मुकुट, सुवर्णकुंडल से घिसे जाने वाले गाल हैं जिसके तथा महान ऋद्धि, महान यश, महान कान्ति, महान माहात्म्य, महान सुख, महान बल है जिसका, लंबी पुष्पमाला धारण करने से देदीप्यमान है शरीर जिसका, ऐसा इन्द्र सौधर्म देवलोक में सौधर्मावतंसक विमान में सौधर्मसभा में शक्र नामक सिंहासन पर बिराजमान, बत्तीस लाख विमानों में बसने वाले देव, चौरासी लाख सामानिक देव, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक गुरुस्थानीय देव तथा सोम, यम, वरुण और कुबेर ये चार लोकपाल देव, सोलह हजार देवियों के परिवार सहित आठ अग्रमहीषियाँ, तीन परिषद, सात कटक, सात कटक के स्वामी, प्रत्येक दिशा में चौरासी चौरासी हजार गिनते चारों दिशाओं में कुल तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षाकारक देव तथा अन्य भी बहुत से सौधर्म देवलोक में बसने वाले देव और देवियाँ उनका रक्षक, अग्रेसर, नायक, पोषक, सब को अपनी आज्ञा मनवाते हुए, सेनापतित्व करते हुए, स्वयं पालन करते हुए तथा अन्यों से पालन करवाते हुए तथा उच्च स्वर सहित नाटक-गीत, वाद्य वीणा, करताल और अन्य भी बहुत से वाद्य जैसे कि मृदंग, पटह प्रमुख वाद्यों के शब्दों से सहित दिव्य देवों से संबंधित भोगों का उपभोग करते हुए समययापन करता है। ऐसे समय में इस प्रत्यक्ष जंबूद्वीप नामक द्वीप को विस्तीर्ण महान अवधिज्ञान से देखते हुए विचरण करता है।

उस काल में उस समय में श्रमण भगवंत श्री महावीरस्वामी को

कोडाल गोत्र के स्वामी ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालंधर गोत्रीय देवानंदा भार्या की कोख में उत्पन्न हुए देख कर शक्रेन्द्र मन में बहुत आनन्दित हुआ। उसके हृदय में अपार हर्ष छा गया। मेघधारा से आहत कदंबवृक्ष के फूल के समान उसके रोमांच विकसित हुए। उसके नयन और वदन कमल के समान प्रफुल्लित हुए। भगवान का अवतरण देख कर उस दर्शन से उत्पन्न हर्ष के कारण जिसके कडे, कंकण, बाजूबंध, मुकुट, कुंडल, हार तथा झुमके प्रमुख बड़े अलंकार प्रकर्ष से चलायमान हुए हैं, ऐसा इन्द्र तत्काल सिंहासन से उठ खड़ा हुआ। फिर चमकदार मणिरत्न के बाजोठ पर से उतर कर भले वैडूर्य रत्न, मरकत रत्न, अरिष्ठ रत्न और अंजन रत्न से निर्मित देदीप्यमान मणिरत्नजड़ित पाँवड़ी अपने पैरों से उतारी। फिर अखंड वस्त्र का एक शाटक उत्तरासंग कर के दोनों हाथ जोड़ कर तीर्थंकर श्री महावीरदेव के सामने सात-आठ कदम जा कर विमान में रहते हुए ही बायाँ घुटना जमीन पर स्थापन कर के थोड़ा सा झुक कर अपना मस्तक तीन बार धरती से लगाया। फिर चौथी बार जरा सा झुंक कर थोड़ा ऊँचा हो कर कड़े, कंगन, बाजूबंध, झुमकों सहित स्तंभित भुजाओं को मोड़ कर दसों नख मिला कर दोनों हाथ जोड़ कर और मस्तक पर अंजली लगा कर वह शक्रस्तव का पाठ बोला। उसका अर्थ इस प्रकार है-

नमस्कार हो श्री अरिहंत भगवन्तों को। आदि के करने वाले, चतुर्विध श्रीसंघरूप तीर्थ के करने वाले, श्रीसंघ को तारने वाले, किसी दूसरे के उपदेश के बिना अपने आप बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंहसमान, पुरुषों में श्रेष्ठ पुंडरीक कमलसमान, पुरुषों में गंधहस्ती के समान- जैसे गंधहस्ती को देख कर अन्य हाथी भाग जाते हैं, वैसे ही श्री तीर्थंकर भगवान को देख कर परवादीरूप हाथी भाग जाते हैं; ऐसे भगवान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में दीपक समान, लोक में उद्योत करने वाले, अभयदान के दातार, ज्ञानचक्षु देने वाले, मोक्षमार्ग के दातार, संयमरूप जीवितव्य के दातार, शरण के दातार, बोधिबीज याने सम्यक्त्व के दातार, सब मरण मिटाने वाले, धर्म के

दातार, धर्म का उपदेश देने वाले, धर्म के नायक, धर्म में सारथीसमान - जैसे सारथी रथ को शुद्ध मार्ग में ले जाता है, वैसे भगवान धर्ममार्ग से भ्रष्ट लोगों को धर्ममार्ग में ले जाते हैं। इस पर मेघकुमार का दृष्टान्त कहते हैं-

मेघकुमार की कथा

पुत्रः श्रेणिकधारिण्योः, श्रुत्वा वीर विभोर्गिरः।
प्रबुद्धोऽष्टौ प्रियास्त्यक्त्वा, मेघो दीक्षामुपाददे ।।१।।

राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा की धारिणी रानी की कोख में मेघकुमार पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। उस समय गर्भ के प्रभाव से रानी को ऐसा दोहद हुआ कि वर्षाकाल में हम राजा तथा रानी दोनों हाथी पर बैठ कर वन में जा कर क्रीड़ा करें। उसका दोहद अभयकुमार ने पूर्व भव से संबंधित देव का आराधन कर के संपूर्ण किया। फिर नौ मास पश्चात् पुत्रजन्म हुआ। उसका जन्म महोत्सव कर के स्वजन- परिवार को भोजन करा के मेघकुमार नाम रखा। अनुक्रम से वह यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। तब पिता ने आठ कन्याओं के साथ उसका विवाह किया। फिर वह उनके साथ विषयसुख भोगते हुए जीवन बिताने लगा।

ऐसे समय में राजगृही नगरी में श्री महावीर का समवसरण लगा। श्रेणिकादि सब लोग उन्हें वन्दन करने गये। उनके साथ मेघकुमार भी गया। वहाँ भगवान की देशना सुन कर प्रतिबोध प्राप्त कर के उसने आठों कन्याओं का त्याग किया। फिर माता-पिता से आज्ञा ले कर दीक्षा ग्रहण की। फिर भगवान ने ग्रहण, आसेवना, साधु का आचार सिखाने के लिए उसे स्थविरों को सौंपा। रात के समय संथारा करने के समय अनुक्रम से सब साधुओं के बाद मेघकुमार ऋषि का संथारा आया। वहाँ साधु लघुशंका निवारण के लिए उठे, तब मेघकुमार को बार बार उनके पैरों की ठोकर लगी। इससे एक क्षणभर भी उसे नींद नहीं आयी। वह धूल से भर गया। पूरी रात जागता रहा। फिर उसने विचार किया कि कहाँ मेरी सुखशय्या और कहाँ यह भूमि पर लोटना! और फिर एक रात में कितना उपसर्ग हुआ! यह कष्ट मैं कितने काल तक सहन करूँ? इसलिए यह दीक्षा तो

मुझसे पाली नहीं जायेगी। तो अब प्रभात के समय भगवान से पूछ कर मैं घर चला जाऊँगा। अभी कुछ बिगड़ा नहीं है।

यह सोच कर प्रभात के समय वह रजोहरण-मुहपत्ती ले कर भगवान के पास आया। तब भगवान ने मधुर वचनों से कहा कि हे मेघर्षि ! आज रात को तुम से साधु के पैर सहन नहीं हुए, तुम्हें नींद नहीं आयी। इससे तुमने मन में अशुभ ध्यान ध्याया कि प्रभात के समय मैं घर जाऊँगा। क्या यह बात सत्य है? तब मेघकुमार ने कहा कि हाँ महाराज ! बिल्कुल सत्य है। इस पर भगवान ने कहा कि हे मेघकुमार ! तुम्हें यह योग्य नहीं है; क्योंकि नरक-तिर्यंच के दुःख तो इस जीव ने अनन्त बार देखे हैं। उनके आगे यह दुःख किस हिसाब में है? ऐसा कौन मूर्ख है, जो चक्रवर्ती की ऋद्धि छोड़ कर दासता की वाँछा करे? इसलिए मर जाना अच्छा है, पर चारित्रभंग करना अच्छा नहीं है। यह चारित्र का कष्ट ज्ञानसहित है तथा यह आगे भी बहुत फल देने वाला होगा। तूने पूर्व भव में भी धर्म के लिए बहुत अकाम कष्ट भोगे हैं और वे भी महाफलदायक हुए हैं। वे पूर्व भव अब तू सुन।

इस भव से पूर्व तीसरे भव में वैताढ्य पर्वत के पास छह दन्तोशल सहित श्वेत वर्ण वाला, एक हजार हथिनियों का नायक सुमेरुप्रभ नाम का तू हाथी था। वहाँ एक बार दावानल लगने से भयभीत हो कर तू वहाँ से भागा। फिर तू प्यास से पीड़ित हो कर एक सरोवर में- जहाँ कीचड़ ज्यादा और पानी कम था; मार्ग को न जानने के कारण पानी पीने के लिए पैठा। वहाँ कीचड़ में फँस जाने के कारण तू बाहर न निकल सका। इतने में पूर्वजन्म का बैरी एक अन्य हाथी वहाँ आया। उसने दंतोशल के प्रहार से तुझे आहत किया। इससे सात दिन तक महावेदना सहन कर एक सौ बीस वर्ष की आयु पूर्ण कर के मृत्यु प्राप्त कर विंध्याचल पर्वत की भूमिका में तू चार दंतोशल वाला लाल रंग का सात सौ हथिनियों का नायक ऐसा मेरुप्रभ नामक हाथी हुआ। वहाँ भी एक बार दावानल लगा। उसे देख कर तुझे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। इससे तूने अपना पूर्वभव देखा।

फिर दावानल का भय मिटाने के लिए तूने चार कोस तक भूमि का मंडल बना कर शुद्ध किया। उसमें तू तृण-बेल तक रखता नहीं था। ऊगने

से पहले ही तू उखाड़ डालता था। इस प्रकार बहुत वर्ष बीतने के बाद पुनः एक बार बड़ा जंगी दावानल लगा। उस समय सब वनचर जीव आ कर उस मंडल में रहे। तू भी तत्काल वहाँ जा कर मंडल में रहा। मंडल इतना संकीर्ण हो गया कि उसमें तिल धरने जितना स्थान भी नहीं रहा। इतने में खाज खुजलाने के लिए तूने अपना पैर ऊँचा किया। उस पैर के स्थान पर निराली भूमिका देख कर एक खरगोश तेरे पैर के नीचे की भूमि पर आ बैठा। फिर पाँव नीचे रखते वक्त खरगोश को देख कर तुझे दया आ गयी, इसलिए तूने अपना पैर अधर रखा। ढाई दिन के बाद दावानल शान्त हुआ। तब खरगोशप्रमुख सब जीव अपने अपने स्थान पर चले गये। तेरे पैर में खून जम गया था। उसे नीचे रखते वक्त पर्वत के कूट की तरह तू नीचे गिर पड़ा। तीन दिन तक भूख-प्यास से पीड़ित होते हुए सौ साल की आयु भोग कर दयासहित मरण प्राप्त कर हे मेघकुमार ! तुम राजकुल में उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी माता को अकाल में मेघवृष्टि का दोहद हुआ, इसलिए तुम्हारा नाम मेघकुमार रखा गया।

जिस समय तुम्हें हाथियों ने मारा, उस समय तो तिर्यंच द्वारा दिया गया दुःख था। उस दुःख के आगे इन साधुओं के संघट्ट से तुम क्या दुःख मानते हो? यह दुःख तो कुछ भी नहीं है। फिर ये साधु तो जगद्वंद्य हैं। इनके चरण की रज तो पुण्यवान जीवों को ही लगती है। इसलिए साधु के पैर लगने से दुःख नहीं करना चाहिये। भगवान के ऐसे वचन सुन कर मेघकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उससे उसने अपने पूर्वभव देखे। फिर प्रभु के पाँव पड़ कर चारित्र में स्थिर हो कर उसने अभिग्रह लिया कि आज से मैं मेरी दो आँखों की सम्हाल रखूँगा। उन्हें छोड़ कर शेष शरीर की शुश्रूषा चाहे जैसा संकट आये, तो भी नहीं करूँगा। ऐसा यावज्जीवपर्यन्त का अभिग्रह कर के निरतिचार शुद्ध चारित्र पालन कर अन्त में एक मास की संलेखना कर के कालधर्म प्राप्ति के पश्चात् वह विजय नामक अनुत्तर विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्यव कर महाविदेहक्षेत्र में उत्पन्न हो कर वह मोक्ष प्राप्त करेगा। इसीलिए भगवान को धर्मसारथी कहते हैं।

जैनाचार्य श्रीमद् भट्टारक विजय राजेन्द्रसूरीश्वर-संङ्कलिते श्री कल्पसूत्र-बालावबोधे प्रथमं व्याख्यानं समाप्तम्।

卐 卐 卐

द्वितीय व्याख्यान

इन्द्र महाराज नमस्कार करते हैं

धर्म में चार अन्तर किये हैं जिन्होंने ऐसे चक्रवर्ती समान भगवान हैं। जैसे चक्रवर्ती तीन ओर समुद्र और एक ओर चुल्ल हेमवन्त पर्वत पर्यन्त राज करता है, वैसे भगवान दानादि चार प्रकार के धर्म की प्ररूपणा करते हैं। इसलिए उन्हें धर्मचक्रवर्ती कहते हैं। संसारसमुद्र में डूबते हुए प्राणियों के लिए द्वीपसमान शरणागत-वत्सल, अप्रतिहत ज्ञान और दर्शन धारण करने वाले, जिन्हें छद्मस्थपना नहीं रहा है ऐसे, स्वयं ने राग-द्वेष को जीता-दूसरों को जीताने वाले, स्वयं संसार-समुद्र से तिर गये-दूसरों को संसार-समुद्र से तारने वाले, स्वयं ने तत्त्व को जाना है- दूसरों को तत्त्व का बोध कराने वाले, स्वयं कर्मरहित हुए- दूसरों को कर्म से मुक्त करने वाले, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, शिव याने निरुपद्रव, अचल, रोगरहित, जिसका अन्त नहीं और क्षय भी नहीं, बाधारहित, जहाँ से पुनः संसार में आना नहीं है, ऐसे सिद्धिगति नामक स्थानक को प्राप्त जिनेश्वर को मेरा नमस्कार हो। जीते हैं भय जिन्होंने ऐसे भगवन्त को नमस्कार हो। श्रमण भगवन्त श्री महावीर अन्तिम तीर्थंकर, आदि के करने वाले पहले तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी ने बताये यावत् मोक्ष में जाने वाले उन्हें मैं वन्दन करता हूँ। भगवान तो वहाँ गर्भ में हैं और मैं देवलोक में हूँ, इसलिए वहाँ रहते हुए हे भगवन्! आप मुझे निहारें, ऐसा कह कर इन्द्र ने भगवान को नमस्कार[1] किया। नमस्कार

---

१. इस तरह सब तीर्थंकरों के एक च्यवन कल्याणक, दूसरा जन्म कल्याणक, तीसरा दीक्षा कल्याणक, चौथा ज्ञान कल्याणक और पाँचवाँ निर्वाण कल्याणक इन पाँच कल्याणकों में सदा काल इन्द्र शक्रस्तव कहता है। याने शक्र जो इन्द्र है, वह स्तव याने स्तुति करता है, इसलिए उसे शक्रस्तव कहते हैं। वे इन्द्र महाराज शक्रस्तव कह कर रोमांचित होते हैं और आनन्द पाते हैं। पुनः इन पाँचों कल्याणकों में चौसठ इन्द्र इकट्ठे हो कर अट्ठाई महोत्सव प्रमुख कर के प्रत्येक कल्याणक की महिमा करते हैं। ऐसी सदा शाश्वत मर्यादा है।

कर के सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख कर के बैठा। तब शक्रेन्द्र के मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ-

शक्रेन्द्र के मन का संकल्प और दस अच्छेरे

श्री अरिहंत भगवंत अथवा चक्रवर्ती अथवा वासुदेव अथवा बलदेव आदि उत्तम पुरुष हैं। वे अन्तकुल याने क्षुद्र जाति में, प्रान्तकुल याने अधमाचारी के कुल में, अल्प परिवार वाले तुच्छ कुल में, निर्धन याने दरिद्रीकुल में, अदातार याने कृपण के कुल में, चारणप्रमुख भिखारी के कुल में तथा ब्राह्मण के कुल में आये, आते हैं तथा आयेंगे; निश्चय से यह बात पूर्व में हुई नहीं है, वर्तमान में होती नहीं है और आगामी काल में होगी भी नहीं। याने कि ये शलाकापुरुष निश्चय से पूर्वोक्त अन्तकुलादि में आये भी नहीं, आते भी नहीं और आयेंगे भी नहीं। ये पूर्वोक्त अरिहंतादि शलाकापुरुष तो निश्चय से श्री ऋषभदेवजी ने जिसे आरक्षक के रूप में रखा, उसे उग्रकुल कहते हैं, उस कुल में, जिसे गुरुस्थान पर रखा उसे भोगकुल कहते हैं, उस कुल में, जिसे मित्रस्थान पर रखा उसे राजन्यकुल कहते हैं, उस कुल में, जिसे प्रजालोक के रूप में स्थापन किया उसे क्षत्रियकुल कहते हैं, उस कुल में, इक्ष्वाकुकुल में, हरिवर्ष क्षेत्र के युगलिक का जो परिवार उसे हरिवंश कुल कहते हैं, उस कुल में तथा ऐसे अन्य भी तथा प्रकार के विशुद्ध जाति के उत्तम कुल में आये हैं, आते हैं और आयेंगे। यह मर्यादा है। तथापि ये श्री महावीरस्वामी ब्राह्मण के कुल में आ कर उत्पन्न हुए यह लोक में अच्छेराभूत बात हुई। याने अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल जब बीत जाता है, तब किसी काल में ऐसे अच्छेरे होते हैं। वैसे ही इस अवसर्पिणी में भी ऐसे दस अच्छेरे याने आश्चर्यकारक बातें हुई हैं। इस प्रकार इन्द्र महाराज विचार करते हैं।

अब इस अवसर्पिणी में जो दस अच्छेरे हुए, उनका व्याख्यान करते हैं- प्रथम किसी भी तीर्थंकर को केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद उपसर्ग नहीं होता, पर श्री महावीरदेव को केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद गोशालक ने उपसर्ग किया, सो इस प्रकार से-

एक बार भगवन्त श्री महावीरस्वामी का विहार करते करते श्रावस्ती नगरी में आगमन हुआ। उस समय गोशालक भी 'मैं तीर्थंकर हूँ' ऐसा लोगों को कहते हुए श्रावस्ती आया। उस समय गौतमस्वामी गोचरी के लिए गये थे। वहाँ लोगों के मुख से ऐसा सुना कि आज नगरी में एक महावीरस्वामी और दूसरा गोशालक ये दो तीर्थंकर आये हैं। फिर संशयवंत हो कर श्री गौतमस्वामी ने भगवंत के पास जा कर गोशालक की उत्पत्ति के बारे में पूछा। तब प्रभु ने कहा कि शरवण गाँव का निवासी मंखली जो भरडा जाति का है और शनिश्चर का दान लेने वाला है; उसकी पत्नी सुभद्रा का यह पुत्र है। ब्राह्मण की गोशाला में इसका जन्म होने से माता-पिता ने इसका नाम गोशालक रखा है। पूर्व में यह भिक्षा माँगता था। बाद में मेरे पास आ कर मेरा शिष्य बना। छद्मस्थावस्था में यह मेरे साथ छद्मस्थरूप में छह वर्ष तक रहा था। मेरे पास से सीख कर यह कुछ बहुश्रुत हुआ है। तेजोलेश्या भी सीखा है। दूसरी बात यह है कि दिशाचरों के पास से निमित्तविद्या सीख कर यह मिथ्या जिननाम धारण करता है। परन्तु यह तीर्थंकर नहीं है।

ऐसी बात प्रभु से सुन कर श्री गौतमस्वामी ने अन्य बहुत से लोगों से यह बात कही कि गोशालक मंखलीपुत्र है। यह बात गोशालक के कानों तक पहुँची। तब वह क्रोधायमान हुआ। उस समय भगवंत का आनन्द नामक शिष्य गोचरी गया था। गोशालक ने उसे बुला कर कहा कि हे आनन्द ! मैं तुमसे एक दृष्टान्त कहता हूँ, सो सुनो।-

एक बार चार वणिक व्यापार करने के लिए विविध प्रकार के किराने की गाड़ियाँ भर कर परदेश चले। मार्ग में किसी महाअटवी में पैठे। वहाँ उन्हें प्यास लगी। उस वीराने में पानी की गवेषणा करने पर पानी तो कहीं दिखाई नहीं दिया, पर चार वल्मीक याने उदेही के शिखर दीख पड़े। उन पर हरे वृक्ष भी ऊगे हुए देखे। इससे उन्होंने जाना कि यहाँ अवश्य पानी होगा। ऐसा जान कर शिखर फोड़ा, तो उसमें से बहुत शीतल निर्मल जल निकला। सब ने जल पी कर अपनी प्यास बुझायी। तथा अन्य बर्तनों में भी

पानी भर लिया। फिर दूसरा शिखर फोड़ने लगे, तब उनमें से एक वृद्ध वणिक बोला कि अपना काम हो गया है, इसलिए दूसरा शिखर मत फोड़ो। इस प्रकार रोकने पर भी उन्होंने दूसरा शिखर फोड़ा। उसमें से सोना निकला। तब लोभ जागा। इस कारण से उस वृद्ध के रोकने पर भी उन्होंने तीसरा शिखर फोड़ा। उसमें से रत्न निकले। अब उस वृद्ध ने बहुत रोका, तो भी उन्होंने चौथा शिखर फोड़ा। उसमें से महाविकराल भयंकर दृष्टिविष सर्प निकला। उस सर्प ने सूर्य की ओर देख कर दृष्टिविष से सब को जला कर भस्म कर दिया। सिर्फ एक सुशिक्षा देने वाले वृद्ध पर दया कर उसे जीवित रखा।

इस दृष्टान्त से यद्यपि तुम्हारे धर्माचार्य को इतनी संपदा प्राप्त हुई है, तो भी असन्तुष्ट होते हुए लोगों में मेरा अपवाद बोल कर वह मुझे रोषवंत कर रहा है। इसलिए मैं वहाँ आ कर मेरे तेज से सब को जला कर भस्म कर दूँगा। तुम उतावल से जा कर तुम्हारे धर्माचार्य से यह बात कह दो। उस वृद्ध वणिक की तरह मैं सिर्फ तुम्हें ही जिन्दा रखूँगा। यह बात सुन कर आनन्दमुनि ने भयभ्रान्त हो कर भगवंत के पास आ कर सब समाचार कह सुनाये। तब भगवन्त ने कहा कि हे आनन्द ! तुम गौतमप्रमुख सब साधुओं से कह दो कि यहाँ मेरा कुशिष्य गोशालक आयेगा। वह उपसर्ग करेगा, इसलिए तुम लोग उसके साथ भाषण मत करना। यदि बोलोगे तो वह जला कर भस्म कर देगा। इसलिए इधर उधर टले रहना। यह सुन कर सब साधु एकान्त में बैठे रहे। तथापि सर्वानुभूति और सुनक्षत्र ये दो साधु भगवन्त के पास ही रहे।

इतने में गोशालक आ कर भगवान से कहने लगा कि हे काश्यप! तुम कहते हो कि मेरा शिष्य गोशालक है, यह बात सही है। पर तुम्हारा शिष्य जो गोशालक था, वह तो मर चुका है और मैं अन्य हूँ। मात्र उस गोशालक का शरीर परीषह सहन करने जैसा था, इसलिए मैंने उसके शरीर में प्रवेश किया है। यह सुन कर भगवान बोले कि अरे गोशालक! कोई चोर चोरी कर के भागा हो और उसके पीछे लोग लगे हों तो उन्हें देख कर वह चोर

भागने में असमर्थ होने पर एक तिनका ले कर स्वयं को ढँकने के लिए आड़ रखे और मन में यह समझे कि अब मुझे कोई देख नहीं सकेगा, तो क्या इससे वह छिपा रह सकेगा? वैसे ही तू भी मेरे आगे कैसे छिपा रहेगा? तू वही मेरा शिष्य गोशालक है। यह सुन कर गोशालक क्रोध कर के भगवान से कहने लगा कि अरे! तुम जिन्दे रहोगे तब तक मुझे सुख नहीं होगा।

ऐसे तुच्छ बोल सुन कर सुनक्षत्र मुनि बोले कि अरे गोशालक! तू अपने गुरु को जवाब देता है ? इससे तो तू संसार में अनन्त भवभ्रमण करने का काम करता है। मुनि इतना बोले ही थे कि गोशालक ने उन पर तेजोलेश्या छोड़ दी। इससे वे मुनि जल कर भस्म हो गये। फिर गोशालक पुनः भगवान को कड़वे वचन बोलने लगा। तब सर्वानुभूति मुनि कुछ बोले; तो उन्हें भी तेजोलेश्या से जला कर भस्म कर दिया। ये दोनों साधु मृत्यु प्राप्त कर देवलोक गये।

अब भगवान ने गोशालक से कहा कि तू चोर की तरह अपने को क्यों छिपाता है? तब उसने भगवान पर भी तेजोलेश्या छोड़ी। वह तेजोलेश्या भगवान को तीन प्रदक्षिणा दे कर पुनः गोशालक के शरीर में घुस गयी। इससे गोशालक जल गया। उसके ताप से सात रात तक विविध वेदना भोग कर वह मर गया।

तेजोलेश्या के ताप से भगवान के शरीर में वेदना होने लगी। उन्हें लोहीठाण (खूनी दस्त) हुआ। रेवती श्राविका के घर से बीजोरापाक सिंह अणगार के द्वारा मँगा कर भगवान ने सेवन किया। इससे शरीर में शाता हुई। इस प्रकार जिनका नाम मात्र लेने से भी सब उपद्रव मिट जाते हैं, उन्हें भी महापीड़ा हुई। इस तरह तीर्थंकर को जिनपदप्राप्ति के बाद याने केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद उपसर्ग नहीं होता और वह हुआ। यह प्रथम आश्चर्य जानना।

दूसरा अच्छेरा– इस वर्तमान चौबीसी में श्री मल्लीनाथ उन्नीसवें तीर्थंकर स्त्रीवेद के रूप में उत्पन्न हुए, उनका संबंध कहते हैं- इस जंबूद्वीप के श्री

महाविदेहक्षेत्र में सलिलावती विजय में वीतशोका नगरी के बल नामक राजा के धारिणी नामक रानी थी। उनके महाबल नामक पुत्र था। वह यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ, तब राजा ने उसका पाँच सौ स्त्रियों के साथ विवाह किया। फिर वृद्धावस्था में पुत्र को राज्य दे कर स्वयं दीक्षा ले कर चारित्रपालन कर मोक्ष पहुँचा।

अब महाबल राजा राज करने लगा। उसके एक अचल, दूसरा धरण, तीसरा अभिचन्द्र, चौथा पूर्ण, पाँचवाँ वसु और छठा वैश्रमण ये छह मित्र थे। एक बार उन सातों ने गुरु के पास धर्म सुन कर दीक्षा ग्रहण की और ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। उन्होंने आपस में यह संकेत किया कि हम सब लोग छट्ठ-अट्ठमादिक जो तप करें, वह एकसमान बराबर करें, पर एक-दूसरे से अधिक-न्यून तप कोई न करे। उसके अनुसार वे सातों जन समान तप करने लगे।

एक दिन महाबल ऋषि के मन में ऐसा विचार हुआ कि मैं इनसे कुछ अधिक तप करूँ, जिससे मैं सब से अधिक तपस्वी बनूँ। ऐसा निश्चय कर जब पारणा करने का दिन आता, तब उन छह जनों से वे यह कहते कि मेरा तो सिर दुखता है। मैं आज पारणा नहीं करूँगा। तुम लोग सुखपूर्वक पारणा करो। फिर दूसरे दिन उनके समान तप करते। इस प्रकार कपट से उन्होंने बीसस्थानक तप किया और इससे तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया, परन्तु कपट के कारण स्त्रीपने का कर्म बाँधा। अन्त में सातों जन दो मास की संलेखना कर के चौरासी लाख पूर्व की आयु पूर्ण कर मृत्यु के बाद बत्तीस सागरोपम की आयु प्राप्त कर विजयंत नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए।

फिर वहाँ से च्यव कर अचल का जीव अयोध्या का सुप्रतिबद्ध राजा हुआ। धरण का जीव चंपा नगरी में चन्द्रयशा राजा हुआ। अभिचन्द्र का जीव काशी नगरी में शंख राजा हुआ। पूरण का जीव श्रावस्ती नगरी में रुक्मी राजा हुआ। वसु का जीव कुरुदेश में अदीनशत्रु राजा हुआ। वैश्रमण का जीव कपिला नगरी में जितशत्रु राजा हुआ और महाबल का जीव

मिथिला नगरी में कुंभ राजा की प्रभावती रानी की कोख में आ कर मल्लीकुमारी के रूप में उत्पन्न हुआ। उस समय माता ने चौदह सपने देखे। आश्विन सुदि एकादशी के दिन वे पुत्री रूप में जन्मे। अनुक्रम से उन्हें यौवन अवस्था प्राप्त हुई। फिर अवधिज्ञान से अपने छह मित्र अलग अलग स्थानों में उत्पन्न हुए देख कर उन्हें प्रतिबोध करने के लिए अशोक वाटिका में रत्नजटित घर बनवाया। उसमें छह दरवाजे करवाये। उस घर में अपने रूप के समान रत्नजटित सोने की एक पुतली करवायी। फिर मल्लीकुमारी जब भोजन करती, तब उस रत्न की पुतली के सिर पर बने हुए द्वार में ऊपर से एक एक कौर डालती जाती। फिर उस पर ढक्कन लगा देती। इस प्रकार वह हमेशा करती।

एक बार अयोध्या नगरी के सुप्रतिबद्ध राजा ने यक्ष के मन्दिर में पूजा रचायी। वहाँ फूलमाला देख कर उसने दूत से पूछा कि तुमने फूल का ऐसा श्रीदाम कहीं देखा है? तब दूत बोला कि हे राजन् ! मल्लीकुमारी बहुत चतुर व रूपवती है। वह जैसा फूल का श्रीदाम बनांती है, उसके लाखवें अंश में भी यह श्रीदाम नहीं है। अब पूर्वभव के प्रेम से सुप्रतिबद्ध राजा ने मल्लीकुमारी की याचना के लिए कुंभ राजा के पास दूत भेजा और कहलवाया कि तुम्हारी बेटी का विवाह मेरे साथ करो। इति प्रथम दूत ।।१।।

एक बार चंपा नगरी के अरहन्नक प्रमुख व्यापारी जहाजों में माल भर कर द्वीपान्तर में गंभीरपत्तन की ओर चले। उस समय इन्द्र महाराज अपनी सभा में अरहन्नक श्रावक की प्रशंसा करने लगे कि धन्य है अरहन्नक को। आज भरतक्षेत्र में उसके समान दृढ़ अन्य कोई श्रावक नहीं है। इन्द्र के वचन सुन कर एक मिथ्यात्वी देवता ने विश्वास न होने के कारण अरहन्नक के पास जा कर समुद्र में बड़ा उत्पात किया। यह देख कर अरहन्नक सागारी अनशन कर निश्चल मन से श्री वीतरागदेव का स्मरण करने लगा। उस देवता ने उसे बहुत चलायमान किया और कहा कि तू श्री वीतराग देव का स्मरण छोड़ कर हरिहरादिक देवों का स्मरण करे; तो मैं

उपसर्ग दूर कर दूँगा, नहीं तो तेरे जहाज डुबो दूँगा। यह कह कर वह जहाज समुद्र में डुबोने लगा। यह देख कर सब लोग मिल कर अरहन्नक से कहने लगे कि देवता ने जैसा कहा है, वैसा करो। तो भी अरहन्नक श्रावक का समकित दृढ़ होने से वह चलायमान नहीं हुआ। यह देख कर देवता ने तुष्टमान हो कर उसे कुंडलाभरण की जोड़ी दे कर उसके पाँव पड़ कर कहा कि अहो अरहन्नक ! तुम धन्य हो। हे कृतपुण्य! तुम्हारा जीविव्य सफल है। इन्द्र महाराज ने भरी सभा में तुम्हारा जो बखान किया; उसकी अवमानना कर मैंने तुम्हारा अपमान किया है। मेरा अपराध क्षमा करो। यह सुन कर अरहन्नक ने कहा कि इस लोक और परलोक का साधन ऐसा श्री जैन धर्म प्राप्त कर मैं कोई भी अन्य धर्म अंगीकार नहीं करूँगा। तब देवता ने उसे पुनः दो कुंडल दिये। फिर वह अपने स्थान पर चला गया।

वह व्यापारी कुशलक्षेम गंभीरपत्तन पहुँचा। वहाँ व्यापार कर के फिर मिथिला नगरी पहुँचा। वहाँ देवता के दिये हुए चार कुँडलों में से दो कुंडल उसने राजा को अर्पण किये। राजा ने वे कुंडल मल्लीकुमारी को दिये। फिर अरहन्नक व्यापारी चंपानगरी लौटा। उसने चंपानगरी के राजा को शेष दोनों कुंडल दे दिये। राजा ने पूछा कि हे व्यापारी! तुमने परदेश में क्या कोई आश्चर्य देखा है? यह सुन कर व्यापारी बोला कि हमने मल्लीकुमारी का रूप अद्‌भुत देखा है। वैसा रूप अन्यत्र कहीं भी देखा नहीं है। फिर चन्द्रयशा राजा ने भी कुंभ राजा के पास दूत भेज कर कहलवाया कि तुम्हारी पुत्री मल्लीकुमारी का ब्याह मेरे साथ करो। इति द्वितीय दूत ॥२॥

दिन मल्लीकुमारी के दोनों कुंडल टूट गये। तब कुंभ राजा ने सुनारों को बुला कर कहा कि यह कुंडल की जोडी जोड़ दो। तब कुंडल देख कर सुनार बोले की महाराज ! ये कुंडल जोड़े नहीं जा सकते। ये तो देवकुंडल है। इन्हें हम कैसे जोडें? तब राजा ने सब सुनारों को देश निकाला दे दिया। फिर वे सुनार वाराणसी नगरी गये। वहाँ शंख राजा ने उनसे पूछा कि तुमने देश क्यों छोड़ा? तब सुनार बोले कि महाराज।

मल्लीकुमारी के कुंडल दिव्य हैं। वे हमसे जोड़े नहीं गये, इसलिए हमें देश छोड़ना पड़ा है। फिर उन्होंने मल्लीकुमारी के रूप का वर्णन किया। तब वाराणसी के राजा ने भी मल्लीकुमारी की याचना के लिए कुंभराजा के पास दूत भेजा। इति तृतीय दूत ।।३।।

अब रुक्मी राजा ने अपनी पुत्री को चार महीने तक उबटन लगा कर पीठी करा कर और अलंकार पहना कर दूत से पूछा कि हे दूत! ऐसा रूप तूने कहीं देखा है? तब दूत बोला कि मल्लीकुमारी के लाखवें अंश जितना भी यह रूप नहीं है। यह सुन कर रुक्मी राजा ने भी कुंभ राजा के पास दूत भेज कर मल्लीकुमारी की याचना करवायी। इति चतुर्थ दूत ।।४।।

कुंभ राजा के पुत्र ने अपनी चित्रशाला चित्रित करवायी। वहाँ चित्रकार ने मल्लीकुमारी का अंगूठा देखा। उस पर से उसने मल्लीकुमारी के सब अंगों का स्वरूप चित्रित कर दिया। एक बार मल्लीकुमारी के भाई ने क्रीडा करते समय मल्लीकुमारी का रूप चित्रशाला में देखा, तो उसे क्रोध आ गया। उसने चित्रकार के हाथ का अंगूठा काट कर उसे देश से निकाल दिया। चित्रकार हस्तिनापुर के अदीनशत्रु राजा से मिला और उसके आगे मल्लीकुमारी के रूप का वर्णन किया। यह सुन कर उसने भी मल्लीकुमारी की याचना करने के लिए कुंभ राजा के पास दूत भेजा। इति पंचम दूत।।५।।

एक दिन धर्मचर्चा करते समय एक परिव्राजिका को मल्लीकुमारी ने जीत लिया। इससे मानभ्रष्ट हो कर क्रोध में आ कर उसने कपिला नगरी जा कर जितशत्रु राजा के आगे मल्लीकुमारी के रूप का वर्णन किया। इस कारण से उसने भी मल्लीकुमारी को याचने के लिये कुंभ राजा के पास दूत भेजा। इति षष्ठ दूत ।।६।।

इस तरह छहों दूत कुंभराजा के पास समकाल में आ गये। कुंभ राजा ने सब दूतों से साफ कह दिया कि मैं मेरी कन्या किसी को भी देने वाला नहीं हूँ। इस तरह अपमानित कर के उन्हें भगा दिया। फिर उन छहों राजाओं ने अपनी अपनी सेना सहित समकाल में आ कर मिथिला नगरी को

घेर लिया। कुंभराजा भी बाहर आ कर युद्ध करने लगा, पर युद्ध में हार जाने के कारण उसने पुनः नगरी में प्रवेश कर लिया।

तब मल्लीकुमारी ने छहों राजाओं से कहलवाया कि आप सब लोग मेरे रत्नघर में आ जायें। फिर वे छहों राजा छह द्वारों में से जुदे जुदे आये। वहाँ मल्लीकुमारी की मूर्ति देख कर वे व्यामोहित हुए। इतने में मल्लीकुमारी ने वहाँ आ कर उस पुतली के माथे पर से ढक्कन खोल दिया। उस समय उस सड़े हुए अनाज में कीड़े पड़े थे। इस कारण से चारों ओर दुर्गंध फैल गयी। तब सब जनों ने मुँह के आगे कपड़ा लगा कर थूथूकार किया और वे बड़े दुःखी हुए। तब मल्लीकुमारी ने कहा कि हे भद्रो! यह पुतली रत्नमयी होने पर भी नित्यप्रति एक कवल आहार के संयोग से ऐसी दुर्गंध छोड़ रही है, तो मेरे शरीर में तो नित्यप्रति सेरभर अनाज जाता है। इसलिए यह मलमूत्र का भंडार ही है। इसमें तुम रागांध क्यों हुए हो?

इस प्रकार प्रतिबोध कर के उन्हें पूर्वभव कह सुनाये। इससे उन छहों राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने पूर्वभव देखे। फिर वे छहों कहने लगे कि अब हमें पार करो। तब मल्लीकुमारी ने कहा कि अब तो तुम लोग घर जाओ, पर जब मुझे केवलज्ञान उत्पन्न हो, तब आना। मैं तुम्हें दीक्षा दूँगी। फिर वे छहों राजा अपने अपने स्थान पर गये।

फिर मल्लीकुमारी ने संवत्सरी दान दे कर तीन सौ राजपुत्रों के साथ मार्गशीर्ष सुदि एकादशी के दिन दीक्षा ग्रहण की। उसी दिन उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। फिर उन छहों मित्रों ने आ कर श्री मल्लीनाथ के पास दीक्षा ली। भगवान ने उन छहों को गणधर बनाया। वे उसी भव में मोक्ष गये। ये श्री मल्लीनाथ स्त्रीवेद में उन्नीसवें तीर्थंकर हुए। उनके समवसरण में स्त्रियों की पर्षदा आगे बैठती थी और पुरुषों की पर्षदा पीछे बैठती थी। स्त्रीवेद में कोई भी तीर्थंकर नहीं होता, पर मल्लीनाथजी हुए। यह दूसरा अच्छेरा जानना।

तीसरा अच्छेरा– किसी भी तीर्थंकर का गर्भपलटा नहीं होता। पर यहाँ श्री महावीरस्वामी को बयासी रात्रि के पश्चात् देवानन्दा की कोख से

हरिणगमेषी देव ने अपहरण कर त्रिशला क्षत्रियाणी की कोख में रखा और त्रिशला की कोख में रही हुई पुत्री को माहणकुंड नगर में देवानन्दा की कोख में रखा। ऐसा कभी नहीं होता। इसलिए यह तीसरा गर्भपालटन आश्चर्य जानना।

चौथा अच्छेरा– श्री वीर भगवान को जब केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तब देवताओं ने मिल कर समवसरण की रचना की। वहाँ बहुत बड़ी पर्षदा जमा हुई। तब भगवान ने धर्मदेशना दी, पर प्रभु की देशना सुन कर कोई भी सम्यक्त्वी नहीं हुआ तथा व्रत-पच्चक्खाण भी किसी ने ग्रहण नहीं किये। इस तरह देशना निष्फल हुई। तीर्थंकर की देशना कभी खाली नहीं जाती, वह खाली गयी। इसलिए यह चौथा आश्चर्य जानना।

पाँचवाँ अच्छेरा– जो एक द्वीप का वासुदेव होता है, वह दूसरे द्वीप में नहीं जाता। श्री कृष्णजी द्रौपदी को लाने के लिए धातकीखंड में गये। तथा कपिल वासुदेव का शंख और श्री कृष्ण वासुदेव का शंख ये दोनों शंख से शंख मिले, पर ये भी कभी मिलते नहीं हैं। इसलिए आश्चर्य जानना। उनकी कथा कहते हैं-

कांपिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पट्टरानी चुलनी की कोख से द्रौपदी नामक पुत्री हुई। उसके विवाह के लिए स्वयंवर मंडप लगाया गया। वहाँ सब देशों के राजाओं को बुलाया गया। हस्तिनागपुर से अपने युधिष्ठिरादि पाँच पुत्रों को ले कर पाँडु राजा भी वहाँ गया। अर्जुन ने राधावेध साधा। तब द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला डाली। पूर्वभव में द्रौपदी ने पाँच भरतार का नियाणा किया था, उसके प्रभाव से वरमाला पाँचों पांडवों के गले में जा पड़ी।

पूर्वभव में द्रौपदी का जीव नागिला नामक ब्राह्मणी था। नागिला ने एक दिन धर्मरुचि मुनि को कड़वी तुंबड़ी का साग वहोराया। वह मुनि ने अनशन कर के खा लिया। उसके योग से मुनि की मृत्यु हो गयी। फिर गाँव में प्रचार हो गया कि नागिला साधु का घात करनेवाली है। तब ब्राह्मण ने नागिला को घर से निकाल दिया। फिर भटकती भटकती अन्त में मृत्यु

प्राप्त कर वह नरक में गयी।

वहाँ से च्यव कर अनेक तिर्यंचादि भव कर के एक सेठ के घर अत्यन्त स्वरूपवान सुकुमालिका नामक पुत्री हुई। सेठ ने उसी गाँव के एक अन्य सेठ के पुत्र के साथ उसका विवाह कर दिया। वह रात के समय सोने गया, तब सुकुमालिका का स्पर्श होते ही उसे दाहज्वर चढ़ गया। इस कारण से वह उसे छोड़ कर चला गया। बाद में सुकुमालिका को शोक करते देख कर उसके पिता ने उसका विवाह एक भिक्षुक के साथ कर दिया, पर वह भी उसे छोड़ कर भाग गया। फिर दुःखगर्भित वैराग्य प्राप्त कर सुकुमालिका साध्वी बन गयी। गुरुणी के ना कहने पर भी वह जंगल में तप करने गयी। वहाँ एक वेश्या की हाजिरी में रहे हुए पाँच पुरुषों को देख कर सुकुमालिका ने ऐसा नियाणा किया कि मेरे तप का प्रभाव हो, तो अगले भव में मुझे भी पाँच भरतार हों। अन्त में अनशन कर वह ईशान देवलोक में गयी। वहाँ से च्यव कर यहाँ द्रौपदी हुई है। पूर्वकृत नियाणा के योग से वरमाला पाँच जनों के कंठ में पड़ी। उस समय देवताओं ने यह आकाशवाणी की कि द्रौपदी पंचभरतारी होते हुए भी सती है। पाँचों पांडव द्रौपदी को ब्याह कर हस्तिनागपुर ले आये और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे।

एक दिन जिसकी मुखाकृति सौम्य है, पर जो मन में कपट बहुत रखता है, वल्कलचीर पहनता है, जिसने काले मृग की खाल का उत्तरासंग किया है, जिसका जटाजूट महाकांतिवान है और जो कलह-कोलाहल कराने वाला है, ऐसा नारदऋषि आकाशमार्ग से पांडुराजा की सभा में आ पहुँचा। तब पांडवों सहित सब सभाजनों ने खड़े हो कर उसका आदर-सत्कार किया। जब वह द्रौपदी से मिलने गया, तब उसे असंयती जान कर द्रौपदी ने उसकी वन्दना-पूजा नहीं की। वह उठ कर खड़ी भी नहीं हुई तथा उसने उसे बुलाया तक नहीं। इससे नारद क्रोधित हो गया। वह विचार करने लगा कि यह द्रौपदी पाँच भरतार पा कर मस्त हो गयी है। इससे गर्वित हो कर बैठी है। तो अब मैं इसे संकट में डाल दूँ।

यह सोच कर वह धातकीखंड के पूर्व भरतक्षेत्र की अमरकंका नगरी

में जा पहुँचा। उस समय वहाँ कपिल वासुदेव का सेवक पद्मनाभ राजा राज करता था। वह अपनी सात सौ रानियों के साथ उद्यान में क्रीड़ा कर रहा था। उस समय नारद भी वहाँ पहुँच गया। पद्मनाभ राजा ने उसे वन्दन कर के पूछा कि हे नारदजी ! जैसा मेरा अन्तःपुर है, वैसा क्या तुमने अन्यत्र कहीं देखा है ? तब नारद ने यह जान लिया कि यह राजा स्त्रियों का लोलुपी है। ऐसा जान कर अवसर देख कर नारद ने कहा कि हे राजन्! तू तो कुएँ के मेंढ़क जैसा दीखता है।

जैसे कोई एक समुद्र का मेंढक कुएँ के मेंढक के पास गया। तब उससे कुएँ के मेंढक ने पूछा कि तू कहाँ रहता है और कहाँ से आया है? तब उसने कहा कि मैं समुद्र में रहता हूँ और वहीं से आया हूँ। फिर कुएँ के मेंढक ने पूछा कि तेरा समुद्र कितना बड़ा है? तब उसने कहा कि बहुत बड़ा है। कुएँ के मेंढक ने हाथ-पैर फैला कर पूछा कि क्या इतना बड़ा है? तब समुद्र के मेंढक ने कहा कि इससे तो बहुत ही बड़ा है। कुएँ के मेंढक ने कुएँ के चारों ओर छलाँग मार कर पूछा कि क्या इतना बड़ा है? तो भी उसने कहा कि इससे तो बहुत बहुत बड़ा है। तब कुएँ का मेंढक रोषपूर्वक बोला कि अरे असत्यवादी ! तू यहाँ से दूर चला जा। मेरी छलाँग से भी क्या कोई बड़ा हो सकता है? बिलकुल नहीं। इसलिए तू झूठ बोलता है।

ऐसे ही हे राजन् ! तूने भी कुएँ के मेंढक की तरह इतनी ही स्त्रियाँ देखी है; इसलिए इनका ही बखान करता है। परन्तु पाँच पांडवों की स्त्री द्रौपदी ऐसी है कि उसके एक अंगूठे के नखाग्र के रूप जितना भी तेरी किसी रानी का रूप नहीं है। उस द्रौपदी के समान तीन लोक में किसी भी स्त्री का रूप नहीं है। इतना कह कर नारद चलता बना।

फिर पद्मनाभ राजा कामपीड़ित हो कर चिन्तन करने लगा कि ऐसी स्त्री के बिना जन्म निष्फल है। पर द्रौपदी को पाने का उसे कोई उपाय नहीं सूझा। तब अट्ठम तप कर के उसने पूर्व भव के साथी देवता का आराधन किया। देवता प्रत्यक्ष आ कर हाजिर हुआ और कहने लगा कि मुझे क्यों याद किया है? जो भी काम हो, सो बताओ। पद्मनाभ राजा ने उससे द्रौपदी

को लाने की प्रार्थना की। तब देवता ने कहा कि वह महासती है; इसलिए शीलभंग नहीं करेगी। तुम व्यर्थ उसे क्यों बुलाते हो? तो भी पद्मनाभ ने बहुत हठ किया। तब वह देवता द्रौपदी को अवस्वापिनी निद्रा दे कर, जहाँ वह सोई हुई थी, वहाँ से उसे पलंग सहित उठा कर पद्मनाभ राजा की अशोकवाटिका में रख कर राजा से बोला कि तुमने मेरे हाथों बुरा काम करवाया है; इसलिए अब मुझे कभी याद मत करना। यदि बुलाओगे तो भी मैं नहीं आऊँगा। यह कह कर वह देवता अपने स्थान पर चला गया।

कुछ देर बाद द्रौपदी निद्रा से जागृत हो कर सोचने लगी कि मैं यहाँ कहाँ आ गयी? उस समय पद्मनाभ बोला कि मैंने तुझे मेरे साथ भोग भोगने के लिए देवता के द्वारा यहाँ मँगवाया है। तब द्रौपदी बोली कि तू छह महीने तक मेरा नाम मत लेना। मेरी मदद करने वाले पाँच पांडव तथा श्रीकृष्ण हैं। यदि वे छह महीने में यहाँ न आयें; तो तू जैसा कहेगा वैसा होगा। तब पद्मनाभ ने भी 'हाँ' कहा और सोचा कि यहाँ इसकी खबर लेने कौन आने वाला है? और जबरदस्ती से प्रीति भी नहीं होती। ऐसा जान कर वह द्रौपदी को अपने महल में ले गया। द्रौपदी भी छट्ठ-अट्ठम तप और पारणे में आयंबिल करने लगी।

प्रभात के समय हस्तिनागपुर में द्रौपदी महल में दिखाई नहीं दी; तब पांडवों ने बहुत खोज करवायी, पर कहीं भी पता नहीं लगा। पांडवों की माता कुंतीजी ने द्वारिका में जा कर श्रीकृष्ण वासुदेव से कहा कि हे पुत्र ! रात को जब द्रौपदी सोयी हुई थी; तब उसे कोई देव, दानव, राक्षस अथवा विद्याधर उठा ले गया है। हमने सब जगह ढूँढा, पर वह कहीं नहीं मिली। तब श्री कृष्णजी कुछ हास्यपूर्वक बोले कि पाँच पांडव एक द्रौपदी को भी सम्हालने में समर्थ नहीं हुए? मैं तो मेरी बत्तीस हजार स्त्रियों की रक्षा करता हूँ। यह सुन कर कुन्तीजी बोलीं कि हे वत्स ! इस अवसर पर हास्य काम का नहीं है। तुम तुरन्त द्रौपदी की खोज करवाओ। फिर श्री कृष्णजी ने भी बहुत खोज करवायी; पर कहीं पता नहीं लगा। अन्त में वे भी चिन्तातुर हो कर बैठ गये।

इतने में नारद ऋषि वहाँ आये। उन्होंने श्री कृष्णजी से चिन्ता का कारण पूछा। तब कृष्णजी ने कहा कि क्या तुमने कहीं किसी स्थान पर द्रौपदी को देखा है? तब नारदजी बोले कि वह पापिनी किसी साधु को भी बुलाती नहीं थी, इसलिए दुख में पड़ी होगी। फिर भी मैं तो पूरी तरह पहचानता नहीं हूँ, पर धातकीखंड में अमरकंका नगरी में द्रौपदी जैसी कोई स्त्री मैंने देखी है अवश्य। कौन जाने वह वही हो। यह कह कर नारदजी वहाँ से चले गये।

फिर श्री कृष्ण ने सोचा कि यह अकृत्य अवश्य नारद का ही किया हुआ लगता है। इसलिए द्रौपदी अमरकंका में ही होगी। ऐसा जान कर पांडवों को ले कर सेना सहित श्री कृष्णजी समुद्रतट पर पहुँचे। समुद्र पार करने के लिए अट्ठम तप कर के उन्होंने लवणाधिप देव को बुलाया। वह प्रकट हो कर बोला कि कहिये, क्या काम है? मैं करने के लिए तैयार हूँ। तब कृष्णजी ने सब वृत्तान्त निवेदन कर के कहा कि हमें धातकीखंड में जाना है। इसलिए हमें और हमारी सेना को समुद्र में से जाने के लिए मार्ग दीजिये। तब वह देव बोला कि आप लोग वहाँ जाने का कष्ट क्यों उठाते हैं? मैं स्वयं वहाँ जा कर द्रौपदी को ला कर आपको सौंप दूँगा। और फिर यदि आपकी आज्ञा हो, तो अमरकंका नगरी सहित पद्मनाभ को मैं समुद्र में फेंक दूँ। तब श्री कृष्ण बोले कि हे देव ! तुम वास्तव में ऐसे ही शक्तिमान हो। इसमें कोई सन्देह नहीं है। तथापि हम पाँच पांडव सहित छह जनों को जाने का मार्ग दो; तो हमारी वहाँ जाने की इच्छा है। यह सुन कर सुस्थित देव ने उन छह जनों के छह रथ निकलने के लिए मार्ग बना दिया।

फिर पांडव सहित श्री कृष्ण समुद्र पार कर अमरकंका नगरी के उद्यान में पहुँचे। वहाँ से दारुक नामक सारथी को दूत बना कर पद्मनाभ के पास भेजा। उस दूत ने वहाँ जा कर पैर पर पैर चढ़ा कर और ललाट पर तीन रेखाएँ चढ़ा कर कहा कि हे पद्मनाभ ! श्रीकृष्ण वासुदेव ने तुम्हें कहलवाया है कि तुम पांडवों की स्त्री द्रौपदी उठा लाये हो। तुमने यह बहुत अयोग्य काम किया है। फिर भी अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। इसलिए तुम आ कर

द्रौपदी हमें सौंप जाओ। तब पद्मनाभ बोला कि मैं तुम्हें वापस देने के लिए द्रौपदी नहीं लाया हूँ। मैं तो मेरी ताकत से लाया हूँ। इसलिए तुम तुम्हारे स्वामी से जा कर कह दो कि तुम्हें युद्ध करना हो तो सुख से करो। मैं भी क्षत्रिय हूँ। यह कह कर उसने दूत को अपमानित कर के निकाल दिया।

दूत ने जा कर श्री कृष्ण के आगे सारी बात प्रकट की। श्री कृष्ण ने जान लिया कि यह असाध्य रोग औषधि के बिना नहीं मिटेगा। इसलिए वे युद्ध करने के लिए तैयार हुए। पद्मनाभ भी सेना ले कर लड़ने के लिए सामने आया। तब पांडवों ने श्रीकृष्ण से कहा कि हम इसके साथ युद्ध करेंगे। पर यदि हम हार जायें, तो आप मदद करना। तब श्री कृष्ण ने कहा कि तुम महान योद्धा हो, पर तुम्हारी ऐसी वाणी सुन कर लगता है कि जीतना तुम्हारे लिए कठिन होगा। तो भी पांडव श्री कृष्ण की आज्ञा ले कर युद्ध करने गये। पद्मनाभ ने भी बड़ा लश्कर ले कर पांडवों के साथ युद्ध किया। भवितव्यता के योग से पांडव हार गये और भागते हुए उन्होंने सिंहनाद किया।

सिंहनाद सुन कर पांडवों को हारा जान कर अकेले श्री कृष्ण पद्मनाभ की सेना का मथन करने लगे। उनके धनुष्य के टंकारव से ही पद्मनाभ की सारी सेना भाग गयी और स्वयं पद्मनाभ भी भाग कर नगर में घुस गया। फिर उसने नगर के दरवाजे बन्द करवा दिये। तब श्री कृष्ण ने नरसिंह रूप धारण कर के लात मार कर अमरकंका नगरी का किला तोड़ डाला। सारा नगर काँपने लगा। बहुत सारे महल गिर गये। श्री कृष्ण का ऐसा पराक्रम देख कर पद्मनाभ राजा भयभीत हो कर द्रौपदी की शरण में आया और कहने लगा कि हे सती ! तू मेरी रक्षा कर। तब द्रौपदी बोली कि हे कंगाल! मैंने तुझसे पहले ही कहा था कि मेरे पीछे श्रीकृष्णादिक अनेक बलवान राजा मदद करने वाले हैं; पर तू नहीं माना। अब भी यदि तू जीने की इच्छा रखता हो; तो स्त्रीवेश पहन कर मुख में तिनका ले कर मेरे पीछे बैठ जा। यदि इतना मेरा कहा करेगा; तो मैं तुझे उनके पाँव लगवा दूँगी। क्योंकि श्री कृष्ण सत्पुरुष हैं। उनके आगे जो झुक जाता है, उसे वे मारते नहीं है।

इसलिए तेरे जिन्दा रहने का यही एक मात्र उपाय है। पद्मनाभ ने वैसा ही किया।

इतने में श्रीकृष्ण भी वहाँ आ गये। उन्होंने देखा तो पद्मनाभ स्त्रीरूप कर के द्रौपदी के पीछे बैठा हुआ था। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी से पूछा कि यह कौन बैठा है। द्रौपदी ने कहा कि पद्मनाभ राजा तुम्हारे भय से भाग कर मेरी शरण में आया है। इतना कह कर उसने पद्मनाभ को श्रीकृष्ण के पाँव लगवाया। तब श्री कृष्ण ने उस पर दया कर के उसे जीवित रखा और उससे कहा कि अरे ! क्या तू जानता नहीं था कि इस द्रौपदी के पीछे बड़े बड़े लोग मदद करने वाले है? पर मूर्खों के सिर पर जब पड़ती है; तब उन्हें अक्ल आती है। तो अब तेरा किया कर्म तूने भोगा है। द्रौपदी के प्रभाव से तू जिन्दा रहा। इतना कह कर अखंड शीलवती द्रौपदी को ले कर पाँचों पांडवों सहित श्रीकृष्ण जी वहाँ से लौट गये और उन्होंने जय का शंखनाद किया।

उस समय उस क्षेत्र में श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर के पास वहाँ का कपिल वासुदेव व्याख्यान सुन रहा था। उसने शंखनाद सुना। तब उसके मन में शंका उत्पन्न हुई कि क्या कोई अन्य वासुदेव उत्पन्न हुआ है? इस कारण से उसने भगवंत से पूछा कि महाराज ! यह दूसरा वासुदेव कौन उत्पन्न हुआ है, जिसने मेरा शंख बजाया? भगवन्त बोले कि हे कपिल ! एक क्षेत्र में दो तीर्थंकर और दो वासुदेव नहीं होते। यह तो जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र का श्री कृष्ण नामक वासुदेव तेरे जैसी ऋद्धि का मालिक है। पद्मनाभ राजा ने द्रौपदी का हरण किया था। इसलिए द्रौपदी को लेने के लिए वह यहाँ आया था। पद्मनाभ को जीत कर अब वह वापस जा रहा है। उसने शंखनाद किया है। यह सुन कर तीर्थंकर से आज्ञा ले कर कपिल वासुदेव तुरन्त वहाँ से उठ कर अपने समान वासुदेव को देखने के लिए समुद्र के किनारे जा पहुँचा। पर श्री कृष्ण तो बहुत दूर निकल गये थे। मात्र समुद्र में नीली-पीली ध्वजाएँ देख कर उसने शंखध्वनि की। उसमें यह सूचित किया कि हे मित्र ! जरा ठहरो। मैं तुम्हें मिलने आया हूँ। इसलिए एक बार यहाँ लौट आओ। तुम्हारे दर्शन की मुझे अभिलाषा है। शंख से ऐसा शब्द सुन कर श्री कृष्ण ने भी पुनः शंखनाद

किया। वे उसमें ऐसे बोले कि हे मित्र ! हम बहुत दूर तक समुद्र लांघ गये हैं ; इसलिए अब वापस लौटा नहीं जा सकेगा। तुम हम पर कृपादृष्टि बनाये रखना। इतना कह कर वे आगे बढ़ गये।

फिर कपिल वासुदेव ने पद्मनाभ के पास जा कर पूछा कि तेरी इस नगरी के गढ-मढ-कोट क्यों गिर गये? तब पद्मनाभ ने कहा कि जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र का वासुदेव यहाँ मेरी राजधानी लेने आया था। उसके साथ मेरा घमासान युद्ध हुआ। उसने ये गढ़ादि तोड़ डाले हैं। तब कपिल वासुदेव ने कहा कि अरे अन्यायी ! मेरे सामने तू झूठ बोलता है? यह कह कर बहुत तिरस्कार कर उसे देश से निकाल दिया। फिर उसके पुत्र को राजगद्दी पर बिठा कर कपिल अपने स्थान पर गया।

फिर श्री कृष्ण पांडवों सहित समुद्र पार कर पांडवों से बोले कि मैं लवणाधिप सुस्थित देव से मिल कर आता हूँ, तब तक तुम लोग नावों से गंगा नदी पार कर फिर एक जन के साथ नाव तुरन्त भेज देना। पांडवों ने द्रौपदी सहित नाव में बैठ कर गंगा नदी पार की। फिर सोचा कि देखें तो सही कि श्री कृष्ण स्वयं अकेले गंगा नदी उतर आते हैं या नहीं। ऐसा निश्चय कर के उन्होंने नाव नहीं भेजी। वहाँ श्री कृष्ण ने बहुत देर तक इंतजार किया, पर नाव नहीं आयी। तब उन्होंने मन में जाना कि लगता है, पांडव डूब गये हैं। यह विचार कर चार भुजाएँ बना कर एक हाथ में सारथी सहित रथ उठाया, एक हाथ में शस्त्र रखे, एक हाथ से घोड़े को पकड़ा और एक हाथ से गंगा नदी में तैरने लगे। गंगा नदी साढ़े बासठ योजन चौड़ी है। जब उसके मध्यभाग में आये; तब श्री कृष्ण बहुत थक गये। उस समय गंगा देवी ने सहायता कर के मध्य में उनके लिए स्थान दिया। वहाँ कुछ समय तक विश्राम ले कर फिर अपनी भुजाओं से गंगा नदी पार कर तट पर आये।

वहाँ आ कर देखा तो पांडव नाव सहित बैठे बैठे हँस रहे थे। तब श्री कृष्ण ने रोष पूर्वक पांडवों से पूछा कि अरे दुष्टो ! तुमने नाव वापस क्यों नहीं भेजी। तब पांडव बोले कि तुम्हारी बल-परीक्षा करने के लिए नहीं

भेजी। इस पर श्रीकृष्ण बोले कि अरे ! मैंने दो लाख योजन समुद्र पार कर के जिस पद्मनाभ से तुम भागे थे; उसे जीत कर तुम्हें द्रौपदी ला कर दे दी; उस समय क्या तुमने मेरी शक्ति नहीं देखी, जो अब मेरा बल देखने बैठे? यह कह कर क्रोध कर पाँचों पांडवों को मारने के लिए लोहदंड उठाया। फिर दया ला कर सोचा कि इससे बड़ा अनर्थ हो जायेगा। यह सोच कर पाँचों पांडवों के रथ तोड़ कर चूर्ण कर दिये और फिर कहा कि जाओ रे पापियो ! अब मेरी नजर में मत आना और मेरे देश में भी मत रहना। यह कह कर उन्होंने पाँचों पांडवों को देशनिकाला दे दिया। जहाँ रथ तोड़े थे, वहाँ रथमर्दन कोट बना।

फिर श्रीकृष्ण अपनी सेना लेकर द्वारिका गये और पांडव भी द्रौपदी को ले कर सेना सहित हस्तिनागपुर गये। वहाँ जा कर कुंतीजी से देशनिकाले की बात कही। तब कुंतीजी ने द्वारिका जा कर मीठे वचनों से श्री कृष्ण को संतुष्ट किया। फिर पांडवों को बुला कर श्री कृष्ण के पाँव लगवाया। फिर श्री कृष्ण ने उन्हें आज्ञा दी कि जहाँ मैंने तुम्हारे रथ तोड़े थे, वहाँ तुम लोग पांडवरथनूपुर बसा कर रहो। फिर पांडव वहाँ श्रीकृष्णजी की सेवा करते हुए रहे। अन्त में पांडुसेन नामक अपने पुत्र को राज्यगद्दी पर बिठा कर पाँचों पांडव और द्रौपदी ने दीक्षा ग्रहण की। फिर छट्ठ-अट्ठमादिक तप कर के, चौदह पूर्व पढ़ कर वे पाँचों पांडव श्री शंत्रुजय तीर्थ पर मोक्ष गये। और द्रौपदी भी ग्यारह अंग पढ़ कर महीने की संलेखना धारण कर पाँचवें ब्रह्म देवलोक में गयी। वहाँ से च्यव कर वह मोक्ष प्राप्त करेगी।

इस तरह जंबूद्वीप का वासुदेव धातकीखंड में नहीं जाता, पर गया। यह पाँचवाँ अच्छेरा जानना। कई आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि दो वासुदेव के शंख से शंख नहीं मिलते और यहाँ शंख से शंख मिले। इसलिए यह भी अच्छेरा जानना।

अब छठा अच्छेरा कहते हैं- युगलिक मरण प्राप्त कर नरक में नहीं जाते; पर हरि और हरिणी ये दोनों युगलिक मर कर नरक में गये। इसलिए यह अच्छेरा हुआ। यथा-

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशांबी नगरी में सुमुख नामक राजा था। एक बार वसन्त ऋतु में वह राजा हाथी पर आरुढ हो कर नगरी के नजदीक वन में क्रीड़ा के लिए जा रहा था। मार्ग में वीरक कोली की वनमाला नामक भार्या जो अत्यन्त स्वरूपवती थी और अपने पति को अत्यन्त वल्लभ थी; उसे देख कर भीतर ही भीतर सराग दृष्टि से देखने से उसे प्रीतिभाव उत्पन्न हुआ। इस कारण राजा वहाँ से आगे नहीं बढ़ा। तब सुमति नामक प्रधान ने कहा कि हे स्वामी! समस्त स्वजन आ गये हैं, फिर भी आप आगे क्यों नहीं बढ़ते? यह सुन कर राजा अपने प्रधान की शर्म रख कर आगे वन में गया। पर शून्यचित्त हो जाने से और मन में केवल उस स्त्री का चिंतन करने से उसे कहीं भी चैन नहीं मिला। यह देख कर प्रधान ने पूछा कि महाराज ! आप ऐसे शून्यचित्त क्यों दीखते हैं? ऐसा बार-बार बहुत आग्रह कर पूछने पर राजा ने अपने मन की सारी बात प्रधान को बता दी। फिर प्रधान बोला कि आप बिल्कुल चिंता न करें। मैं आपको उस स्त्री से मिला दूँगा।

फिर घर आ कर प्रधान ने आत्रेयिका नामक परिव्राजिका को बुला कर सारी बात समझा कर वनमाला के पास भेजा। उसने भी वहाँ जा कर देखा तो वनमाला भी विह्वल हो कर मुख से उच्छ्वास छोड़ रही थी। वह कभी बैठती, कभी उठती, कभी गिरती। इस प्रकार उसे महाविरहिणी देख कर उससे कहा कि हे वत्से ! तू आज इतनी दुःखी क्यों दीख रही है? तेरा दुःख मुझे बता। मैं तुझे उस दुःख से पार उतारूँगी। यह सुन कर वनमाला ने अपने मन की गुप्त बात उसे कह दी। तब परिव्राजिका ने कहा कि मैं राजा के साथ तेरा मिलाप करवा दूँगी। तू बिलकुल चिन्ता मत कर। फिर वह परिव्राजिका प्रसन्न हो कर वहाँ से प्रधान के पास गयी और उसे सब बात बता दी। प्रधान ने राजा के पास जा कर सब वृत्तान्त कह सुनाया। इसके बाद दूसरे दिन प्रभात के समय परिव्राजिका वनमाला को राजा के पास ले गयी। राजा ने हर्षवन्त हो कर उसे अन्तःपुर में रखा और उसके साथ वह पंचविध विषयसुख भोगने लगा।

जब वीरक कोली घर लौटा, तब उसे वनमाला दिखाई नहीं दी। फिर उसने पड़ोसी से पूछताछ की, पर कुछ पता न लगने से भार्या के विरह में पागल हो कर वह सारे गाँव में 'हे वनमाला ! हे वनमाला !' करते हुए भटकने लगा। एक दिन वर्षाऋतु में वह राजमहल के नीचे आ कर खड़ा रहा। इतने में राजा भी वनमाला को साथ ले कर झरोखे में आ बैठा। राजा ने वीरक कोली को देख कर मन में सोचा कि मुझ जैसे पापी ने परायी औरत ले कर अत्यन्त लोकविरुद्ध अनार्य कार्य किया है; इसलिए मुझे धिक्कार है। इस प्रकार वह मन में बहुत ही आत्मनिंदा करने लगा। वनमाला ने भी सोचा कि मुझ जैसी पापिनी ने स्नेहवंत भरतार का त्याग किया, यह अच्छा नहीं किया। यह मेरे विरह से ग्रंथिल हो गया है। इसलिए अब मेरी क्या गति होगी? इस प्रकार दोनों जन पश्चात्ताप कर रहे थे। इतने में अकस्मात् ऊपर से बिजली गिरने से दोनों जन शुभध्यान में मरण प्राप्त कर हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिकरूप में उत्पन्न हुए। वहाँ उनके समस्त मनोवांछित कल्पवृक्ष पूर्ण करते थे। इस प्रकार वे सुखपूर्वक रहते थे।

इसके बाद वीरक कोली भी उन दोनों की मृत्यु जान कर, ग्रंथिल भाव त्याग कर अज्ञान तपस्या कर के मृत्यु के बाद किल्विषिक देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसने अवधिज्ञान से यह जाना कि अरे! मेरे पूर्व भव के बैरी तो युगलिक हुए हैं। ये यहाँ से मर कर पुनः देव बनेंगे। इसलिए ये देव न हों ऐसा कोई उपाय करना चाहिये। ऐसा विचार कर उसने युगल को वहाँ से उठा लिया। उस समय चंपा नगरी में इक्ष्वाकु वंश का चंडकीर्ति राजा निःसन्तान मर गया था। नगरी के सब लोग इस चिन्ता में पड़े थे कि अब हमारा राजा कौन होगा? इतने में उस देव ने वहाँ जा कर वह युगल नगरजनों को सौंप दिया और कहा कि मैं तुम्हारे लिए यह राजा लाया हूँ। इसे जब भूख लगती है; तब यह कल्पवृक्ष के फल खाता है। उसके साथ माँस मिला कर तुम लोग इसे खिलाना तथा इसे शिकार खेलना सिखाना। देव ने सोचा कि यह मांस भक्षण करेगा और मांसलोलुप बन जायेगा।

इससे मरने के बाद नरक में जायेगा, तो मेरा बैर वसूल हो जायेगा। यह सोच कर उन दोनों का नाम क्रमशः हरि और हरिणी रख कर वह देव अपने स्थान पर चला गया। लोगों ने भी देव के कहे अनुसार उसे मांस-मदिरासेवन करना सिखाया। इससे वे मांसलोलुप बन गये। फिर इस हरिराजा के जो पुत्रादि हुए उनका कुल हरिवंश कहलाया। ये हरि और हरिणी मरण के बाद नरक में गये। युगलिक नरक में जाते नहीं है, पर ये दोनों गये; इसलिए यह आश्चर्य जानना।

अब सातवाँ अच्छेरा कहते हैं- इस भरतक्षेत्र के विभेल सन्निवेश में पूरण नामक एक सेठ रहता था। वह एक दिन पिछली रात्रि को जाग कर कुटुंब जागरण करते करते मन में सोचने लगा कि मेरे घर में जो बहुत धन-परिवार है, सो मैंने पूर्वभव में कोई अच्छी धर्मकरनी की थी, उसके योग से वह सब प्राप्त हुआ है। इसलिए अब पुनः कुछ धर्म करूँ, तो आगे भी प्राप्त होगा। यह सोच कर सुबह के समय स्वजनादि से पूछ कर पुत्र को कुटुंब का भार सौंप कर उसने तापसी दीक्षा ग्रहण की। फिर ऐसा अभिग्रह किया कि यावज्जीव छट्ठ के पारणे छट्ठ याने दो दो उपवास के अन्तर से पारणा करना। पारणा के दिन एक चौकोन पात्र ले कर भिक्षा माँगना। उसमें पहले कोने में जो भिक्षा मिले, वह जलचर जीवों को खिला देना, पर स्वयं न खाना। इसी प्रकार दूसरे कोने में जो भिक्षा पड़े, वह पक्षियों को खिला देना तथा तीसरे कोने में जो भिक्षा पड़े, वह अभ्यागत को खिला देना और चौथे कोने में जो भिक्षा पड़े उसे जल से धो कर स्वयं खाना।

इस तरह बारह वर्ष तक तपस्या कर के मृत्यु के बाद वह चमरचंचा राजधानी में चमरेन्द्र के रूप में भवनपति देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ उत्पन्न होते ही उसने अवधिज्ञान से देखा, तो सौधर्मेन्द्र के पैर अपने सिर पर दिखाई दिये। इससे उसे महाक्रोध उत्पन्न हुआ। फिर सब सामानिक देवों को बुला कर उसने कहा कि हे देवो ! यह कौन दुष्ट हीनपुण्य का स्वामी है, जो मेरे सिर पर पैर रख कर बैठा है? तब देव बोले- हे स्वामी ! पूर्वजन्म में संपादन किये हुए पुण्य से सब से अधिक समृद्धि और पराक्रम

हैं जिसके; ऐसा यह सौधर्माधिप है। यह अनादिकालीन मर्यादा है, इसलिए यहाँ तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। तुम्हारे जैसे इन्द्र जो पूर्व में हुए हैं; उन पर भी इसी तरह पैर रहते आये हैं। इसलिए ईर्ष्या मत कीजिये। इस तरह देवों ने समझाया, तो भी चमरेन्द्र क्रोधावेश में बोला कि जिन पर सौधर्मेन्द्र पैर रखता है, ऐसे पूर्व में हुए चमरेन्द्र अलग हैं और मैं अलग हूँ। इसलिए मैं वहाँ जा कर सौधर्मेन्द्र को उसके पैर खींच कर नीचे गिरा दूँगा। ऐसा कह कर आयुधशाला में जा कर परशु-शस्त्र हाथ में ले कर वह सौधर्म देवलोक में जाने लगा। उस समय सब देवों ने उसे रोका; पर उसने किसी की बात नहीं मानी।

उस समय सुसुमार नगर में श्री महावीर प्रभु प्रतिमा-स्थित रहे थे। उनकी शरण ले कर एक लाख योजन का रूप बना कर ब्रह्मांड फूट जाने जैसा शब्द करते हुए, पैरों से धरती को कँपाते हुए, हाथों से ताल ठोंकते हुए, मेघ के समान गर्जना करते हुए, बिजली के समान झबकार करते हुए, ज्योतिषचक्र को त्रासित करते हुए, देवताओं को भयभ्रान्त करते हुए, देवियों को डराते हुए, कोलाहल करते करते परिघायुध घुमाते हुए गर्वांध बन कर वह सौधर्मेन्द्र की तरफ दौड़ा। उसने अपना एक पैर सौधर्मावतंसक विमान की पद्मवरवेदिका पर और दूसरा पैर सौधर्मसभा में रखा। तब सौधर्म देवलोक के सब देव भयभ्रान्त हो कर जहाँ तहाँ भाग गये। उस समय चमरेन्द्र बोला कि अरे देवो ! तुम्हारा इन्द्र कहाँ है? काली अमावस्या का जन्मा वह इन्द्र मुझे बताओ; तो अभी मैं उसे परशु से काट डालूँ। देवों से ऐसा कह कर वह मुख से अग्निज्वाला निकालने लगा।

उसके लंबे होठ, कुएँ जैसे गाल, खड्डे जैसे नाक के नथुने, अग्नि जैसे नेत्र, सूप जैसे कान, कुश जैसे दाँत, गले में सर्प, हाथ में बिच्छू के अलंकार, कहीं चूहे बँधे हुए, कहीं नेवले और गोह बँधे हुए और उसका काला रूप देख कर देव-देवियाँ कोलाहल करने लगे। कोलाहल सुन कर इन्द्र ने अवधिज्ञान से देखा तो उसने जान लिया कि यह तो चमरीया इन्द्र अधजल गगरी के समान छलक रहा है। इसलिए अब इसे सजा देनी

चाहिये। यह सोच कर हजार देव भी जिसे उठा न सकें ऐसा अग्निज्वाला से भी अधिक देदीप्यमान वज्र इन्द्र ने चमरेन्द्र पर छोड़ा। उसे अपनी ओर आते देख कर भयभीत हो कर चमरेन्द्र सिर नीचे और पैर ऊपर कर के वहाँ से भागा। इस स्थिति में कहीं उसके गहने गिर गये और कहीं वह स्वयं गिरते हुए भागने लगा। स्वभाव से चमरेन्द्र की नीचे जाने की और वज्र की ऊँचे जाने की शक्ति अधिक होती है; इससे उनके बीच कुछ अन्तर रह गया। तब चमरेन्द्र अपने लाख योजन वाले विकुर्वित शरीर का संहरण कर के 'शरणं शरणं' बोलते हुए कुंथुआ जितना सूक्ष्म हो कर श्री महावीरस्वामी के चरणों के मध्य प्रवेश कर गया। इस तरह वज्र से डरते हुए वह श्री महावीरस्वामी की शरण में बैठ गया।

इतने में शक्रेन्द्र को यह मालूम हो गया कि चमरेन्द्र की शक्ति इतनी नहीं है कि वह किसी की शरण के बिना यहाँ चला आये। इसलिए निश्चय ही यह श्री अरिहंत अथवा श्री अरिहंत की प्रतिमा या किसी भावित अनगार की शरण ले कर यहाँ आया होगा। तो अब उनकी आशातना न हो; इसलिए अवधिज्ञान का उपयोग कर के देखा तो मालूम हुआ कि वह श्री महावीरस्वामी की शरण ले कर आया था। यह जान कर तत्काल वज्र के पीछे शक्रेन्द्र भी गया और उसने श्री महावीरस्वामी से चार अंगुल दूर रहे हुए वज्र को वापस खींच लिया। क्योंकि महावीरस्वामी से चार अंगुल की दूरी पर वज्र परिभ्रमण कर रहा था; पर तीर्थंकर की आशातना टालने के लिए वह तीर्थंकर के पास नहीं जा रहा था। इस तरह चमरेन्द्र को श्री महावीर की शरण में आया जान कर छोड़ दिया। फिर भगवान से कहा कि हे प्रभो ! मेरा अपराध क्षमा करना। इतना कह कर कुछ दूर जा कर पैर धरती पर पछाड़ कर वह चमरेन्द्र से बोला कि अरे चमर ! अब श्री वीर भगवान की कृपा से तू मुझसे भय मत रखना। इतना कह कर भगवान को वन्दन कर के उनकी आज्ञा ले कर शक्रेन्द्र अपने स्थान पर गया।

फिर चमरेन्द्र भी नाना प्रकार से भगवान की स्तुति कर के, वन्दन कर के अपनी चमरचंचा राजधानी में आया। वहाँ अपने सिंहासन पर उदास हो

कर बैठा। तब सामानिक देवों ने आ कर उसे बधाया और कहा कि आप शोक क्यों करते हैं? तब चमरेन्द्र ने अपनी बीती बात सब कह सुनायी और कहा कि हे देवानुप्रियो ! मैं जीवित लौटा सो यह सब श्री वीर भगवान का उपकार है। इसलिए उन्हें वन्दन करने चलो। यह कर सब देव देवियों को ले कर महा ऋद्धि सहित जा कर श्री महावीर को वन्दन कर नाटक कर के वह अपने स्थान पर गया। इस तरह पातालवासी चमरेन्द्र ऊँचे सौधर्म देवलोक में जाता नहीं है, पर इस अवसर्पिणी काल में गया। इसलिए यह सातवाँ चमरोत्पात नामक आश्चर्य जानना।

अब आठवाँ अच्छेरा कहते हैं- अष्टापद पर्वत पर उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष्य अवगाहना वाले एक श्री ऋषभदेव स्वयं और भरत को छोड़ कर निन्यानबे भगवान के पुत्र तथा आठ भरत के पुत्र सब मिल कर एक सौ आठ पुरुष एक समय में सिद्धि को प्राप्त हुए। मध्यम अवगाहना वाले सिद्ध होते हैं, पर उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय में एक सौ आठ सिद्ध नहीं होते। मात्र दो ही सिद्ध होते हैं; पर यहाँ एक सौ आठ सिद्ध हुए। अतः यह आठवाँ अच्छेरा जानना।

अब नौवाँ अच्छेरा कहते हैं- श्री महावीरदेव का कौशांबी नगरी में समवसरण लगा, तब चन्द्रमा और सूर्य जिनके ज्योतिष चक्र में शाश्वत विमान हैं; वे उन्हीं विमानों में बैठ कर पश्चिम पोरिसी में श्री महावीर को वन्दन करने के लिए आये। यहाँ कोई कोई ऐसा कहते हैं कि उत्तर वैक्रिय विमान में बैठ कर आये;पर ऐसा नहीं जानना। वे मूल विमान में बैठ कर ही वन्दन करने आये थे। वे मूल विमान में कभी नहीं आते; पर आये। इसलिए यह अच्छेरा जानना।

अब दसवाँ अच्छेरा कहते हैं- असंयती, आरंभी, परिग्रहवन्त, अब्रह्मचारी, गृहस्थवेश में रहे हुए लोगों की पूजा सत्कार सो असंयतीपूजा नामक दसवाँ अच्छेरा है। वह इस प्रकार है- श्री सुविधिनाथ के निर्वाण के बाद बहुत काल बीतने पर हुंडावसर्पिणी के दोष के कारण साधुओं का विच्छेद हो गया। सब साधु काल कर गये। कोई भी साधु शेष न रहा। तब लोग

कहने लगे कि अब हम किसे पूजें? उस समय श्री ऋषभदेवजी के समय में श्रावक ब्राह्मण कहलाते थे, उनका उदाहरण ले कर जो स्थविर श्रावक थे; उनके पास जा कर लोग धर्म पूछने लगे। वे भी जैसा जानते थे; वैसा ही उन्हें बताने लगे। लोग भी उन्हें धन-वस्त्रादि दान देने लगे। इससे गर्वित हो कर वे स्वयं के मनःकल्पित नये शास्त्र बना कर कहने लगे कि जो कोई हमें पृथ्वी, शय्या, मन्दिर, सुवर्ण, रूपा, लोहा, कपास, गाय, कन्या, अश्व और गज दान करता है, वह इस लोक तथा परलोक में महाफल पाता है। हम ही सुपात्र हैं। यह उपदेश सुन कर लोगों ने उन्हें गुरुरूप में मान लिया। इस तरह असंयती की पूजा चली। फिर कुछ काल बाद तो साधु धर्म का ही विच्छेद हो गया और जैन को छोड़ कर पाखंडी-संन्यासी प्रमुख विपरीत दर्शन वाले ही पूजे जाने लगे। प्रथम सदा-सर्वदा संयती की ही पूजा होती थी; पर उसका विच्छेद हो जाने पर असंयतियों की पूजा श्री शीतलनाथ जिन का तीर्थ प्रारंभ होने तक चली। यह आश्चर्य हुआ। यहाँ जो साधु न होते हुए भी साधु के रूप में पूजे जायें; यह आश्चर्य जानना तथा श्री तीर्थंकरों का तीर्थ-विच्छेद नहीं होता और वह हुआ, सो यह भी आश्चर्य जानना। यह दसवाँ अच्छेरा है। इस तरह ये दस आश्चर्य इस चौबीसी में हुए। पुनः अनन्त काल बाद होंगे।

अब दस अच्छेरे किस किस तीर्थंकर के समय में हुए ? सो कहते हैं- श्री ऋषभदेव के समय में एक सौ आठ सिद्ध हुए। श्री शीतलनाथ के समय में हरिवंश कुल की उत्पत्ति हुई। श्री मल्लीनाथ के समय में स्त्री तीर्थंकर हुई। श्री नेमिनाथ के समय में अमरकंका नगरी में श्री कृष्ण का गमन हुआ और श्री सुविधिनाथ के शासनान्तराल में असंयती ब्राह्मणों की पूजा हुई। यह असंयती पूजा तो श्री आदिनाथ के समय में भी मरीचि-कपिलादि की सुनने में आती है। ऐसा अधिकतर अन्य तीर्थंकरों के समय में भी प्रवाह से होता है। और पाँच अच्छेरे श्री महावीरस्वामी के समय में हुए।

प्रभु का गर्भपरावर्तन

अब इन्द्र महाराज विचार करते हैं कि भगवान श्री महावीरस्वामी

माहणकुंड नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या देवानन्दा की कोख में उत्पन्न हुए, यह आश्चर्य हुआ। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव इनका यदि नीचगोत्रकर्मक्षय न हुआ हो, वेदन न किया गया हो, निर्जरित न हुआ हो तो वह कर्म उदय में आता है। उसके उदय से श्री अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी अन्तप्रान्त, तुच्छ, दरिद्रीप्रमुख कुल में आये, आते हैं और आयेंगे। कोख में गर्भ के रूप में उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे; पर योनिमार्ग से जन्मरूप में निकलना सो तो कोई निकले भी नहीं, निकलते भी नहीं और निकलेंगे भी नहीं याने कि जन्मे भी नहीं, जन्मते भी नहीं और जन्मेंगे भी नहीं। ऐसी रीति है।

परन्तु भगवान श्री महावीरस्वामी माहणकुंड नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या देवानन्दा की कोख में आये; यह आश्चर्यरूप है। इसलिए यह आचार है कि जिस समय में जो इन्द्र होता है, वह इन्द्र उस वक्त अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव यदि अन्तप्रान्त, तुच्छ, दरिद्रीप्रमुख यावत् ब्राह्मणकुल में आ कर उत्पन्न हुए हों; तो उन्हें अन्तप्रान्तादि नीच कुलों में से उठा कर उनका उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय, हरिवंश प्रमुख उत्तम कुलों में संहरण करे। उन्हें इन कुलों में ला कर रखे। उनका नीच कुल में जन्म होने न दे। यह सब तीनों कालों के इन्द्रों की मर्यादा है। इसलिए निश्चय से मैं भी भगवान श्री महावीरस्वामी को देवनन्दा ब्राह्मणी की कोख में से उठा कर ज्ञातक्षत्रिय सिद्धार्थ राजा, जिसका काश्यप गोत्र है, उसकी भार्या त्रिशला क्षत्रियाणी की कोख में गर्भरूप में रखूँ।

ऐसा उनके भाग्य के अनुसार सोच कर इन्द्र महाराज ने हरिणगमेषी नामक देव जो पैदल कटक का मालिक है; उसे बुला कर इस प्रकार कहा कि- हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही यह बात हुई नहीं, होती नहीं और होगी भी नहीं कि श्री अरिहंतादिक शलाका पुरुष अन्त प्रान्तादि नीच कुलों में आये, आते हैं और आयेंगे। और यदि कोई नीच कुल में आता है, तो लोक में उसे अच्छेरा कहा जाता है। अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल से यदि किसी अरिहन्तादिक के नीच गोत्र का क्षय न हुआ हो, वेदन-भोग न किया हो,

तो वह उदय में आने पर श्री अरिहंतादिक नीचकुल में आयें भी सही, पर उनका उस नीच कुल में योनिमार्ग से जन्म नहीं होता। और ये भगवान श्री महावीरस्वामी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में ब्राह्मणकुंड गाँव में ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या देवानन्दा ब्राह्मणी की कोख में उत्पन्न हुए हैं। इसलिए अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालों में जब जो इन्द्र होता है, उसका यह आचार है कि श्री अरिहंतादिक यदि नीच कुल में आ कर उत्पन्न हों, तो उन्हें उग्रादि उच्च कुलों में ले जा कर रख देना। इसलिए हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और भगवान श्री महावीरस्वामी को ब्राह्मणकुंडग्राम नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या देवानन्दा की कोख में से उठा कर क्षत्रियकुंड नगर में सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा की भार्या त्रिशला क्षत्रियाणी की कोख में गर्भरूप में रख दो। यह मेरी आज्ञा तत्काल पूरी कर के वापस लौटाओ। अर्थात् यह काम कर के मुझसे आ कर कहो कि आपकी जो आज्ञा थी, वह काम मैं पूरा कर आया हूँ।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि इन्द्र महाराज को यही विचार क्यों आया कि देवानन्दा की कोख से अपहरण कर के त्रिशला रानी की कोख में संक्रमण किया जाये? क्योंकि उस समय में अन्य भी श्रेणिकप्रमुख बड़े बड़े राजा थे। उन्हें तो याद नहीं किया और सिद्धार्थ जो सामान्य राजा था; उसे याद किया। इसका क्या कारण है? इसका उत्तर यह है कि सब जीवों के अपने अपने भाग्य (कर्म) के अनुसार देवों को भी कार्य करने की बुद्धि उत्पन्न होती है। कर्म से उपरान्त करने की शक्ति देवों में भी नहीं है। यहाँ भी पूर्वभव में त्रिशलारानी का जीव देवरानी था और देवानन्दा का जीव जेठानी था। दोनों एक ही घर में रहती थी। परन्तु कषाय महाबलवान हैं। यदि जीव भला करने की चाहना करे, तो भी कषाय बुरा कर डालते हैं। अब लोभ के कारण जेठानी ने देवरानी का रत्नकरंडक चुरा लिया। देवरानी ने खोजा, पर मिला नहीं। तब दोनों में आपस में खूब बोलचाल हुई; तो भी जेठानी ने रत्नकरंडक नहीं लौटाया। इसके प्रभाव से कर्मबंधन हुआ। वह कर्म देवानन्दा के उदय में आया। वह त्रिशला की देनदार थी। इस कारण

से इन्द्र को भी ऐसा ही विचार स्वाभाविक रूप से आया कि त्रिशलारानी को ही पुत्ररत्न दिलवाऊँ। इसलिए हे भव्यो ! तुम समझ लो कि जो जीव जैसा शुभाशुभ कर्म करेगा, उस जीव को वैसा ही शुभाशुभ फल मिलेगा।

यहाँ कदापि कोई अन्यदर्शनी पूछे कि इन भगवान को गर्भ में जो इधर-उधर किया गया; वह तुमने तो देखा नहीं। फिर हम कैसे मान्य करें? तो उन्हें उत्तर देना कि तुम्हारे मत में भी भागवत के दसवें स्कन्ध के दूसरे अध्ययन में बलदेव के गर्भ का परावर्तन लिखा है तथा पुराण में भी पुरुषों के गर्भ उत्पन्न हुआ है और उसे देवता ने निकाला है। इस पर मान्धाता राजा की कथा कहते हैं-

विशाला नगरी में वनराजा महाबलवान था; पर वह पुत्रहीन था। इसलिए पुत्रप्राप्ति के लिए उसने सोलह सौ स्त्रियों के साथ विवाह किया। फिर भी उसे पुत्र नहीं हुआ। तब वह बहुत चिन्तातुर हुआ। पुराणों में कहा है कि-

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा, स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ।।१।।

पुत्रहीन की गति नहीं होती। वह अवगतिक होता है। इसलिए उस राजा ने किसी के उपदेश से अठासी हजार तापस ऋषियों को आमन्त्रित कर भोजन कराया और तैंतीस करोड़ देवताओं की आराधना की। फिर भी किसी में पुत्र देने की शक्ति न दीखी। तब उसने ऋषियों से कहा कि अरे! तुम सब मात्र पेट भरना ही जानते हो, पर मेरा काम करते नहीं हो। राजा के ऐसे बोल सुन कर एक तापस ने कहा कि हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र होने का उपाय मैं जानता हूँ। मैं तुम्हें सोने के कटोरे में पानी मंत्रित कर के देता हूँ। वह पानी तुम्हारी स्त्री को पिलाना। इससे तुम्हारे पुत्र होगा। फिर राजा पानी मंत्रित करा के कटोरा भर कर घर ले आया। इतने में सब रानियों ने पुत्र से संबंधित बात सुन कर पानी की माँग की। हर रानी राजा से कहने लगी कि पानी मुझे दो। इस प्रकार भीतर ही भीतर क्लेश होने लगा। राजा ने विचार किया कि अब मैं किसे पानी दूँ और किसे न दूँ ? यह सोच कर

उसने किसी को पानी नहीं दिया। फिर वह कटोरा वस्त्र से ढँक कर पानीहारे पर रख कर राजा अपने आवास में जा कर सो गया। फिर राजा को रात के समय प्यास लगी; तब पानी मँगाने के लिए पास में कोई मनुष्य नहीं था। एक दासी उसकी शय्या के पास सोयी हुई थी। उसने दासी से कहा कि अरी दासी! मुझे प्यास लगी है, इसलिए पानी ले आ। वह दासी जा कर मंत्रित किया हुआ पानी का कटोरा ले आयी और राजा को दे दिया। राजा ने भी अनजान में वह पानी पी लिया।

उस पानी के प्रभाव से राजा ने गर्भ धारण किया। दिन दिन पेट बढ़ता गया। इससे राजा लज्जायमान हुआ। उसने राजसभा में जाना छोड़ दिया। तब प्रधान ने विचार किया कि यह तो बहुत बुरा काम हुआ। फिर उसने राजा से कह कर पुनः अठासी हजार ऋषिओं को आमन्त्रित किया और उन्हें उपालंभ दिया कि यह आप लोगों ने क्या कर दिया? अब कोई अच्छा उपाय कीजिये। फिर ऋषियों ने तैंतीस कोटि देवों की आराधना की। तब इन्द्र ने आ कर अपने सेवकों के हाथ से राजा का उदर विदारण कर के बालक को बाहर निकाला। तब सब कहने लगे कि यह बालक स्तनपान नहीं कर सकेगा। फिर इन्द्र ने स्त्रीरूप धारण कर के उस बालक को स्तनपान कराया। बालक धीरे धीरे बढ़ने लगा। उसका नाम मान्धाता रखा गया। ऐसी अनेक वार्त्ताएँ हैं। इसलिए गर्भपरावर्तन भी होता है; यह बात निःसन्देह है।

हरिणगमेषी देवकृत गर्भपरावर्तन

इन्द्र के हुक्म के बाद पायदल कटक का मालिक हरिणगमेषी देव खुश हो कर हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजली कर के आज्ञा को विनय सहित प्रणाम कर के इन्द्र महाराज के पास से निकल कर उत्तर-पूर्व के मध्य की ईशान दिशा में गया। वहाँ उसने वैक्रिय समुद्घात किया। वह कैसे किया सो कहते हैं- उसने अपने आत्मप्रदेश शरीर से बाहर निकाल कर संख्यात योजन ऊँचा दंड किया। आत्मप्रदेश कर्मपुद्गल का समूह

दंडरूप कर के प्रकट किये। उस दंड को रत्नमय किया। वे रत्न किस किस जाति के थे ? सो कहते हैं- १. कर्केतक रत्न, २. वैडूर्य नीलरत्न, ३. वज्र रत्न, ४. लोहिताक्ष रत्न, ५. मसारगल्ल रत्न, ६. हंसगर्भ रत्न, ७. पुलक रत्न, ८. सौगंधिक रत्न, ९. ज्योतिसार रत्न, १०. अंजन रत्न, ११. अंजनपुलक रत्न, १२. जातरूप रत्न, १३. सुभग रत्न, १४. अंक रत्न, १५. स्फटिक रत्न और १६. अरिष्ठ रत्न। इन सोलह जाति के रत्नों में से असार पुद्गल को हटा कर सार पुद्गल को ग्रहण किया। फिर उत्तर वैक्रिय धारण कर के मूल रूप वहीं रखा। नया रूप बना कर वह मनुष्यलोक में आया।

वह किस गति से मनुष्यलोक में आया? सो कहते हैं- एक चंडा, दूसरी चपला, तीसरी जयणा और चौथी वेगा इन चार गतियों से चले, तो कितना ही काल बीत जाये, तो भी वह मनुष्यलोक में नहीं आ सकता। इन चार गतियों का परिमाण इस प्रकार है- २८३५८० याने कि दो लाख तिरासी हजार पाँच सौ अस्सी योजन और एक योजन के साठ भाग करें तो छह भाग अधिक, इतने क्षेत्र का एक कदम बना कर चलना सो प्रथम चंडागति का परिमाण है। तथा कोई ४७२६३३ याने कि चार लाख बहत्तर हजार छह सौ तैंतीस योजन और तीस कला अधिक, इतने क्षेत्र का एक कदम भरते चले, तो यह दूसरी चपलागति का मान जानना। तथा ६६१६८६ याने कि छह लाख इकसठ हजार छह सौ छियासी योजन और चौवन कला अधिक, इतने क्षेत्र का एक कदम भरते चले, तो यह तीसरी जयणागति का मान जानना। तथा ८५०७४० याने कि आठ लाख पचास हजार सात सौ चालीस योजन और अठारह कला अधिक, इतने क्षेत्र का एक कदम भरते चले, तो यह वेगागति का मान जानना।

अब इन गतियों के परिमाण से यदि देवता चले, तो वह छह महीनों में भी इस मनुष्यक्षेत्र में आ नहीं सकता। इसलिए दिव्य देवगति से असंख्यात द्वीप- समुद्र उल्लंघन करते हुए हरिणगमेषी देव जहाँ जंबूद्वीप का भरतक्षेत्र है, जहाँ ब्राह्मणकुंडग्राम नगर है, वहाँ ऋषभदत्त ब्राह्मण के घर में जहाँ

देवानन्दा ब्राह्मणी सोयी हुई थी, वहाँ गया। वहाँ जा कर भगवान को देख कर उसने प्रणाम किया। फिर देवानंदा ब्राह्मणी के सर्व परिवार को अवस्वापिनी निद्रा दे कर अशुभ पुद्गल दूर कर, शुभ पुद्गल प्रक्षेप कर (मिला कर) 'हे भगवन् ! आज्ञा दीजिये' ऐसा कह कर भगवान को देवप्रभाव से पीड़ारहित हाथ में ग्रहण कर करसंपुट में ले कर क्षत्रियकुंडग्राम नगर में ज्ञातकुल सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा के घर में जहाँ त्रिशला क्षत्रियाणी थी, वहाँ जा कर उसके सब परिवार को अवस्वापिनी निद्रा दे कर अशुभ पुद्गल बाहर निकाल कर शुभ पुद्गलप्रक्षेप कर भगवान को पीड़ारहित त्रिशलारानी की कोख में रखा। देव ने दसवें द्वार से प्रवेश किया और नाभि से वापस निकला, ऐसा वृद्ध वाक्य है। फिर त्रिशला के गर्भ में जो पुत्री थी, उसे वहाँ से उठा कर देवानन्दा की कोख में गर्भरूप में रख कर देव जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस चला गया। वहाँ चंडा-चपलादि चार गतियों से अधिक दिव्य देवगति से तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्र में लाख योजन परिमाण वाले शरीर जैसे कदम रखते हुए, जहाँ सौधर्म देवलोक में सौधर्मावतंसक विमान है तथा शक्र सिंहासन है और शक्रेन्द्र नामक देवों का राजा है, वहाँ गया और वहाँ जा कर शक्रेन्द्र को आज्ञा वापस सौंप दी। अर्थात् यह कहा कि आपने जो कहा था, वह सब काम कर आया हूँ।

प्रभु का त्रिशला रानी की कोख में अवतरण

उस काल में उस समय में श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी को वर्षाकाल का तीसरा महीना पाँचवाँ पक्ष आश्विन वदि तेरस के दिन बयासीवीं रात बीतने के बाद तिरासीवीं रात के वर्तमान में अपने हित के कारण अथवा भगवान के प्रति अनुकंपा के कारण जहाँ ब्राह्मणकुंडग्राम नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या देवानन्दा ब्राह्मणी है, उसकी कोख में से उठा कर जहाँ क्षत्रियकुंडग्राम नगर में सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा की त्रिशला क्षत्रियाणी रानी है, उसकी कोख में मध्यरात्रि के समय उत्तरा-फाल्गुनी

नक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर पीड़ा रहित रखा गया। उस काल में उस समय में भगवान तीन ज्ञानसहित आ कर उत्पन्न हुए।

मेरा यहाँ से संहरण किया जायेगा, ऐसा भगवान जानते थे। पर संहरण का समय सूक्ष्म होने से उसे वे जानते नहीं थे। और संहरण करने के बाद वे यह जानते थे कि मेरा संहरण किया गया। जिस रात में श्रमण भगवंत श्री महावीरस्वामी को देवानन्दा की कोख से उठा कर त्रिशला क्षत्रियाणी की कोख में रखा गया, उस रात्रि में देवानन्दा ब्राह्मणी को अपनी सुकोमल शय्या में सोते हुए और कुछ जागते हुए यह स्वप्न आया कि मेरे महामंगलकारी चौदह स्वप्न त्रिशला क्षत्रियाणी ने खींच लिये हैं अर्थात् हरण कर लिये हैं। यह सपना देख कर वह जाग गयी। जिस रात्रि में श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी को देवानंदा की कोख में से उठा कर वासिष्ठ गोत्रवाली त्रिशला क्षत्रियाणी की कोख में रखा गया, उस समय वह शय्या में सोयी हुई थी।

उस शय्या का स्वरूप कहते हैं- प्रथम जिसका स्वरूप कहा नहीं जा सकता ऐसा निवास का स्थान याने घर है। वह घर कैसा है? तो कहते हैं कि उस घर का मध्य याने दीवारों का भीतरी भाग चित्रों से चित्रित है और दीवारों का बाहरी भाग घिस कर सफेद चमकदार बनाया हुआ है। वह घर ऐसा है कि उसमें ऊपरी भाग चित्रों से सुशोभित है और जमीन का भाग याने फर्श मणिरत्नों के उद्योत जैसा है। इस कारण उस घर में सब अंधकार का नाश हो गया है। वहाँ नित्य उद्योत रहता है। जहाँ भूमि पर अनेक मांडणे मांडे हुए हैं, ऐसा आंगन है। उस आंगन में सरस सुगंधित पाँच वर्ण के पुष्पपुंज रखे हुए हैं। वे फूलों की रचना सहित हैं। तथा वह कृष्णागरु शुभ कुन्दरु शिलारस के धूप से मघमघायमान होने के कारण मनोहर है। वहाँ सुंगधित चूर्ण की सुगंध है। और जिसका वर्णन न किया जा सके ऐसी पुण्यवान के योग्य शय्या है।

उस शय्या में शरीर के अनुपात में दोनों ओर दो तकिये रखे हुए हैं। दो तरफ गालमसूरीये रखे हैं। वह दोनों ओर ऊँची है और मध्य में गहरी है। जैसे गंगा नदी की रेत में पैर रखने पर वह नीचे जाती है, वैसे ही जिस

पर पैर रखते ही नीचे चला जाये ऐसे निखारदार अतलस के पटकूल वस्त्र से वह शय्या ढँकी हुई है। वह शुभ मच्छरदानी से रचित रजरक्षा के लाल रमणीय सुकोमल वस्त्रों से ढँकी हुई है। अर्क के फल में रहे हुए कपास तथा मक्खन के समान उस शय्या का स्पर्श है। शुभ सुगंधित चूर्ण तथा फूल जिस पर बिछाये हुए हैं, ऐसी वह शय्या है। उस शय्या पर मध्यरात्रि के अवसर में त्रिशला क्षत्रियाणी सोयी हुई थी। उस समय वह गजवृषभादि चौदह स्वप्न देख कर जाग गयी।

त्रिशला क्षत्रियाणी ने चौदह स्वप्नों में से पहले स्वप्न में हाथी देखा। वह हाथी कैसा है? चार दाँतवाला है, बहुत ऊँचा है, जैसे मेघ के छींटे सफेद होते हैं, वैसा सफेद है। तथा जैसा मोती का हार, क्षीरसमुद्र का पानी, चन्द्रमा की किरणें, पानी के कण और रूपा का पर्वत होता है, वैसा सफेद है। उस हाथी के कुंभस्थल से मद झरता है। इस कारण से उसके कपोल के पास भौंरे गुंजारव कर रहे हैं। वह इन्द्र के ऐरावत जितना बड़ा दीखता है। वह हाथी मेघ के समान गंभीर शब्दों से गर्जना कर रहा है। ऐसा शुभ उत्तम, सब लक्षणों से सहित, विशाल उदरवाला हाथी पहले सपने में त्रिशला क्षत्रियाणी ने देखा।

दूसरे स्वप्न में त्रिशला क्षत्रियाणी ने वृषभ देखा। वह वृषभ कैसा है? सफेद कमल के समूह सरीखा श्वेत है। तथा अपने शरीर की कान्ति से सब दिशाओं में उद्योत करने वाला है। उसके कंधे की थूभी सब शोभाओं के समूह से सुशोभित है। उसके शरीर में पतले केश हैं। वे केश मानो तेल से चुपड़े हुए हों, ऐसे हैं। उसका शरीर बहुत सुन्दर और स्थिर है। जहाँ जैसा अंग चाहिये, वहाँ वैसा अंग है। याने जहाँ पतला अंग शोभा देता है, वहाँ पतला है और जहाँ मोटा अंग शोभा देता है, वहाँ मोटा अंग है। उसके दृढ़ गोल, शोभायमान, मलरहित, तेलादि से चुपड़े हुए तीक्ष्ण ऐसे दो सींग हैं। तथा मोती सरीखे उजले एक समान सुशोभित उसके दाँत हैं। ऐसा वृषभ मानो अनेक मंगलों का मुख है। उसे दूसरे सपने में त्रिशला ने देखा।

तीसरे स्वप्न में त्रिशलारानी ने सिंह देखा। वह सिंह कैसा है? मोती

का हार, क्षीरसमुद्र का पानी, चन्द्रमा की किरण, पानी के कण तथा रूपा का पर्वत इनके जैसा सफेद शरीर है जिसका, ऐसा है। वह सिंह रमणीय देखने योग्य है। दृढ़ हैं हाथ प्रमुख के अवयव जिसके, तथा उज्ज्वल गोल और तीक्ष्ण ऐसी जिसके मुख में दाढ़ें हैं, इन दाढ़ों से मुख शोभायमान है जिसका, कमल सरीखे सुकोमल लाल होंठ हैं जिसके, लाल कमलपत्र के समान तालु है जिसका, ऐसा सिंह जीभ बाहर निकाल कर लपलपायमान करता हुआ शोभायमान हो रहा है। तथा पीले बिजली सरीखे चमकते नेत्र हैं जिसके, विस्तीर्ण और पुष्ट तथा मस्त जंघाएँ हैं जिसकी, दृढ़ परिपूर्ण निर्मल स्कंध है जिसका तथा सुकोमल हैं भले विस्तीर्ण सिंहकेसर (मुख के केश) जिसके और सिंहकेसर के आटोप से सुशोभित है मुख जिसका, तथा जमीन पर पछाड़ कर ऊपर उठायी है पूँछ जिसने, ऐसी पूँछ का अन्त याने सिरा कान के मध्य में है जिसके तथा सौम्याकारवाला लीला करता हुआ आकाश से उतरता हुआ, त्रिशला के मुख में प्रवेश करता हुआ, ऐसा सिंह त्रिशला ने तीसरे सपने में देखा।

चौथे स्वप्न में त्रिशला क्षत्रियाणी ने संपूर्ण पूनम के चन्द्रमा सरीखा है मुख जिसका, ऐसी लक्ष्मी देवी को देखा। वह लक्ष्मी कहाँ रहती है? सो कहते हैं- ऊँचे हिमालय पर्वत पर एक पद्मद्रह है। उस द्रह में एक कमल है। वहाँ रहने वाली लक्ष्मी देवी का पैरों से लगा कर सारे अंग की शोभा का वर्णन श्री भद्रबाहुस्वामी करते हैं। क्योंकि प्रायः देवों के रूप वर्णन में पैरों से वर्णन शुरु किया जाता है, इसलिए यहाँ भी पैरों से ले कर वर्णन करते हैं।

उस लक्ष्मी देवी के पैर भले प्रकार से सोने के कछुए सरीखे मानो लाख के रंग में रंगे मांस सहित ऐसे, बीच में अति ऊँचे और पीछे झुके हुए ऐसे हैं। तथा ताँबे सरीखे नख हैं, कमल सरीखी कोमल उँगलियाँ है। पिंडियाँ केले सरीखी गोल हैं। नीचे नीचे पतली और ऊपर ऊपर मोटी ऐसी जंघापिंडियाँ हैं। घुटने मांस से भरे हुए हैं, इसलिए गुप्त हैं। वहाँ हड्डी दिखाई नहीं देती। तथा ऐरावत हाथी के समान जंघा का मध्यप्रदेश सुशोभित है। उसकी कमर में सोने की कटिमेखला है।

लक्ष्मीदेवी के नाभि से ले कर स्तन तक रोमराजि है। प्रायः स्त्रियों के शरीर में रोमराजि नहीं होती। उसमें भी देवों के तो सर्वथा नहीं होती। फिर भी कवीश्वर श्रृंगार रस का वर्णन करते समय बोलते हैं। वह रोमराजि कैसी है? काजल के समान तथा भौरों की श्रेणी के समान श्याम है। मेघघटा सरीखी काली है। उसके नितंब सरल मिले हुए सुकोमल, मनोहर विलास सहित, सरस सूखे फूल सरीखे कोमल हैं। उसका नाभिमंडल सुन्दर है। मुट्ठी में समा जाये ऐसी कमर है। पेट में त्रिवली है। उनसे वह शोभायमान है।

लक्ष्मीदेवी ने सर्वांगोपांग में अलंकार-आभूषण धारण किये हैं। वे आभूषण कैसे हैं? वे अनेक प्रकार की मणियों से जड़े हुए हैं और रत्नों से सोने में मढ़े हुए हैं। उसके हृदय में दो स्तन हैं। वे मानों सोने के कलश ही हैं। वे स्तन हार और कुन्दमाला से व्याप्त हैं। तथा शुभ मोतियों की जालियों से विराजमान सोनैयों की माला, जिसमें कहीं मणिसूत्र का धागा है, उससे कंठ शोभायमान है। उसके दो कानों में दो कुंडल शोभते हैं। ऐसे अलंकारों के समुदाय से लक्ष्मीदेवी का मुख शोभता है। जैसे राजा परिवार से शोभता है, वैसे ही लक्ष्मीदेवी का मुख आभूषणों से शोभता है। निर्मल कमल- पँखुडी सरीखे दीर्घ, तीक्ष्ण और अनियारे ऐसे उसके विशाल नेत्र हैं। उसके दो हाथों में कमल हैं। उनमें से वह पानी छिड़क रही है। लीला के लिए उसने अपने हाथ में कमलपंखा धारण किया है। जब वह लीला के लिए कमल हिलाती है, तब उसमें से सुगंध निकलती है। उस लक्ष्मीदेवी के मस्तक पर वेणीदंड बहुत निर्मलता से भरा हुआ श्याम रंग का है और वह लंबाई में कमर तक शोभता है। यह नख से ले कर सिर की वेणी तक वर्णन किया।

ऐसी लक्ष्मीदेवी पद्मद्रह के कमल में निवास करने वाली, हिमाचल पर्वत पर बैठी हुई दस दिशाओं से शोभायमान है। हाथी आ कर सूँड में पद्मद्रह से जल भर कर लक्ष्मीदेवी को स्नान कराता है। ऐसी लक्ष्मीदेवी को त्रिशला क्षत्रियाणी ने चौथे सपने में देखा।

हिमाचल पर्वत पर लक्ष्मीदेवी का निवास है। वहाँ इस देवी का

परिवार कितना है तथा निवास किस प्रकार का है, सो कहते हैं- इस भरतक्षेत्र के छह खंड है। इसके अन्त में उत्तर दिशा की तरफ एक चुल्ल हिमवन्त पर्वत सोने का है। वह एक सौ योजन ऊँचा है तथा एक हजार बावन योजन और बारह कला अधिक इतना चौड़ा है। उसके मध्य में पद्मद्रह है। वह दस योजन गहरा, हजार योजन लंबा और पाँच सौ योजन चौड़ा है। वह संपूर्ण जल से भरा हुआ और शाश्वत है। उसका तल वज्ररत्नमय है। वह चारों ओर भी वज्रमय है। उस द्रह के मध्यभाग में एक कमल है। उस कमल की नाल दस योजन दीर्घ है। कुछ अधिक तीन योजन की परिधि है। दस योजन नाल पानी में है। उसका वज्ररत्नमय मूल है। रिष्ट रत्नमय मूल का कन्द है। नाल इन्द्रनील रत्नमयी है। बाहर की पँखुड़ियाँ लाल सुवर्णमयी हैं। कुछ जांबूनद सुवर्णमयी अभ्यन्तर की पँखुड़ियाँ हैं। उनमें सुवर्णमयी कर्णिका याने मध्य की डोड़ी है। वह दो कोस चौड़ी और एक कोस ऊँची है। उसमें लाल सुवर्णकेसर हैं। उस कर्णिका में श्री लक्ष्मीदेवी का भवन है।

वह भवन एक कोस लंबा, आधा कोस चौड़ा और चौदह सौ चालीस धनुष्य ऊँचा है। उस भवन के दरवाजे पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशा में है। वे दरवाजे पाँच सौ धनुष्य ऊँचे और ढाई सौ धनुष्य चौड़े हैं। तथा उस घर में ढाई सौ धनुष्य प्रमाण एक मणिमय पीठिका है। उस पीठिका पर लक्ष्मीदेवी की शय्या है।

वहाँ इस देवी के मुख्य कमल की पँखुड़ी में उसके आभरणादि रखने के वलयाकार एक सौ आठ कमल हैं। उन कमलों की ऊँचाई मुख्य कमल से आधी जानना। इन एक सौ आठ कमलों से मूल कमल घिरा हुआ है। जैसे गढ़ से नगर घिरा हुआ होता है, वैसे ही जानना। इस मूलकमल के दूसरे वलय की पूर्व दिशा में महर्द्धिक चार देवियों के बसने के चार कमल हैं। वायव्य कोण, उत्तर दिशा और ईशान्य कोण इन तीन दिशाओं में देवियों के सामानिक देवों के बसने के चार हजार कमल हैं। श्रीदेवी की अभ्यन्तर पर्षदा के जो आठ हजार गुरुस्थानीय देव हैं, उनके बसने के आठ

हजार कमल आग्नेय कोण में है। मध्य पर्षदा के दस हजार मित्रस्थानीय देवों के बसने के दस हजार कमल दक्षिण दिशा में हैं। श्रीदेवी की बाह्य पर्षदा के किंकरस्थानीय बारह हजार देवों के बसने के बारह हजार कमल नैऋत्य कोण में हैं। श्रीदेवी के हाथी, घोड़ा, रथ, पायक, महिष, नाट्य, गंधर्व, इन सात कटकों के स्वामियों के रहने के सात कमल पश्चिम दिशा में है। लक्ष्मीदेवी के अंगरक्षक सोलह हजार देवों के बसने के सोलह हजार कमल, सो तीसरे वलय की चार दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में चार चार हजार कमल गिनते सोलह हजार कमल हैं। चौथे वलय में श्रीदेवी के अभ्यन्तर आभियोगिक बत्तीस लाख देवों के बसने के बत्तीस लाख कमल हैं। पाँचवें वलय में श्रीदेवी के मध्यम चालीस लाख आभियोगिक देवों के चालीस लाख कमल हैं। छठे वलय में श्रीदेवी के अड़तालीस लाख बाह्य आभियोगिक देवों के अड़तालीस लाख कमल हैं। एवं मूल कमल सहित सब मिल कर छहों वलयों के एक करोड़ बीस लाख पचास हजार एक सौ बीस कमल जानना। उन कमलों का मान मुख्य कमल से ले कर अनुक्रम से आधा आधा प्रमाण लेना। ये सब कमलवासी देव श्रीदेवी का परिवार जानना। यह देवी भवनपति की जानना।

जैनाचार्य श्रीमद् भट्टारक विजय राजेन्द्रसूरीश्वर-सङ्कलिते श्री कल्पसूत्र बालावबोधे द्वितीयं व्याख्यानं समाप्तम्।

卐 卐 卐

तृतीय व्याख्यान

पाँचवें से चौदहवें स्वप्न तक का विस्तृत वर्णन

पाँचवें स्वप्न में त्रिशला क्षत्रियाणी ने फूलों की दो मालाएँ देखीं। वे मालाएँ कल्पवृक्ष के सरस फूलों के कारण बहुत मनोहर हैं। तथा चंपा के फूल, अशोक के फूल, पुन्नाग के फूल- नागप्रियंगु सरीखे इस फूल के

वृक्ष होते हैं, मोगरा के फूल, मालती के फूल, जाई के फूल, जूही के फूल, कोल्लज फूल- ये किसी बेल विशेष के फूल हैं, कोज के फूल, कोरंट के फूल, दमन के फूल, नवमालिका के फूल, बकुलवृक्ष के फूल, तिलवृक्ष के फूल, वासंतिका के फूल, पद्मकमल के फूल, उत्पल याने पुंडरीक के फूल, कुंदमचकुंद वृक्ष के फूल, अगस्ति के फूल, आम्रमंजरी आदि अनेक प्रकार के फूलों की सुगंध है जिनमें, तथा उस मनोहर सुगंध से आकर्षित हो कर आये हुए भ्रमर भ्रमरियाँ गुंजारव कर रहे हैं जिनमें, ऐसी वे मालाएँ हैं। तथा इन दोनों मालाओं में सब ऋतुओं के फूल सुगंधित और पाँच वर्ण वाले हैं, परन्तु उनमें सफेद रंग विशेष है। उनमें जहाँ-जहाँ जो-जो फूल सुन्दर दीखता है, वहाँ-वहाँ वह-वह फूल गूँथा हुआ है। ऐसी दो मालाएँ पाँचवें स्वप्न में त्रिशलामाता ने देखीं।

छठे स्वप्न में चन्द्रमा देखा। वह चन्द्रमा गाय के दूध के झाग सरीखा उज्ज्वल है। रूपा के कलश सरीखा उज्ज्वल है तथा हृदयवल्लभ और नेत्रवल्लभ है। पूनम के संपूर्ण अंधकार का हरण करने वाला, शुक्लपक्ष में शोभायमान, कुमुदवन का बोधक याने उसे विकसित करने वाला, रात्रि की शोभा करने वाला, भली रीति से उजले काँच की तरह शोभायमान, आकाशरूपी सरोवर का हंस, दोनों पक्षों से पूर्ण, सब ज्योतिषियों का मुखमंडन, अंधकार का बैरी, कन्दर्पबाण को पूर्ण करने वाला, समुद्र के जल को बढ़ाने वाला- क्योंकि जब शुक्लपक्ष में चन्द्रमा ऊगता है, तब समुद्र की लहरें बढ़ती हैं, विरहिणी स्त्री के चन्द्र के उदय से विरह अधिक जागृत होता है, इसलिए अपनी किरणों से विरहिणियों का शोषण करनेवाला, आकाश का तिलक, रोहिणी का हृदयवल्लभ- क्योंकि चन्द्रमा रोहिणी का भरतार है, ऐसी लोगों में कहावत है; परन्तु रोहिणी तो नक्षत्र हैं, सो यह हो नहीं सकता। ऐसा पूनम का चन्द्र त्रिशलादेवी ने छठे सपने में देखा।

सातवें स्वप्न में सूर्य देखा। वह सूर्य अन्धकार के पटल को भेदने वाला है। उसका वर्ण लाल है। वह अशोकपुष्प सरीखा लाल है, पलाश के फूल सरीखा लाल है। जैसी आधी गूंजा होती है, वैसा लाल है। वह

कमलवन को खिलाने वाला है और इसी कारण से कमल की शोभा बढ़ाने वाला है। ज्योतिषशास्त्र की तथा ज्योतिष चक्र के चिह्न सरीखी पहचान कराने वाला है। आकाश में दीपक की तरह सुशोभित है। वह हिम के समूह को हाथ से गरदन पकड़ कर निकालने वाला है। वह ग्रहों का राजा है। रात्रि का नाश करने वाला है। ऊगते समय तथा अस्त होते समय दो घड़ी पर्यन्त उसे सुखपूर्वक देखा जा सकता है। इसके बाद सुखपूर्वक देखा नहीं जा सकता। और रात को विचरने वाले जो चोर आदि हैं, उनका भ्रमण मिटाने वाला है। वह शीत का नाश करेवाला है। वह मेरुपर्वत के चारों ओर निरन्तर विशाल मंडल सहित घूमता है तथा अपनी एक हजार किरणों से सब ज्योतिषियों की प्रभा को निस्तेज करता है।

यहाँ सूत्रकार सूर्य की हजार किरणें कहते हैं, सो जघन्य आश्रित जानना। लोक में भी सूर्य को सहस्रकिरण कहने की रुढ़ि है। परन्तु सूर्य की किरणों में तो हर महीने घट-बढ़ होती है। वह इस प्रकार है- चैत्र में १२०० किरणें, वैशाख में १३०० किरणें , ज्येष्ठ में १४०० किरणें, आषाढ़ में १५०० किरणें, श्रावण में १४०० किरणें, भाद्रपद में १४०० किरणें, आश्विन में १६०० किरणें, कार्तिक में ११०० किरणें, मार्गशीर्ष में १०५० किरणें, पौष में १००० किरणें, माघ में १०५० किरणें और फाल्गुन में ११०० किरणें होती हैं।

ऐसा लोकनयनसमान सूर्य त्रिशलादेवी ने सातवें स्वप्न में देखा।

आठवें स्वप्न में ध्वजा देखी। वह ध्वजा सोने के दंड पर रही हुई है। वह पाँच वर्ण के वस्त्र की ध्वजा है। उस ध्वजा पर जो अनेक रंग के सुकोमल मोरपंख लगे हुए हैं, वे चोटी के समान शोभायमान हैं तथा बहुत श्रीकार हैं। उस ध्वजा में सिंह का रूप आलेखित है। उससे वह बहुत ही शोभायमान है। वह सिंह, जैसा शंख उजला होता है, कुन्दवृक्ष का फूल उजला होता है, जल का कण उजला होता है तथा रूपा का कलश उजला होता है, वैसा उजला श्वेतवर्ण वाला है। उस सिंह को देख कर लोग ऐसा समझते हैं कि मानो यह सिंह आकाशमंडल को भेदने का प्रयत्न कर रहा है। ऐसी उस सिंह

की मुखाकृति तथा शरीराकृति है। उस ध्वजा का वस्त्र वायु के झोंकों से थोड़ा-थोड़ा चलायमान हो रहा है। इस प्रकार अत्यन्त ऊँचा और लोगों के देखने योग्य ऐसा ध्वज आठवें सपने में त्रिशलादेवी ने देखा।

नौवें स्वप्न में पूर्णकलश देखा। उसका रूप अत्यन्त देदीप्यमान है। वह निर्मल जल से भरा हुआ बहुत सुन्दर है। उसकी शोभा सूर्य मंडल सरीखी जाज्वल्यमान है। उस कलश के पास कमलबाग है याने कि वह कमलों से घिरा हुआ है। वह कलश सब मंगलों को प्राप्त कराने वाला है। वह पूर्णकलश प्रधान रत्नकमल पर रखा हुआ है। वह नयनों को आनन्द देने वाला है। सब दिशाओं में उद्योत करने वाला, पापरहित सर्वशोभा सहित वह सब प्रकार की लक्ष्मी का घर है तथा उस कलश के गले में छहों ऋतुओं के सुगंधित फूलों की माला है। ऐसा रौप्यमय पूर्णकुंभ (कलश) नौवें स्वप्न में त्रिशलारानी ने देखा।

दसवें स्वप्न में पद्मसरोवर देखा। उस सरोवर में ऊगते सूर्य से खिले हुए हजार पँखुडी के कमल हैं, उस विकस्वरमान कमल की सुगंध से जिसका जल सुगंधमय हुआ है तथा उन कमलों की प्रभा से जिसका पानी लाल-पीले रंग का दीखता है, जो पद्मसरोवर जल-मत्स्य-कच्छपादिक अनेक जलचर जीवों से भरा हुआ है, जिस पद्मसरोवर में कमलपर पड़े जल के छींटे देख कर ऐसा लगता है कि मानो नीले आँगन में मोती जड़े हैं, ऐसा वह महासरोवर है। उसमें सूर्यविकासी कमल, चन्द्रविकासी कमल, महापद्म (श्वेत) कमल, लालकमल इत्यादि कमलों की शोभा बनी हुई है। इससे वह बहुत रमणीय है। उन कमलों पर प्रसन्न हुए भ्रमर-भ्रमरियाँ आ आ कर गुँजारव कर रहे हैं और कादंबक हंस, चकवा, राजहंस, बगुले, सारस आदि पक्षियों से वह शोभायमान है अर्थात् इन जातियों के पक्षी वहाँ रहते हैं। ऐसा पद्मसरोवर त्रिशलादेवी ने दसवें सपने में देखा।

ग्यारहवें स्वप्न में क्षीरसमुद्र देखा। वह क्षीरसमुद्र कैसा है? जैसी शोभा चन्द्रमा के किरणों की है, वैसी शोभा उस समुद्र की है। चारों तरफ उस समुद्र का जल बढ़ रहा है। उसमें अधिकाधिक चंचल ऐसी ऊँची-ऊँची

लहरें उठ रही हैं। उन लहरों के कारण पानी बहुत ही चंचल हुआ है। तथा मंद-मंद पवन से चलायमान हुई लहरें समुद्रतट पर आ कर टकरा रही हैं। उसका शब्द जिनमें हो रहा है, उन लहरों से समुद्र शोभित है। वे लहरें मिलीजुली दौड़ती हैं। एक लहर के पीछे दूसरी लहर भागती है। पहले एक छोटी लहर चलती है, फिर उसके पीछे बड़ी लहर चलती है। ऐसी लहरों की उसमें शोभा है। उस समुद्र में जलचर जीव कल्लोल कर रहे हैं। महामगरमच्छ, तिमिंगल मच्छ, लघुमच्छ आदि ये सब परस्पर मिल कर जब खेलते हैं, तब उनकी पूँछें हिलने से उछला हुआ जो पानी है, उसमें से झाग प्रकट हो कर वह लहरों के द्वारा बह कर किनारे पर आ गिरता है। उसके ढेर हो गये हैं। वे सब ढेर कपूर के ढेर के समान दीखते हैं।

उस समुद्र में गंगाप्रमुख नदियों का पानी मिलता है। उसमें चौदह-चौदह हजार नदियों के परिवार के साथ गंगा और सिंधु ये दो भरतक्षेत्र की नदियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार चौदह-चौदह हजार नदियों के परिवार के साथ ऐरवतक्षेत्र की रक्ता और रक्तवती ये दो नदियाँ मिलती हैं। अट्ठाईस अट्ठाईस हजार नदियों के परिवार के साथ रोहिता और रोहितासा ये दो नदियाँ हेमवन्तक्षेत्र की मिलती हैं। अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियों के परिवार के साथ सुवर्णकूला और रूपकूला ये दो नदियाँ ऐरवतक्षेत्र की मिलती हैं। छप्पन्न-छप्पन्न हजार नदियों के परिवार के साथ हरिकंता और हरिसलिला ये दो नदियाँ हरिवर्षक्षेत्र की मिलती हैं। छप्पन्न-छप्पन्न हजार नदियों के परिवार के साथ नरकांता और नारीकांता ये दो नदियाँ रम्यक्क्षेत्र की मिलती हैं तथा पाँच-पाँच लाख के ऊपर बत्तीस बत्तीस हजार नदियों के परिवार के साथ सीता और सीतोदा ये दो नदियाँ महाविदेहक्षेत्र की मिलती हैं। कुल मिला कर चौदह लाख छप्पन्न हजार नदियों का पानी उस समुद्र में मिलता है।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि सूत्र में तो ऐसा पाठ है कि क्षीरसमुद्र स्वप्न में देखा और आप तो नाना प्रकार की लहरों से बढ़ता हुआ जल कहते हैं तथा

उसमें नदियाँ मिलती हैं, ऐसा कहते हैं। इसका क्या कारण है? उसे उत्तर देते हैं कि क्षीरसमुद्र का पाठ कहने से लवणसमुद्र का पाठ लेना। यदि लवणसमुद्र नहीं कहोगे तो 'गंगा और सिंधु नदियाँ मिलती हैं' यह पाठ भी सूत्रकार ने ही कहा है, सो नहीं मिलेगा। इसलिए यहाँ ऐसा समझना कि लवणसमुद्र का पानी मैला है, उस स्थान पर त्रिशलामाता इस लवणसमुद्र का पानी क्षीरसमुद्र के जल जैसा देखती है। ऐसा क्षीरसमुद्र त्रिशलादेवी ने ग्यारहवें स्वप्न में देखा।

बारहवें स्वप्न में देवविमान देखा। वह पुंडरीक उत्कृष्ट विमान है। उसमें उत्तम सुवर्णमणि के एक हजार आठ खंभे लगे हुए हैं। वह विमान आकाश में दीपक के समान चमक रहा है। उद्योत में सूर्य मंडल सरीखी शोभा है जिसकी, तथा जिस विमान में सोने की दीवारों में नागफनी खीले लगे हुए हैं, स्थान-स्थान पर दिव्य फूलमालाएँ और सुवर्णपत्र से लंबायमान मोतियों की मालाएँ लटक रही हैं जिसमें, तथा जिस विमान की दीवारों में मृग-हिरन के रूप, नाहर के रूप, बलद के रूप, घोड़े के रूप, मगरमच्छ, भारंड पक्षी, गरुड़, मयूर आदि के रूप, सर्प के रूप, किन्नर देवों के रूप, कस्तूरी मृग के रूप, शार्दूल सिंह के रूप, हाथी के रूप, वनलता, पद्मलता आदि के रूप चित्रकारी में हैं, जिस विमान में नाटक हो रहे हैं, उस नाटक में जो बाजे बज रहे हैं, उनके शब्द से गुंजित वह विमान है। उस विमान में मेघगर्जना सरीखा देवदुंदुभी का शब्द हो रहा है। इससे मालूम होता है कि वह शब्द सर्वत्र छा गया है। उस विमान में अगर, कुन्दरु, शिलारस आदि के धूप की मघमघायमान सुगंध फैल रही है। उस विमान में देवों के योग्य सदा उद्योत हो रहा है। देवों के योग्य, सर्वदा सात सुखों का निवासरूप ऐसा देवविमान त्रिशलामाता ने बारहवें सपने में देखा।

तेरहवें स्वप्न में रत्नों की राशि देखी। १. पुलकरत्न, २. वज्ररत्न, ३. नीलरत्न, ४. शशांकरत्न, ५. कर्केतकरत्न, ६. लोहितरत्न, ७. मरकतरत्न, ८. प्रवालरत्न, ९. स्फटिकरत्न, १०. सौगंधिकरत्न, ११. हंसगर्भरत्न, १२. मसारगल्लरत्न, १३. अंजनरत्न, १४. चंद्रप्रभरत्न, ऐसे

अन्य भी अनेक जाति के उत्तम रत्न सोने के बड़े थाल में भरे हुए थे। मेरुपर्वत जितनी ऊँची, आकाश में देदीप्यमान ऐसी रत्नों की राशि त्रिशलादेवी ने तेरहवें सपने में देखी।

चौदहवें स्वप्न में निर्धूम अग्नि देखी। वह अग्नि बहुत उजली, निर्मल, पीले और लाल वर्णवाली तथा मधु और घृत से सिंचित, निर्धूम धगधगायमान जाज्वल्यमान शिखावाली है। उस अग्नि में अनेक छोटी शिखाएँ हैं तथा कोई शिखा अधिक ऊँची तो कोई उससे भी अधिक ऊँची ऐसी अनेक शिखाएँ हैं। बहुत छोटी ऐसी अनेक ज्वालाओं से अग्निशिखाएँ मिल रही हैं। उस अग्नि में अनेक ज्वालाएँ आपस में मिल रही हैं। ऐसी धूम्ररहित अग्नि की ज्वालाएँ आकाशप्रदेश में धधक रही हों, उनके समान अति चपल अग्नि की शिखा त्रिशलादेवी ने चौदहवें सपने में देखी।

इन स्वप्नों में बारहवें स्वप्न में देवविमान कहा गया है, सो जिस तीर्थंकर का जीव देवलोक से च्यव कर माता की कोख में आता है, उसकी माता विमान देखती है और जिस तीर्थंकर का जीव नरक से निकल कर माता की कोख में आता है, उसकी माता बारहवें सपने में भवन देखती हैं, ऐसा रहस्य है।

ये चौदह स्वप्न देख कर त्रिशलारानी जागृत हुई। ये स्वप्न शुभ हैं, सौम्य हैं, बहुत सुन्दर और वल्लभ है दर्शन जिनका, शुभ रूप है जिनका, ऐसे हैं। ऐसे स्वप्न देख कर त्रिशलामाता जाग गयी। जैसे कमल खिलता है, वैसे उसके नेत्र विकसित हुए। हर्ष के कारण से उसका सर्व अंग हर्षयुक्त हुआ। उसकी सर्व रोमराजि उल्लसित हुई। ये चौदह सपने सब तीर्थंकरों की माताएँ जब तीर्थंकर गर्भ में आते हैं, तब देखती हैं। वैसे ही त्रिशलादेवी ने भी श्री महावीरस्वामी कोख में आये, इस कारण से ये चौदह सपने देखे।

इसके बाद त्रिशला क्षत्रियाणी पूर्व में कहे हुए चौदह स्वप्न देख कर जागने के बाद अपने हृदय में बहुत प्रसन्न हुई। सन्तुष्ट हुई। मेघ की धारा

से आहत कदंबवृक्ष के फूल के समान उसके रोम उल्लसित हुए। अर्थात् उसके रोम-रोम में हर्ष प्रकट हुआ। फिर उसने अपने देखे हुए सपनों को याद किया कि अनुक्रम से मैंने अमुक-अमुक सपने देखे। इस प्रकार याद कर वह उठी। उठ कर बाजोठ पर पैर रख कर नीचे उतरी। उतर कर न उतावली याने मन में उतावल नहीं है तथा काया से चपलता नहीं है, नहीं धीमी, मार्ग में ठोकर रहित, विलंब रहित, दीवार आदि का सहारा न लेती हुई, राजहंसी सरीखी गति से चलती हुई जहाँ सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा की शय्या थी, जहाँ सिद्धार्थ क्षत्रिय सोये हुए थे, वहाँ जा कर सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा को मधुर वाणी से जगाने लगी। जो सिद्धार्थ राजा को अतिप्रिय लगे, सिद्धार्थ राजा जैसी वाणी की सदा चाहना करे ऐसी वाणी तथा द्वेष रहित, सब के मन को अच्छी लगने वाली, अतिप्रियता प्रकट करने वाली, स्वर-अक्षरों से स्पष्ट, कल्याण करने वाली, वृद्धि करने वाली, निरुपद्रवी अर्थात् उपद्रवरहित, धनलाभ कराने वाली, मंगल करने वाली, श्रीकार अलंकारादि शोभासहित, हृदय में कोमल लगनेवाली, जो वाणी सुनने से मन को आनन्द होता है, तथा कोमल, मीठी, रसयुक्त, जिसमें वचन थोड़े और अर्थ बहुत है, ऐसी वाणी से त्रिशलादेवी ने अपने स्वामी को जगाया।

सिद्धार्थ राजा के जागने पर त्रिशलारानी सिद्धार्थ राजा की आज्ञा से नाना प्रकार के मणिरत्नों से जड़ित सोने के बाजोठ पर पालखी मार कर बैठी। रास्ते की थकान मिटा कर सुखपूर्वक बैठी। बैठ कर सिद्धार्थ राजा से मधुर वाणी से बोली कि हे स्वामिन्! निश्चय ही आज शय्या में कुछ सोते कुछ जागते मैंने गज-वृषभादि चौदह सपने देखे। उन्हें देख कर मैं जाग गयी। उन महान सपनों का फल मेरे लिए क्या होगा? तब सिद्धार्थ राजा ने त्रिशला के मुख से ऐसे स्वप्न सुन कर हर्ष-सन्तोष प्राप्त कर चित्त में आनन्दित हो कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। उसके हृदय में प्रीतिकारक परम सौम्य हर्ष छा गया। मेघ की धारा से आहत कदंबवृक्ष के फूल के समान वह उल्लसित हुआ। स्वप्न सुन कर उसने विचार किया। अपने स्वभाव के अनुसार अपने बुद्धिविज्ञान से उन स्वप्नों का अर्थ समझा। अर्थ

समझ कर त्रिशला रानी से मधुर वचनों से वह कहने लगा कि-

हे देवानुप्रिये ! तूने मनोहर सपने देखे हैं। तूने कल्याणकारी सपने देखे हैं। तूने शिवकारक, धनकारक, आरोग्यकारक तथा बहुत लंबी उम्र करने वाले सपने देखे हैं।

उन सपनों का फल इस प्रकार है- तुम्हें अर्थलाभ होगा, भोगलाभ होगा, सुखलाभ होगा। अवश्य ही नौ महीने साढ़े सात दिन पूरे होने पर हमारे कुल में ध्वजासमान, द्वीपसमान, दीपकसमान, पर्वतसमान स्थिर, मुकुटसमान, तिलकसमान, सूर्यसमान, कुल का आधार, कुल की वृद्धि करने वाला, कुल की कीर्त्ति करने वाला, कुल का निर्वाह करने वाला, कुल का यश बढ़ाने वाला, कुल में वृक्ष समान, अनेक लोगों को अपनी छत्रछाया में रखने से कुल की विशेष वृद्धि करने वाला राजाधिराज ऐसा पुत्र होगा।

तथा सुकोमल हैं हाथ-पैर जिसके, संपूर्ण पंचेन्द्रियाँ हैं जिसकी, लक्षण, व्यंजन और गुणों से सहित मानोन्मान प्रमाण सर्व शरीर सुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्याकार, मनोहर, दर्शनीय ऐसा पुत्र तुम्हें होगा। वह पुत्र बालक अवस्था पूर्ण कर जब युवान अवस्था में आयेगा, तब सब कलाओं को मात्र देखने से जान लेगा। उसे सिखाना नहीं पड़ेगा। वह युवान अवस्था में शूरवीर महादानेश्वरी, स्वप्रतिज्ञा-निर्वाहक याने अपनी अंगीकार की हुई बात का निर्वाह करने वाला, संग्राम में वीर याने पीछे नहीं हटने वाला, जमीन पर राज करने वाला, बहुत हाथी, घोड़े, पायदल प्रमुख का मालिक ऐसा राजाओं का राजा होगा। इसलिए तुमने उत्तम सपने देखे हैं। इस तरह सिद्धार्थ राजा ने दो बार तीन बार त्रिशला रानी से कहा और खूब प्रशंसा की।

इसके बाद त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ राजा के मुख से यह बात सुन कर सन्तुष्ट हो कर हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजली कर के बोली कि हे स्वामिन् ! यह अर्थ ऐसा ही है। आपने कहा सो मान्य करने जैसा है, सन्देहरहित है, जैसा मैंने चाहा था, उसी के अनुसार मैंने आपके मुख से

ग्रहण किया है। अतः जो आप कहते हैं, वह अर्थ सत्य है। इस प्रकार बार-बार कह कर, सपनों के अर्थ को अच्छी तरह अंगीकार कर, सिद्धार्थ राजा की आज्ञा ले कर, नाना प्रकार के मणियों से जड़ित सोने के बाजोठ पर से उठ कर नहीं उतावली नहीं धीमी ऐसी पूर्व में कही हुई रीति के अनुसार चलती हुई जहाँ उसका अपना शयनघर था वहाँ गयी। वहाँ जा कर, उत्तम सपने मैंने देखे हैं, इसलिए अब मुझे सोना नहीं चाहिये, यदि सो जाऊँगी, तो अन्य कोई पापरूप खोटे सपने आ जायेंगे और इन अच्छे सपनों का फल चला जायेगा; इसलिए देव-गुरु से संबंधित अच्छी, मंगलकारक, शुभकारक धर्मकथा कह कर रात पूरी करूँ, ऐसा सोच कर स्वप्न-जागरण करते हुए वह स्वयं जागती रही।

सिद्धार्थ राजा का कचहरी में आगमन

इसके बाद प्रभात समय में सिद्धार्थ राजा ने पारिवारिक सेवक पुरुष को बुला कर कहा कि हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र जाओ और बाहरी उवट्टाणशाला (कचहरी) को गंधोदक से सींचो। वहाँ का कचरा-काँटा निकाल कर साफ करो। उसे लीपो। लीप कर प्रधान सुगंधित पंचवर्ण के फूलों के ढेर लगवाओ। कृष्णागर, कुंदरु और शिलारस का धूप करो और सुगंधित चूर्ण की गोली, अगरबत्ती लगाओ। सुगन्ध से अभिराम करो। सुगंध से वासित करो। यह काम तुम करो, अन्य किसी के द्वारा करवाओ और मेरी आज्ञा वापस तत्काल सौंपो। तब कौटुंबिक पुरुष यह सुन कर बहुत खुश हो कर हाथ जोड़ कर बोला कि जैसा आपने कहा सो मान्य है। फिर सिद्धार्थ राजा के पास से निकल कर जहाँ बाहरी सभागृह था, वहाँ जा कर गंधोदक छाँटना आदि सब काम राजा के हुक्म के अनुसार कर के वहाँ सिंहासन स्थापन कर के जहाँ सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा थे, वहाँ जा कर हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजली कर के बोला कि हे स्वामिन्! जो आपने फरमाया था, वह सब काम हम कर आये हैं। ऐसा कह कर आज्ञा वापस सौंपी।

इसके बाद कुछ लाल-सफेद-पीला प्रभात हुआ। सूर्यविकासी कमल खिल गये। चन्द्रविकासी कमल मुरझा गये। उज्ज्वल प्रभात हुआ। सूरज

ऊगा। वह सूर्य अशोक सरीखा लाल है, पलाश के फूल सरीखा लाल है, तोते के मुख सरीखा लाल है, आधी गुंजा सरीखा लाल है, ममोलीया एक जीव होता है, उसके जैसा लाल है, बफोरिया के फूल सरीखा लाल है, कबूतर के पैर और नेत्र सरीखा लाल है, जासूद के फूल सरीखा लाल है, हिंगलू के ढेर सरीखा लाल है। ये पूर्व में कही जो वस्तुएँ हैं, वैसी किसी भी लाल वस्तु से अधिक लाल, कमलाकर नामक तालाब में अनेक कमलों को विकसित करने वाला ऐसे सूर्य का उदय हुआ। हजार किरणों का धारक, दिवस का कारक, तेज से जाज्वल्यमान, अंधकार का नाशक, चोर का प्रचार मिटाने वाला, कुमकुम की प्याली सरीखा लाल, उस सूर्य की नयी धूप से मानो संपूर्ण मनुष्यलोक कुमकुम सरीखा लाल हो गया है, ऐसा सवेरा हुआ।

उस समय राजा ने शय्या से उठ कर बाजोठ पर पैर रखा। वह बाजोठ से नीचे उतरा। उतर कर जहाँ मल्लयुद्ध करने की शाला है, वहाँ जा कर मल्लयुद्धशाला में प्रवेश कर अनेक प्रकार के मल्लयुद्ध के करतब किये। फिर थक जाने के बाद सौ औषधिपाक तेल, हजार औषधिपाक तेल, सुगंधप्रधान तेलप्रमुख अन्य भी तेल जो धातुवृद्धि करने वाले हैं, जठराग्नि जगाने वाले हैं, मांसपुष्टि करने वाले हैं, बलवृद्धि करनेवाले हैं, सब इन्द्रियों सहित शरीर को उल्लसित करने वाले हैं, जिनके अभ्यंगन से त्वचा में तेजवृद्धि होती है, ऐसे अनेक जाति के तेलों से मालिश करवायी।

तेलमालिश करने वाले कैसे हैं? वे बहुत चतुर, अति सुकोमल हाथ-पैर वाले, तेलमालिश करते वक्त हाथ के तल (हथेली) का मल शरीर में उतारने की क्रिया में दक्ष, परिपूर्ण हाथ-पैर वाले, अवसर के जानकार, शीघ्रता से कार्य करने वाले, सर्व मर्दन करने वालों में उत्कृष्ट, विवेकवान, बुद्धिमान, सयाने, पंडित, मालिश करते हुए न थकने वाले याने परिश्रम को जीतनेवाले इत्यादि गुणों के जानकार हैं।

वे मालिश किस तरह करते हैं? जिससे हड्डी को सुख हो याने हड्डी को सुखकारक, मांस को सुखकारक, त्वचा को सुखकारक, रोम को

सुखकारक, इन चारों को सुखकारक ऐसी मालिश करते हैं।

इस प्रकार इन पूर्वोक्त तेलों से ऊपर कहे अनुसार मालिश किये जाने से थकान दूर होने के बाद सिद्धार्थ राजा ने, मल्लशाला से बाहर निकल कर जहाँ स्नानघर था, वहाँ जा कर स्नानघर में प्रवेश किया। वह स्नानघर कैसा है? उसमें मोती की जालियों के झरोखे हैं। उसका धरतीतल विचित्र मणिजटित है। वहाँ रमणीय स्नानमंडप है। उसमें अनेक प्रकार के मणिरत्नों से जड़ित चित्रित अनेक बाजोठ हैं। उन पर राजा सुखपूर्वक बैठे। स्नानजल कैसा है? फूलों की सुगंधवाला जल, चन्दन-कपूरादि वासितजल, उष्णजल, शुभजल, गंगाप्रमुख का निर्मल जल ऐसा स्नानजल है। उस जल से राजा ने प्रधान मज्जनविधि से कल्याण कारक स्नान किया। वहाँ अनेक प्रकार के जल उछालने प्रमुख कौतुक कर के कल्याणकारक स्नान के अन्त में कमल सरीखे सुँवाले गंधवस्त्र से शरीर पोंछा। फिर बहुमोल वस्त्ररत्न पहने।

इसके बाद सरस गोशीर्ष चन्दन से शरीर पर लेपन किया। पवित्र माला धारण की। वर्ण कुमकुमादि विलेपन किया। फिर मणिजड़ित सोने के आभूषण धारण किये। तथा अठारहसरा हार, नवसरा हार, तीससरा हार, लंबे झुमके प्रमुख आभूषण धारण किये और कन्दोरा बाँधा। गले में कंठी प्रमुख पहनी। उँगलियों में अंगूठी, वेढप्रमुख तथा बालों में पुष्पप्रमुख के आभूषण धारण किये। अच्छे जड़े हुए कड़े, जड़े हुए बेरखे तथा भुजाप्रमुख में भुजबंधादि धारण किये। इससे मानो भुजा स्तंभित हो गयी। इस कारण राजा का रूप बहुत निखर गया। कानों में कुंडल डालने से राजा का मुख बहुत शोभायमान हो गया। फिर राजा ने मस्तक पर देदीप्यमान मुकुट धारण किया। उनकी छाती हारप्रमुख से सुशोभित हो गयी। अंगूठियों से उँगलियाँ पीली हो गयीं। फिर राजा ने लंबे वस्त्र का उत्तरासंग कंधे पर डाला। अनेक प्रकार के मणिरत्न निर्मल बहुमोल, कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित, देदीप्यमान, शुभ रचना से एक दूसरे में मिले हुए आभूषण मनोहर दिखाई देते थे। फिर राजा ने वीरवलय धारण किया।

वीरवलय एक अलंकार है। जो शूरवीर होता है, उसे यह वीरवलय राजा इनाम में देता है। याने कि यह किसी को सम्मानित करने का अलंकार है। कुछ लोग कहते हैं कि यह अलंकार हाथ में पहना जाता है, तो कुछ कहते हैं कि यह कान में पहना जाता है।

अब अधिक क्या वर्णन करें? वह सिद्धार्थ राजा साक्षात् कल्पवृक्ष सरीखा हुआ। जैसे कल्पवृक्ष पत्र-पुष्प-फल सहित शोभित होते हैं, वैसे ही सिद्धार्थ राजा अलंकारों से शोभायमान हैं। तथा पुरुषों में इन्द्र समान, कोरंटवृक्ष के फूलों की मालाओं से सजाया हुआ छत्र मस्तक पर धारण कर के, श्वेत चामर अपने ऊपर ढुलवाते हुए, लोगों से मांगलिक के 'जय जय' शब्दों का उच्चारण करवाते हुए १. अनेक गणनायक याने अपने घर में जो लोग हैं उनके मालिक, २. दंडनायक याने देश की चिन्ता करने वाला, ३. हाथियों का स्वामी, ४. राजपुत्र, ५. कोतवाल, ६. मांडवीया, ७. कुटुंब का मालिक, ८. छोटा प्रधान-बड़ा प्रधान, ९. मांडलिक, १०. महामांडलिक, ११ ज्योतिषी, १२. दरबान, १३. राजा के साथ जन्मा हुआ अमात्य, १४. पीठीमर्दन करने वाले, १५. नगर के प्रमुख, १६. चौधरी, १७. बनिया, १८. सेठ, १९. सेनापति, २०. सार्थवाह २१. दूत, २२. देश की संधि के रखवाले याने संधिपालक[1] तथा व्यवहारी, २३. अंगरक्षक २४. पुरोहित, २५. वृत्तिनायक, २६. वहिवाहक, २७. थइयायत, २८. पडु-पडियायत, २९. टाकटमाली, ३० ऐन्द्रजालिक,

---

संधिपाल की परीक्षा-

१. यहाँ संधिपालक कहा है सो- किसी राजा के सरहद पार के राजा के साथ सरहद के विषय में विवाद उत्पन्न होने से राजाओं में विरोध होता है, तब सरहद निश्चित कर जो समझौता कराता है, उसे संधिपालक कहते हैं। इस पर कथा कहते हैं- कौशांबी नगरी में जितशत्रु राजा राज करता था। उसके प्रधान, पुरोहित, सेठ, सेनापति, भंडारी, संधिपालक इत्यादि बहुत बड़ा परिवार था। सब अपने अपने अधिकार में सावधान थे।

एक बार किसी पुरुष ने राजा से कहा कि तुम्हारे सब सेवक काम करते हैं, पर संधिपालक तुम्हारा अनाज खा कर भी खोटा करते हैं। इसलिए इसकी जाँच करनी चाहिये। तब राजा ने संधिपालक से कहा कि तुम मनचिन्तित द्रव्य खाते हो, पर काम कुछ करते नहीं हो।

३१. फलमाली, ३२. मंत्रवादी, ३३. धनुर्वादी, ३४. दंडधर, ३५. धनुर्धर, ३६. खड्गधर, ३७. छत्रधर, ३८. चामरधर, ३९. पताकाधर, ४० नेजाधर, ४१ दीवीधर, ४२. पुस्तकधर, ४३. झारीधर, ४४. तांबूलधर, ४५. प्रतिहार, ४६. शय्यापालक, ४७. गजपालक, ४८. अश्वपालक, ४९. अंगमर्दक, ५०. आरक्षक, ५१. मीठे वचन बोलने वाला, ५२. कथावाचक, ५३. सत्यवादी, ५४. गुणवर्णन करने वाला, ५५. समस्या कहने वाला, ५६. पारसी भाषा बोलने वाला,

---

इस पर संधिपालक ने कहा कि मैं बड़े-बड़े काम करा देता हूँ। परस्पर बैरभाव हो, तो मित्रता करा देता हूँ और मित्रता हो, तो विरोध करा देता हूँ। मैं बुद्धि के अनेक काम कर सकता हूँ। मुझमें यह गुण है।

फिर राजा ने उसकी परीक्षा के लिए अपने दुश्मन अरिमर्दन राजा के साथ मिलाप कराने के लिए भेंट के रूप में एक करंडक सी कर उसे दिया और कहा कि यह राजा को दे देना और हमारा बैर मिटा देना। यह कह कर संधिपालक को अरिमर्दन के पास भेजा। वहाँ से चलते चलते कुछ दिन बाद वह अरिमर्दन राजा के पास पहुँचा। फिर राजा के आगे भेंट रखते हुए पाँव छू कर बोला कि हे राजन्! जितशत्रु राजा ने तुम्हें प्रणाम कहा है और यह भेंट भेजी है। राजा ने भेंट खोल कर देखी, तो उसमें से करंडक निकला। उसे खोला तो उसमें से दृढ़बंधन से बँधी हुई एक सोने की डिबिया निकली। उसके बंधन खोले तो उसमें से राख निकली। तब प्रधान ने कहा कि तुम्हारे बैरी ने राख भेजी है। यह राख मल कर तुम जोगी बन जाओ। यह सुन कर राजा क्रोधातुर हुआ।

तब संधिपालक ने जान लिया कि राजा ने बैर साध लिया है। यह सोच कर औत्पातिकी बुद्धि से वह कहने लगा कि हे राजन्! तुम उल्टा विचार मत करो। यह राख बहुत गुणकारी है। राजा ने पूछा कि इसमें क्या गुण है? तब संधिपालक बोला कि हमारे राजा ने एक यज्ञ किया था। उसमें अपार धन खर्च किया। यज्ञ पूरा होने के बाद उसकी भस्म तिलक करने के लिए सब राजाओं को भेजी है। इसमें कोई विरोध नहीं है। प्रभातकाल में इसका तिलक करने से जन्मान्तर के पाप नष्ट होते हैं और सौभाग्य बढ़ता है। यह सुन कर राजा प्रसन्न हुआ और उसने जाना कि मैंने बैरभाव से उल्टा सोचा, पर उसने तो बैर टालने के लिए यह उपकार किया है। फिर राजा ने उस संधिपालक को बहुत सम्मानित कर एक महीने तक अपने पास रख कर बहुत हाथी, घोड़े, आभूषण दे कर, पहेरामणी दे कर बिदा किया। तथा अब तुम्हारे राजा के साथ हमारी परम मित्रता है, ऐसा पत्र लिख दिया। ये सब भेंट ले कर संधिपालक अपने राजा के पास गया। उसे राजा का पत्र दिया और सब भेंट वस्तुएँ भी दीं। तब राजा चकित रह गया।

५७. वैय्याकरणपाठी, ५८. तर्कपाठी, ५९. साहित्यबन्धक, ६०. लक्षणबंधक, ६१. छन्दबन्धक, ६२. अलंकारज्ञाता, ६३. नाटकबन्धक, इनके परिकर के साथ घिरा हुआ सिद्धार्थ राजा स्नानघर से निकल कर सभामंडप में गया। वह कैसा शोभता है? धवल मेघ की घटा में से निकलते हुए सूरज के समान शोभता है। तथा जैसे नक्षत्र-ग्रह प्रमुख तारों में चन्द्रमा शोभता है, लोकों में राजा शोभता है, वैसा मज्जनघर से निकलते हुए शोभायमान हुआ नरपति नरों में इन्द्र, नरों में वृषभसमान, नरों में सिंहसमान, बहुत अधिक राजतेज की लक्ष्मी से चमकता हुआ स्नानघर से निकल कर जहाँ सभा की शाला है, वहाँ जा कर सिंहासन पर पूर्व दिशा की तरफ मुख कर के बैठा।

स्वप्नपाठकों को आह्वान

बैठ कर स्वयं से उत्तर और पूर्वदिशा के मध्य के ईशानकोण में आठ बाजोठ श्वेत वस्त्र से ढँके हुए, श्वेत सरसव और श्वेत द्रोभ कुमकुम से मंगल के लिए पूज कर स्थापन किये और एक परदा बाँधा। वह परदा

एक बार राजा ने अपनी पटरानी से कहा कि तू तेरे पीहर चली जा। जब मैं नामांकित मुद्रिका भेजूँ, तब तुरन्त चली आना; पर अन्य किसी के कहने से मत आना। इसके बाद वह रानी अपने पीहर चली गयी। फिर राजा ने संधिपालक से कहा कि मेरी रानी नाराज हो कर पीहर चली गयी है। उसे तुम बुला लाओ तो तुम्हारी अक्ल सही जानूँ। फिर संधिपालक तीर्थवासी का वेश धारण कर रानी के पीहर के गाँव गया। रानी को खबर मिली, तब रानी ने उसे बुलाया और कहा कि तू मुझसे मिलने क्यों नहीं आया? तब उसने कहा कि अब मैं तीर्थवासी हुआ हूँ, इसलिए संसार से संबंधित किसी कार्य में नहीं पड़ता। रानी ने कहा कि धन्य है तेरा अवतार। पर मुझे राजा के समाचार तो बता। तब संधिपालक सिर हिला कर कहने लगा कि राजा ने अब किसी राजा की पुत्री के साथ विवाह करने का विचार किया है। वह कन्या बहुत रूपवती है और राजा ने उसे पटरानी बनाने का सोचा है। यह बात सुन कर रानी शीघ्रता से पुनः अपने घर गयी। राजा ने पूछा कि तुम बिना बुलाये उतावली क्यों आ गयी? तब रानी ने गुस्से हो कर कहा कि तुम अब नयी पटरानी के घर जाने वाले हो, तो अब मुझे क्यों बुलाओगे? यह उपालंभ सुन कर राजा चकित रह गया। फिर राजा ने संधिपालक को बुला कर रानी की भ्रान्ति दूर की। रानी को मना कर राजा हर्षित हुआ। संधिपालक को बहुत वस्त्राभूषण दे कर राजा ने उसका सम्मान किया।

कैसा है? वह नाना प्रकार के मणिरत्नों से जड़ा हुआ है। सब लोगों के देखने योग्य, बहुमूल्य, शुभ पट्टण में निर्मित, रेशमी वस्त्र का, अनेक प्रकार की चित्रकारी वाला याने मृग, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, मत्स्य, पक्षी, सर्प, किन्नर, अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता इत्यादिक अनेक रूप उस परदे में चित्रित हैं। ऐसा परदा बाँधा। उस परदे के भीतरी भाग में अनेक जाति के मणिरत्नों से जड़ित अच्छी सुकोमल गद्दियों सहित मशरू का वस्त्र ढँका। उस पर श्वेत वस्त्र ढँका। जिसका स्पर्श सुकोमल अंग को सुखकारक है, ऐसा एक बढ़िया बाजोठ त्रिशला क्षत्रियाणी के लिए रचाया। फिर सिद्धार्थ राजा ने पारिवारिक पुरुष को बुला कर कहा कि हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्रमेव याने तत्काल अष्टांग महानिमित्त के जानकार, सूत्र-अर्थ धारण करने वाले, अनेक प्रकार के शास्त्रों में चतुर और स्वप्नशास्त्र में कुशल ऐसे स्वप्नलक्षण पाठकों को बुलाओ।

यहाँ आठ अंगों के नाम कहते हैं- प्रथम अंगस्फुरणविचारांग- इसमें शरीर के स्फुरण का विचार है। जैसे कि स्त्री का बायाँ अंग फड़के तो अच्छा इत्यादि बातें जानना। दूसरा स्वप्नविचारांग- इसमें उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ स्वप्नों का विचार है। तीसरा स्वर-विचारांग- इसमें काली चिड़िया, रूपारेल, सियार प्रमुख के बोलने के अनुसार फलविचार है। भूमिकंपन से शुभाशुभ कहने वाले शास्त्र सो भौमविद्या नामक चौथा अंग जानना। मसा, तिल, लहसुन इत्यादि का विचार जिसमें है, वह व्यंजनविद्या नामक पाँचवाँ अंग जानना। हाथ-पैर की रेखाएँ देखने का विचार जिसमें है, वह लक्षणविद्या नामक छठा अंग जानना। उत्पातविद्या सो उल्कापात, तारा टूटना, मंडल मंडना इत्यादि का विचार जिसमें है, वह सातवाँ अंग जानना। आठवाँ अन्तरिक्षविद्या का अंग सो ग्रहों के अस्त, उदय, वक्र आदि के फल जिसमें है, वह आठवाँ अंग जानना। इनके जानकार स्वप्नपाठक पुरुषों को बुलाओ।

ऐसा सिद्धार्थ राजा ने कहा, तब वह पारिवारिक पुरुष सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। फिर हाथ जोड़ कर 'तह त्ति' कह के सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा के

पास से निकल कर क्षत्रियकुंडग्राम नगर के मध्य में हो कर जहाँ स्वप्नपाठकों के घर थे, वहाँ जा कर स्वप्नलक्षण पाठकों से वह कहने लगा कि हे स्वप्नपाठको ! तुम्हें सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा याद करते हैं, इसलिए मैं तुम्हें बुलाने आया हूँ। तब स्वप्न लक्षण पाठक सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा के पारिवारिक पुरुष की वाणी सुन कर हृदय में बहुत हर्षित और सन्तुष्ट हुए। फिर स्नान-मज्जन कर के, अपने घर के इष्टदेव[1] को पूज कर के, कौतुक के लिए शरीर पर तिलक-छापा प्रमुख कर के, दही, दर्भ और सरसव मांगलिक के लिए ग्रहण कर के, दुष्ट स्वप्नप्रमुख का नाश करने रूप प्रायश्चित्त कर के, शुद्ध मांगलिक वस्त्र पहन कर, बहुमूल्य अलंकार धारण कर, सब शरीर शोभायमान कर के, तथा सरसव और दर्भ मंगलनिमित्त मस्तक पर धारण कर के, उछाल कर के अपने अपने घर से निकल कर क्षत्रियकुंडग्राम नगर के मध्य में हो कर जहाँ सिद्धार्थ राजा का मुख्य महल था, वहाँ द्वार पर जा कर सब इकट्ठे हुए।

फिर सब मिल कर आपस में विचार करने लगे कि हम सब में किसी को बड़ा नहीं बनाया गया है, इसलिए किसी एक को बड़ा याने मुखिया बनाओ, क्योंकि मुखिया के बिना तो अप्रतिबंध टोली- अनुशासनहीन समूह माना जाता है। इसलिए आपस में स्वप्न के अर्थ का विचार कर मुखिया के मुख से कहलवाना, पर हर व्यक्ति अलग-अलग नहीं बोलना। यदि हर कोई अलग-अलग बोलेगा, तो हमें आदर प्राप्त नहीं होगा।

---

१. यहाँ कोई प्रश्न करे कि सिद्धार्थ राजा के स्नान-वर्णन में तो देवपूजा करना नहीं आया और इन निमित्तज्ञों के संक्षिप्त पाठ में देवपूजा आयी, तो क्या सिद्धार्थ राजा देवपूजा नहीं करते होंगे? इसका उत्तर कहते हैं कि उस समय तो सिद्धार्थ राजा श्रृंगार कर के सभा में जा रहे थे। इस कारण से वहाँ दही, दर्भ और सरसव के समान पाठ नहीं है। इससे जानने में आता है कि निमित्तज्ञों को पूछ कर उन्हें बिदा करने के बाद पूजा की होगी। क्योंकि सिद्धार्थ राजा भी श्री पार्श्वनाथ भगवान का श्रावक है। इससे श्री पार्श्वनाथजी की मूर्ति उनके घर में अवश्य होनी चाहिये। तथा आगे 'ण्हाया कयबलिकम्मा' यह पाठ त्रिशलाजी के अधिकार में चला है। अथवा कर्ता ने भी यह पाठ सहज जान कर नहीं लिखा हो, ऐसा भी संभव है। फिर केवली जानें।

नीतिशास्त्र में कहा है कि-

यत्र सर्वेऽपि नेतारः, सर्वे मत्सरवादिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति, तेऽवसीदन्ति वृन्दवत्।।

जहाँ सब जन मुखिया होने लगते हैं और सब अहंकार सहित बोलने वाले होते हैं, परस्पर ईर्ष्या करने वाले होते हैं, सब बड़ाई की चाहना करने वाले होते हैं, उनका समुदाय जैसे पाँच सौ सुभट अनादर पा कर दुःखी हुए, वैसे दुःखी होता है। उन पाँच सौ सुभटों की कथा कहते हैं-

एक बार जहाँ तहाँ से आ कर पाँच सौ योद्धा (सुभट) इक्ट्ठे हो कर रोजगार के लिए देशान्तर गये। वहाँ किसी किसी राजा के यहाँ दो-दो, चार-चार दिन रह कर चले जाते। ऐसा करते हुए एक बार वे किसी महर्द्धिक (बड़े) राजा से मिले। उस राजा ने उनके पास घोड़े, शस्त्र, आभूषण आदि सामग्री देख कर तथा उन सब को स्वरूपवान जान कर उन्हें सम्मान दिया। फिर उनसे पूछा कि तुम लोग कौन हो? कहाँ से आ रहे हो? तब उन लोगों ने राजा को प्रणाम कर कहा कि हे राजन्! हम नौकरी करने आये हैं। उनकी बातें सुन कर राजाप्रमुख सारी सभा खुश हो गयी। तब राजा ने प्रधान को बुला कर कहा कि ये सुभट अच्छे दीखते हैं, आबरूदार हैं और संग्राम में पीछे हटने वाले नहीं है। राजा के ऐसे वचन सुन कर प्रधान ने कहा कि हे स्वामी! ये सुभट दीखने में तो अच्छे हैं; पर असंबंध हैं। क्योंकि इनमें कोई मालिक नहीं है, इसलिए काम पड़ने पर यदि ये भाग जायेंगे, तो आप उपालंभ किसे देंगे? ऐसा प्रधान ने कहा, तो भी राजा समझा नहीं। तब प्रधान ने जान लिया कि राजा की इच्छा इन सुभटों को नौकरी पर रखने की है। ऐसा समझ कर प्रधान ने कहा कि महाराज! इनकी परीक्षा ले कर हम इन्हें नौकरी पर रखेंगे। राजा मान गया। उसने कहा कि सुख से परीक्षा करो।

फिर प्रधान ने उन्हें कोई अच्छी जगह देख कर वहाँ ठहराया और रात के समय एक खाट, एक गादी और एक तकिया उन सुभटों के लिए भेजा तथा भोजनादि सामग्री भी बहुत भेजी। भोजन करने के बाद जब वे सोने

लगे, तो एक ही खाट देख कर आपस में सब जन झगड़ने लगे। उनमें से एक बोला कि मेरा दादा बड़ा था और मैं भी बड़ा हूँ, इसलिए मैं इस पर सोऊँगा। फिर दूसरा बोला कि एक दिन वन में सिंह बोला था; उसकी गर्जना घर में बैठे-बैठे सुन कर मेरे बाबा कूँ सात दिन तक ताव आया था, इसलिए मैं ही बड़ा हूँ। तब तीसरा बोला कि मेरे बड़े भ्राता ने सेके हुए सत्ताईस पापड़ एक मुक्के से तोड़ डाले थे, इस कारण से मैं ही बड़ा हूँ। फिर चौथा बोला कि मेरे मामा ने एक उंदरे को हरा दिया था, सो मैं ही बड़ा हूँ। तब पाँचवें ने कहा कि मेरे मामा ने सात सेर खीचड़ी खायी थी। इस पर छठा बोला कि मैं छह गोली की छाछ पीता हूँ। सातवाँ बोला कि मैं तो घर में ही जंगल जाता हूँ। आठवाँ बोला कि मैं तो सात दिन तक सोता रहता हूँ, जागता नहीं हूँ। नौवाँ बोला कि मैं तो बिल्ली से भी डरता हूँ। दसवाँ बोला कि मैं कुत्ता भौंकता है तब भाग जाता हूँ।

इस तरह जब एक कहता कि मैं सोऊँगा, तब दूसरा कहता कि मैं सोऊँगा; तू कोई मालिक नहीं है। इस तरह आधी रात तक वे लड़ते रहे। तब उनमें पाँच-सात जो समझदार लोग थे; वे बोले कि अरे ! तुम लड़ो मत। इस शय्या की तरफ पैर कर के सो जाओ। यह न्याय सब को ठीक लगा। अतः सब लोग खाट की तरफ पैर कर के सो गये। और अन्य ने भी सब चीजें अपने-अपने हिस्से के अनुसार बाँट ली।

फिर सुबह होने पर राजा के लोग जो निगरानी के लिए रहे थे; उन्होंने जा कर राजा से सब बातें कह दीं। तब राजा ने निर्भर्त्सना कर के सब को बिदा किया। उन्हें कहीं भी आदर नहीं मिला।

ऐसा स्वप्नपाठकों ने परस्पर विचार कर के अपने में से एक जन को मालिक बनाया। फिर जहाँ सिद्धार्थ राजा था, वहाँ गये। वहाँ जा कर सिद्धार्थ राजा को 'जय विजय' शब्दों से बधाई दी।

जैनाचार्य श्रीमद् भट्टारक विजय राजेन्द्रसूरीश्वर-सङ्कलिते श्री कल्पसूत्र-बालावबोधे तृतीयं व्याख्यानं समाप्तम्।

卐 卐 卐

चतुर्थ व्याख्यान

स्वप्नपाठकों का राजा को आशीर्वाद

स्वप्न-लक्षण-पाठकों ने सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा को जय-विजय आदि शब्दों के द्वारा बधाई दी अर्थात् वे बोले कि हे राजन् ! आप दीर्घायुषी हों, अधिकाधिक आजीविका के स्वामी हों, लक्ष्मीवान हों, यशवान हों, बुद्धिमान हों, कीर्तिमान हों। फिर सिद्धार्थ राजा को पार्श्वनाथस्वामी का सेवक जान कर उन्होंने श्री पार्श्वनाथजी की स्तुतिगर्भित आशीर्वाद देते हुए कहा कि-

दशावतारो वः पायात्, कमनीयाञ्जनद्युतिः।
किं तु दीपो न हि श्रीपः, किं तु वामाङ्गजो जिनः।।१।।

जिनके दस अवतार हैं तथा जो मनोहर श्याम कान्तिवान हैं, ऐसे कौन हैं? तब अन्य कोई बोला कि दीप नाम दीये का है, दशा नाम बत्ती का है तथा काजल की श्याम कान्ति है; इसलिए वह दीपक हो सकता है। तब कहते हैं कि वह दीपक तो नहीं है। फिर किसी ने कहा कि वह श्रीपः याने श्री कृष्ण हो सकता है, क्योंकि वह श्याम है और उसके दस अवतार भी हैं। तब कवि ने कहा कि वह न तो दीपक है और न ही श्री कृष्ण। फिर वह कौन है? तब कहते हैं कि वे तो वामादेवी के पुत्र श्री पार्श्वनाथस्वामी हैं, क्योंकि वे दस भव पूरे कर के तीर्थंकर बने। वे श्री पार्श्वनाथ भगवान आपकी रक्षा करें। यहाँ मरुभूति के भव से दस भव गिनने चाहिये।

आशीर्वाद सुन कर सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा ने उन स्वप्न-लक्षण-पाठकों को प्रणाम किया, वस्त्रादिक प्रदान कर उनका सत्कार किया और उनके सद्गुणों की स्तुति की तथा उन्हें सम्मानित कर पहले से तैयार रखे हुए आठ भद्रासनों पर उन्हें अलग अलग बिठाया।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि श्री पार्श्वनाथजी का श्रावक सिद्धार्थ राजा तो सम्यक्त्वी है, फिर उसने मिथ्यात्वी स्वप्नपाठकों को वन्दन क्यों किया? तो इसका उत्तर यह है कि यह तो लोकोपचार विनय है। यह सांसारिकपने का

है; पूज्यपने का तथा धर्म के काम के लिए नहीं है। जैसे लोक व्यवहार में जुहार करते हैं, उसे भी वन्दन कहते हैं। वैसे ही यह भी जानना।

इसके बाद सिद्धार्थ राजा ने त्रिशला क्षत्रियाणी को पडिच्छ में बिठाया। वह भी हाथ में फल-फूल ले कर बैठी। फिर सिद्धार्थ राजा ने विनयपूर्वक स्वप्नलक्षण-पाठकों से कहा कि हे देवानुप्रियो ! आज त्रिशला क्षत्रियाणी ने महान गज-वृषभादिक चौदह स्वप्न अल्प निद्रा में सोते हुए देखे हैं। इन चौदह स्वप्नों का कल्याणकारी फल क्या होगा? तब स्वप्न-लक्षण-पाठक सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा के मुख से यह प्रश्न सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन स्वप्नों को हृदय में धारण किया। फिर वे अर्थ का विचार करने लगे। उन्होंने आपस में विचार कर के उन स्वप्नों का अर्थ ग्रहण किया तथा आपस में एक-दूसरे से पूछ कर निश्चय किया। फिर वे सिद्धार्थ राजा के आगे स्वप्नशास्त्र का विचार कहने लगे। वह अब शास्त्रान्तर से लिखते हैं-

स्वप्नों के भेद और चौदह स्वप्नों का फल

मनुष्य को नौ प्रकार से स्वप्न आते हैं। उनमें प्रथम तो जानी हुई बात सपने में आती है, दूसरे में सुनी हुई बात वह सपने में देखता है, तीसरे में दिन में देखी हुई वस्तु सपने में देखता है, चौथे में वात, पित्त, कफ के विकार से स्वप्न आता है, पाँचवें में वह सहज स्वभाव से स्वप्न देखता है अथवा मलमूत्रादि की पीड़ा के कारण स्वप्न देखता है, छठे में चिन्ता के कारण स्वप्न देखता है। इन छह कारणों से जो स्वप्न आता है, वह निष्फल है। उसका कोई शुभाशुभ फल प्राप्त नहीं होता।

सातवें में देव के सान्निध्य से स्वप्न देखता है, आठवें में धर्म-कर्म में लीन जो मनुष्य बहुत धर्म करता है, उसे धर्म के प्रभाव से उत्कृष्ट पुण्य के योग से स्वप्न आता है, नौवें में बहुत उत्कृष्ट पाप के उदय से स्वप्न आता है। पश्चात् के ये तीन स्वप्न यदि प्राणी देखता है, तो इनका शुभाशुभ फल अवश्य पाता है। ये स्वप्न खाली नहीं जाते।

तथा धातुप्रकोप से वायु की अधिकता हो तब वृक्ष, पर्वतशिखर पर चढ़ने का तथा आकाश में उड़ने का स्वप्न देखे; पित्त प्रकोप से सोना, रत्न,

सूर्य, अग्निप्रमुख स्वप्न में देखे; श्लेष्म की अधिकता के योग से अश्व, नक्षत्र, चन्द्र, शुक्लपक्ष, नदी, सरोवर, समुद्र इत्यादि पार करने का स्वप्न देखे, तो ये स्वप्न निष्फल जानना।

गाय, बैल, हाथी, महल, पर्वत-शिखर पर चढ़ रहा हूँ, ऐसा स्वप्न देखे, तो उसे महानता प्राप्त होती है। स्वप्न में शरीर पर विष्टाविलेपन देखे, तो वह निरोगी होता है। स्वप्न में रुदन करे, तो उसे हर्षप्राप्ति होती है। स्वप्न में राजा, हाथी, घोड़ा, सोना, बैल, गाय, परिवार देखे; तो उसके कुल की वृद्धि होती है। प्रासाद पर चढ़ कर भोजन कर रहा हूँ, ऐसा स्वप्न देखे तथा समुद्र में तैर रहा हूँ, ऐसा स्वप्न देखे, तो यदि नीच कुल में उसका जन्म हुआ हो, तो भी वह राजा बनता है। दीपक, मांस, फल, कन्या, पद्म, छत्र और ध्वजा ये चीजें स्वप्न में देखे, तो वह जय प्राप्त करता है तथा अपने इष्टदेव की प्रतिमा यदि स्वप्न में देखता है, तो आयुवृद्धि होती है तथा कीर्ति, यश और धन की भी वृद्धि होती है।

कपास, भस्म, हड्डी और छाछ ये चार सफेद वस्तुएँ छोड़ कर अन्य कोई भी सफेद वस्तु स्वप्न में दिखाई दे, तो शुभ जानना तथा हाथी, देव, घोड़ा और राजा ये चार वस्तुएँ छोड़ कर अन्य कोई भी काली वस्तु स्वप्न में दिखाई दे, तो अशुभ जानना। स्वप्न में गायन गाये तो रोना पड़ता है। स्वप्न में नाचे तो जेल में जाना पड़ता है। स्वप्न में हँसे तो शोक में पड़ता है और स्वप्न में पढ़े तो कलह होता है। स्वप्न में देव, साधु, ब्राह्मण, राजा, पिता और वृषभ इनमें से कोई भी आ कर किसी प्रकार की बात कहे, तो वह अवश्य सत्य होती है। कोई फूला-फला वृक्ष या रायण के वृक्ष पर स्वप्न में स्वयं को चढ़ा हुआ देखे, तो उसे बहुत धन लाभ होता है। गधा, ऊँट, भैंस या भैंसा इन पर स्वयं को सवार होते हुए कोई स्वप्न में देखे, तो तत्काल उसकी मृत्यु हो जाती है।

जो पुरुष स्वप्न में श्वेत वस्त्रधारिणी, श्वेत चन्दन का विलेपन की हुई स्त्री को भोगता है, उसे सब प्रकार की लक्ष्मी प्राप्त होती है। जो स्वप्न में लाल वस्त्र वाली, लाल चन्दन, कृष्ण गंधविलेपन वाली स्त्री को भोगता है,

उसका खून सूख जाता है। जो स्वप्न में स्वयं को रत्न, सुवर्ण या सीसे के ढेर पर चढ़ा हुआ देखता है, वह अवश्य ही समकित प्राप्त कर मोक्ष जाता है तथा जो स्वप्न में स्वयं को मदिराप्रमुख का घड़ा उठाये हुए देखता है, वह समकित प्राप्त कर दूसरे भव में मोक्ष जाता है।

अब त्रिशला माता ने जो चौदह स्वप्न देखे हैं, उनका फल इस प्रकार है- प्रथम स्वप्न में चार दाँत वाला हाथी देखने से यह पुत्र महापराक्रमी होगा तथा दान, शील, तप और भावरूप चार प्रकार के धर्म की प्ररूपणा करेगा। चौसठ इन्द्र तथा गजपति राजा आदि इसके चरणों की सेवा करेंगे।।१।। दूसरे स्वप्न में वृषभ देखा। इससे तुम्हें धर्मधुरीण पुत्र होगा। भरतक्षेत्र में जैसे किसान वृषभ की सहायता से अनाज का बीज बोता है, वैसे ही यह पुत्र बोधरूप अनाज का बीज बोयेगा।।२।। तीसरे स्वप्न में सिंह देखा। इससे निर्भय तथा पराक्रमी, तीनों लोकों में अपनी आज्ञा का पालन करवाने वाला वह पुत्र होगा। जैसे सिंह श्वापद जीवों से विनष्ट होते हुए वन की रक्षा करता है, वैसे ही यह पुत्र भी सम्यक् प्ररूपणारूप सिंह के द्वारा कुदृष्टि जो मिथ्यात्वरूप श्वापद जीव हैं, उनके द्वारा नष्ट होने वाले भव्य जीवरूप वन की रक्षा करेगा तथा मिथ्यात्वरूप आपदा से भव्य जीवों की रक्षा करेगा अथवा आठ कर्म और आठ मदरूप श्वापदों का नाश करेगा तथा तीन भुवन में अपनी आज्ञा मनवायेगा।।३।। चौथे स्वप्न में लक्ष्मीदेवी देखी। इससे वह तीन जगत की तीर्थंकरलक्ष्मी का भोक्ता होगा। याने कि वार्षिक दान दे कर दीक्षा का पालन कर केवलज्ञानरूप लक्ष्मी प्राप्त कर आठ प्रतिहार्य रूप तीर्थंकर की लक्ष्मी का उपभोग करेगा।।४।। पाँचवें स्वप्न में दो फूलमालाएँ देखीं। इससे वह सत्पुरुषों में पूज्यता प्राप्त करेगा। याने कि जैसे पुष्पगुच्छ मस्तक पर धारण किया जाता है, वैसे ही इसकी आज्ञा भी सब भव्य जीव मस्तक पर धारण करेंगे तथा दो मालाएँ देखीं, इसलिए एक श्रावक धर्म और दूसरा साधु धर्म ऐसे दो प्रकार के धर्म की प्ररूपणा करेगा।।५।।

छठे स्वप्न में चन्द्रमा देखा। इससे वह सौम्यदर्शन वाला होगा, शीतल

परिणाम वाला होगा तथा भव्य जीवरूप कुवलय को बोध (प्रकाश) करने में चन्द्रमा के समान होगा।।६।। सातवें स्वप्न में सूर्य देखा। इससे वह मिथ्यात्वरूप अंधकार को दूर करने वाला होगा तथा स्वयं प्रभामंडल से अलंकृत होगा।।७।। आठवें स्वप्न में ध्वजा देखी। इससे वह कुल में ध्वजा के समान उत्तम होगा और धर्मध्वजा से विराजमान होगा। जगत को चारों दिशाओं में धर्मध्वजा से सुशोभित करेगा।।८।। नौवें स्वप्न में पूर्णकलश देखा। इससे वह सम्पूर्ण गुणी होगा तथा धर्मरूप प्रासाद पर कलश चढ़ायेगा।।९।। दसवें स्वप्न में पद्मसरोवर देखा। इससे वह जगत का ताप दूर करने वाला होगा तथा जब वह चलेगा, तब उसके पाँवतले देवता सुवर्णकमल बिछायेंगे।।१०।। ग्यारहवें स्वप्न में क्षीरसमुद्र देखा। इससे वह गंभीर हृदयवाला होगा तथा केवलज्ञानरूप रत्न प्राप्त कर चौदह राजलोक के भावों को जानेगा।।११।। बारहवें स्वप्न में देवविमान देखा। इससे वह देवों में पूज्य होगा। याने कि वैमानिक पर्यंत चार निकाय के देव उसकी सेवा करेंगे।।१२।। तेरहवें स्वप्न में रत्नराशि देखी। इससे वह देवों द्वारा निर्मित तीन गढ़ वाले समवसरण में बैठ कर भव्य जीवों को धर्मदेशना देगा।।१३।। चौदहवें स्वप्न में धुआँरहित अग्नि देखी। इससे वह दीप्तिवन्त (तेजस्वी) होगा तथा जैसे आग कंचन को शुद्ध करती है, वैसे ही तुम्हारा पुत्र आत्मा के शुद्ध स्वभाव की शुद्धि करने वाला होगा। वह भव्यजनों के मन शुद्ध करेगा तथा कर्ममल को जला डालेगा। त्रिशलादेवी ने चौदह स्वप्न देखे हैं, इसलिए वह चौदह राजलोक का स्वामी होगा। ऐसे उत्तम गुण वाला तुम्हारा पुत्र होगा।

स्वप्नपाठक कहते हैं कि हे देवानुप्रिय ! हमारे स्वप्नशास्त्र में बयालीस स्वप्न सामान्य (अशुभ) फलदायक कहे हैं तथा तीस स्वप्न उत्तम (महान) फल देने वाले कहे हैं। कुल मिला कर बहत्तर स्वप्न कहे हैं। उनमें से श्री अरिहंत और चक्रवर्ती की माता अरिहंत और चक्रवर्ती गर्भ में आने पर तीस महास्वप्नों में से गजवृषभादि चौदह महास्वप्न देखती है। वासुदेव गर्भ में आने पर उसकी माता चौदह महास्वप्नों में से कोई भी सात स्वप्न देखती है।

बलदेव गर्भ में आने पर बलदेव की माता इन चौदह स्वप्नों में से चार स्वप्न देखती है तथा मांडलिक राजा की माता इन चौदह स्वप्नों में से कोई भी एक स्वप्न देखती है।

अब बयालीस मध्यम स्वप्नों के नाम कहते हैं- गंधर्व, राक्षस, भूत, पिशाच, बुक्कस, महिष, अहि, वानर, कंटकद्रुम, नदी, खर्जूर, स्मशान, ऊँट, खर, मार्जार, दौःस्थ, संगीत, धीज, भस्म, अस्थि, वमन, तम, कुस्त्री, चर्म, रक्त, अश्म, वामन, कलह, विविक्तदृष्टि, जलशोष, भूकंप, ग्रहयुद्ध, निर्घात, भंग, भूमज्जन, तारापतन, सूर्य-चन्द्र-स्फोट, महावायु, महाताप, विस्फोटक और दुर्वाक्य ये बयालीस अशुभ स्वप्न अशुभ फलदायक जानना।

अर्हन्, बुद्ध, श्री कृष्ण, ब्रह्मा, स्कन्द, गणेश, लक्ष्मी, गौरी, नृप, हस्ती, गौ, वृषभ, चन्द्र, सूर्य, विमान, गेह, अग्नि, स्वर्ग, समुद्र, सरोवर, सिंह, रत्नराशि, गिरि, ध्वज, पूर्णकलश, पुरीष, मांस, मत्स्ययुगल और कल्पवृक्ष ये तीस उत्तम स्वप्नं शुभ फलदायक जानना। बहत्तर स्वप्नों के ये नाम श्री वर्द्धमानसूरिकृत 'स्वप्न-प्रदीप' ग्रंथ के अनुसार लिखे हैं।

स्थिरचित्त, जितेन्द्रिय, सदाचारी और सत्त्वशाली, शान्त मुद्रावान, धर्मरुचि, धर्मानुरागी, धर्म पर श्रद्धावान तथा दयालु पुरुष को जो स्वप्न आता है, वह शुभ या अशुभ फल तुरन्त देता है। रात के प्रथम प्रहर में स्वप्न देखे, तो एक वर्ष में फल मिलता है। इसी प्रकार रात के दूसरे प्रहर में स्वप्न देखे, तो छह महीने में; तीसरे प्रहर में स्वप्न देखे, तो तीन महीने में; चौथे प्रहर में स्वप्न देखे, तो एक महीने में और अंतिम दो घड़ी रात शेष रहे, तब स्वप्न देखे; तो उसका फल दस दिन में मिलता है। सूर्योदय के समय स्वप्न देखे, तो फल तत्काल मिलता है। यदि बुरा स्वप्न दिखाई दे, तो पुनः सो जाना चाहिये। वह स्वप्न किसी से भी नहीं कहना चाहिये। उत्तम स्वप्न देख कर गुर्वादि के सम्मुख प्रकट करना चाहिये। यदि सुनाने योग्य कोई व्यक्ति न मिले, तो गाय के कान में ही सुनाना चाहिये। शुभ स्वप्न देख कर पुनः सो जाये, तो वह निष्फल होता है। शुभ स्वप्न देख कर

मूर्ख व्यक्ति के सम्मुख तो बिल्कुल नहीं कहना, क्योंकि जैसा फल सुनता है, वैसा ही फल वह पाता है। इसलिए उत्तम पुरुष के सम्मुख ही कहना चाहिये। इस पर मूलदेव का दृष्टान्त कहते हैं।

मूलदेव की कथा

मूलदेव एक राजपुत्र था। वह अपने पिता को अप्रिय था। उसे दान देने का व्यसन था, इसलिए राजा ने उसे राज्य से निकाल दिया। घूमते-घूमते वह एक गाँव में जा पहुँचा। यद्यपि वह स्वयं महाधर्मी जैनमति था, पर खाने के लिए कुछ न होने के कारण वह नगर में माँगने के लिए गया। वहाँ एक वणिक ने भैंस को खिलाने के लिए उड़द पकाये थे। उसने मूलदेव को उड़द दिये। उड़द ले कर वह उद्यान में गया। वहाँ जा कर सोचने लगा कि किसी अतिथि को भोजन दे कर फिर मैं भोजन करूँ। इतने में एक तपस्वी साधु वहाँ आ पहुँचा। मूलदेव ने उस तपस्वी को सब बाकुले वहोरा दिये। फिर वह प्रसन्न हो कर सो गया। नींद में उसने एक सपना देखा। सपने में देखा कि उसने सम्पूर्ण चन्द्रमा निराबाध रूप से निगल लिया है। स्वप्न देख कर वह जाग गया।

जिस उद्यान में मूलदेव सोया था, वहाँ एक बाबा का मठ था। उस बाबा के शिष्य ने भी वही सपना देखा, जो मूलदेव ने देखा था। स्वप्न देख कर वह भी जाग गया। सुबह के समय उसने अपने गुरु को स्वप्न का हाल कह सुनाया। तब गुरु ने कहा कि आज भिक्षा में तुझे चन्द्रमा जितनी बड़ी घी से चुपड़ी हुई रोटी मिलेगी और साथ में गुड़ भी मिलेगा। यह सुन कर शिष्य प्रसन्न हो कर भिक्षा लेने गया, तब उसे गुरु के कहे अनुसार रोटी मिली।

यह बात सुन कर राजकुमार मूलदेव ने सोचा कि यदि इसे मैं अपने स्वप्न की बात कहूँगा, तो मुझे भी यह इतना ही फल बतायेगा, क्योंकि जो स्वप्न इसके शिष्य ने देखा है, वही स्वप्न मैंने भी देखा है। इसलिए इसे तो यह बात नहीं बतानी चाहिये। यह सोच कर हाथ में श्रीफल ले कर वह

नगर में ज्योतिषी के पास गया और उसे अपने स्वप्न की बात बतायी। ज्योतिषी बोला कि पहले यदि तुम मेरी बेटी के साथ विवाह करो, तो मैं तुम्हें इसका फल बताऊँगा। तब मूलदेव ने कहा कि तुम्हें मेरी जाति मालूम नहीं है, फिर तुम तुम्हारी पुत्री का विवाह मेरे साथ क्यों करते हो? इस पर ज्योतिषी ने कहा कि मैंने सब बातें जान ली हैं। यह कह कर अपनी पुत्री का उसके साथ विवाह कर उसे स्वप्न का फल बताया। उसने कहा कि आज से सातवें दिन इस नगर के निःसन्तान राजा की मृत्यु होगी और तुम इस नगर के राजा बनोगे। ज्योतिषी की बात हृदय में धारण कर मूलदेव पुनः उद्यान में चला गया।

सातवें दिन नगर के राजा की मृत्यु हो गयी। तब राजा के बिना चल नहीं सकता, इसलिए गाँव के प्रमुख लोगों ने यह निश्चित किया कि राजा का घोड़ा, हाथी और मंत्री जिसे राजा बनायें, उसे राजगद्दी पर बिठाया जाये। इससे अन्य सगे-संबंधियों का कोई विरोध नहीं होगा। फिर उन्होंने इन तीनों को सजा कर राजमहल के बाहर भेजा। हाथी और घोड़ा दोनों उद्यान में पहुँचे। वहाँ हाथी ने चिंघाड़कर मूलदेव के मस्तक पर कलशाभिषेक किया। उस समय घोड़ा हिनहिनाने लगा। हाथी ने मूलदेव को सूँड से उठा कर अपनी पीठ पर बिठाया। फिर वह उसे नगर में ले गया। तब नगरजनों ने उसे राजगद्दी पर बिठाया। इस तरह मूलदेव उस नगर का राजा बना। इसलिए शुभ स्वप्न देखा हो, तो उत्तम व समझदार पुरुष को ही बताना चाहिये, पर मूर्ख को तो बिल्कुल ही नहीं बताना चाहिये।

वणिक् स्त्री का दृष्टान्त

उत्तम स्वप्न मूर्ख को बताने से जो दुःख होता है, उससे संबंधित एक वणिक स्त्री का अन्य दृष्टान्त कहते हैं- किसी वणिक स्त्री ने स्वप्न में समुद्र पी लिया। सुबह गुरु के पास जाते वक्त उसे एक सखी मिली। उसने पूछा कि बहन ! यह गहुँली ले कर कहाँ जा रही हो? बार-बार पूछे जाने पर उसने कहा कि मैंने स्वप्न में समुद्र पी लिया है। उसका फल गहुँली कर के

गुरु से पूछूँगी। यह सुनते ही सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा कि इतना बड़ा समुद्र पीने से तेरा पेट क्यों नहीं फटा? हँसी-मज़ाक में इतना बोल कर वह चली गयी।

फिर गहुँली कर के उस वणिक स्त्री ने गुरु से स्वप्न का फल पूछा। तब गुरु ने इंगित आकार देख कर कहा कि क्या तुमने पहले किसी को यह स्वप्न बताया है? उसने सखी को बताने की बात कह दी। यह सुन कर गुरु बोले कि यदि तुमने पहले यह किसी को नहीं बताया होता, तो तुम्हें भाग्यवान पुत्र होता। अब तो आज से सातवें दिन तुम्हारे शरीर में कष्ट होगा। इसलिए घर जा कर आत्मसाधन करो। फिर वह स्त्री अपने घर जा कर आत्मसाधन कर के मृत्यु को प्राप्त हुई। इसलिए शुभ स्वप्न हर किसी को बताना नहीं चाहिये तथा कोई योग्य व्यक्ति न मिले तो गाय के कान में कह देना चाहिये। कहे बिना फल प्राप्त नहीं होता।

प्रथम शुभ स्वप्न देख कर फिर अशुभ स्वप्न देखे तो अशुभ स्वप्न का फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार परावर्त्त से जानना। कोई स्वप्न में सिंह, घोड़े अथवा वृषभ जुते हुए रथ पर स्वयं को सवार देखे; तो वह राजा बनता है। घोड़ा, वाहन, वस्त्र, घर कोई ले जा रहा है, ऐसा स्वप्न देखे, तो राजभय, शोक, बंध, विरोध तथा अर्थहानि होती है। सूर्य-चन्द्र का बिंब निगलने का स्वप्न देखे, तो समुद्र तथा पृथ्वी का स्वामी बनता है। नदी के किनारे सफेद हाथी पर सवार हो कर शाल्योदन (चावल) भक्षण करता हूँ, ऐसा स्वप्न देखे, तो समस्त देश का स्वामी बनता है। स्वप्न में अपनी स्त्री का अपहरण देखे, तो धन का नाश होता है। स्वप्न में उजला साँप दाहिनी भुजा में डंक दे, तो एक रात में एक हजार सुवर्णमुद्राएँ प्राप्त होती हैं।

काली गाय, अश्व, गज और प्रतिमा स्वप्न में देखे, तो भला होता है। अन्य कोई काली वस्तु देखे, तो अशुभ जानना। अशुभ स्वप्न देखने के बाद स्वप्न में देवपूजा देखे, तो शुभ वस्तु प्राप्त होती है। द्रोभ, अक्षत, चन्दन देखे, तो उसका मंगल होता है। राजा, हाथी, अश्व, सुवर्ण, वृषभ और गाय ये वस्तुएँ स्वप्न में देखे, तो उसके परिवार की वृद्धि होती है। स्वप्न में

रथ पर सवारी करे, तो वह राजा बनता है। तांबूल, दही, वस्त्र, चन्दन, जाई, बकुल, कुन्द, मचकुन्द, फूल और वृक्ष ये चीजें स्वप्न में देखे, तो उसे धन प्राप्त होता है। दीपक, पन्ना, फल, पद्म, कन्या, छत्र, ध्वज तथा हार आदि आभूषण स्वप्न में देखे, तो लक्ष्मी का लाभ होता है। प्रहरण, भूषण, मणि, मोती, कनक, रूपा तथा कांस्यपात्र का हरण देखे, तो उसके धनमान की हानि होती है। प्राणान्तक कष्ट होता है। दरवाजा, अर्गला, झूला, करघे की पावड़ी और घर टूटा हुआ देखे, तो उसकी स्त्री का नाश होता है।

जूते तथा छत्र लिया हुआ देखे या तीक्ष्ण तलवार स्वप्न में देखे, तो उसे मार्गगमन करना पड़ता है। जिस जहाज में सफर कर रहा है, वह जहाज टूट गया है और स्वयं तैर कर पार हो गया है, ऐसा स्वप्न देखे, तो वह परदेश जा कर धन प्राप्त करता है। अंजन से नेत्ररोग, रोमच्छेद देखे, तो धननाश होता है। स्वप्न में भैंसा या ऊँट पर चढ़ कर दक्षिण दिशा में जाये, तो उसकी शीघ्र मृत्यु होती है। कमलाकर, रत्नाकर, जलपूर्ण नदी तथा मित्र की मृत्यु स्वप्न में देखे, तो वह बहुत धन प्राप्त करता है। स्वयं को क्वाथ पीता देखे, तो वह अतिसार के रोग से मृत्यु प्राप्त करता है। स्वप्न में जो यात्रार्थ जाता है, पूजा करता है, उसकी कुलवृद्धि होती है। सरोवर में कमल ऊगे हुए देखे, तो वह कोढ़ रोग से मृत्यु प्राप्त करता है। हाथी, घोड़ा, गद्दी, सिंहासन तथा घर के वस्त्र ये चीजें गयी हुई देखे, तो राजभय उत्पन्न होता है।

हथियार, आभरण, मणि, मोती, सुवर्ण और रूपा इन चीजों का नाश स्वप्न में देखे, तो उसका धन और मान दोनों चले जाते हैं। अपनी पत्नी को कोई ले जा रहा है, ऐसा स्वप्न देखे, तो उसकी संपत्ति का नाश होता है। अपनी स्त्री का कोई पराभव कर रहा है, ऐसा देखे तो क्लेश उत्पन्न होता है। अपने गोत्र की स्त्री को ले जाते हुए देखे, तो उसके भाईप्रमुख को जेल जाना पड़ता है। अपनी खाट और सफेद वस्त्र स्वप्न में देखे, तो स्वयं को पीड़ा होती है। किसी मनुष्य के पैर का मांसभक्षण करता हूँ, ऐसा स्वप्न

देखे तो वह राजा बनता है। स्वप्न में पद्मसरोवर, समुद्र और नदी पार करते देखे, तो वह बहुत द्रव्य पाता है। गरम पानी, गुड़ में मिलाया हुआ गाय का गोबर स्वयं को पीते हुए देखे, तो उसे अतिसार रोग होता है और उससे उसकी मृत्यु होती है। देवप्रतिमा की पूजा करता हूँ, यात्रा करता हूँ, ऐसा स्वप्न देखे, तो उसकी सब प्रकार से वृद्धि होती है। हृदय पर कमल ऊगा हुआ देखे, तो उसका शरीर रोग से नष्ट होता है... इत्यादि।

इसलिए हे राजन्! त्रिशला क्षत्रियाणी ने जो चौदह महास्वप्न देखे हैं, वे उदारकारी और मंगलकारी हैं। उनका फल इस प्रकार है- अर्थ का लाभ होगा, भोग का लाभ होगा और सुख का लाभ होगा। इसलिए अवश्य ही त्रिशला क्षत्रियाणी के नौ महीने साढ़े सात दिन बीत जाने पर आपके कुल में ध्वजा समान, दीपक समान, मुकुट समान, पर्वत समान, तिलक समान, कुल की कीर्ति बढ़ाने वाला, कुल का निर्वाह करने वाला, कुल में सूर्य समान तेजस्वी, कुल का आधार, कुल को यश देने वाला, कुल में वृषभ समान, कुल परम्परा बढ़ाने वाला, अत्यन्त सुकोमल हाथ-पैर वाला, सब इन्द्रियों सहित, लक्षण-व्यंजन गुण सहित, मानोन्मान सहित, सर्वांग सम्पूर्ण, शुभ सौम्याकार तथा जिसका दर्शन वल्लभकारक है, ऐसा पुत्र होगा। वह बालक बाल्यावस्था पार कर पराक्रमी, हाथी-घोड़े-रथ प्रमुख सेना का स्वामी, चार अन्त पृथ्वी तक राज करने वाला चक्रवर्ती राजाधिराज होगा अथवा तीन लोक का नाथ धर्मचक्रवर्ती ऐसा तीर्थंकर होगा। इसलिए त्रिशला क्षत्रियाणी ने लाभ, सुख, महामंगल तथा कल्याणकारक सर्वोत्तम स्वप्न देखे हैं।

उन स्वप्न-लक्षण-पाठकों के मुख से अर्थ सुन कर सिद्धार्थ राजा हृदय में हर्षित व सन्तुष्ट हुआ। फिर दोनों हाथ जोड़ कर अंजली कर के उसने स्वप्न-लक्षण-पाठकों से कहा कि ऐसा ही होने वाला है। ऐसा ही अर्थ है। झूठा नहीं है। जैसा मैंने चाहा था, वैसा ही तुम्हारे मुख से ग्रहण किया है। जो तुम कहते हो, वह सत्य है।

इस वचन पर किसी टीकाकार ने भोज राजा के समय में हुए गांगातेली का

दृष्टान्त दिया है, परन्तु वह तो बाद में हुआ है और यह बात पूर्व की है। इसलिए दृष्टान्त मिलता नहीं है, पर उपनय में मिलती बात है तथा दृष्टान्त एकदेशीय होता है। यद्यपि अन्तर्वाच्यादिकों में यह दृष्टान्त नहीं है, फिर भी लिखते हैं।

गांगातेली की हास्य-विनोद-जनक कथा

सिद्धार्थ राजा कहते हैं कि सुसिद्धि का कथन सब जगह सिद्ध ही होता है, जैसा गांगातेली के लिए हुआ। जैसे कि कोई एक विद्यार्थी दक्षिण देश के प्रतिष्ठानपुर नगर में किसी भट्ट के पास तीस वर्ष तक विद्याध्ययन कर अहंकारी हो गया। उसने सिर पर अंकुश धारण किया तथा विद्या की अधिकता के कारण अपना पेट फट न जाये, इसलिए गर्व से उसने अपने पेट पर पट्टा बाँध लिया। यदि कोई वादी वाद करते समय भाग कर आकाश में चला जाये, तो उसे सीढ़ी पर चढ़ कर नीचे गिरा दूँ, इस अभिमान से उसने एक सीढ़ी अपने पास रखी। यदि वादी भाग कर पाताल में प्रवेश करे, तो उसे धरती खोद कर बाहर निकाल लूँ, इस अभिमान से उसने एक कुदाली भी अपने पास रखी। सीढ़ी तथा कुदाली उसने एक नौकर के सिर पर रखी। इसी प्रकार यदि कोई वादी वाद में हार जाये, तो उसके मुख में तिनका डाल दूँ, इस विचार से एक नौकर के सिर पर उसने घास का पूला रखा। इस आडम्बर के साथ चलते हुए दक्षिण, गुजरात, मारवाड़, मेवाड़ आदि देशों के पंडितों को वाद में जीत कर सरस्वती-कंठाभरण आदि बिरुदावली बुलवाते हुए सब गाँवों के पंडितों को जीतते हुए अनुक्रम से वह मालवदेश में जा पहुँचा। वहाँ उज्जयिनी के भोज राजा की सभा में पाँच सौ पंडित हैं, यह सुन कर उन पंडितों के साथ वाद करने के लिए वह उज्जयिनी गया। राजा ने उसका बड़े ठाट-बाट से नगर-प्रवेश कराया और सुन्दर महल में उसे ठहराया। फिर उस पंडित ने राजसभा में जा कर पंडितों के साथ वाद कर के राजा के समक्ष कालिदास, माघ आदि पाँच सौ पंडितों को जीत लिया।

तब राजा ने सोचा कि यह तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक परदेसी भट्ट ने यहाँ आ कर मेरे सब पंडितों को हरा दिया। इससे मेरे पंडितों की मानहानि हुई। यह सोच कर चिन्तातुर हो कर वह नगरभ्रमण के लिए गया। रास्ते में उसने एक आँख वाले गांगातेली को देखा। वह घानी पर बैठा था और घानी में से तेल निकाल कर घड़े में भर रहा था। वह तेल की एक बूँद भी नीचे गिरने नहीं देता था। ऐसे काने तेली को देख कर राजा ने सोचा कि यह काना बड़ा बुद्धिमान है तथा अक्लमंद भी

है। फिर राजा ने उसे अपने पास बुला कर पूछा कि क्या तू विदेशी भट्टाचार्य के साथ वाद करेगा? तब वह बोला कि हाँ महाराज ! मैं वाद करूँगा। इसमें मेरी क्या हानि है? भट्टाचार्य के साथ वाद करना कोई बड़ी बात नहीं है। यदि वह जोरदार होगा, तो भी अटपटे न्याय से मैं उसे जीत लूँगा।

फिर राजा ने आदित्यवार के दिन उस भट्टाचार्य को बुला कर कहा कि मेरे साधारण भट्टों को तो तुमने जीत लिया है, पर अब उन सब पंडितों के आचार्य (गुरु) के साथ यदि तुम वाद करो और उन्हें जीत लो, तो मैं मान लूँगा कि तुम वास्तव में पंडित हो। तब भट्टाचार्य ने कहा कि हे राजन् ! मैं उनके साथ भी वाद करूँगा। आप उन्हें यहाँ बुला लीजिये। तब राजा ने भट्टाचार्य को आसन पर बिठाया और कालिदास, क्रीड़ाचन्द्र, माघप्रमुख भट्टों को पंडितजी को बुलाने के लिए भेजा। वे सब गांगा तेली के पास गये। उसे भट्टाचार्य का वेश पहनाया तथा अलंकार आदि से सजाया। गांगा तेली बड़ा हृष्ट-पुष्ट मदोन्मत्त हाथी जैसा था। उसे पालकी में बिठा कर सब पंडित उसे राजसभा में ले आये। राजा ने उसका आदर-सत्कार किया। सब सभाजनों ने खड़े हो कर सम्मान के साथ उसे सिंहासन पर बिठाया।

यह देख कर दक्षिण भट्टाचार्य ने सोचा कि यह पंडित तो हृष्ट-पुष्ट है और मैं दुबला-पतला हूँ। इसके आगे वाद में मैं टिक नहीं सकूँगा। अतः इसके साथ वचन-कलह न कर के इसे सिर्फ तत्त्व पूछना ही उचित होगा। यह सोच कर उसने एक उंगली ऊपर उठायी। तब भोज राजा के भट्ट ने क्रोधित हो कर दो उंगलियाँ ऊँची कर के दिखायीं। यह देख कर दक्षिण भट्टाचार्य चकित रह गया। उसने पाँच उंगलियाँ ऊँची कर के बतायीं। तब गांगा तेली ने मुट्ठी ऊँची कर के बतायी। यह देख कर दक्षिण भट्टाचार्य ने अपने सिर से अंकुश उतार लिया, पेट का पट्टा खोल दिया और समस्त मान का त्याग कर के सब सभाजनों के समक्ष वह भोज राजा के भट्ट के चरणों में गिर पड़ा। फिर वह कहने लगा कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आज तक मुझे किसी ने नहीं जीता, पर तुमने मुझे जीत लिया है। तुम महापंडित हो। यह देख कर भोज राजा ने विस्मित होकर दक्षिण भट्टाचार्य से पूछा कि तुमने किस प्रकार का वाद किया? तब भट्ट बोला कि महाराज ! आपका यह भट्ट महाज्ञानी है। मैंने इसके साथ समस्या से वाद किया। इस संसार में एक शिव है, ऐसा स्थापन करने के लिए मैंने आपके भट्ट को एक उंगली बतायी। तब आपके भट्ट ने दो उंगलियाँ दिखायीं। इससे मैं समझ गया कि एकमात्र शिव ही नहीं हैं, पर शिव और शक्ति ये दो हैं। फिर मैंने कहा कि इन्द्रियाँ पाँच हैं। इसलिए पाँच

उंगलियाँ बतायीं। तब आपके भट्टाचार्य ने मुट्ठी बतायी। इससे मैं समझ गया कि इन्द्रियाँ पाँच हैं सही, पर इन्हें वश में रखना चाहिये। अतः मैंने जान लिया कि यह पंडित त्यागी, ज्ञानी और जितेन्द्रिय है। इस तरह वाद हुआ और मैं हार गया। इसके जैसा दूसरा पंडित मैंने कहीं भी देखा नहीं है। इतना कह कर दक्षिण भट्टाचार्य मानभ्रष्ट हो कर अपने देश चला गया।

बाद में भोज राजा ने गांगा तेली से पूछा कि तुमने किस प्रकार का वाद किया? और वह कैसे किया? तब तेली बोला कि महाराज ! दक्षिण भट्टाचार्य बहुत बुरा आदमी है। वह मुझसे कहने लगा कि यह तेरी जो एक आँख है, उसे मैं फोड़ दूँगा। यह बताने के लिए उसने एक उंगली ऊँची की। तब मैंने दो उंगलियाँ ऊँची कर के उसे समझाया कि तू तो एक आँख फोड़ते रह जायेगा, पर उसके पहले मैं तेरी दोनों आँखें फोड़ दूँगा। तब उसने मुझे पंजा दिखा कर कहा कि मैं तुझे थप्पड़ मारूँगा, उससे तेरा मुँह फिर जायेगा। इस पर मैंने उसे मुट्ठी बता कर कहा कि मैं तुझे एक मुट्ठी मारूँगा, तो तू पाताल में चला जायेगा।

ऐसी बात गांगा तेली के मुख से सुन कर राजाप्रमुख सब सभाजनों को हँसी आ गयी। उन सबने कहा कि यह महाभाग्यवान और सुसिद्धिवान है। इतना कह कर वस्त्रादिक भेंट में दे कर सन्मान सहित उसे उसके घर पहुँचाया।

फिर सिद्धार्थ राजा ने कहा कि हे स्वप्नपाठको ! तुम सब सुसिद्धिवान हो। इससे मेरे लिए तो तुम्हारा कथन सत्य हो। इस प्रकार कह कर स्वप्नों को अच्छी तरह धारण कर स्वप्न-लक्षण-पाठकों को अशन, पान, खादिम और स्वादिमादिक चार प्रकार का आहार खिला कर फूल, फल, गंध, माला, अलंकारादिक से उनका सत्कार सम्मान किया तथा जीवन भर चलती रहे, ऐसी आजीविका प्रदान की। अर्थात् ग्राम-नगरप्रमुख दे कर उन्हें बिदा किया।

इसके बाद सिद्धार्थ क्षत्रिय राजा सिंहासन से उठ कर जहाँ त्रिशला क्षत्रियाणी पडिच्छ (पर्दा) में बैठी थी, वहाँ जा कर बोले कि हे देवानुप्रिये! स्वप्नशास्त्र में बयालीस सामान्य स्वप्न तथा तीस महास्वप्न इस प्रकार कुल बहत्तर स्वप्न कहे हैं। उन तीस में से चौदह महास्वप्न तीर्थंकर और चक्रवर्ती की माता देखती है। उन चौदह स्वप्नों में से सात स्वप्न वासुदेव की माता

देखती है, चार स्वप्न बलदेव की माता देखती है तथा एक स्वप्न मांडलिक राजा की माता देखती है। ऐसा स्वप्नपाठकों ने कहा है। तुमने चौदह स्वप्न देखे हैं, इसलिए तुम्हें चक्रवर्ती या तीर्थंकर होने वाला पुत्र होगा।

इसके बाद त्रिशलादेवी यह अर्थ सुन कर मन में बहुत प्रसन्न हुई। यावत् स्वप्नों का अर्थ धारण कर सिद्धार्थ राजा की आज्ञा ले कर नाना प्रकार के मणिरत्नजड़ित बाजोठ से उठ कर उतावल रहित राजहंस की गति से चलती हुई अपने भवन में गयी। वहाँ जा कर उसने अपने कक्ष में प्रवेश किया।

गुणनिष्पन्न नामस्थापन का मनोरथ

जिस दिन से श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी को हरिणगमेषी देव ने संहरण कर के राजकुल में रखा, उस दिन से व्यन्तरनिकाय के तिर्यग्जृंभक देव जो तिर्यक् लोक में वैताढ्य पर्वत की मेखला में निवास करते हैं और वैश्रमण नामक इन्द्र महाराज के भंडारी धनद की आज्ञा का पालन करने वाले हैं, वे शक्रेन्द्र के हुक्म से सब प्रकार का धन सिद्धार्थ राजा के आवास में भरने लगे। वह धन कैसा है? जिस धन के स्वामी हीन हो गये, जिस धन का संचय करने वाले, निर्माण करने वाले मृत्यु को प्राप्त हो गये, उनके गोत्र का कोई भी नहीं बचा, जिस धन के स्वामी सर्वथा समाप्त हो गये, गाड़ने वालों का विच्छेद हो गया, गाड़ने वालों के कुल-गोत्र का भी विच्छेद हो गया, ऐसा वह धन है।

अब वे जिन स्थानों में रख कर मर गये, उन स्थानकों के नाम कहते हैं- बुद्धि के गुण जहाँ चले जाते हैं, उसे गाँव कहते हैं। वहाँ जमा कर मर गये और वह धन वहीं रह गया ऐसा धन। जहाँ कर नहीं लगता, उसे नगर कहते हैं। महानगर को कर्बट कहते हैं। शहर से दो कोस दूरी पर जो गाँव होता है, उसे मंडप कहते हैं। जिसके चारों ओर गाँव बसता है, उसे द्रोणमुख कहते हैं। जहाँ जलमार्ग और स्थलमार्ग से पहुँचा जाता है, उसे पट्टण कहते हैं। जहाँ तापस बसते हैं, उसे आश्रम कहते हैं। तीर्थभूमि पर जो गाँव होता है,उसे संवाह कहते हैं। जहाँ सार्थवाह डेरा डालते हैं,उसे

सन्निवेश कहते हैं, ऐसे गाँवों में, सिंगोड़ा के आकार वाले मार्ग में अर्थात् तीन मार्ग जहाँ मिलते हैं, ऐसे स्थान में; चौक में तथा अनेक मार्ग जहाँ मिलते हैं ऐसे चच्चर मार्ग में, चौमुखे देवमन्दिरों में, महामार्ग-राजमार्ग में, देवकुल में, सभागृह में, जलस्थान में, बाग में, उद्यान में, वन में, वनखंड में- एक ही जाति के वृक्ष जहाँ होते हैं, उसे वनखंड कहते हैं; स्मशान में, सूने मकान में, पर्वत की गुफाओं में, होम के स्थानों में, पर्वत की खुदी हुई शिलाओं में, बैठने के स्थान में तथा लोगों के बसने के स्थानों में रखा हुआ धन वहाँ से उठा कर सिद्धार्थ राजा के महल में डालने का आदेश इन्द्र महाराज ने दिया। तब तिरछे लोक में रहने वाले तिर्यग्जृंभक देवों ने वह सब धन ले जा कर सिद्धार्थ राजा के महल में डाल दिया।

जिस रात में श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी ज्ञातकुल वाले सिद्धार्थ राजा के घर में आये, उस रात से सिद्धार्थ राजा सोना, रूपा, धन-धान्य, राज्य, देश, वाहन, कटक, पालकीप्रमुख, भंडार, धान्य-कोठार, पुर, अन्तःपुर- रानियों का परिवार, देशवासी लोग, यशवाद आदि से बहुत सम्पन्न हुए। उनकी बहुत वृद्धि हुई। यव, गेहूँ, शालि, व्रीहि, साठी-जुआर, कोद्रव, साँवाँ, कांग, राल, तिल, मूँग, उड़द, अलसी, चना, तिउडा, वाल, सिलिन्द, राजउड़द, उच्छू, मसूर, अरहर, कुलथ, धना और कलायरा इन चौबीस प्रकार के धान्य से तथा अन्य भी सोना, रूपा, मोती, मणि, दक्षिणावर्त्त शंख, राजवर्त्त, शिला, मूँगा, लालरत्न, पद्मराग आदि से समृद्ध हुए तथा प्रीति, सत्कार, बल, वाहन समुदाय आदि से भी बहुत बढ़े। इसलिए श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी के माता-पिता ने मन में यह विचार किया कि जिस दिन से हमारे यहाँ यह पुत्र कोख में आया है, उस दिन से हमारी सब प्रकार से सोना-रूपा प्रमुख वस्तुओं से वृद्धि हुई है, प्रीति-सत्कार आदि में भी बहुत वृद्धि हुई है, इसलिए हमारे यहाँ जब इस पुत्र का जन्म होगा, तब हम इसका नाम जैसे इसमें गुण हैं, वैसा ही देंगे। अर्थात् वृद्धिपने के गुण से उसका 'वर्द्धमान' नाम स्थापन करेंगे।

माता पर अनुकंपा कर के प्रभु गर्भ में निश्चल रहे

श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी ने अपनी माता पर अनुकम्पा याने दया ला कर सोचा कि मेरे हलन-चलन से माता को कष्ट होता है। यह सोच कर वे माता की कोख में निश्चल रहे। उन्होंने हिलना-डुलना बन्द कर दिया। वे अकंप रहे तथा उन्होंने अपने अंगोपांग स्थिर कर दिये। इस प्रकार वे गर्भ में रहे।

यहाँ कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो भगवान मोहराजा को जीतने के लिए क्या एकान्त में विचार कर रहे हैं? अथवा क्या किसी परब्रह्म का अगोचर ध्यान कर रहे हैं? अथवा अपने आत्मगुण को साधने के लिए क्या कल्याणरस में लीन हो रहे हैं? अथवा कामदेव का निग्रह करने के लिए क्या रूपपरावर्त्तन की विद्या साध रहे हैं? इस तरह जो श्री भगवान माता की कोख में रहे, वे आपकी कल्याणरूप लक्ष्मी के लिए हों।

प्रभु की निश्चलता से माता को शोक

तब त्रिशला माता के मन में ऐसा हुआ कि मेरा गर्भ कोई देव उठा ले गया है, मेरा गर्भ मर गया है, मेरे गर्भ का च्यवन हो गया है तथा मेरा गर्भ गल गया है। मेरा गर्भ पहले हलन-चलन करता था, पर अब वह हलन-चलन नहीं करता। इससे मालूम होता है कि गर्भ को कुशल नहीं है। यह सोच कर उसका मन डाँवाडोल होने लगा। वह चिन्तासागर में डूब गयी और हाथ पर मुख रख कर नीची नजर कर के आर्त्तध्यान करने लगी। वह इस प्रकार से कि-

मेरा गर्भ जाता रहा, इसलिए मैं अवश्य ही अभागिन हूँ, हीन पुण्यवान हूँ। अभागे के घर में चिन्तामणि रत्न नहीं रहता। दरिद्री के घर में निधान कैसे रह सकता है? जैसे मारवाड़ में कल्पवृक्ष नहीं होता; वैसे ही पुण्यहीन को प्यास लगने पर अमृतपान करने की इच्छा हो जाये, तो वह कैसे पूर्ण हो सकती है? हे दैव ! हे कर्म ! तू महानिर्दयी है, निर्लज्ज है। तुझे करुणा नहीं है। अरे पापिष्ट ! दुष्ट ! निरपराध लोगों को मारने वाले ! तू मेरा बिना कारण दुश्मन क्यों हुआ? मैंने तेरा ऐसा क्या अपराध किया था कि जिससे

तूने मेरा मनोरथ रूप कल्पवृक्ष उखाड़ डाला? यदि मैंने तेरा कोई अपराध किया है, तो हे पापी ! तू प्रकट होकर बताता क्यों नहीं ? तूने मुझे दुःख की खान प्राप्त करा दी। तूने मुझे आँखें दे कर वापस ले लीं। तूने मेरे हाथ पर निधान रख कर वापस खींच लिया। तूने मुझे मेरुपर्वत पर चढ़ा कर पुनः जमीन पर गिरा दिया। तूने मेरे मुख में आया हुआ कवल खींच लिया। तूने मेरे खेत की फसल जला दी। तूने मेरी रसकुंपिका फोड़ डाली। तूने मेरा जहाज बीच समुद्र में डुबो दिया।

अथवा देव को उपालंभ देने से क्या होता है? हे जीव ! तूने पूर्वभव में ऐसा ही कर्म बाँधा होगा, जो अब तेरे उदय में आया है। पूर्वभव में मैंने माताओं से उनके बालकों को दूर किया होगा तथा गायप्रमुख के बछड़ों को दूध नहीं पीने दिया होगा, पेड़ की डालियाँ तोड़ी होंगीं, सरोवर की पाल फोड़ी होगी, आग लगायी होगी, अनछना पानी पीया होगा, चूहों के बिल खोदे होंगे, उनमें धूल भरी होगी, नेवले और गोह के बिलों में उबलता जल और तेल डाला होगा, कीड़े-मकोड़ों के बिल में गर्म पानी डाला होगा, तोता-मैना प्रमुख जीवों को पिंजरे में डाला होगा, उन्हें उनकी माता का वियोग कराया होगा, चिड़ियाप्रमुख पक्षियों के घौंसले तोड़े होंगे, अंडे फोड़े होंगे, जूँ-लीखें मारी होंगीं, लोगों के गर्भ पर द्वेष किया होगा, गर्भ गिराया होगा, गर्भस्तंभन कराया होगा, वशीकरण-उच्चाटन आदि कराये होंगे, 'तेरा पुत्र मर जाये' ऐसा शाप दिया होगा, पापमंत्र की साधना और औषध किये होंगे, किसी को जहर दिया होगा, किसी के रत्न चुरा लिये होंगे, किसी का शीलभंग कराया होगा अथवा व्रतग्रहण कर उनका भंग किया होगा, किसी के गाँव जलाये होंगे, बड़े वृक्ष धरती से उखाड़ डाले होंगे, बड़े-बड़े तालाब सुखाये होंगे अथवा देवद्रव्य का भक्षण किया होगा, जैन मंदिर तोड़े होंगे, गुरु का अवर्णवाद (निंदा) किया होगा, देव-गुरु पर द्वेष किया होगा, दान देने वाले को देने से रोका होगा, वृक्ष के फल तोड़े होंगे अथवा अनन्तकाय का भक्षण किया होगा, कच्चे फल तोड़े होंगे, अधिक क्या कहूँ? ऐसे ऐसे पाप मेरे जीव ने किये होंगे, जो अब मेरे उदय में आये

हैं और इसी कारण से मेरा गर्भ गल गया है। इसलिए मैं तो अपार दुःखिनी हो गयी हूँ।

चौदह स्वप्नसूचित मेरा गर्भ चला गया, तो अब मुझे संसार में क्या सुख रहा? मैं राज-पाट को क्या करूँ? अधिक क्या कहूँ? त्रिलोक-पूजित पुत्र के बिना मेरे लिए सब सूना है। अब मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? किसके सम्मुख जा कर पुकार करूँ? इस प्रकार विलाप करती हुई त्रिशलादेवी यूथभ्रष्ट हरिणीसरीखी हुई। वह जहाँ-तहाँ घूमने लगी, निःश्वास छोड़ने लगी।

ऐसी अव्यवस्थित त्रिशलादेवी को देख कर सखियाँ उससे पूछने लगीं कि हे स्वामिनी ! आज तुम ऐसी क्यों हो रही हो? हम तुमसे पूछती हैं कि इस दुःख का कारण क्या है? तब त्रिशलादेवी आँख में आँसू ला कर निःश्वास छोड़ती हुई बोली कि हे सखियो ! मैं तुमसे क्या कहूँ? मैं अभागिनी हूँ। मेरा जीवितव्य चला गया। तब सखियाँ बोलीं कि हे सखी ! ऐसे अमंगल वचन मत बोलो। अन्य सब तो रहा, पर तुम्हारा गर्भ तो सकुशल है न ? तब त्रिशला बोली कि हे सखियो ! यदि मेरे गर्भ को कुशल होता, तो अन्य मेरे लिए क्या दुःख है? मेरा गर्भ जाता रहा है, यही दुःख है। इतना कह कर मूर्च्छित हो कर वह जमीन पर गिर गई। तब सखियों ने चन्दनजल छिडक कर तथा पवन से सचेतन कर उससे पुनः पूछा कि तुम्हारे गर्भ को क्या हुआ है? तब रानी गद्‌गद् स्वर से बोली कि मेरा गर्भ चला गया है। यह सुन कर सब सखियाँ भी दुःखी हो गयीं।

फिर उन सबने राजा के पास जा कर यह समाचार कहा। इससे राजा भी बहुत दुःखी हुआ। राजा ने नाटक-संगीत आदि सब बन्द करवा दिया। सब शोकाकुल हो गये और सोचने लगे कि अब क्या करें? किसी को कुछ सूझता नहीं था। तब कुछ लोग तो निमित्तज्ञाता को पूछने गये, कुछ ज्योतिषी-योगी से पूछने गये और वृद्ध स्त्रियाँ शान्ति-पुष्टि करने लगीं। कुछ कुलदेवी को उपालंभ देने लगीं कि हे देवी ! इस समय तू कहाँ चली गयी? इस प्रकार सब विलाप करने लगे। कोई भी कुछ बोलता नहीं था। सब

स्तब्ध थे। सब शोक की राजधानी बन गये थे। सब आँखों से आँसू बहाते थे और निःश्वास छोड़ते थे। सब दुःखपीड़ित हो गये थे। किसी को खाना-पीना भी सूझता नहीं था।

भगवान गर्भ में एकदेश से हिले

यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। कुछ समय बाद भगवान ने यह जान लिया कि पहले जो बाजे बज रहे थे, वे बन्द हो गये हैं। वे क्यों बन्द हो गये हैं? यह जानने के लिए अवधिज्ञान का उपयोग किया, तो सब वृत्तान्त उन्हें मालूम हो गया। उन्होंने सोचा कि-

किं कूर्म्मः कस्य वा ब्रूमः, मोहस्य गतिरीदृशी।
दुष्धातोरिवास्माकं, दोषनिष्पत्तये गुणाः।।

इस मोहराजा की गति कैसी है ! मैंने तो गुण किया, पर यहाँ उलटे अवगुण हो गया।

कलिकाल का दृष्टान्त

इस पर कलिकाल का दृष्टान्त कहते हैं- कोई एक पथिक परदेश से बहुत-सा धन कमा कर अपने घर जा रहा था। रास्ते में एक जंगल आया। उस जंगल में दावानल लगा था। उसमें एक सर्प फँस गया था। उसने उस पथिक से कहा कि मुझे इस दावानल से बाहर निकालो। उस पथिक ने उसे बाहर निकाला। तब सर्प ने कहा कि तुम खड़े रहो। मैं तुम्हें खाने वाला हूँ। तब वह पुरुष बोला कि मैंने तुझे जलने से बचाया, तुझ पर उपकार किया और मृत्यु से तेरी रक्षा की, फिर भी तू मुझे खायेगा? साँप ने कहा कि आजकल कलिकाल चल रहा है। आज के समय में गुण का दोष होता है, इसलिए मैं तुझे काटूँगा। तब पथिक ने कहा कि मैं बहुत वर्षों के बाद घर जा रहा हूँ। मेरे पास धन है। वह धन मैं मेरी पत्नी को दे कर उससे बिदा ले कर मैं वापस लौट आऊँगा। यह वचन दे कर वह अपने घर गया। उसने अपनी स्त्री को सब बात बता दी।

फिर उससे बिदा ले कर वह पुरुष पुनः उस जंगल में गया। उसकी स्त्री भी उसके पीछे पीछे गयी। सर्प की स्तुति कर के उसने कहा कि हे नागराज ! यदि तुम मेरे पति को खा जाओगे; तो मेरी क्या गति होगी? मेरे दुश्मन बहुत हैं। तब सर्प ने कहा कि मैं तुझे शत्रुनिवारण का उपाय बताता हूँ। तू बिल्कुल चिन्ता मत कर। मेरे

बिल के पास औषधि है। उसका मूल ले कर पाषाण पर घिस कर उसके छींटे दुश्मन पर डालना। इससे वह जल कर भस्म हो जायेगा।

तब वह स्त्री औषधि का मूल ले कर वह अमृतमूली पाषाण पर घिस कर सर्प पर छींटे डालने के लिए तैयार हुई। तब सर्प ने कहा कि मैंने तुझे औषधि बतायी और तू मुझे ही जला रही है? गुण पर अवगुण कर रही है। तब उस स्त्री ने कहा कि गुण का भाई अवगुण है, ऐसा तुमने ही तुम्हारे मुख से कहा है। इसलिए अब तुम कुछ मत बोलो। इतना कह कर उसने सर्प पर छींटे डाले। इससे वह जल कर भस्म हो गया। इति कलिकाल दृष्टान्त।

यह सोच कर गर्भ में रहे हुए भगवान कनिष्ठिका उँगली हिला कर एकदेश से जरा से हिले।

गर्भ के हिलने से माता को प्रमोद

गर्भ के हिलने से त्रिशलाजी ने जान लिया कि मेरा गर्भ अवस्थित है। मैंने व्यर्थ ही खोटा शोक किया। यह सोच कर वह कहने लगी कि हे सखियो ! मेरा गर्भ सकुशल है। मैंने अज्ञान के कारण विलाप किया। मेरे भाग्य बड़े हैं। मैं धन्य, कृतपुण्य और त्रिभुवनमान्य हूँ। मेरा जीना प्रशंसनीय है। मुझे जैनधर्म के पालन का फल प्राप्त हुआ। मैंने पूर्व में जिस धर्म का पालन किया था, वह प्रकट हुआ। मेरा जीना सफल हुआ।

तब सखियाँ जय-जय करने लगीं। अष्टमंगल रचे गये। कुंकुम छाँटा गया। राजा को बधाई दी गयी। राजा भी खुश हुआ। बाजे बजने लगे। नाटक महोत्सव हुए। तोरण बाँधे गये। बन्दीजन जय-जयकार करने लगे। कैदखाने खोल दिये गये। अनेक लोग मिले। मांगलिक बातों से कोलाहल हुआ। महादान दिया गया। इस प्रकार के आनन्द से राजा की राजधानी आनन्दमय हो गई। चारों ओर खुशियाँ छा गयीं।

सूत्रकार कहते हैं कि गर्भ का कुशल मालूम न होने के कारण सिद्धार्थ राजा के घर में मृदंग, ताल, वीणा, हस्ताल, नाटक इत्यादि लोकवल्लभ सब कार्य आनन्दरहित हो गये थे। इससे महावीरस्वामी माता को शोकातुर जान कर एकदेश से जरा से हिले, तब त्रिशला माता हृदय में

हर्षित हो कर बोली कि मेरा गर्भहरण नहीं हुआ है, गला नहीं है। मेरा गर्भ पहले हिलता नहीं था, पर अब हिल रहा है। यह कह कर हर्षित हो कर वह आनन्द मनाने लगी।

गर्भ में ही प्रभु का अभिग्रह

अब श्रमण भगवंत श्री महावीरस्वामी ने विचार किया कि मेरे माता-पिता अभी से ही ऐसा मोह करते हैं, तो जब मैं दीक्षा लूँगा तब तो इन्हें बहुत दुःख होगा। इसलिए अब मेरे माता-पिता जीयें तब तक दीक्षा लेना मुझे उचित नहीं है। ऐसा अभिग्रह जब साढ़े छह महीने गर्भ को हो गये थे, तब भगवान ने लिया।

गर्भप्रतिपालन

फिर त्रिशला माता ने स्नान किया, देवपूजा कर के मंगल किया और अलंकारादि धारण किये। गर्भप्रतिपालन ठीक तरह से करने के लिए वह अतिशीतल आहार, अतिउष्ण आहार तथा बहुत तीखा सूंठ-मिरच आदि का आहार लेती नहीं थी। अधिक कड़वा निंबादि, अधिक कसैला हरडे आदि, अधिक खट्टा इमलीप्रमुख, अधिक मीठा गुड़ आदि, अधिक स्निग्ध घृतप्रमुख, अधिक लूखा चनाप्रमुख, अधिक सूखा पूडला-पापडीप्रमुख तथा अधिक हरा फल-फूल का भोजन वह करती नहीं थी। वह जो भोजन करती थी, वह विधिसहित करती थी। वस्त्र भी विधि से पहनती थी। वह गंधादि विधि से ग्रहण करती थी तथा मालाप्रमुख भी विधि से पहनती थी। गर्भ की रक्षा के लिए वह अपने को रोग लगने नहीं देती थी। वह शोक करती नहीं थी, मोह करती नहीं थी और भय भी रखती नहीं थी। जो-जो काम गर्भ के लिए हितकारक थे, वे काम वह करती थी। वह मानोपेत पथ्य आहार करती हुई गर्भ का पोषण करती थी। जिस काल में जो चीज सुपाच्य और गुणकारक होती, उसका वह उपयोग करती थी। वह सुकोमल शय्या में शयन करती थी और सुखासन पर बैठती थी। वह ऊँची-नीची फिरती नहीं थी।

वाग्भट्टादिक ग्रंथों में कहा है कि गर्भिणी स्त्री यदि वातकारक खाये याने वायुज पदार्थ खाये, तो गर्भ कुबड़ा होता है, अंधा होता है और वामन होता है। वह पित्तकारक पदार्थ खाये तो गर्भ गिर जाता है तथा उसका अंग पीला हो जाता है। वह कफकारक पदार्थ खाये, तो गर्भ पांडुरोगी (श्वेत वर्ण वाला) होता है अथवा चितकबरा होता है। गर्भवती स्त्री यदि नमक अधिक खाये और आँख में काजल अधिक डाले, तो पुत्र नेत्रहीन अंधा होता है। वह अधिक ठंडा आहार करे, तो वायु अधिक होती है। वह अधिक गरम आहार करे, तो पुत्र कमजोर होता है। वह मैथुनसेवन करे, तो गर्भ की मृत्यु होती है। वह घोड़ेप्रमुख पर सवारी करे, अधिक दौड़े, अधिक चले, चलते-चलते गिरे, पेट मसलावे, नाली प्रमुख कूदे, ऊँची-नीची सोये, मंजिलप्रमुख पर चढ़े-उतरे, उकड़ूँ बैठे, उपवास करे, वमन करे, विरेचन जुलाब ले आदि कार्य करे, तो गर्भ गिर जाता है। वह अधिक रुदन करे, तो लड़का चीपड़ी आँखों वाला होता है। वह अधिक गीत गाये, तो लड़का बहरा होता है। वह अधिक बातें करे, तो वाचाल होता है। वह अधिक हँसे, तो लड़का मसखरा होता है। अधिक गालियाँ बोले, तो लड़का लंपट होता है।

अब किस-किस ऋतु में क्या-क्या पथ्यकारक है? सो कहते हैं- वर्षा ऋतु में नमक गुणकारक है। शरद् ऋतु में जल गुणकारक है। शिशिर ऋतु में खट्टा रस गुणकारक है। वसन्त ऋतु में घी, गुड़ इत्यादिक गुणकारक हैं।

कोई प्रौढ़ सखी कहती है कि बहन ! धीरज से बोल। धीरज से चल। क्रोध मत कर। पथ्य का पालन कर। घाघरा और चोली अधिक कसकर मत बाँध। अधिक मत हँस। छत पर मत सो, क्योंकि छत पर सोने से पुत्र बाँडा होता है। अधिक नीचे मत चल। अधिक ऊँची मत चढ़। दिन में सोने से लड़का अधिक ऊँघने वाला होता है तथा आलसी बनता है। नाखून काटने से पुत्र कुशील-दुराचारी होता है। अधिक दौड़ने से पुत्र चंचल होता है। अधिक हँसने से होंठ, दाँत, तालु और जीभ ये काले हो जाते हैं। पंखा अधिक झलने से वह उन्मत्त होता है। अतिशोक करने से वह उच्चाटिया होता है। अधिक मूर्च्छित रहने से वह निर्बुद्ध होता है। अतिभय रखने से पुत्र डरपोक होता है। अतिपरिश्रम करने से वह कमजोर और आलसी होता है। ऐसी सब बातें बड़ी स्त्री जैसे कहती है, उसके अनुसार त्रिशलारानी अपने गर्भ का प्रतिपालन करने लगी।

त्रिशलामाता के दोहद

अब त्रिशला माता को शुभ दोहद उत्पन्न होते हैं कि मैं पूजा करूँ, दान दूँ, साधर्मिक-वात्सल्य करूँ इत्यादि। ये सब दोहद सिद्धार्थ राजा हर्षसहित सम्मानपूर्वक पूर्ण करते हैं, पर यह नहीं कहते कि तू तो बैठे-बैठे ढोंग करती है। इस तरह वे दोहद का अपमान नहीं करते। इस प्रकार त्रिशलादेवी को उत्पन्न होने वाले दोहद बिल्कुल उसके मन में रहते नहीं हैं। वे पूरे होते हैं। रजवाड़ीप्रमुख वनक्रीड़ाप्रमुख सब दोहद सिद्धार्थ राजा ने पूर्ण किये।

एक दिन त्रिशलादेवी को ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ कि मैं इन्द्राणी के कुंडल छीन कर पहनूँ। यह दोहद राजा से पूरा नहीं हुआ। इससे वह मन में उदास हो गयी। तब सिद्धार्थ राजा ने दोहद की हकीकत जान कर, रानी के मुख से सुन कर कहा कि यह दोहद मैं पूरा करूँगा, पर यह बात मेरे हाथ में नहीं है।

इतने में इन्द्र महाराज का आसन डोलने लगा। तब उन्होंने अवधिज्ञान से देख कर भगवान की माता का दोहद पूर्ण करने के लिए इन्द्राणीप्रमुख देवांगनाओं के समूह सहित क्षत्रियकुंड नगर के समीप एक महादुर्गम पर्वत पर इन्द्रपुर नामक नगर बसाया। फिर वहाँ जा कर सपरिवार निवास किया। सिद्धार्थ राजा ने जब यह सुना कि इन्द्र महाराज पर्वत पर रहे हुए हैं, तब उन्होंने वहाँ यह सन्देश भेजा कि हमारी रानी को इन्द्राणी के कुंडलों की आवश्यकता है, इसलिए हमें कुंडल दीजिये। पर इन्द्र ने कुंडल नहीं दिये। तब सिद्धार्थ राजा ने सेना ले कर उन पर आक्रमण किया। यद्यपि इन्द्र महाराज जीतने में समर्थ थे, तो भी वे जानबूझ कर हार कर भाग गये। फिर सिद्धार्थ राजा ने रुदन करती हुई अप्सराओं के समूह में बैठी हुई इन्द्राणी के कुंडल छीन कर त्रिशलादेवी को सौंप दिये। इस प्रकार उसका दोहद पूरा किया।

इसके अलावा अन्य भी सत्तरभेदी पूजा रचाऊँ, तीर्थयात्रा करूँ, देवगुरु की भक्ति करूँ, सुपात्रदान दूँ इत्यादिक अनेक दोहद जो त्रिशलादेवी

को उत्पन्न हुए, वे सब राजा ने पूर्ण किये। इस तरह पूरितदोहद त्रिशलारानी सोती है, बैठती है, खड़ी होती है तथा अनेक ऋतुओं में सेवन करने योग्य, गर्भ के लिए सुखकारक ऐसा भोजन, आच्छादन, वस्त्र, गंध, मालाप्रमुख लेती है। गर्भ के लिए हितकारक पथ्ययुक्त देशकाल योग्य आहार करती हुई, गर्भपोषण करती हुई, अपने दासी-सहेली प्रमुख परिजनों के साथ विचरती हुई, घूमती हुई अपने आवास में त्रिशलामाता सुखपूर्वक निवास करती है।

भगवान श्री महावीरस्वामी का जन्म

उस काल में उस समय में श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी गरमी का पहला चैत्र महीना - उसका दूसरा पक्ष याने कि चैत्र सुदि तेरस के दिन नौ महीने साढ़े सात दिन बीत गये तब.... (यहाँ नौ महीने साढ़े सात दिन गर्भवास का अधिकार है, परन्तु कम-अधिक, का पाठ हो तो भी इसमें कोई एतराज नहीं है। गर्भ में रहने का काल तो चौबीस तीर्थंकरों का इस प्रकार है- श्री ऋषभदेवजी नौ महीने और चार दिन गर्भ में रहे। श्री अजितनाथजी आठ महीने और पच्चीस दिन, श्री संभवनाथजी नौ महीने और छह दिन, श्री अभिनन्दनस्वामी आठ महीने और अट्ठाईस दिन, श्री सुमतिनाथजी नौ महीने और छह दिन, श्री पद्मप्रभजी नौ महीने और छह दिन, श्री सुपार्श्वनाथजी नौ महीने और छह दिन, श्री चन्द्रप्रभजी नौ महीने और आठ दिन, श्री सुविधिनाथजी आठ महीने और छब्बीस दिन, श्री शीतलनाथजी नौ महीने और छह दिन, श्री श्रेयांसनाथजी नौ महीने और छह दिन, श्री वासुपूज्यजी आठ महीने और बीस दिन, श्री विमलनाथजी आठ महीने और इक्कीस दिन, श्री अनन्तनाथजी नौ महीने और छह दिन, श्री धर्मनाथजी आठ महीने और छब्बीस दिन, श्री शान्तिनाथजी नौ महीने और छह दिन, श्री कुन्थुनाथजी नौ महीने और पाँच दिन, श्री अरनाथजी नौ महने और आठ दिन, श्री मल्लीनाथजी नौ महीने और सात दिन, श्री मुनिसुव्रतस्वामी

नौ महीने और आठ दिन, श्री नमिनाथजी नौ महीने और आठ दिन, श्री नेमिनाथजी नौ महीने और आठ दिन, श्री पार्श्वनाथजी नौ महीने और छह दिन तथा श्री महावीरस्वामी नौ महीने और साढ़े सात दिन गर्भ में रहे। यह चौबीस तीर्थंकरों की गर्भस्थिति कही।)

...उच्च राशि के सात ग्रहों में पहला चन्द्रयोग होने पर, निर्मल दस दिशाएँ बादल और धूल-रज से रहित होने पर, जन्मवेला में अंधकाररहित, अग्नि-दावानलप्रमुख उपद्रवरहित दिशाएँ होने पर ऐसे समय में जब कि सब पक्षी जयकारी शब्द बोल रहे थे, प्रदक्षिणावर्त्त सानुकूल शीतल मन्द सुगन्ध सहित हवा धरती पर चल रही थी, पृथ्वी पर सब प्रकार के धान्य उतपन्न हुए थे, उसके कारण हर्षित हुए सब देशों के लोग क्रीड़ा कर रहे थे, उस काल में मध्य रात्रि के समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के तीसरे पाये के साथ चन्द्रमा का योग होने पर रोगरहित ऐसी त्रिशलारानी ने रोगरहित और तीन ज्ञानसहित ऐसे पुत्ररत्न को जन्म दिया।

जन्मकुंडली स्थापना- स्वस्तिश्री ऋद्धिवृद्धिजयोर्माङ्गल्याभ्युदयश्च संवत् २६९१ वर्षे मासोत्तम मासे चैत्रमासे शुक्लपक्षे त्रयोदशी तिथौ भौमवासरे घटी. ५५ पल. ११, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र घटी. ६०, ध्रुवयोग घटी. ४५ पल. ५५, तैतल कर्णे एवं पंचांग शुद्धौ श्री इष्ट घटी. ४५ पल. १५, इक्ष्वाकुवंशे श्री क्षत्रियकुण्डपुरनगरे सिद्धार्थनृपगृहे भार्या त्रिशला क्षत्रियाणी कुक्षौ पुत्ररत्नमजीजनत्।।

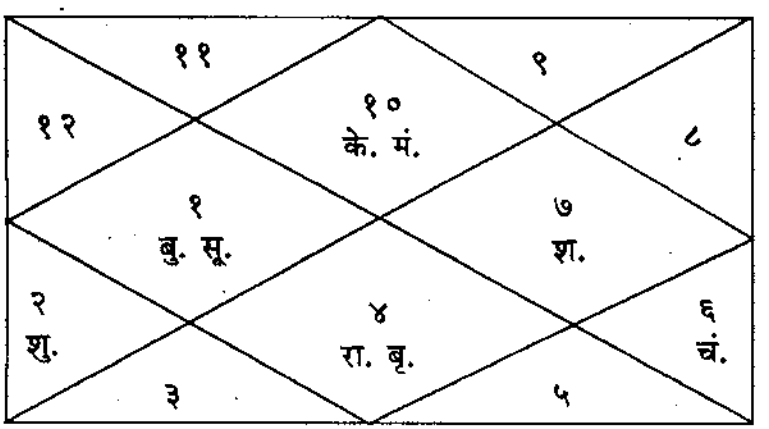

त्रिभुवनदीपक श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी का जन्म हुआ। उनकी जन्मकुंडली स्थापना।

जैनाचार्य श्रीमद्भट्टारक-विजय राजेन्द्रसूरीश्वर - सङ्कलिते
श्री कल्पसूत्र-बालावबोधे चतुर्थं व्याख्यानं समाप्तम्।।

卐 卐 卐

पंचम व्याख्यान

जिस रात्रि में श्री महावीरस्वामी ने जन्म लिया, उस रात्रि में बहुत देव-देवियाँ स्वर्ग में जाते-आते मानो बहुत आकुल-व्याकुल हो रहे हों वैसा, मालूम नहीं होने जैसा अव्यक्त शब्द (कोलाहल) हुआ। याने कि जब बहुत से लोग एक साथ बोलते हैं, तब आवाज अवश्य होती है, पर मालूम नहीं होता। जिस समय में श्री महावीरस्वामी का जन्म हुआ, उस समय तीनों लोक में उद्योत हुआ तथा सातों नरकों[१] में भी उद्योत हुआ। आकाश में देवदुंदुभी बजी तथा नरक के जीवों को भी क्षण भर के लिए आनन्द हुआ, क्योंकि भगवान के अतिशय से नारकी जीवों को भी मुहूर्त्त मात्र शाता होती है तथा स्थावर जीवों का भी विशेष छेदन-भेदन नहीं होता, इसलिए उन्हें भी सुख होता है। भगवान के जन्म के समय सारी धरती उल्लासमान हुई।

छप्पन्न दिक्कुमारी और सुरेन्द्रकृत जन्मोत्सव

भगवान का जन्म होने से छप्पन्न दिक्कुमारिकाओं के आसन चलायमान हुए। तब अवधिज्ञान के उपयोग से भगवान का जन्म हुआ जान कर प्रथम अधोलोक में गजदन्ताकार पर्वत के नीचे निवास करने वाली भोगंकरा,

---

१. पहली नरक में सूर्यसमान, दूसरी में बादलों से आच्छादित सूर्यसमान, तीसरी में चन्द्रसमान, चौथी में बादलों से ढंके हुए चन्द्रसमान, पाँचवी में ग्रह के समान, छठी में नक्षत्र के समान तथा सातवीं में तारे के समान उद्योत (तेज) होता है। ऐसा भगवान के पाँचों कल्याणकों में नरकादि सर्व चौदह राजलोक में उद्योत होता है।

भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधरा, विचित्रा, पुष्पमाला और आनंदिता इन आठ दिक्कुमारिकाओं ने त्रिशला माता के पास जा कर भगवान तथा भगवान की माता को नमस्कार कर के ईशानकोण में एक सूतिकाघर बनाया। फिर एक योजनप्रमाण भूमि संवर्त्तक वायु से शुद्ध कर के काँटे-कंकर आदि दूर कर उसे सुगंधित किया।

फिर ऊर्ध्वलोक में सुमेरु पर्वत पर नन्दनवन के कूटों में रहने वाली मेघंकरा, सुमेघा, मेघवती, मेघमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, वारिषेणा और बलाहिका इन आठ दिक्कुमारिकाओं ने वहाँ जा कर प्रभु को तथा प्रभु की माता को नमस्कार कर के उस सूतिका घर में सुगंधित जलसहित पुष्पवर्षा की। फिर वे गीत गाती हुई वहाँ खड़ी रहीं।

फिर रुचकद्वीप के पूर्व में पर्वत पर रहने वाली नन्दोत्तरा, नंदा, आनन्दा, नन्दीवर्द्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता ये आठ दिक्कुमारिकाएँ वहाँ जा कर भगवान तथा भगवान की माता को नमस्कार कर के मुख देखने के लिएं हाथ में दर्पण ले कर भगवान के सम्मुख गीत गाती खड़ी रहीं।

रुचकद्वीप के दक्षिण में पर्वत पर रहने वाली समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुंधरा इन आठ दिक्कुमारिकाओं ने वहाँ जा कर भगवान को तथा भगवान की माता को नमस्कार कर के सोने के भृंगारकलश सुगंधित जल से भर कर हाथ में धारण कर भगवान की माता को स्नान कराया। फिर उन्होंने भगवान के आगे गीत-गान नाटारंभ किया।

रुचकद्वीप के पश्चिम में पर्वत पर रहने वाली इलादेवी, सुरादेवी, पृथिवी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, भद्रा और सीता ये आठ दिक्कुमारिकाएँ वहाँ जा कर प्रभु को तथा प्रभु की माता को नमस्कार कर के माता के सम्मुख पवन करने के लिए हाथ में पंखे ले कर खडी रहीं।

रुचकद्वीप के उत्तर में पर्वत पर रहने वाली अलंबुषा, मितकेशी, पुंडरीका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री और ह्री ये आठ दिक्कुमारिकाएँ

वहाँ जा कर भगवान तथा भगवान की माता को नमस्कार कर के भगवान के दोनों ओर चार-चार खड़ी रहीं। वे चामर हाथ में ले कर डुलाने लगीं।

रुचकद्वीप की विदिशा में पर्वत पर रहने वाली विचित्रा, चित्रकनका, तारा और सौदामिनी ये चार दिक्कुमारिकाएँ वहाँ जा कर भगवान तथा भगवान की माता को वन्दन कर के हाथ में दीपक ले कर खड़ी रहीं।

रुचकद्वीप की विदिशा में रहने वाली रूपा, रूपासिका, सुरूपा और रूपकावती इन चार दिक्कुमारिकाओं ने वहाँ जा कर भगवन्त तथा भगवन्त की माता को नमस्कार कर के भगवन्त का चार अंगुल प्रमाण छोड़ कर नाल काटा। फिर भूमि में गड्ढा खोद कर उसे गाड़ दिया। उस पर वैडूर्यरत्न का चौखंड चबूतरा बनाया। उस पर दर्भ बोया।

फिर सूतिकागृह से अलग एक पूर्व दिशा में, एक दक्षिण दिशा में और एक उत्तर दिशा में इस प्रकार तीन स्थान पर तीन कदलीगृह बनाये। उनमें सिंहासन रखे। फिर दक्षिण दिशा के कदलीगृह में भगवान तथा भगवान की माता को ले जा कर सिंहासन पर बिठा कर सुखकारक सुगंधित तेलों से मर्दन किया। फिर पूर्व दिशा के कदलीगृह में ले जा कर सिंहासन पर बिठा कर स्नान कराया और चन्दन-लेपन किया। फिर उत्तर दिशा के कदलीगृह में सिंहासन पर बिठा कर अरणीकाष्ठ घिस कर अग्नि प्रज्वलित कर चन्दनकाष्ठ से शान्ति-पुष्टि-कारक होम किया। उस होम की रक्षा-पोटली भगवान तथा भगवान की माता के हाथ में बाँधी। फिर 'हे भगवन्! पर्वतायुर्भव।' ऐसी आशीष दे कर दो मणिमय गोले उछाले। फिर उन्हें भगवान के खेलने के लिए पल्यंक पर बाँध कर गीतगान कर के भगवान तथा भगवान की माता को जन्मस्थान पर छोड़ कर वे सब अपने-अपने स्थान पर गयीं।

प्रत्येक दिक्कुमारिका के चार-चार महत्तरा देवियाँ हैं, चार हजार सामानिक देव हैं, सोलह हजार अंगरक्षक देव हैं और सात अनीकाधिपति हैं। इनके अलावा अन्य अनेक देव-देवियों के परिवार सहित एक योजन के विमान में बैठ कर प्रभु का जन्म महोत्सव करने के लिए वे जैसे आती हैं, वैसे ही महोत्सव कर के अपने-

अपने स्थान पर वापस जाती हैं। ये देवियाँ भवनपति के अन्तर्गत एक पल्योपम की आयुवाली जानना। इन देवियों का यही आचार है कि तीर्थंकर का जन्म होने से प्रथम इनका आसन चलायमान होता है, तब प्रभु का पहला जन्ममहोत्सव ये देवियाँ करती हैं। इनके बाद अन्य इन्द्रादिक देव करते हैं।

इन्द्रकृत जन्ममहोत्सव

दिक्कुमारिकाओं का महोत्सव होने के बाद चौसठ इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। तब श्री महावीर भगवान का जन्म अवधिज्ञान से जान कर प्रथम सौधर्मेन्द्र ने हरिणगमेषी देव को बुला कर बारह योजन चौड़ा, छह योजन ऊँचा तथा एक योजन (मतान्तर से चार योजन) नाल वाला 'सुघोषा' नामक घंटा बजाने का हुक्म दिया। उसने पाँच सौ देवों के साथ घंटा बजाया। उस घंटे की ध्वनि से सौधर्म देवलोक के बत्तीस लाख विमान के सब घंटे अपने आप बजने लगे। तब सब देवता सावधान हो गये। इसी प्रकार शंखनाद सुन कर भवनपतिदेव, पटहनाद सुन कर व्यन्तरदेव तथा सीथनाद सुन कर ज्योतिष्कदेव सावधान हो गये। कहा भी है कि-

सुणिऊण संखसद्दं, मिलंति भवणा य विंतरा पडहं।
जोइसियं सीयनायं, घंटेण विमाणिया देव।।१।।

फिर ईशानेन्द्र ने लघुपराक्रम नामक देवता से सुघोषा घंटा बजवाया। इसी प्रकार शेष इन्द्रों ने भी अपने-अपने देवों से घंटा बजवाया। तब इन्द्र महाराज का कोई काम है, ऐसा जान कर सब देव उनके सम्मुख उपस्थित हुए।

इसके बाद सौधर्मेन्द्र पालक नामक देव द्वारा निर्मित एक लाख योजन के पालक विमान के मध्यभाग में पूर्व दिशा के सम्मुख सिंहासन पर बिराजमान हुए। उनके सम्मुख आठ अग्रमहीषियाँ आठ भद्रासनों पर बैठीं। उनके बायीं ओर चौरासी हजार सामानिक देव भद्रासनों पर बैठे तथा दाहिनी ओर तीन पर्षदाएँ बैठीं। उनमें बारह हजार अभ्यन्तर पर्षदा के, चौदह हजार मध्यम पर्षदा के तथा सोलह हजार बाह्य पर्षदा के इस प्रकार कुल मिला कर बयालीस हजार देव भद्रासनों पर बैठे। इन्द्र के पीछे सात

कटक के देव भद्रासनों पर बैठे। चारों दिशाओं में चौरासी हजार आत्मरक्षक देव भद्रासनों पर बैठे।

ऐसी ही सजधज से सब इन्द्र अपने अपने विमान में बैठ कर नन्दीश्वर द्वीप की ओर चले। उनमें से कई देव इन्द्र की आज्ञा पालने के लिए, कई देव मित्रों की प्रेरणा से, कई देव अपनी-अपनी देवियों की प्रेरणा से, कई देव तीर्थंकर की भक्ति के लिए, कई देव कौतुक देखने के लिए तथा कई देव अपूर्व आश्चर्य देखने के लिए उनके साथ चले।

वे देव अपने-अपने अलग-अलग वाहन पर सवार हुए। सिंह वाहन पर सवार देव ने हस्तिवाहन पर सवार देव से कहा कि तू तेरा हाथी दूर रख। मेरा सिंह जबरदस्त है। वह तेरे हाथी को मार डालेगा। इसी प्रकार के वचन महिषवाहन पर सवार देव ने अश्ववाहन वाले से, गरुड पर सवार देव ने सर्प पर सवार देव से तथा व्याघ्रवाहन पर सवार देव ने छागवाहन वाले देव से कहे। ऐसा वचन-विवाद करने वाले कोटानकोटि देव सब अपने-अपने वाहन की प्रशंसा करते चले। यद्यपि आकाश बहुत विस्तृत है; तो भी उस समय देवसमुदाय के कारण वह संकीर्ण हो गया।

मार्ग में कोई देव जब अपने मित्र से आगे बढ़ जाता, तब मित्र कहता कि अरे ! जरा ठहरो तो सही। मैं भी आ रहा हूँ। तब वह देव यह कह कर आगे चला जाता कि भगवान को पहले वन्दन करने का लाभ कौन चूके? इसी तरह जो प्रबल होता, वह आगे बढ़ जाता। कोई कमजोर होता, वह गिरते हुए कहता कि भाई ! यह मार्ग तो बहुत संकीर्ण है। तब अन्य कोई कहता कि चुप रहो। पर्व के दिन तो संकीर्ण ही होते हैं। कोई कहता कि अधिक मत बोल। इन्द्र को मालूम हो गया, तो सजा मिलेगी।

इस तरह आकाश से नीचे उतरते हुए जब वे देव ज्योतिषी के तारों के पास आये, तो तारों की किरणों से वे चमकने लगे। यहाँ कवि उत्प्रेक्षा करता है कि यद्यपि सब देव निर्ज्जर हैं, तो भी वे जरा सहित (वृद्ध) हो गये। ऐसा लगने लगा कि क्या उनके सिर पर सफेद बाल ऊग आये हैं? उन देवों के सिर पर तारों का विमान देख कर ऐसा लगता था कि मानो चान्दी का घड़ा ही हो। उनके शरीर से

तारे लगे, तब वे पसीने की बूँदों जैसे दीखने लगे।

इस तरह सब इन्द्र और देव अपना अपना विमान संकोच कर नन्दीश्वर द्वीप में आये।

फिर सौधर्मेन्द्र ने भगवान के जन्मघर में जा कर भगवान तथा भगवान की माता को नमस्कार कर के तीन प्रदक्षिणा दे कर भगवान की माता से कहा कि हे रत्नकुक्षिधारिणी ! हे रत्नगर्भे ! हे रत्नदीपिके ! हे माता ! मैं प्रथम देवलोक का इन्द्र हूँ। तुम्हारा पुत्र चौबीसवाँ तीर्थंकर है। उसका जन्म महोत्सव करने के लिए मैं आया हूँ। इसलिए तुम बिल्कुल मत डरना। इतना कह कर 'नमोऽस्तु रत्नकुक्षिधारिके तुभ्यम्' बोल कर भवान की माता को अवस्वापिनी निद्रा दे कर तथा भगवान जैसा ही अन्य रूप बना कर माता के पास रख कर इन्द्र ने अपने पाँच रूप बनाये। फिर एक रूप से दो हाथों से करसंपुट में भगवान को रखा, एक रूप से भगवान पर छत्र रखा, दो रूप से दोनों ओर चामर ढुलाने लगा तथा एक रूप से वज्र उछालते हुए भगवान के आंगे चलने लगा। इस प्रकार कुल पाँच रूप इन्द्र ने वैक्रिय किये। उनमें आगे वाला पीछे वाले के रूप की प्रशंसा करता था और पिछला अगले के रूप की प्रशंसा करता था।

इस प्रकार पाँच रूप से इन्द्र महाराज मेरुपर्वत पर पांडुकवन में भगवान को ले आये। मेरु की चूलिका से दक्षिण दिशा में अति-पांडुकमला शिला के तले शाश्वत सिंहासन है। उस पर भगवान को गोद में ले कर इन्द्र महाराज पूर्व सम्मुख बैठे। तब वहाँ बारह देवलोक के दस इन्द्र, भवनपति के बीस इन्द्र, व्यन्तर के बत्तीस इन्द्र और चन्द्रमा तथा सूर्य ये दो ज्योतिषियों के इन्द्र इस प्रकार सब मिल कर चौसठ इन्द्र सपरिवार प्रभु का स्नात्र करने के लिए जमा हुए।

अभिषेक-कलशों की संख्या और परिमाण

फिर सब इन्द्रों ने अपने अपने सेवक देवताओं से तीर्थोदकपूर्ण आठ जाति के कलश मँगवाये। उनमें सुवर्णमय १, रौप्यमय २, रत्नमय ३, सुवर्णरौप्यमय ४, सुवर्णरत्नमय ५, रत्नरौप्यमय ६, सुवर्णरौप्यरत्नमय ७

और मृत्तिकामय ८ इन आठ जातियों के प्रत्येक एक हजार आठ कलश जानना। सब मिल कर आठ हजार चौसठ कलश हुए। इन्द्र चतुर्वृषभ का रूप बना कर आठ सींगों से अभिषेक करता है तथा एक-एक सींग में आठ हजार चौसठ कलशों का जल होता है। इसलिए आठ से गुणा करने पर चौसठ हजार पाँच सौ बारह (६४५१२) कलश होते हैं।

भवनपति के इन्द्रों के २०, व्यन्तरेन्द्र के ३२, वैमानिकेन्द्र के १०, ढाई द्वीप के सब सूर्य-चन्द्रों के १३२, धरणेन्द्र-भूतानेन्द्र की इन्द्राणियों के १२, चमरेन्द्र की इन्द्राणियों के १०, ज्योतिष्क की इन्द्राणियों के ४, सौधर्मेन्द्र की इन्द्राणियों के ८, ईशानेन्द्र की इन्द्राणियों के ८, व्यन्तरेन्द्र की इन्द्राणियों के ४ तथा सामानिक देवों का १, त्रायस्त्रिंशक देवों का १, लोकपाल देवों के ४, अंगरक्षक देवों का १, पारिषद् देवों का १, प्रजा के देवों का १ और सात कटक के देवों का १ इस प्रकार कुल मिला कर २५० अभिषेक होते हैं। एक एक अभिषेक में चौसठ हजार पाँच सौ बारह कलश होते हैं। उन्हें ढाई सौ से गुणा करने पर एक करोड़ इकसठ लाख अड्डाईस हजार कलश[1] हुए। एक-एक जाति का प्रत्येक कलश पच्चीस योजन ऊँचा, बारह योजन चौड़ा और एक योजन नाल वाला जानना। इसी प्रकार भृंगार, दर्पण, रत्नकरंडक, थाल, पात्रिका, पुष्पचंगेरी इत्यादि पूजा के उपकरण प्रत्येक में एक हजार आठ जानना तथा देव मागधादि तीर्थों के जल से, गंगाप्रमुख नदियों के जल से तथा पद्मद्रह के जल से कलश भर लाये। इसी प्रकार चुल्लहिमवन्त, वर्षधर, वैताढ्य, विजय, वक्षस्कार, देवकुरु, उत्तरकुरु, भद्रशाल और नन्दनवनप्रमुख के सब फल, प्रधान गंध, सर्व औषधिप्रमुख वस्तुएँ भी ले आये। फिर सब देव अपने अपने हाथ में कलश ले कर खड़े रहे। वे कैसे शोभायमान हैं? उन्हें देख कर ऐसा लगता

१. कल्पसूत्र सुबोधिका आदि कितने ही ग्रंथों में प्रत्येक जाति के एक एक हजार कलश कहे हैं। उस हिसाब से आठ जाति के आठ हजार कलश हुए। उन्हें आठ से गुणा करने पर ६४,००० हुए हैं। उन्हें २५० अभिषेक से गुणा करने पर एक करोड़ साठ लाख कलश होते हैं।

है कि क्या उन्होंने संसारसमुद्र पार करने के लिए अपने हाथ में कुंभ धारण किया है? क्या वे भाववृक्ष को सींच रहे हैं? क्या वे अपने पापरूप मल को धो रहे हैं? अथवा क्या वे धर्मरूप प्रासाद पर कलश चढ़ा रहे हैं? अब सब देव विचार करने लगे कि इन्द्र महाराज आज्ञा दें, तो कलशों से अभिषेक करें।

इन्द्र का संशय

इसी अवसर में इन्द्र महाराज के मन में यह संकल्प (सन्देह) उत्पन्न हुआ कि ये छोटे बालक श्री वीर भगवान इतने सारे कलशों की जलधारा से मेरी गोद में से कहीं बह गये तो? इतना बड़ा जलाभिषेक ये कैसे सहन कर सकेंगे? यह सोच कर इन्द्र ने अभिषेक के लिए आदेश नहीं दिया। तब भगवान ने अवधिज्ञान के बल से इन्द्र का शंकित मन जान कर अरिहंतत्व का अतुल बल बताने के लिए गोद में बैठे हुए ही बायें पैर के अंगूठे से सिंहासन को स्पर्श किया (दबाया)। तब शिला कंपायमान हो गई। उसके हिलने से मेरुचूलिका कंपायमान हुई। फिर एक लाख योजन का मेरुपर्वत भी डोलने लगा। उसके डोलने से सारी धरती कंपायमान हुई। वह थरथराने लगी। पर्वत के शिखर टूटने लगे। समुद्रजल क्षुभित हुआ (डाँवाडोल हुआ)। ब्रह्मांड फूटने जैसा शब्द हुआ। सब देव भयभीत हुए। देवांगनाएँ भय के कारण देवों के गले लग गयीं।

तब क्रोध से धमधमायमान होकर इन्द्र ने कहा कि अरे ! ऐसे हर्ष के स्थान पर ऐसा उत्पात-विषाद किसने किया? भगवान के जन्ममहोत्सव में ऐसा विघ्न करने वाला कौन दुष्ट है? यह सोच कर हाथ में वज्र ले कर अवधिज्ञान के उपयोग से देखा तो प्रभु की शक्ति मालूम हुई कि यह सब स्वयं भगवान ने ही किया है। मैंने अज्ञान के कारण तीर्थंकर का बल नहीं जाना। ऐसा जान कर इन्द्र भगवान के पाँव पड़ा और क्षमायाचना कर स्तुति करने लगा-

भुजंगप्रयात

सुनो वीर्य बोलूँ विशालो विबुधो, नरे बार योधे मली एक गोधो।
दशे गोधले लेखवो एक घोड़ो, तुरंगेण बारे मली एक पाड़ो।।१।।
दशे पंच महिषो मदोन्मत्त नागो, गजे पाँच सौ केसरी वीर्य तागो।
हरि वीश सौ वीर्य अष्टापदेको, दश लक्ष अष्टापदे राम एको।।२।।
भला रामयुग्मे समो वासुदेवो, द्वितीय वासुदेवे गणी चक्रि लेवो।
भला लक्ष चक्रीसमो नाग शूरो, वली कोडि नागाधिपे इन्द्र पूरो।।३।।
अनन्ते सुइन्द्रे मली वीर्य जेतुं, टची अंगुली वीरने वीर्य तेतुं।
नमो वीर अर्हन्! सदा भूत भव्य- भविष्यत्सुरेन्द्रातिवीर्याति सव्य।।४।।

मेरु पर्वत ने सोचा कि अनन्त तीर्थंकरों के जन्माभिषेक मुझ पर हुए, पर मुझे किसी ने भी पैर से स्पर्श नहीं किया था। अब श्री वीर भगवान ने मुझे स्पर्श किया है, इसलिए मैं भी धन्य हूँ। यह समझ कर मानो हर्ष से नाचते हुए चिंतन करने लगा कि सचमुच मैं सब पर्वतों का राजा हूँ। पाँच मेरु में भी मैं सचमुच बड़ा अग्रेसर हूँ।

फिर शक्रेन्द्र के आदेश से प्रथम बारहवें देवलोक के अच्युतेन्द्र ने अभिषेक किया। उसके बाद अनुक्रम से ग्यारहवें, दसवें, नौवें आदि देवलोक के इन्द्रों ने अभिषेक किया। अन्त में चन्द्र और सूर्य ने अभिषेक किया। इस प्रकार कुल ढाई सौ अभिषेक हुए।

फिर ईशानेन्द्र भगवान को गोद में ले कर बैठे और सौधर्मेन्द्र ने चार धवल वृषभ के रूप बना कर उनके आठ सींगों से क्षीरसमुद्र के जल की धारा से अभिषेक किया। इस विधि से सब देवों ने अपनी अपनी भक्ति कर के स्नात्र किया।

फिर गंधकाषाय्य वस्त्र से भगवान का शरीर पौंछ कर फूल, बावनाचन्दन से विलेपन, अक्षतढोकन, दीप,फल, धूप, जल नैवेद्य से अष्ट प्रकारी पूजा कर के भगवान के सम्मुख श्रीवत्स, मत्स्य-युग्म, दर्पण, पूर्णकलश, स्वस्तिक, नन्दावर्त्त, भद्रासन और सरावसंपुट ये अष्टमंगल रौप्य के अक्षतों से आलेखित किये। फिर आरती, गीतगान और नृत्य कर के बाजे बजाये।

अन्त में अपूर्व एक सौ आठ काव्य की रचना कर के स्तुतिरूप भावपूजा की।

इसके बाद भगवान को ले जा कर पुनः माता के पास रखा तथा अवस्वापिनी निद्रा दूर कर के भगवान का प्रतिबिंब वहाँ से हटा दिया। फिर रत्नजड़ित कुंडल-युगल तथा देवदूष्य वस्त्र-युगल त्रिशला माता को अर्पण कर भगवान के खेलने के लिए सुवर्णजड़ित गेंद वहाँ रख कर बारह करोड़ सुवर्णमुद्राओं की वर्षा की। किसी-किसी प्रति में लिखे अनुसार रत्नजड़ित चँदोवा बाँध कर, रत्नजड़ित दो कुंडल तथा श्रीदाम (रत्नजड़ित सोने की गेंद) तकिये पर रख कर बत्तीस करोड़ सुवर्णमुद्राओं की वर्षा की।

फिर सौधर्मेन्द्र नें सब देवों में ऊँची आवाज से घोषणा की कि भो भो देवो ! जो मैं कहता हूँ सो सुनो। यदि कोई देव अथवा असुर-दानव भगवान तथा भगवान की माता का बुरा सोचेगा, तो उसका मस्तक अर्जुनवृक्ष की मंजरी की तरह इस वज्र से मैं धड़ से अलग कर दूँगा। इस प्रकार कह कर भगवान के अंगूठे में अमृतसंचार कर सब इन्द्र नन्दीश्वर द्वीप में गये। वहाँ अट्ठाई महोत्सव कर के अपने अपने स्थान पर गये। वहाँ भी अट्ठाई महोत्सव किया।

सिद्धार्थ राजा के भवन में वसुधारादिक वृष्टि

जिस रात्रि में श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी का जन्म हुआ, उस रात्रि में वैश्रमण देव के आज्ञाधारक तिर्यग्जृंभक देवों ने सिद्धार्थ राजा के महल में रौप्य, सुवर्ण, वज्र-हीरे, वस्त्र तथा आभूषणों की वर्षा की, नागरबेल के पत्र, फल, फूल तथा शालिप्रमुख बीजों की वर्षा की तथा माला, गंध, वास, सुगंधित चूर्ण, हिंगलुप्रमुख रंग तथा सुवर्णमुद्राओं की वर्षा की। अगणित वर्षा की।

किसी प्रति में ऐसा लिखा है कि पन्द्रह महीने तक तीन करोड़ रत्न बरसाये तथा मुकुट, कुंडल, हार, अर्द्धहार, बाजुबंध, बेरखा, त्रिसरा, चौसरा, छहसरा, सातसरा, आठसरा, नौसरा, अठारहसरा, एकावली, कनकावली, टकावली, रत्नावली, मुकुटावली, चन्द्रावली, हीरावली, प्रवाली, नक्षत्रावली, श्रोणीसूत्र, कटिसूत्र, रसना,

सेहरा, पट्ट-शिखर, चूडामणि, कटक, कंगन, अंगद, मुद्रानन्दक, दशमुद्रक, मुद्रिका, अंगुलीयक, कदंबक, पुष्पक, तिलभंगक, कर्णपीठिक, चत्रक, अजर, मेखला, मुंदक, पदक, पड़कडी, साँकला, साँकली, विशिष्ट मौक्तिकभंग, उतरी, डोरा, हँसली, कर्णपाल, संकपाल, गेययक, हेमजाली, मणिजाली, मौक्तिकजाली, रत्नजाली, गोपुच्छक, उरसूका, मर्मक, वर्ण, वरिका, हाँस, झांझर, नूपुर, घुंघरु, पागड़ा, बिछिया, अंगूथली, वालाजाली, झुमका, अंकोटा, रूपालहरिया, राखी, गोफना, फूली, सीथा, त्रसंटीआ, त्रोटी, बोर, कड़ी, छल्ला, मुरकी, मोती, नरकंठा, नागफन, तुंगल, चंपकली, पान, बाली, दुलरा, मोतासर, तांति, गांठिआ, बरघली, पहुँची, गलसिरी, टिकली, तिलक, आड़, नवग्रह, मुद्रिका, अंगूठी, वेढ, वींटी, वांकड़ा, छाप, करजाला, तावीज़, कन्दोरा, खेलतावीज, पट्टीवाला कन्दोरा, लंटकन, मउड़, नागफुली, नाग-नागले, मौर, वैसण, नथ, कांटा, मयोदय, आंजन, ओगनिया, हिंगलु, कुंकुम, एला, यव, चूड़ी, चूड़ली, थर, कंगन, कारेली, लाली, पंचमेखला, हाथसाँकली, सोने के लहरिये, ताईत, कड़ले, सलिआला, कलाडी, अणवट्ट, लोलीए, कूँची, पाईल, सात ग्रैवेयक, नव ग्रैवेयक, छापलवींटी, मकोड़ाखली, जेदेह इत्यादिक अनेक जाति के आभरणों की वर्षा की।

पुत्रजन्म की बधाई और बन्दीमोचनादिक

पुत्रजन्म होने के बाद प्रियंवदा दासी ने सिद्धार्थ राजा को पुत्रजन्म की बधाई दी। उसे सुन कर सिद्धार्थ राजा ने रोम रोम में हर्षित हो कर एक मुकुट के अलावा शरीर पर धारण किये हुए सब आभूषण दासी को दे दिये। उसका सिर धुला कर उसका दासीत्व दूर किया और सात पीढ़ी तक खाने और खर्चने पर भी कम न हो, इतना सारा धन उसे दिया।

फिर सुबह के समय सिद्धार्थ राजा ने नगररक्षक को बुला कर आदेश दिया कि हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही क्षत्रियकुंड नगर में बन्दीवानों को मुक्त कर दो और नाप-तौल बढ़ा दो। क्षत्रियकुंड नगर भीतर और बाहर से कचरा-काँटा निकलवा कर साफ करवाओ, लीपाओ, उस पर सुगंधित जल का छिड़काव करो। तिकोने मार्ग, तीनराहा, चौराहा तथा जहाँ अनेक मार्ग मिलते हैं वह चच्चर और राजमार्ग ये सब रास्ते पवित्र कराओ और कचरा-काँटा निकाल कर साफ करा कर समतल बनाओ। जिस पर बैठ

कर सब लोग महोत्सव देख सकें ऐसे बड़े-बड़े मंच तैयार करो। अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी ध्वजा-पताकाएँ जगह-जगह बँधवा कर नगर को शोभायमान करो। शहर के मार्ग धुलवाओ और उन्हें लीपाओ।

जगह-जगह गोशीर्षचन्दन, रक्तचन्दन के पाँच ऊँगलियों के छापे लगवाओ। घर घर में चन्दनकलश स्थापन करवाओ। चन्दनकलशघटित बन्दनवारों से घरों के दरवाजे सजाओ। उन दरवाजों पर लम्बी, बड़ी और गोल पुष्पमालाएँ लटकाओ। पंचरंगी पुष्पों के ढेर लगवाओ। कृष्णागर, कुन्दरु, शिलारस, धूप घमघमायमान करो और मनोहर गंध तथा सुगंधित अगरबत्ती लगाओ। मनोहर गंध करो।

तथा नाटक करने वाले- जो स्वयं नाटक करते हैं वे, रस्सी पर नाचने वाले, मल्लयुद्ध करने वाले, मुष्टियुद्ध करने वाले, भाँड, कथावाचक, रासगायक, हाथी पर से कूदने वाले प्लवक, राजा की वंशावली बोलने वाले, कवित्त-सवैये बोलने वाले, कोटवाले, शुभाशुभ निमित्त बताने वाले, बाँस पर नाचने वाले, चित्रपट्ट दिखाने वाले मंख, चमड़े की मशक में हवा भर कर बजाने वाले तूणयल्ला, तुंबिनी बीन बजाने वाले, हाथ-ताली दे कर नाचने वाले और अनेक ताल बजाने वाले इन सबको बुला कर स्थान स्थान पर बैठाओ, जिससे ये सब अपनी अपनी कला दिखायें। यह काम तुम करो तथा अन्य के पास करवाओ और मेरी आज्ञा मुझे लौटाओ। तब उस कौटुंबिक पुरुष ने बहुत प्रसन्न हो कर राजा के आदेश के अनुसार सब काम कर के आज्ञा वापस सौंप दी।

इसके बाद सिद्धार्थ राजा मल्लयुद्धशाला में गये। वहाँ मल्लयुद्ध कर के, तेल मालिश कर के स्नान किया। फिर सब वस्त्रालंकार, मालाप्रमुख धारण कर महातेज सहित महाबल सहित, सब बाजों की ध्वनि के साथ, ऋद्धि, कान्ति, सेना, वाहन और समुदाय सहित बड़े बड़े बाजे समकाल में एक साथ बजवाये। शंख, पटह (ढोल), भेरी, झल्लर, खरमुखी (कालही), रणसींगा (एक वाद्य), मान्दल, मृदंग और दुन्दुभी इन नौ प्रकार के वाद्यों के शब्द-प्रतिशब्दों से सिद्धार्थ राजा को बड़ा हर्ष हुआ।

क्षत्रियकुंडग्राम नगर में दस दिन तक किसी से कर नहीं लेना। गाय-बैल आदि जानवरों पर दस दिन तक कर नहीं लेना, खेतप्रमुख का कर दस दिन तक नहीं लेना, दस दिन तक कोई भी बाजार में मूल्य ले कर माल न बेचे, जिसे जो वस्तु चाहिये, वह दुकानदार से मुफ्त ले जाये। उसका मूल्य राजभंडार से दिया जायेगा। दस दिन तक कोई चीज नापना नहीं, बिना नापे देना। दस दिन तक कोई भी राजकर्मचारी जबरदस्ती से किसी के घर में प्रवेश कर के कोई भी वस्तु न ले। किसी ने अपराध किया हो, तो उसके अपराध के अनुसार जो दण्ड लिया जाता है, वह दण्ड दस दिन तक नहीं लेना। अल्प अपराध के लिए अधिक दंड लेना कुदंड है। ऐसा कुदण्ड दस दिन तक नहीं लेना तथा दस दिन तक कोई किसी से उधार ले कर ऋण न करे। ये आदेश सिद्धार्थ राजा ने दिये।

फिर अत्यन्त स्वरूपवान वेश्याओं के ताल-वाद्य सहित वहाँ नाटक होने लगे। उत्कृष्ट मृदंगादिक वाद्य वहाँ सज्ज किये गये तथा विकसित पुष्पमालाओं के समूह भी वहाँ रखे गये। उस देश के सब लोग हर्षित हो कर क्रीड़ा करने लगे। इस प्रकार दस दिन तक स्थितिपतिका याने अपनी कुलपरम्परा की पुत्रजन्म की मर्यादा सिद्धार्थ राजा ने क्षत्रियकुंड नगर में पूर्ण की।

दस दिन की इस कुलमर्यादा में जिस जिनपूजा में सौ सुवर्णमुद्राएँ लगती हैं, हजार सुवर्णमुद्राएँ लगती हैं तथा लाख सुवर्णमुद्राएँ लगती हैं, ऐसे ऐसे पूजनों के निमित्त द्रव्य बाद में पूजा कराने के लिए रखा। इसी प्रकार अष्टमी, चतुर्दशी के दिन पौषध करने वाले श्रावकों की भक्ति के लिए द्रव्य रखा। उसमें अभिप्राय यह था कि यह द्रव्य पौषध करने वालों के पारणे के समय साधर्मिक-वात्सल्य के लिए काम आयेगा।

तथा अन्य भी देने योग्य द्रव्य, धर्म के लिए रखा हुआ द्रव्य स्वयं देते हुए, दूसरों से दिलवाते हुए तथा पूर्वोक्त सौ, हजार और लाख सुवर्णमुद्राओं के अनुसार बधाई के लिए लोग जो भेंट लाते थे, उन्हें लेते हुए, दूसरों से लिवाते हुए सिद्धार्थ राजा ने दस दिन तक कुलमर्यादा का पालन किया।

बालक को चन्द्र-सूर्य के दर्शन कराने की विधि

श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के माता-पिता ने भगवान के जन्मदिन से पहले दिन कुलस्थिति की और तीसरे दिन चन्द्रमा तथा सूर्य के दर्शन कराये। अब आज के काल में तो काँच दिखाते हैं, परन्तु मूल विधि इस प्रकार है- गृहस्थ गुरु श्री अरिहन्त की प्रतिमा के सम्मुख स्फटिक अथवा रौप्य की चन्द्रमूर्ति तैयार कराये। उसकी प्रतिष्ठा पूजा कर के उसे वहाँ रखे। फिर बालक तथा बालक की माता को स्नान करा कर साफ वस्त्र पहना कर चन्द्रोदय के समय पुत्र को हाथ में ले कर माता सहित पुत्र को बिठा कर प्रत्यक्ष चन्द्रमा के सामने ला कर वह इस तरह मन्त्र बोले-

"ॐ अर्हं चन्द्रोऽसि निशाकरोऽसि नक्षत्रपतिरसि सुधाकरोऽसि औषधिगर्भोऽसि। अस्य कुलस्य ऋद्धिं वृद्धिं कुरु कुरु" इस मन्त्र का गुरु उच्चारण करे। माता पुत्र को चन्द्रमा दिखा कर नमन कराये। फिर पुत्र को गुरु के पाँव लगाये। तब गुरु इस प्रकार आशीर्वाद दे-

सर्वौषधिमिश्र मरीचिराजी, सर्वापदां संहरणे प्रवीणः।
करोतु वृद्धिं सकलेऽपि वंशे, युष्माकमिन्दुः सततं प्रसन्नः।।१।।

इसके बाद चन्द्रमा की स्थापित मूर्त्ति का विसर्जन करे। यदि उस दिन काली चौदस या अमावस्या हो अथवा बादल हों और इस कारण से चन्द्रमा दिखाई न दे, तो उसी रात को उसी चन्द्रमा की मूर्ति के सम्मुख तो यह विधि अवश्य करे।

फिर उस दिन सुबह सूर्योदय के समय सोने अथवा तांबे की सूर्यमूर्ति बना कर पूर्व के अनुसार स्थापन कर के मूर्ति के सम्मुख पुत्र सहित माता को बिठा कर गृहस्थ गुरु इस तरह मन्त्र बोले- "ॐ अर्हं सूर्योऽसि, दिनकरोऽसि, तमोपहोऽसि, सहस्रकिरणोऽसि, जगच्चक्षुरसि प्रसीदास्य कुलस्य तुष्टिं पुष्टिं मोदं कुरु कुरु" इस सूर्यमन्त्र का उच्चारण कर के माता सहित पुत्र को सूर्य के दर्शन कराये। फिर माता पुत्र को ले कर गुरु के पाँव लगाये। तब गुरु आशीर्वाद देते हुए कहे-

सर्वसुरासुरवन्द्यः, कारयिता सर्व धर्मकार्याणाम्।
भूयात्त्रिजगच्चक्षुः, मङ्गलदस्ते सपुत्राय।।१।।

फिर स्थापन की हुई सूर्यमूर्ति का विसर्जन करे। छठे दिन धर्मजागरण करे। ग्यारहवें दिन अशुचिकर्म निवर्त्तन करे। मिट्टी के पुराने बर्तन बाहर निकाल दे। नये वस्त्र पहने। बारहवाँ दिन आने पर अन्नविगयप्रमुख अशन, मधुरजलप्रमुख पेय, खारिक-खोपरा प्रमुख खादिम तथा लविंग-पानप्रमुख स्वादिम यह चार प्रकार का आहार राजा ने तैयार कराया। फिर सिद्धार्थ राजा ने अपने मित्रों को, ज्ञाति-बांधवों को, अपने पुत्र-पौत्रादिकों को, चाचा को, श्वसुरप्रमुख को, अपने दास-दासियों को, अपने गोत्रजों को, क्षत्रियों को, नगर के क्षत्रियों को तथा अन्य भी बड़े-बड़े लोगों को निमन्त्रण दिया।

फिर भगवान को तथा त्रिशलाजी को स्नान करा कर घर में देवपूजा करा कर विघ्न निवारण के लिए कौतुक से काजल के टीले-टबके किये। मांगलिक के लिए सरसों, दही, दर्भ, चावल का तिलक मस्तक पर धारण किया। नये वस्त्र तथा अल्पभार वाले बहुमूल्य अलंकार धारण कर के भोजन के समय में सिद्धार्थ राजा भोजनमंडप में उपस्थित हुए। फिर आमंत्रित मित्रादिकों को अशन, पान, खादिम, स्वादिमादिक चार प्रकार का आहार करवाया। उसमें स्वादप्रधान आहार ऐसा था कि स्वाद लेते-लेते अशनादिक मोदकप्रमुख सब खाये जा सकें तथा कई गन्नाप्रमुख ऐसे पदार्थ भी थे कि थोड़ा खायें और अधिक फेंक दें तथा कई खजूरप्रमुख पदार्थ ऐसे थे कि उनका अधिक भाग खायें और थोड़ा भाग फेंक दें। ऐसा चार प्रकार का आहार सिद्धार्थ राजा ने साधर्मिक आदि लोगों को खिलाया।

भोजन-विधि कहते हैं

मंडपादि रचना

मनोहर मंडप निपजाया, देखते दिल्ल हुलसाया।
अनोपम दृश्य था जैसा, कहीं पर होय नहीं वैसा।।१।।

चकाचक काँच चिलकारा, पट्टकूल वस्त्र श्रृंगारा।
झाड़ और हँडियाँ सोहे, सकल जनता के मन मोहे।।२।।
पत्र सब केलि के छाये, दीवालें भव्य रंगवाये
कुंकुम के छाँटणे दीये, सुगंधित महक वहाँ कीये।।३।।
तोरण की त्यारी है चंगी, मंडप वह दिख रहा जंगी।
अंगन सब शुद्ध पुतवाये, कीमती रत्न जड़वाये।।४।।
बिछायत भव्य विरचाई, जाजमें जंगी मँगवाई।
गलीचे बहुत गुलजारे, पाँतिये रेशमी सारे।।५।।
कहीं पर मखमली आसन, खर्च की नहीं है विमासन।
सोने के थाल रखवाये, पटों पर सर्व सजवाये।।६।।
कटोरे वाटकी प्याले, स्वर्ण के एक से आले।
लोटे अरु ग्लास बहुतेरे, अनेकों कर दिये भेरे।।७।।
अभी सब न्यात बुलवावै, अनेकों आदमी आवे।
स्वजन अरु मित्रगण सारे, स्वजाती बहुत विस्तारे।।८।।
आय कर पाँत पर बैठे, आसन पर कोई नहीं हेठे।
आयी सब पुरसने वाली, दीखती बहुत रूपाली।।९।।
अनोपम वस्त्र से शोभित, रूप अरु कांति से मोहित।
किये हैं सोल सिणगारा, आभूषण दिव्य विस्तारा।।१०।।
हाथ में शुद्ध जलझारी, तरुणों की दृष्टि को ठारी।
आन कर हाथ धुपवाये, देखंते काम उभराये।।११।।

भोज्य फलादि

फलों की प्रथम थी त्यारी, दिखावट अजब ही न्यारी।
अखोड़ मिश्री की जाति, इसीविध अनेकों भाँति।।१२।।
चोपड़ी चारोली केला, रायण और श्रीफल भेला।
बहुत से बदाम अरु पिस्ते, मूल्य में वो नहीं सस्ते।।१३।।

द्राख अरु आम खरबूजे, नारंगी अनार तरबूजे।
सेव सहतूत अरु नींबू, खारक खजूर फिर जम्बू।।१४।।
गूंदा और पेमदी बेर, आन के कर दिये ढेर।
छोल कर सेलड़ी लायी, मधुर रस सबके मन भाई।।१५।।
सीताफल रामफल अधिके, जामफल बीजोरा बढ़के।
इत्यादि बहुत किये भेले, सुस्वादु लाये फिर केले।।१६।।
सभी के सामने पुरसे, चखतां चित्त बहु विकसे।
मुख में मेल कर खावे, पेट का फिक्र नहीं लावे।।१७।।

भोज्य पक्वान्नादि

मालवी भूमि में उपजे, बहुत ही श्रेष्ठ गहुँ निपजे।
पानीयुत हाथ से मसल्या, शुद्ध कर चक्की में दल्या।।१८।।
वस्त्र इक मलमल को आण्यो, मेदो वह उसी से छाण्यो।
घृतपक्व पुरसिया खाजा, दन्त में होत आवाजा।।१९।।
लाय कर पुरसिये पकवान, जीमन को हो गये सावधान।
अनेकों जाति के लाडू, मानो ज्यों जीमते साडू।।२०।।
सिंह केसरिये मेले, मसाले अधिक ही भेले।
कंसार मगद के मोदक, कीटीया दालीया शोधक।।२१।।
ऐसे मोदक जो खावे, बुड्ढा भी मर्द हो जावे।
लाय कर पुरसी मुरकी, खाने को जीभ तब फुरकी।।२२।।
जलेबी मुँह में डाले, रस के गट्टके चाले।
पेड़े जब पेट में पड़िये, मेलते मुँह में गुड़िये।।२३।।
मखाना मुँह में डाले, बड़-बड़ वाक्य तब चाले।
घेबर जब मुख में धरिये, चाखतां घृत बहु झरिये।।२४।।
झीणा झीणा तार की फीणी, सेवाँ अब आणी है झीणी।
देख देख दहीथरे खावे, मन में तो हँसते जावे।।२५।।
तिलों की साँकली खाधी, सिंगोड़े सेव से साधी।

अब आया साकरिया सीरा, बुड्ढों का मन हुआ अधीरा।।२६।।
लाई अब उत्तम लापसी, छोटे मोटे इसी से धापसी।
पकवान अनेका आवे, मेवे की खीचड़ी खावे।।२७।।
अब आई सुगंधी शाल, खाने को हो गये उजमाल।
मूँग की दाल है भेली, सुगंधी स्वच्छ घृत ठेली।।२८।।
खीचड़ी पातली अरु पोली, इकवीस की होत इक कोली।
सालणां मुँह में भावे, जीभ पर पानी फिर आवे।।२९।।
पकोड़े स्वादु वेसण के, बड़े भी मूँग की कण के।
मसाले बहुत थे तीखे, इत्यादि सब बने घी के।।३०।।

विविध जाति के व्यंजनादि

मूँगीया केर रायडोडी, लाते हैं शाक दौड़ दौड़ी।
वालोल करमदा काचा, नीला चणा मिरच में साचा।।३१।।
पीपर अरु चवला की फलियें, साँगरी मूँग की कलियें।
करेलां बावलिया भींडी, तोरई दूधिया, तींडी।।३२।।
मोगरी काचरी लाना, कूमटिया फोग अरु धाना।
रायता छाछ अरु दधि के, एक से एक थे अधिके।।३३।।
खीचीया सारेबडा पापड़, पातले जैसे थे कापड़।
इत्यादिक बहुत से साग, जीरा मिरचों का बहु लाग।।३४।।
मसाला गर्म मिलवाये, घृत में पहिले तलवाये।
हींग के वघार सुगंधा, खाते समय छोड़ दिये धंधा।।३५।।
लेने को सामने जोवे, जीभ तो फरफरी होवे।
चणा की मेथी की भाजी, चन्दलेवा पालखा साजी।।३६।।
सुआ अरु चील की भाजी, वत्थुआ परजन से राजी।
देगचाँ भर भर के दूध, भर भर के वाटके पीध।।३७।।
अब तो भर गये पेट, डकारें आवती ठेठ।
शुद्ध पानी से चलु कीजे, न मावे पेट में उत्तर दीजे।।३८।।

पीछे दिये पान तंबोल, केसर के छींटे रंगरोल।
हीर चीर मखमल पटंबर, पहरने देत हैं सुन्दर।।३९।।
फूलों की माल पहिरावे, हिये में हर्ष उभरावे।
आभूषण पहिरामणी देवे, भूप सिद्धार्थ जस लेवे।।४०।।

प्रकारान्तर से भोजन और आभरण की विधि

प्रकारान्तर से कच्छ-गुर्जरादि देशों में जिस प्रकार भोजन विधि कहने की रीति चलती है, उसके अनुसार अब यहाँ लिखते हैं- मांड्यो तोरण उत्तंग मांडवुं, तरत आंगणुं बेसवानुं नवुं, तेतो नीला रत्नज तणुं। त्यां सरखा मांड्या आसन, बेसंता किसी विमासण। वली आगल मूकी सोनानी आंडणी, ते केम जाए छांडणी। ऊपर सोनाना थाल, अत्यन्त घणा विशाल। विचमां चोसठ वाटकी, लगार नहीं जास काटकी। गंगोदक दीधा थाल, कचोलामां हाथज लाल। हवे सघली पंक्ति बेठी, एटले पीरसणहारी पेठी।

ते केहवी छे? तो के-सोल शणगार सज्यां, बीजा काम तज्यां। हाव भावनी रूडी, खलके हाथे सोनानी चूडी। लघुलाघवनी कला, मन कीधां मोकला। चित्तनी उदार, अति घणी दातार। वोलती हाथ, परमेश्वर देजो तेहना साथ। धसमसती आवे, सघलाने मन भावे। पहेलां फल हवे पिरसे, सघलानां मन हर्षे। एवी छे पिरसनारी भली मृगनयनी। होंसनी पूरी, धर्मनी शूरी। शीलवन्ती-शक्तिवन्ती एवी पिरसनारीओ छे।

ते प्रथम खावानां फल लावे छे- पाकां आंबानी कातली; ते बूरा खांडशुं भली। वली पातलां पाकां केलां, ते खांडशुं कीधां भेलां। सखरां करणां, वली पीला वरणां। लीला नारंगा, दीसे महासुरंगा। नीली रायण, पिरसी भली भायण। दाडिमनी कली, खातां पूगे मन रली। लींबजा ने अखोड़, खातां पूगे मनना कोड़। द्राख ने बदाम, केई कागदी ने केई श्याम। सिलेमी खारेक ने खजूर, ते पिरस्या भरपूर। नालियेरी गरी, ते मालवी गोलशुं भरी। लींबु खाटां ने मीठा, एहवा ते कदी न दीठां। चारोली ने पिस्तां, लोक जमे हसतां। वली शेलडी ने सीताफल, ते पण पिरस्या परिघल।

हवे पकवान आणे, ते कहेवा वखाणे। सतपडा खाजां, ते तुरत कीधां ताजां। सदलां ने साजां, जाणे प्रसादनां छाजां। एहवा पवित्र प्रधान मालवी घऊँ, तेहने दलयां। तेहनी पडशुदी, महाचतुरे शोधी। घीये करमोई। तेहनां खाजां घीए तल्यां-

फल्यां महाविशाल एवा सातपुडा खाजां। वली फगफगता फेणा, दूधवर्णा दहीथरा, घृतवर्णी सुंवाली, अमृतजेवी जलेबी, घीना घेवर, पतासा, मोतीचूर, गुंजवडां, एलचीदाणासहित साकरीया चणा, खांड-साकरनां दहीथरां, अनेक भातिनी सुखडी पिरसे। विशुद्ध दले केलव्यां, सारमिश्र खांडथी भेलव्यां, मांहे एलचीना चमत्कार।

पछी पिरस्या लाडू, जाणे नाना गाडू। कुण कुण तेहना नाम, जमता मन रहे नहीं एक ठाम। वली लाडूना नाम कहे छे- मोतीआ लाडू, दलिया लाडू, सेवैया लाडू, चूरमाना लाडू, तिलना लाडू, तिगडुना लाडू, मगना लाडू, जगरीना लाडू, सिंहकेसरीया लाडू, कीटीना लाडू, तेजाना लाडू, खसमसीयाना लाडू, जांखरीया लाडू, चोंटीया लाडू, अडदीया लाडू, अमृतिया लाडू। दीठां दाढ़ गले, पूरण पुण्याइए मले। भोजन ने अर्थे पिरसे, लक्ष्मी एवा मोदक जात जातनां दीसे। जमतां वाधे मुखनो वान, तेनां हैयडा हीसे। दातारना हाथे परीघल, कृपणना हाथ धूजे।

वली बीजा आण्या पकवान, जमतां वाधे मुखनुं वान। कुण कुण जाति, नव नवी भांति। सखरा साँटा, ते मांहे नहीं खाटा। बरफीनी जाति, फीणीनी जाति, मरकीनी जाति, दूधपिंडीनी जाति, साकरीया मोतीचूरनी जाति, मसूरनी जाति, जलेबीनी जाति, सक्करपारानी जाति, गोलपापडीनी जाति।

हवे आव्यां वडां गुंदवडां। फीणी सखरा सोट, ते मांहे नहीं खोट। दहीवडां, फेणवडां, मेथीयावडां, कांजीयावडां, सालियावडां। पातली सेव, पिरस्यानी रूडी टेव। ताजो गुंद, तल्यो गुंद। कुंडलाकृत जलेबी, शीरो, लापसी, जिण दीठे दाढा गले, स्वर्गहुंति देवदेवी टलवले। वली मीठो मगद, सारो माल नगद। खांडनुं चूरमुं, साकरनुं चूरमुं। पछी पिरसी सालि, ते जमीये विशाल। ते कुण कुण भेद, सांभलता उपजे उमेद।

सुगंध सालि, सुवर्ण सालि, धवली सालि, राती सालि, नीलीसालि, पीली सालि, महासालि, शुद्ध सालि, कुमुद सालि, मालवी सालि, कलम सालि, कुंकणी सालि, तिलवासी सालि, जीरा सालि, कंद सालि, रायभोग सालि, कुंवारी सालि, चन्द्रायण सालि, निकी सालि, गरुडा सालि। वली साबु चोखा, अखंड चोखा। ने वली खांड्या, सबला छांड्या। हलवा हाथथी सोह्या, नखथकी वीण्या। उत्तम स्त्रीए ओर्या, सुजाण स्त्रीए ओसाव्या। एवा अणीयाला सुगंधी फरहरा, ऊंचा कूर पिरस्या।

वली ऊपर दाल पिरसी। तेनां नाम कहे छे- मंडोरनी दाल, मग नी दाल, काबुली चणानी दाल, गुजराती तुवरनी दाल, अड़दनी दाल, जालरनी दाल, मठनी दाल। वर्णे पीली, परिणामे सीली। वली परिघल घृत पिरस्यां। ते केहवां छे? तो के

आजनां ताव्यां एवां गायनां घी, भेंशना घी, पीला वरणनां घी, नाके पीयां घी, मजीठवर्णा घी।

हवे पोली पिरसी। ते केहवी छे? तो के आछी पोली, घीमांहे झबोली। फूंकनी मारी फलसी जाय, एकवीश पोलीनो एक कोलीओ थाय। छप्पो-

मुरकी मोतीचूर, सेव फिणी साकर सरखी।
खाजां खुरमां खांड, प्रिया तिहां पिरसे हरखी।
केलांतणी कातली, अंबरस मूके बोली।
घल घल घीनी नाल, पिरसे पातली पोली।।
साल दाल बहु सालणां, गोरस करबे चित्त ठर्युं।
ऋषभ कहे ए जमण कर्युं, बाकी सघलुं ए जो वर्युं।।१।।
चोला मरटी तेल, साकविण नित्ये सारे।
पिरसे भूंडी नार, पेट कहो केणीपरे ठारे।।
ऊपर ढीली घेंश, छाश पण पिरसे पाणी।
सिंधव नहीं लगार, किशुं कहे कर्मनी कांणी।
आहार सेर अढीतणो, सेर सवा दोहिलो लहे।
कवि ऋषभ कहे ए जो वर्युं, भोजन एहने कुण कहे।।२।।

हवे शाक पिरस्यां तेनां नाम कहे छे- नीली डोडीनां शाक, टिंडसीनां शाक, चीभडानां शाक, कोल्हा, कंकोडां, करमदां, कालिंगडां, केलां, कारेलां, आरियां, तुरियां, खडपुजां, मोगरी, नींबु, अंबोलीया, वालोल, चोलानी फली, सरगवानी शिंग, सांगरी, काचरी, आमलां, केरनां फूल, केरडां, लीलां मरचां, लीली पीपर, लीली रायण, खाटां, खारां मोलां, गल्यां, तल्या, वघार्यां, फुगार्यां, छमकार्यां।

वली पिरसी भाजी, ते उपरे सहुको राजी। ते कोण कोण जातनी ते कहे छे- सरसवनी भाजी, सूवानी भाजी, मूलानी भाजी, चणानी भाजी, चीलनी भाजी, मेथीनी भाजी, थेगीनी भाजी, अफीण नी भाजी, तांदूलनी भाजी।

हवे वडीनां शाक कर्यां तेना नाम कहे छे- दाजवड़ी, डवकावड़ी, चूथरावड़ी, वासवड़ी, घारवड़ी, दहीवड़ी, वोलवड़ी, पापड़वड़ी, मरियाला वड़ी। घणां झोले भीनां। घणां वघार मसालाना चमत्कार। सबडकां देतां अंगुली चाटता, मनमां विशेषे भावता।

हवे रायतांना नाम कहे छे- खारेकनां रायतां, टोपरांना रायतां, द्राखनां रायतां, बदामप्रमुख मेवानां रायतां।

हवे वडां-कइ कइ जातनां पिरस्यां? ते कहे छे- मरचानां वडां, तल्यां वडां, कोरां वडां, काजीवोल वडां, मगनी दालनां वडां, चोलानी दालनां वडां, अडदनां वडां, दहीवडां, गूंदवडां, फेणवडां, मेथीया वडां, सालीया वडां। घणे झोले भीनां, घणे तेले सीनां। मरचांना घणा चमत्कार, अत्यन्त घणा सुकुमार। हाथें लीधां उछले, मुखे घाल्यां तरत गले। घणुं शुं कहिये? ए वडां एवां तो छे के जेने खावाने अर्थे घणा देवदेवियो पण टलवले छे।

हवे पलेव पिरसी। ते केहवी छे? चोखानी पलेव, जुआरनी पलेव, बाजरीनी पलेव, गहुंनी पलेव, हलदीया पलेव, पींपलिया पलेव, सुंठिया पलेव, सवडकिया पलेव।

हवे भोजन जमतां जमतां पीवानां पाणी आवे छे, ते कहे छे- साकरनां पाणी, द्राखनां पाणी, खांडनां पाणी, गंगाना पाणी, पालर पाणी, कपूरे वास्यां पाणी, एलचीये वास्यां पाणी, टाढां शीतल पाणी, हिमनां पाणी।

हवे दहीं अने दहींना बोल आवे छे। ते केहवां छे? ते कहे छे- गायनां दहीं, भेंशना दहीं, क़ाठा जाम्यां दहीं, मधुरां, सखरां, सजीरालां, सलवणां, जाडां, बोल। तेनां भर्यां कचोल। चावलशुं जीमता थया रंगरोल। वली सखरां करंबा भरी आणीने पिरस्या। ते करंबामांहे घणी राई, जमतां ढील न कांई। ऊपर जीरा-लूणनो प्रतिवास, करणहारी पण खास।

एम भोजन कराव्या पछी एकान्ते तेहज आसने रह्या थकांने चलु कराव्या। ते चलु करावनानां पाणी केवां आव्यां? ते कहे छे- केवडानी वासनां पाणी, काथानां पाणी, कपूरे वास्यां पाणी, चन्दने वास्यां पाणी, पाडले वास्यां पाणी, सुगंधी पाणी, गंगोदकनां पाणी, चन्दने निवास्यां पाणी, एलचीए निवास्यां पाणी इत्यादिक पाणीए करी चलु कर्यां। पछी तृणशला प्रमुखथी मुख शोधी दांतोनी शुद्धि करीने परम शोच्य थया।

हवे मुखवास दीधां ते कहे छे- वांकडी सोपारी, चीकणी सोपारी, ते पण केशरवर्णी, कपूरे वासित, वली तीखां लविंग, जावंत्री, जायफल, मोटा डोडा, एलची, पाकां नागरवेलनां पान, ते वली काथा-चूना सहित दीधां। वली घणां आदर-सन्मान, घणां गीत-गान, घणां तान ने मान।

हवे कइ कइ जातिनां, कइ कइ भांतिना वस्त्रोनी पहेरामणी करी, ते कहे छे- देवदूष्य वस्त्र, रत्नकंबल वस्त्र, पांभडी, खीरोदक, अटाणां सेलां, अधोतर, मूलकसबी, जरखाप, मखमल, चिणीयां, बुलबुल, चसम, पाटु, टसरिया, शणीया, भेरव,

नारीकुंजर, पट्टहीर, पटसीओली, पंचसइयां, फूलपगर, फूलकारी, दोरीयां, जादर, चादर, नेत्रपट्ट, धोतीपट्ट, राजपट्ट, गजवड़ी, सुवर्णवड़ी, हंसवड़ी, कालवड़ी, भुअच्चिआ, पटकूल, पट्टहीरसाडी, घाटडी, चीर, कुमखाव, अतलशलाहि, खाराचीनी, पापड़ीआंचीनी, सथीआ, गुआगरी, आसणिआ, आगराइ, सणलीपट्टणी, मशरु, तास्ता, शालू, दोपट्टा, त्रिपट्टा, वास्ता, टुकड़ी, मुगटां, छायल, साडला, रत्नकम्बल, चूनड़ी, घाटड़ी इत्यादिक पांचरंगी वाघा पहेराव्या।

वली काश्मीरी केशरनां छाटणां कीधां। भलां भलां सुगंध बावना चन्दननां विलेपन कीधां। अरगजा, चूआ, चंपेल, फूलेल, केवडो, मोगरो, जाइ, जूही, कुन्द, मचकुन्द, चंपो, मरुओ, डमरो, केतकी अने मालतीप्रमुख फूलोनी मालाओ पहेरावी।

पछी मुकुट, तिलक, बाजुबंध, हार, चीर, बेरखां, रत्नावली, मुक्तावली, चन्द्रावली, हीरावली, प्रवालावली, सूर्यावली, ग्रहावली, नक्षत्रावली, श्रोणिसूत्र, कटिसूत्र, पट्टशिखर, चूडामणि, कुंडल, कटक, कंकण, अंगद, मुद्रनन्दक, दशमुद्रक, चक्रक, अजर, मेखला, मुदक, पदक, सांकलुं, सांकली, चिचिष्ट, भंगउत्तरी, दारा, हांशडी, कपाली, ग्रैवेयक, हेमजाली, मणिजाली, मौक्तिकजाली, वर्णसरीका, झांझर, नेउर, घुघरा, पीगड़ा, बींछिया, अंगुठडी, वालाजाल, झुमणां, अकोटा, रूपाला, हरीयाराखड़ी, गोफणा, उलसीथो, त्रिसंथीयो, त्रोटी, बोरडांकरी, वेढला, मुरकी, मोतीदर गंठोडा, तुंगल, चंपकली, पानडी, होलेरताली, मोंतीसर, सरलीया, टीलां, टीली, चान्दला, आड, नवग्रह, मुद्रडी, अंगूठी, वींटी, वांकरूं, गलसरी, छापकरजाली, हेमजाली, मादलीयां, खेल-मादलीयां, कन्दोरा, पाटीयाला कन्दोरा, लटकणमोड, नागफूली, नागला, मोरवेसण, नथवाली, सिंदूर, कुंकुमरीली, जवलाचूड़ी, वरचूड़ी, चूड़ा, कांकणी, कारेली, लाल, पोंची, मेखला, हाथलां, कली, सोनालहेरीयां, तावीत, कडलां, कडली, वांकडी, वेलीयां, लोलीयां इत्यादिक आभरण पहेराव्यां।

ए रीते मित्र, ज्ञाति, पोताना क्षत्रियो तथा कुटुंब, सगा संबंधीनी भक्ति विविध प्रकारनी कीधी। इति भोजन तथा आभरण विधि।

प्रभु का नामस्थापन

बालक का नाम श्री वर्द्धमान रखा गया, सो कहते हैं- मित्र, ज्ञाति, गोत्री, स्वजनसंबंधी प्रमुख का सत्कार-सम्मान कर के त्रिशलादेवी तथा सिद्धार्थ राजा ने कहा कि हे देवानुप्रियो ! हमारे घर में यह पुत्र गर्भ में आने के बाद हम रौप्य, अनघड़ सुवर्ण, धान्य, राज्य, वाहन, मान-सम्मान आदि

से बहुत बढ़े तथा सीमापार के सामन्त राजा और चंडप्रद्योतनादिक राजा भी हमारे वश में हो कर सेवा करने आये। इस कारण से हमने मन में यह सोचा था कि जब हमारे घर पुत्र का जन्म होगा, तब उसका नाम रूपगुण-प्रधान 'श्री वर्द्धमान' रखेंगे। अब हमारे मनोरथ सिद्ध हो गये हैं और हमारी इच्छा पूर्ण हो गयी है, इसलिए हम इस कुमार का नाम 'वर्द्धमान' रखते हैं। आप सब लोग भी इसे 'श्री वर्द्धमानकुमार' नाम से बुलाना। इस तरह सब संबंधितों को सिरपाव पहेरामणी दे कर सब सज्जनों की साख से बालक का नामस्थापन किया। फिर उन सबको बिदा किया।

श्री वर्द्धमान भगवान कैसे हैं? उनका शरीर सात हाथ बड़ा है, समचतुरस्र संस्थान है, सुवर्णवर्ण देह की निर्मल कान्ति है और वज्रऋषभनाराच संहनन है। भगवान ऐसे हैं। श्री वर्द्धमानस्वामी के कुल तीन नाम थे। एक माता-पिता का दिया हुआ नाम श्री वर्द्धमान और दूसरा राग-द्वेषरहित तपस्या में खेद सहन करने से प्राप्त नाम 'श्रमण' था। तीसरा- जो अकस्मात् उत्पन्न होता है, उसे भय कहते हैं तथा सिंहादिकों के उपद्रव से जो भय उत्पन्न होता है, उसे भैरव कहते हैं। ऐसे भय-भैरवों से वे चलायमान नही हुए, सदा निर्भय रहे, भूख-प्यास प्रमुख परीषहों से वे अस्थिर नहीं हुए। इस प्रकार परीषह तथा उपसर्ग सहन किये तथा सर्वतोभद्रप्रमुख प्रतिमा का पालन किया, वे चार ज्ञान सहित और धैर्यवान थे, अरति-रति परीषह सहन कर, राग-द्वेषरहित हो कर सब सुख-दुःख सहन किये, इससे द्रव्यवीर्य प्राप्त किया। मोक्ष जाने का निश्चय किया है, तो भी चारित्रपालन में तत्पर रहे, ऐसे वीरत्व के गुणों से देवों ने 'श्री महावीरस्वामी' नाम रखा।

भगवान श्री महावीरस्वामी प्रतिदिन चन्द्रकला के समान बढ़ने लगे। वे अनेक दास-दासियों से घिरे रहते। वे अत्यन्त रूपवान थे। उनके सिर पर भौंरेसरीखे श्याम केश थे। उनके नेत्र कमलसरीखे थे, बिंबोष्ठ प्रवाल (मूँगे) के समान थे, दाँत सफेद थे, गर्भसरीखा उनका गौरवर्ण था और कमल की गंधसरीखा श्वासोच्छ्वास था।

उनका रूप सब देवों के रूप से भी अधिक था। यदि सब देवों का रूप एकत्रित करें, तो वह भगवान के बायें पैर के अंगूठे की एक कला के बराबर भी नहीं होता, क्योंकि तीनों लोक में सबसे अधिक रूप श्री तीर्थंकर भगवान का होता है, उससे कम श्री गणधर महाराज का रूप होता है, उससे कम आहारक शरीर वाले साधु का रूप होता है, उससे कम अनुत्तर विमानवासी देवों का रूप होता है, उससे कम नव ग्रैवेयक देवों का रूप होता है। उसके बाद बारहवाँ देवलोक, ग्यारहवाँ, दसवाँ, नौवां, आठवाँ, सातवाँ, छठा, पाँचवा, चौथा, तीसरा, दूसरा और पहला देवलोक ये सब क्रमशः घटते रूपवाले होते हैं। फिर ज्योतिषी देवों का, भवनपति देवों का व्यंतर देवों का, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और सामान्य मांडलिक राजा का रूप क्रमशः घटता हुआ जानना चाहिये। ये सब अनुक्रम से एक एक से हीन हीन रूपवाले जानना।

प्रभु की आमलकी क्रीड़ा और देव पर विजय

भगवान जातिस्मरण ज्ञान सहित अप्रतिपाति मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों के धारक थे। उनकी देहकान्ति सर्वोत्कृष्ट थी। वे निर्भय, बलवान, बुद्धिमान, सुरूपवान, दिव्य स्वरूपधारी, साहसी, सुन्दर, रंगीले, सलौने, रेखाले, रतीले और मतीले थे। खेलते-कूदते वे जब आठ वर्ष के हुए, तब अपनी उम्र के राजकुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए उस देश में प्रसिद्ध आमलकी क्रीड़ा करने के लिए नगर के बाहर एक पीपल के वृक्ष के नीचे पहुँचे। फिर वे सब भाग-दौड़ का खेल खेलने लगे। दो-दो लड़के एक साथ दौड़ते। उनमें से जो पीपल के पेड़ को पहले छू लेता, वह जीत जाता और पीछे रहने वाला हार जाता। फिर हारने वाला जीतने वाले को अपने कंधे पर बिठा कर जिस स्थान से होड़ लगी थी, उस स्थान पर ले जाता। इस प्रकार का खेल भगवान अपनी उम्र के लड़कों के साथ खेल रहे थे।

उस समय सभा में बैठे हुए सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान से भगवान का महाबल जान कर कहा कि आज के समय में श्री महावीर भगवान के जैसा-अन्य कोई बलवान नहीं है। यदि मुझ सहित सब देव मिल कर उन्हें डराने जायें, तो भी

वे बिल्कुल नहीं डरेंगे। ऐसे वे निडर हैं। तब इन्द्र महाराज के वचन पर विश्वास न करते हुए कोई एक मिथ्यात्वी देव वहाँ से उठ कर जहाँ भगवान खेल रहे थे, वहाँ जा पहुँचा। फिर वह बालक का रूप बना कर भगवान के साथ खेलने लगा। तब भगवान ने अत्यन्त वेग से दौड़ कर तुरन्त जा कर पीपल के पेड़ को छू लिया और वे आगे बढ़ गये। देव ने पीपल की निचली डालियों में सर्वत्र फूत्कार करने वाले सर्प का रूप बनाया। फिर वह भगवान के सामने फन फैला कर उन्हें डराने लगा। पर भगवान उस सर्प को अपने हाथ से दूर कर स्वयं पीपल पर चढ़ गये। वे उस सर्प से बिल्कुल नहीं डरे।

जब वह देवकृत बालक हार गया और श्री वर्द्धमान जीत गये, तब उस देवरूप बालक ने अपने कंधे पर भगवान को बिठाया। फिर उन्हें डराने के लिए उसने सात ताड़वृक्ष जितना ऊँचा रूप बनाया। उसे देख कर अन्य सब बालक डर कर भाग गये। उन्होंने भगवान के माता-पिता से सब वृत्तान्त कहा। माता-पिता चिन्ता करने लगे। उनकी चिन्ता दूर करने के लिए भगवान ने अपनी मुट्ठी से देव की पीठ पर वज्रप्रहार किया। इससे वह देव अरराट करते हुए और चीखते हुए जमीन पर गिर गया। फिर अत्यन्त लज्जित हो कर अपना रूप प्रकट कर उसने कहा कि हे प्रभो ! इन्द्र महाराज ने जैसा आपका बखान किया था, आप वैसे ही धैर्यवान महाबलवान हैं। उस समय इन्द्र महाराज भी स्वयं वहाँ पहुँच गये और उन्होंने उस देव को भगवान के पाँव लगवाया। देव ने भी भगवान के पाँव पड़ कर अपने अपराध की क्षमायाचना की। वह मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यक्त्वी बन गया। फिर इन्द्र महाराज उसे अपने साथ देवलोक ले गये। इति आमलकी क्रीड़ा।

लेखनशाला-महोत्सव

जब भगवान आठ वर्ष के हुए,[१] तब उनके माता-पिता ने मोहवश विचार किया कि-

लालयेत् पञ्चवर्षाणि, दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते षोडशके वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।१।।
माता वैरी पिता शत्रुः, पुत्रो येन न पाठितः।
शोभते न सभामध्ये, हंसमध्ये बको यथा।।२।।

---

१. वर्धमान जब वर्ष अष्ट की आयु को पर्याप्त थे,
मोहवश हो पिता माता फिक्र में परिव्याप्त थे।
बिना शिक्षा श्रेय नाही जगत में रीति यही,
अतः अब इन प्रिय कुमर को विद्वान करना सही।।१।।
नीतिशास्त्र में कथन सच्चा वर्ष पंच पर्यन्त है,
लाड़ गोड़ की सीम दाखी फिर पढ़ने में तन्त है।
पिता माता निज तनुज को, अशिक्षित रखते कहीं;
शत्रुसदृश वे कहाते, मूर्ख का आदर नहीं।।२।।
इसी कारण पाठशाला, भेज कर पंडित कने;
सर्व विद्या अरु कलाएँ, सिखाना जहाँ तक बने।
बुला पंडित ज्योतिषी को, शुभ लग्न दिखवा लिया;
विविध बाजा साज संयुत, भूपने उत्सव किया।।३।।
गोल-धानी द्राख श्रीफल, सींगोडा खारक चणा;
टोपरा साकर चारोली, बर्फी पेड़ा अति घणा।
फल-फूल एलची पाक-पिस्ता मखाणा मोदक लिये;
खर्जूर दाड़िम सेव ताजी, थाल भर भेले किये।।४।।
सर्व मेवे विविध वस्तु, साथ ले कर कर धरे;
पाठशाला में ले जा कर, छात्रों को वितरण करे।
सोने के खडिये पाटिये, फिर कीमती चान्दी तनी;
रत्नजड़ित की लेखनी ले, जो थी सोने की बनी।।५।।
तम्बोल ताजे बना बीड़े, कस्तूरी केसर छाँटने;
पूर्वोक्त वस्तु कीध संग्रह, विद्यार्थियों को बाँटने।
आगे अध्यापक योग्य भूषण, वस्त्र नाना जाति के;
स्वर्णनिर्मित कडा कंठी, मुद्रड़ी बहुभाँति के।।६।।
पालकी रथ अश्व हस्ति, सर्व किंकर साथ थे;
भट्ट चारण बिरुद बोले, प्रभु त्रिलोकीनाथ थे।

पाँच वर्ष तक पुत्र का लालन करना चाहिये। वह जब दस वर्ष का हो जाये, तब उसे नियंत्रण में रखना चाहिये तथा जब वह सोलह साल का हो जाये, तब उसके साथ मित्र जैसा बर्ताव करना चाहिये।।१।। यदि पुत्र को पढ़ाये नहीं, तो माता उसकी वैरिणी है और पिता उसका शत्रु है। क्योंकि यदि वह नहीं पढ़ेगा तो जैसे हंसों की पंक्ति में बगुला सुन्दर नहीं दीखता; वैसे ही पंडितों की सभा में वह भी शोभायमान नहीं होगा।

ऐसा विचार कर शुभ मुहूर्त्त देख कर शुभ दिन स्वजन क्षत्रियों को जीमा कर, वस्त्राभरण प्रदान कर, केसर-कस्तूरी के छींटे कर के हाथी, रथ, घोड़े सजा कर गीत वाजित्र सहित प्रभु के पाठशालागमन की महा महोत्सव पूर्वक तैयारी की। पाठशाला के बालकों में बाँटने के लिए गुड़-धाणा, मेवा प्रमुख लिये। उनके नाम इस प्रकार हैं- वरसोला, गुंदवड़ा, खारिक, खोपरा, दाख, खजूर, सिंघोड़ा, अखरोट, बादाम, चारोली, नारियल, मिश्री, सेव, पेड़े,. फल-फूल, साकरीये चने, इलायचीपाक, धाना, गुड़-धानी, बीजोरा, चना, सोने की दवात, रत्नजड़ित कलम, चाँदी की पाटियाँ, पान के बीड़े इत्यादिक अनेक वस्तुएँ साथ में लीं। पंडितजी को देने के लिए वस्त्राभूषण भी लिये। सुहागन स्त्रियों ने गीत गाते हुए श्री वर्द्धमान को स्नान कराया और वस्त्राभूषणों से सजाया। फिर उन्हें हाथी पर बिठा कर मेघाडंबर छत्र-चामर सहित याचकों को दान देते हुए पाठशाला

इसी विध शुभ लग्न समये, पाठशाला पद धरे;
सर्व जनता थी उपस्थित, मुख से जय जय रव करे।।७।।
चलित आसन इन्द्र पहुँचे, प्रश्न पूछे प्रभु कहे;
वदे सुरपति कार्य अनुचित, त्रिजगपति ये वीर हैं।
इन्हें विद्याभ्यास कैसा? ज्ञानधारी नाथ हैं;
सर्व वस्तु भाव जानत, सकल इनके हाथ हैं।।८।।
अल्पज्ञानी कोई पंडित, इन्हें क्या पाठन करे,
हुआ अविनय क्षमा माँगो, इन्द्र यों मुख ऊचरे।
तदा पंडित त्यक्त आसन, प्रभु चरण में सिर धरे;
उच्च आसन बैठि जिनवर, शास्त्र सहु परगट करे।।९।।

में पंडितजी के पास ले चले। भगवान के पाठशाला-गमन के समय भाट स्तुतिगान कर रहे थे, ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे थे और बन्दीजन आशीर्वाद बोल रहे थे। सिद्धार्थ राजा के पुत्र सकल देश के अधिपति मेरे पास पढ़ने आ रहे हैं, यह जान कर उस समय पंडितजी भी अहंकार धारण कर बड़ा आसन लगवा कर सजधज कर दो मणिबंध, दो बाहु, दो कक्षा, दो कान, दो कानमूल, एक ललाट और एक गला इन बारह स्थानों में तिलक कर के अपने परिवार को सजा कर इन्तजार करते बैठे।

उस अवसर पर इन्द्र महाराज का आसन भी ध्वजा के समान कंपायमान हुआ तथा जल में स्थित चन्द्रबिंब के समान अथवा हाथी के कान के समान चपल हुआ। उस समय इन्द्र महाराज ने अवधिज्ञान से देखा, तब मालूम हुआ कि भगवान पढ़ने के लिए पाठशाला जा रहे हैं। यह देख कर इन्द्र महाराज को कुतूहल हुआ। वे सोचने लगे कि यह मोहनीय का प्रभाव अद्‌भुत है। माता-पिता को लगता है कि हम इन्हें पढ़ायें। पर भगवान तो तीन ज्ञानसहित हैं। ये महागंभीर है। इन्हें क्या पढ़ना है? ये तो पढ़े-लिखे और समझदार हैं तथा स्वयंबुद्ध हैं। अमृत को मधुर क्या बनाना है? सरस्वती को पोथी क्या दिखानी है? चन्द्रमा में उज्ज्वलता क्या लाना है? आम को तोरण क्या बाँधना है? तथा माँ के आगे ननिहाल का क्या वर्णन करना है? वैसे ही ये भी अज्ञान के कारण व्यर्थ ही भगवान को पाठशाला ले जा रहे हैं। पर अब भगवान की आशातना नहीं होनी चाहिये।

यह सोच कर शक्रेन्द्र ब्राह्मण का रूप बना कर पाठशाला में पहुँच गये। उस समय भगवान पाठशाला में पहुँच चुके थे। तब शक्रेन्द्र ने ब्राह्मण को सिंहासन से उतार कर भगवान को ऊँचे सिंहासन पर बिठाया। फिर उपाध्याय के पास बैठ कर उससे कुछ शास्त्रार्थ किया; पर उपाध्याय उत्तर बराबर न दे सका। तब वे ही प्रश्न भगवान से पूछे। भगवान ने निःशंक होकर तत्काल उन प्रश्नों के उत्तर दिये। यह देख कर अध्यापक मन में सोचने लगा कि इस विषय में तो आज तक मुझे भी अनेक शंकाएँ थीं। मैंने अनेक पंडितों से पूछा था; पर किसी ने भी मेरी शंकाओं का समाधान नहीं

किया। इस छोटे बालक ने मेरे सब सन्देह दूर कर दिये। यही बड़े आश्चर्य की बात है।

फिर इन्द्र महाराज ने भगवान से शब्दों की उत्पत्ति पूछी। तब भगवान ने संज्ञासूत्र, परिभाषासूत्र, विधिसूत्र, नियमसूत्र, प्रतिषेधसूत्र, अतिदेशसूत्र, अधिकारसूत्र, अनुवादसूत्र, विभाषासूत्र और निपातसूत्र इन दस सूत्रों के अर्थ पृथक् पृथक् बताये। शब्द साधनिका भी बतायी।

तब लोगों ने जाना कि यह कोई परदेशी ब्राह्मण आया है। वह बालक से प्रश्न पूछता है और बालक उत्तर देता है। पर ऐसे उत्तर तो इस पढ़ाने वाले पंडित के माता-पिता भी नहीं दे सकते। सब लोग आश्चर्यपूर्वक कहने लगे कि इतने सारे शास्त्र इस बालक ने कहाँ पढ़े होंगे? फिर उपाध्याय भी चमत्कृत हो कर कहने लगा कि क्या ब्रह्मा स्वयं यहाँ साक्षात् पधारे हैं?

तब सब लोगों के मन का सन्देह मिटाने के लिए इन्द्र महाराज बोले कि हे लोगो ! यह वर्द्धमानकुमार है। इसे सामान्य पुरुष मत जानना। यह तीन लोक का नाथ है। सब पदार्थ जानता है, पर महागंभीर है, इसलिए पूछे बिना उत्तर नहीं देता। लोक में भी कहावत है कि- ठाल. सो वाजणा। ठाला बोला पोला ढोल। जैसा आश्विन और कार्त्तिक का मेघ, असती स्त्री का स्नेह और शरद ऋतु का गर्जारव होता है, वैसा निरर्थक जानना। पर जो पंडित है, वह वर्षा के मेघ जैसा होता है। वह ठाला (बिना कारण) बोलता नहीं है। जो मूर्ख होता है, वह स्वयं को पंडित समझता है, पर जो महापुरुष होते हैं, वे बिना पूछे बोलते नहीं हैं।

यह कह कर भगवान द्वारा प्ररूपित व्याकरण से संबंधित दस प्रकार के सूत्रों की वृत्ति तथा उदाहरण व्यवस्थित बना कर व्याकरण बनाया। वह जिनेन्द्र व्याकरण के नाम से आठ व्याकरणों की आदि में हुआ।

फिर इन्द्र महाराज ने पंडितप्रमुख लोगों को बताया कि भगवान सर्वज्ञ हैं। इसके बाद अपना रूप प्रकट कर वे देवलोक में गये। उपाध्याय भगवान के पाँव पड़ कर बोला कि प्रभो ! आप ज्ञानसमुद्र हैं। मैं तो अपूर्णकलश के जैसा हूँ। इसलिए आप मेरे गुरु हैं। फिर भगवान ने

उपाध्याय को बहुत दान दिया। भगवान के माता-पिता भी बहुत प्रसन्न हो कर भगवान को हाथी पर बिठा कर उत्सव सहित बाजे-गाजे के साथ धूमधाम से घर ले आये।

अथ सार्थ भले प्रकरणम्

श्री वीर प्रभु को पाठशाला में बैठा जान कर सौधर्मेन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में वहाँ जा कर प्रभु को नमस्कार कर सब लोगों को चमत्कृत करने के लिए प्रथम भले के अर्थ पूछे। भगवान ने अर्थ इस प्रकार बताये-

१. बे लीटी- जीव की दो राशियाँ हैं। उनमें एक सिद्ध के जीव सो निष्कर्मी और दूसरे संसारी जीव सो सकर्मी जानना।

२. भले- हे जीव ! तू सिद्ध के जीवों की राशि में सम्मिलित होने की इच्छा रखना।

३. मींडुं- संसाररूप गहरा कुआँ गोलाकार है। उसमें से निकलने के लिए धर्मरूप छिद्र है, इसलिए निकलेगा तो सिद्ध में मिल जायेगा।

४. बिलाड़ी- जैसे कुएँ में गिरी हुई वस्तु लोहे की बिलाडी (बिलाई) से बाहर निकाली जाती है, वैसे ही संसारी जीव को संसारकूप में से बाहर निकालने वाली एक देशविरति और दूसरी सर्वविरतिरूप दो बिलाड़ी जानना।

अब सिद्ध के जीव कहाँ रहते हैं? सो कहते हैं-

५. ओगण चोटीओ माथे पोटीओ- याने चौदह राजलोक के अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक ये तीन भाग हैं। इनमें ऊर्ध्वलोक की चोटी के स्थान पर बारह योजन विस्तार वाली ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी है। वहाँ एक योजन के चौबीसवें भाग में तीन सौ तैंतीस धनुष्य बत्तीस अंगुल विस्तार में लोक के मस्तक पर अलोक को स्पर्श करते हुए सिद्ध के जीव रहते हैं।

६. ननो वीटालो- हे जीव ! संसार के कामभोगों में मग्न हो कर तू लिप्त हो रहा है, इसलिए तुझे अधोगति याने नीची गति प्राप्त होगी।

७. ममो माउलो- यह संसार जीव का अनादि घर है। उसमें मोह नामक मातुल (मामा) सपरिवार रहता है।

८. ममा हाथ बे लाडुवा- मोह मामा के हाथ में दो लड्डू हैं। वह जीव को काम और भोग रूप दो लड्डू हाथ में दे कर भरमाता है। उसे संसार से निकलने नहीं देता।

९. सेरी राणी चोकड़ी- सिद्धिरूप रानी के मंदिर के बाहर चार कषायरूप

चौकड़ी की चौकी है। उस चौकी को फँसा कर कदापि कोई ऊपर जाये, तो भी वह उसे चढ़ने नहीं देती।

१०. पाछी चार कुंडावली- ग्यारहवीं सीढ़ी से धक्का दे कर उसे वह कषाय चौकडी संसारकूप में गिराती हैं।

११. ढाऊँ ढाऊँ ढोकलो, माथे छोकरो- हे जीव ! तू संसार में दौड़ दौड़ कर गर्भावास में गिरेगा और वहाँ ढोकले की तरह सीझ जायेगा और छैया-छोरे तुझे परेशानी में डालेंगे। इसलिए यदि तू धर्मचक्रवर्ती महाराज का सिद्धनगर देखना चाहता हो, तो सबसे पहले उनके महामंत्री सम्यक्त्व से संबंध जोड़। वह धर्म महाराज से तेरी मुलाकात करा देगा।

अब उस सम्यक्त्व मंत्री के घर के रास्ते में घाट आता है। वहाँ लुटेरे रहते हैं। उनसे बचने का उपाय बताते हैं-

१२. हाथ मां डांगडी- धर्मकथावार्त्तारूप यथाप्रवृत्तिकरण कर के अपूर्वकरण के शुभ परिणामरूप डांगडी याने महामुद्गर हाथ में लेना फिर...

१३. आईडा दो भाईडा, वडो भाई कांणो- राग और द्वेष रूप दो भाइयों को दूर करना तथा अन्य भी सात प्रकृति रूप चोर का क्षय कर के अपूर्वकरणरूप मुद्गर से मिथ्यात्व की गाँठ तोड़ कर याने ग्रंथीभेद कर के आगे बढ़ना। वहाँ सम्यक्त्व महामंत्री जो पाँच रूप बना कर बैठा है, उसके दर्शन होंगे। फिर उसकी सेवा में रहने पर वह तेरी योग्यता को परख कर....

१४. इडिकेवली ईडिउकारु- धर्मचक्रवर्ती की दो पुत्रियाँ हैं। उनमें एक देशविरति लघु पुत्री है और दूसरी सर्वविरति बड़ी पुत्री है। उसके साथ तेरा विवाह कर देगा। पर यदि सम्यक्त्व मंत्री की सेवा एकाग्रचित्त से सम्मुख रह कर करेगा, तो ही वह प्रसन्न होगा। क्योंकि-

१५. आउ आऊ आंकोडा, वडे आंकड फांकोडा- वहाँ शंका कांक्षा कषायरूप अँकुडे बड़े आकर्षक और रसिक हैं। यदि तू उनकी संगति करेगा, तो सम्यक्त्व मंत्री को शक हो जायेगा। फिर वह तेरा साथ नहीं देगा।

१६. निली तोडवे कांटोला वडे- वहाँ विषय-कषायरूप अथवा ममता-माया रूप दो विषबेले हैं। उनमें काम और भोगरूप दो सर्प सोये हुए हैं। उन्हें मत जगाना तथा मत छेड़ना। ऐसा करने से स्वामी प्रसन्न हो कर तुझे सिद्धनगरी जाने के लिए साथ करा देगा। १७. एन वेन दो गाड़ी- वह तुझे समिति-गुप्तिरूप दो गाड़ियों में बिठा कर... १८. ओरखवाला बलदीया- उनमें ज्ञान और चारित्र रूप दो बैल जोत

देगा। १९. अमीयां बे रासडी- फिर उन्हें संवर और निर्जरारूप दो रासें लगा कर गाड़ी शिवपुर नगर की ओर चलाना।

२०. कक्को केवड़ो- केवलज्ञानरूप मार्गदर्शक के बिना सिद्धनगर पहुँचा नहीं जा सकता और केवलज्ञान अनाहार मार्ग से उत्पन्न होता है, इसलिए २१. खक्खो खाजलो- तू चार प्रकार के आहार में आसक्त मत होना- रसनेन्द्रिय-लंपट मत बनना। २२. गगा गोरी गाय वीयाणी- अनाहारक तपादि मार्ग बताने वाले गुरु का बहुमान करना- भक्ति करना। गुरु महाउपकारी हैं। संसारसमुद्र पार करने के लिए बोधिबीज और धर्म का आलंबन आदि गुरु से मिलता है, इसलिए गुरु का गौरव करना। २३. घघो घरट पलाण्यो जाय- अरे जीव ! तू घर के धंधे से आरम्भ-समारंभ के भार से दिन-रात दबा हुआ रहता है। उस भार से तुझे गुरु ही छुड़ायेंगे। २४. ननीयो आमणदूमणो- घर का भार छुड़ाने के लिए गुरु पाँच अणुव्रत और पाँच महाव्रतरूप अभिग्रह नियमादि अंगीकार कराते हैं, उनके पालन में आमणदूमण याने भग्नचित्त हो कर पश्चात्ताप मत करना।

२५. चच्चा चीनीचोपड़ी- गुरुदत्त चारित्रधर्म के पालन का चित्त में चोंप-उत्साह रखना। २६. छच्छा वदिया पोटला- छद्मस्थ अवस्था में गुरु के समीप श्रुतज्ञान-चौदह पूर्व के ज्ञान का पोटला बाँधना अर्थात् ज्ञान का अभ्यास बहुत करना। २७. जज्जो जेसलवाणीउं- तेरे अन्तरंग में जो निदानशल्य, मायाशल्य और मिथ्यात्वशल्य हैं, उन्हें दूर करने का वणिज-व्यापार करना। २८. झझो झारी सारिखो- तू झारी जैसा स्वभाव रखना। झारी का मुख संकरा और पेट चौड़ा होता है। तू भी तेरा पेट बड़ा रखना और मुख से किसी के भी दोष (मर्म) प्रकट मत करना। इस प्रकार मुख को सँकरा रखना। २९. ञञीयो खांडो चांदो- यहाँ आधा चन्द्रमा यह अर्थ लेना। सिद्धशिला अर्द्धचन्द्राकार है। वहाँ जाने के लिए निरन्तर साधन (प्रयत्न) करना।

३०. टट्टो पोलिखांडेषु- गुरुसाक्षी से लिये हुए व्रत-नियमादि का भंग मत करना अर्थात् पच्चक्खाण की पोल (दरवाजा) को मजबूत रखना। ३१. ठट्ठा ठोबर गाडुओ- तू फूटे घड़े जैसा मत होना। गुरु द्वारा दी गयी श्रुतशिक्षा को हृदयघट में संग्रह कर के रखना। ३२. डड्डा डामरगांठे- तू बाह्य आडंबर से अभ्यन्तर कर्म की गाँठ से मत बँधना। ३३. ढढ्ढा सुणो पूंछे- तू सुणो याने कुत्ते की पूँछ की तरह अपना स्वभाव वक्र (टेढ़ा) मत रखना। अपना स्वभाव सरल रखना। ३४. राणो ताणो सेले- मोहराणा के साथ युद्ध करते समय ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा तीन गुप्तिरूप तीन सेल-भाले (कुन्तास्त्र) हाथ में रखना।

३५. तत्तो तावे तेले- तप-जप करते हुए तू किसी के आक्रोश वचन सुन कर तप्त तेल की तरह गरम मत होना। ३६. थथ्था थै रखवाली- कदापि तेरा मन वश न हो सके, तो भी वचन और काया को तो स्थिर रखना। ३७. दद्दीयो दीवटो- समकित (दर्शन) रूप दीपक को अपने हृदय मंदिर में रखना तथा दया, दमन और दान की अभिलाषा रखना। ३८. धद्धियो धाणको- तू धन कमाने का अर्थात् परिग्रह बढ़ाने का ध्यान मत रखना। केवल धर्मध्यान अपने हृदय में रखना। ३९. ननीयो पुलायरो- तू नास्तिक मति अंगीकार कर अपने हृदय में समकित को पोला याने पतला मत बनाना।

४०. पप्पा पोली पाटे- पाँच इन्द्रियों के आस्रवद्वार पाप के आगमन की पोल याने प्रवेशद्वार हैं। उन्हें संवररूप किंवाड़ लगा कर बन्द रखना। उन्हें पोले याने शिथिल मत रखना। अठारह पापस्थानकों का प्रचार उनमें प्रवेश न कर सके, इसलिए उन्हें दृढ़ मजबूत बन्द रखना। ४१. फफ्फा फगड़े जोड़े- जल्लाद, अशुद्ध, अविनीत, अनाचारी के साथ बिना कारण संबंध मत रखना। उनकी संगति से दूर रहना। ४२. बब्बामाहे चांदणुं- बोधिबीज बढ़ाते रहना। जैसे-जैसे बोध बढ़ता जायेगा, वैसे वैसे हृदय में ज्ञानरूप चान्दणुं याने चन्द्रमा प्रकट होगा। ४३. भब्भो भारी भेंसको- जैसे भैंस हरी-सूखी घास खा कर मोटी होती है, वैसे तू भी बाईस अभक्ष्य और बत्तीस अनन्तकाय याने कि कन्दमूलादिक का भक्षण कर के पेट से भारी मत होना। कदापि देवादिक आ कर डिगायें तो भी मत डिगना। प्रतिज्ञा का भंग मत करना। अर्हन्नक श्रावक के समान दृढ़ता रखना तथा व्रत नियमादि का पालन करते हुए मन में अभिमान मत रखना। पुनः कहते हैं.. भभीयो भाट चूलेतरो- जैसे चूल्हे का भाड़ धधकता रहता है, वैसे तू किसी के आक्रोश-असह्य मर्मबेधी वचन सुन कर अन्तरंग हृदय में क्रोधरूप अग्नि से धधकते मत रहना याने कि क्रोधाग्नि को गले मत लगाना। ४४. ममयीयो मोचक- आठ कर्म को छोड़ देना। महान मोक्षमार्ग का आदर करना ।

४५. ययीयो जाड़ो पेटको- इस संसार में यम याने कृतान्त का पेट बहुत बड़ा है। वह सर्व जगत का ग्रास करता है, फिर भी उसका पेट नहीं भरता। इसलिए अपने हृदय में उसका भय रखना और धर्म में आलस मत करना। ४६. रायरो कटारमल्ल- राग और द्वेष ये दोनों महामल्ल हैं। राग दो प्रकार का है- एक प्रशस्त राग और दूसरा अप्रशस्त राग। इन दोनों मल्लों को जीतेगा, तो कर्म से हल्का हो कर केवलज्ञान प्राप्त कर अक्षयपद याने मोक्षपद का भोगी बनेगा।

४७. लल्ला घोडो लातवा- लोभरूप घोड़े की लात से दूर रहना। ४८. वव्वा विंगण वासदे- कामादिक व्यंगों को तेरे मनरूप घर में निवास मत देना। उन्हें बसने मत देना। यदि कामादिक तेरे मनरूप घर में प्रवेश करेंगे, तो आत्मा के उत्तम गुणरूप धन को चुरा लेंगे।

४९. शशा कोटा मरडीया- खरगोश की तरह गरदन और कान ढँक कर गलियार होकर मत बैठना।धर्म में उद्यमवन्त होना। नहीं तो एक दिन कालरूप शिकारी खरगोश की तरह तुझे दुर्गति में ले जायेगा। जैसे खरगोश को पकड़ कर शिकारी उसकी गरदन मरोड़ डालता है, वैसे ही काल शिकारी तुझे भी मरोड़ देगा। ५०. षष्षा खूणे फाडिया- सच बोलना। झूठ मत बोलना। एक भी मृषावाद वचन बोलने से सब गुणों और व्रतों का नाश हो जाता है। जैसे किसी वस्त्र का कोथला (थैला) जब कोने में फट जाता है, तब उसमें भरी हुई वस्तु धीरे-धीरे निकलती जाती है और अन्त में कोथला खाली हो जाता है, वैसे ही मिथ्या भाषण से तेरे गुण तथा व्रत खत्म हो जायेंगे। कोने में बैठ कर याने कोई न देखे इस प्रकार एकान्त में बैठ कर पाप करेगा, तो भी वह भविष्य में उदयकाल में अवश्य प्रकट होगा। ५१. सारसे दंती लोक- यदि तू मोहराजा के साथ युद्ध करे, तो दन्ती याने हाथी की तरह साहसी बनना। जैसे हाथी साहसी हो कर सबसें आगे अगुआ हो कर किले के कपाट, गढ, कोट आदि सब तोड़ डालता है, वैसे ही तू भी मोहराजा का मिथ्यात्वरूप गढ तोड़ डालेगा। ५२. हाहोलो हरिणेकलो- तू मोहरूप शिकारी के पाश में मत फँसना। पर जैसे हिरन शिकारी को देख कर भाग जाता है, वैसे ही तू भी छलाँग मार कर भाग जाना। यदि मोह के जाल में फँस गया, तो संसार के बंधन से नहीं छूटेगा।

५३. लावे लच्छी दो पणिहार- यदि तू मोक्ष का अभिलाषी हो कर संसार के बन्धन तोड़ देगा, तो एक द्रव्यलक्ष्मी और दूसरी भावलक्ष्मी ये दोनों तेरे घर पानी भरेंगीं। याने कि यदि अनुत्तरविमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ या मनुष्यभव में नरदेव (चक्रवर्ती) के रूप में उत्पन्न हुआ, तो भरतादिक के समान द्रव्यलक्ष्मी का पुण्य भोग कर अन्त में सिद्धपद प्राप्त कर भावलक्ष्मी का भी उपभोग करेगा।

ऐसे सिद्ध के सुख कैसे प्राप्त होंगे? सो कहते हैं-

५४. खडिया खाटक मोर, पाले बांध्या चोर- इस संसार में षट्कायिक जीवों की आत्मा के जो ज्ञानादिक गुण हैं, उन्हें लूटने के लिए राग और द्वेष रूप दो चोर खड़े हैं। उन्हें पकड़ कर बाँध कर उनका समूल नाश कर देना- बीजमात्र हटा देना,

जिससे कर्मरूप वृक्ष की उत्पत्ति पुनः होवे ही नहीं। इन दोनों को दूर कर के चार घनघाती कर्म हटा देना। इससे तुझे केवलज्ञानरूप लक्ष्मी प्राप्त होगी। फिर उस केवलश्री का भोग कर के अन्त में चौदहवें गुणस्थान में योगनिरुंधन और शैलेषीकरण कर के शुक्लध्यान के चौथे पाये में कार्मणशरीर का छेदन कर के क्रियारहित हो कर सिद्ध के जीवों की राशि में मिल जाना। इससे...

५५. मंगल महाश्री, दे विद्या परमेश्वरी- तुझे मंगलमयी महान भावलक्ष्मी प्राप्त होगी अर्थात् अपनी आत्मा की अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र, अनन्तवीर्य, अगुरुलघु, अरूपी, अखंड,अक्षय, ऐसी महामंगलरूप भावलक्ष्मी प्राप्त कर सादि-अनन्त भंग से अजर, अमर, अविनाशी हो कर तू महानन्द परमानन्द पद प्राप्त करेगा। इति तत्त्वं।

(इसका अर्थ प्रकारान्तर से अलग अलग महापुरुषों द्वारा किया गया अनेक प्रकार का देखने में आया है, पर यहाँ ग्रंथगौरव के भय से मात्र यह एक ही प्रकार का अर्थ लिखा है।)

प्रभु का विवाह और परिवार

भगवान ने बाल्यावस्था पार कर जब यौवनवय में प्रवेश किया, तब माता-पिता ने शुभ मुहूर्त्त निकलवा कर बड़े ठाट-बाट से समरवीर सामन्त की पुत्री यशोदा के साथ प्रभु का विवाह किया। अनेक प्रतों में नरवर्म राजा की पुत्री यशोदा के साथ विवाह किया, ऐसे अक्षर लिखे हैं। यशोदारानी के साथ विषयसुख भोगते हुए भगवान के प्रियदर्शना नामक पुत्री हुई। भगवान की बहन के पुत्र जमाली के साथ उसका विवाह हुआ। इस प्रकार गृहस्थ जीवन जीते हुए भगवान अट्ठाईस वर्ष के हो गये।

महावीरस्वामी के पिता काश्यप गोत्रीय हैं। उनके तीन नाम हैं- एक सिद्धार्थ, दूसरा श्रेयांस और तीसरा यशस्वी। भगवान की माता का वासिष्ठ गोत्र है। उसके भी तीन नाम हैं- एक त्रिशला, दूसरा विदेहदिन्ना और तीसरा प्रीतिकारिणी। भगवान के काका का नाम सुपार्श्व है। भगवान के बड़े भाई का नाम नन्दीवर्द्धन तथा बहन का नाम सुदर्शना है। उनकी पत्नी का नाम यशोदा है। उसका कौडिन्य गोत्र है। भगवान की पुत्री का काश्यप गोत्र है। उसके अणोद्या और प्रियदर्शना ये दो नाम हैं। भगवान की दौहित्री

का काश्यप गोत्र है। उसके शेषवती तथा यशस्वती ये दो नाम हैं।

भगवान श्री महावीरस्वामी सब कलाओं में निपुण, रूपवान, सर्वगुणसम्पन्न, सरल परिणामी और विनयी थे। वे अच्छी तरह से प्रतिज्ञा निर्वाह करने वाले थे। ज्ञात राजा के प्रसिद्ध पुत्र सिद्धार्थ राजा के कुल में चन्द्रमासमान थे। उनका शरीर सुव्यवस्थित था। उनका वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान था। वे त्रिशलामाता के पुत्र गृहवास में महाकोमल शरीर वाले, पर दीक्षा के पश्चात् परीषह सहनशीलता की अपेक्षा से अतिकठिन शरीर वाले, कांतिवान, ममत्व रहित और दीक्षाभिलाषी थे। वे तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहे।

प्रभु को माता-पिता का वियोग

भगवान जब अट्ठाईस साल के हुए, तब उनके माता-पिता का देवलोकगमन[१] हो गया। उस समय उन्होंने अपने बड़े भाई नन्दीवर्द्धन से दीक्षाग्रहण के लिए आज्ञा माँगी। उन्होंने भाई से कहा कि माता-पिता के जीवित रहने तक घर में रहने की मेरी प्रतिज्ञा थी। वह अब पूर्ण हो गयी है। इसलिए अब मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दो। तब नन्दीवर्द्धन ने कहा कि हे भाई ! तुम जले पर नमक क्यों छिड़कते हो? माता-पिता के वियोग का दुःख मेरे लिए अब भी बना हुआ है। उस पर तुम्हारे वियोगरूप नमक का छिड़काव मुझसे सहा नहीं जायेगा। अभी तो माता-पिता का शोक भी नहीं मिटा है। इसलिए इस समय मैं दीक्षाग्रहण की अनुमति नहीं दे सकता।

तब भगवान ने कहा कि माता-पिता, भाई-बहन आदि इस जीव को अनन्त बार मिले हैं। जीव अकेला ही आता है और उन सबको छोड़ कर

---

१. आवश्यक निर्युक्ति में ऐसा लिखा है कि चौथे देवलोक में गये। इसका समाधान करने के लिए कई टीकाकार यह कल्पना करते हैं कि देवों की कुल चार निकायें हैं। इन चार देवनिकायों के आश्रय से चौथी निकाय वैमानिक देवों की है। इसलिए चौथा देवलोक याने चौथी निकाय वैमानिक देवों की जानना। इस चौथी निकाय में बारहवाँ देवलोक आ जाता हैं। इससे आचारांग में कहे अनुसार बात बराबर मिल जाती है। इस प्रकार वे समाधान करते हैं। फिर तत्त्व केवलीगम्य है।

अकेला ही जाता है तथा अकेला ही अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है। इस तरह संसार में कोई किसी का सगा नहीं है तो अब किस-किस का शोक करें और किस-किस के साथ प्रतिबंध रखें?

इस पर नन्दीवर्द्धन ने कहा कि हे भाई ! यह सब मैं भी जानता हूँ। पर क्या करूँ? मेरे मोहनीय कर्म का बंध बहुत दृढ़ है, इसलिए मैं तुम्हारा विरह सहन नहीं कर सकता। मेरा तुमसे यह अनुरोध है कि तुम दो वर्ष तक और घर में रहो। यही ठीक होगा। उत्तम पुरुष बड़े करुणाशील होते हैं। दुःखियों का दुःख देख कर वे द्रवित हो जाते हैं। बड़े भाई का यह कथन सुन कर भगवान ने कहा कि हे भाई ! मैं दो साल घर में रहूँगा, पर सब आहार-पानी प्रासुक लूँगा। मेरे लिए आरंभ कर के कुछ भी मत बनाना। तब बड़े भाई ने कहा कि हम तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं बनायेंगे। तुम सुखपूर्वक रहो। तब भगवान पुनः दो वर्ष गृहवास में रहे।

जब भगवान का जन्म हुआ था, तब लोगों में यह प्रसिद्ध हो गया था कि माता ने चौदह स्वप्न देखे हैं, इसलिए पुत्र चक्रवर्ती होगा। ऐसा जान कर ही श्रेणिक और चंडप्रद्योतन राजाओं ने अपने कुमारों को बाल-ठाकुर की सेवा करने के लिए भेजा था। उन सबने भगवान को ऐसे घोर अनुष्ठान करते देख कर सोचा कि ये चक्रवर्ती तो नहीं लगते। ये तो संयमग्राही तीर्थंकर हैं। यह जान कर वे सब अपने अपने घर गये। भगवान भी उसी स्थिति में दो वर्ष गृहस्थावास में और रहे। उन्होंने सब सचित्त वस्तुओं का त्याग किया और ब्रह्मचर्य-पालन किया, पर जिस समय दीक्षा ली, उस समय सचित्त जल से स्नान किया। क्योंकि यह मर्यादा है कि दीक्षा ग्रहण के समय का स्नान उष्ण जल से करना तीर्थंकर के लिए नहीं होता। इसी कारण से प्रतिमा को भी उष्णजल नहीं चढ़ाते।

भगवान का दिया हुआ वार्षिक दान

जब एक वर्ष शेष रहा, तब नव लोकान्तिक देव प्रभु के सम्मुख आये। यद्यपि भगवान स्वयंसंबुद्ध हैं, तो भी उन देवों की ऐसी ही मर्यादा होने से

१. सारस्वत, २. आदित्य, ३. वह्नि, ४. वरुण, ५. गर्दतोय, ६. तुषित, ७. अव्याबाध, ८. अग्नि और ९. अरिष्ट इन नौ देवों ने प्रभु के पास आ कर कहा कि जय-जयवन्त हों हे समृद्धिमान ! हे कल्याणवान ! आपका भला हो। हे क्षत्रियों में वृषभ समान ! आपकी जय हो। बोध कीजिये। बोध कीजिये। बूझिये। बूझिये। हे भगवन् ! हे लोकनाथ ! सारे संसार के जीवों के लिए हितकारक प्रवृत्ति कीजिये। हे भगवन् ! आप धर्मतीर्थ का प्रवर्त्तन कीजिये। वह धर्मतीर्थ सब लोकों में हितकारक, सुखकारक और मोक्षकारक होगा। इतना कह कर उन्होंने जय-जयकार किया।

श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी को मनुष्ययोग्य गृहस्थधर्म याने गृहस्थ के व्यवहार से पहले भी अनुपम उपयोग याने अप्रतिपाति अवधिज्ञान और अवधिदर्शन था। उस अनुत्तर अवधिज्ञान और अवधिदर्शन से अपनी दीक्षा का अवसर जान कर रौप्य, सुवर्ण, धन, राज्य, देश, वाहन, कोठार, भंडार, अन्तःपुर, देशवासी लोग, धन, कण, धान्य, मणिरत्न, मोती, दक्षिणावर्त्त शंख, शिला, प्रवाल, लालरत्नादिक जो कुछ स्वयं के पास था और हाजिर था, उन सबका त्याग कर के अर्थात् उन पर से मन हटा कर, सर्व रूपादिक छोड़ कर, जो चाँदी प्रमुख धरती में गाड़े हुए थे, उन्हें बाहर निकाल कर वह सब अपने गोत्रियों में बाँट दिया। फिर वार्षिक दान दिया। वार्षिक दान का अधिकार इस प्रकार है-

भगवान अपने दीक्षा दिन से एक वर्ष पहले वार्षिक दान देना शुरु करते हैं। सूर्योदय से भोजन के समय तक प्रतिदिन प्रभात का सवा प्रहर दिन बीतने तक नित्य एक करोड़ आठ लाख सुवर्णमुद्राएँ भगवान दान में देते हैं। गाँव में ऐसी उद्घोषणा की जाती है कि जिसे जो वस्तु चाहिये, वह जब उसकी माँग करे, तब भगवान उसे वह वस्तु देते हैं। वह सब शक्रेन्द्र के आदेश से देवता पूर्ण करते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में तीन सौ करोड़ याने तीन अब्ज अट्ठासी करोड़ अस्सी लाख सुवर्णमुद्राएँ भगवान दान में देते हैं। एक सुवर्णमुद्रा का वजन अस्सी रत्ती होता है। उस पर तीर्थंकर और उनके माता-पिता का नाम होता है। बारह सौ सुवर्णमुद्राओं का एक मण

मानें तो प्रतिदिन नौ हजार मण सुवर्णमुद्राएँ दान में दी जाती हैं। उनकी आज के समय के अनुसार एक गाड़ी में चालीस मण भार डालने से दो सौ पच्चीस गाड़ियाँ होती हैं। ये सुवर्णमुद्राएँ शक्रेन्द्र के आदेश से वैश्रमण देव देवमाया से आठ समय में बना कर तीर्थंकर के घर में भरता है। यह दान देने का अतिशय है।

तीर्थंकर के हाथ में शक्रेन्द्र ऐसी स्थिति करता है कि दान देते हुए तीर्थंकर का हाथ थके नहीं। ईशानेन्द्र रत्नजड़ित सुवर्णछड़ी हाथ में ले कर खड़ा होता है। वह चौसठ इन्द्र छोड़ कर अन्य सामान्य देवों को दान लेने से रोकता है तथा जिस मनुष्य के ललाट में जैसी प्राप्ति होती है, वैसा उसके मुख से वचन निकलवाता है। चमरेन्द्र और बलेन्द्र यदि तीर्थंकर की मुट्ठी में अधिक द्रव्य आया हो, तो वापस निकाल देते हैं और कम द्रव्य आया हो, तो उसे पूर्ण करते हैं। याचना करने वाला अपनी प्राप्ति के अनुसार पाता है। भवनपति देव भरतक्षेत्र के मनुष्यों को दान लेने के लिए बुला लाते हैं और वाणव्यन्तर देव मनुष्यों को पुनः उनके स्थानक पर पहुँचाते हैं। ज्योतिषी देव विद्याधरों को दान लेने की खबर पहुँचाते हैं। ये सब तीर्थंकर के अतिशय जानना।

इस प्रस्ताव में तीर्थंकर के पिता तीन विशाल शालाएँ बनवाते हैं। यहाँ भगवान के माता-पिता देवलोक गये हैं, इसलिए उनके बड़े भाई नन्दीवर्द्धन तीन शालाएँ बनवाते हैं। पहली शाला में भरतक्षेत्र के मनुष्यों को अन्नपानादिक, दूसरी शाला में वस्त्र और तीसरी शाला में आभूषण दिये जाते हैं।

तीर्थंकर के हाथ के दान की महिमा कहते हैं-

दान के प्रभाव से चौसठ इन्द्रों में बारह वर्ष तक आपस में क्लेश नहीं होता। राजा अथवा चक्रवर्तीप्रमुख तीर्थंकर का दान ले कर वे सुवर्णमुद्राएँ भंडार में रखें, तो बारह वर्ष तक उनका भंडार अखूट रहता है। सेठ-सेनापति आदि दान लेते हैं, तो उसके प्रभाव से बारह वर्ष तक उनकी यशकीर्ति बहुत बढ़ती है। रोगी पुरुष को दान मिले, तो उसके प्रभाव से

रोग मिट जाता है तथा पुनः बारह वर्ष तक उसके शरीर में कोई नया रोग नहीं होता। यह सब दान की महिमा जानना। छह घड़ी दिन चढ़ने के बाद भगवान दान देना शुरु करते हैं। उसके बाद पौने दो प्रहर तक दान देते हैं, ऐसा अनेक प्रतों में लिखा है। परन्तु यहाँ सूर्योदय से भोजन के समय तक दान देते हैं, ऐसा पूर्व में लेख है।

इस प्रकार भगवान ने वार्षिकदानरूप बरसात एक वर्ष तक बरसा कर मनुष्यों का दारिद्र्यरूप दावानल शान्त किया। इस दान के प्रभाव से जो दरिद्री थे, वे सब धनवान हुए। अश्व, वस्त्र, आभरण आदि से उनकी वृद्धि हुई और वे लक्ष्मीसहित हुए। भगवान के हाथ का दान ले कर जब वे घर लौटते थे, तब उनकी स्त्रियाँ उन्हें पहचान तक नहीं सकती थी। फिर इन्द्र महाराज आ कर पहचान करवाते, तब वे पहचान पातीं। भगवान के हाथ का यह दान सब भव्य जीवों को मिलता है, पर अभव्य को सर्वथा नहीं मिलता।

भगवान का दीक्षा महोत्सव

भगवान का दीक्षा समय जान कर नन्दीवर्द्धन राजा ने दीक्षा महोत्सव करने के लिए क्षत्रियकुंड नगर में ध्वजाएँ बँधवायीं, बाजार सजवाये और घर-घर तोरण बँधवाये। फिर आठ जाति के अभिषेक कलश बनवाये। चौसठ इन्द्रों के आठ जाति के अभिषेक कलश देवप्रभाव से उन कलशों में प्रविष्ट हो गये। फिर नंदीवर्द्धन राजा ने भगवान को पूर्व सम्मुख बिठा कर देवों द्वारा लाये गये जल से उनका अभिषेक करवाया। उस समय इन्द्रादिक सब देव हाथ में भृंगार दर्पण ले कर जय-जय शब्दों का उच्चारण करते हुए वहाँ खड़े रहे। फिर भगवान के शरीर को पोंछकर उस पर बावनाचन्दन का लेप किया और भगवान को अमूल्य वस्त्र, मुकुट, मुक्ताहार, कंठसूत्र, केयूर, बाजुबंध, बहिरखे और कुंडलादिक आभूषण पहनाये तथा पुष्पादिक से भगवान को कल्पवृक्ष जैसा किया।

नन्दीवर्द्धन के आदेश से अनेक सेवकों ने पचास धनुष्य लम्बी, पच्चीस

धनुष्य चौड़ी और छत्तीस धनुष्य ऊँची मणिकनकरचित चन्द्रप्रभा पालकी बनायी। देवों ने भी ऐसी ही एक पालकी बनायी। देवनिर्मित पालकी दिव्यानुभाव से नन्दीवर्द्धनकृत पालकी में समा गयी। फिर वह पालकी प्रभु के सम्मुख रखी गयी। उस पालकी में भगवान पूर्व सम्मुख सिंहासन पर बैठे। भगवान की दाहिनी ओर कुल में वरिष्ठ कुलमहत्तरिका हंसलक्षणा स्त्री साड़ी ले कर बैठी तथा बायीं ओर भगवान की धायमाता दीक्षा के उपकरण ले कर बैठी। भगवान के पीछे एक स्वरूपवती भली स्त्री सोलह शृंगार कर के छत्र ले कर बैठी। ईशानकोण में एक स्त्री हाथ में जलपूर्ण कलश ले कर खड़ी रही तथा अग्निकोण में एक स्त्री मणिमय विचित्र पंखा झलती खड़ी रही। ये सब स्त्रियाँ शृंगार की हुई युवतियाँ थीं।

फिर नन्दीवर्द्धन राजा की आज्ञा से एक हजार सेवकों ने पालकी उठायी। उसी समय शक्रेन्द्र ने पालकी की दाहिनी ओर की अगली ऊपर की ओर की बाँह उठायी तथा ईशानेन्द्र ने बायीं ओर की अगली ऊपर की बाँह उठायी। इसी प्रकार चमरेन्द्र ने दाहिनी ओर की पिछली तरफ की बाँह उठायी तथा बलीन्द्र ने बायीं ओर की पिछली तरफ की बाँह उठायी। अन्य भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के इन्द्रों ने जहाँ नजर गयी, वहाँ से उठायी। उस समय कई देव दुंदुभी बजाने लगे और कई पंचवर्ण पुष्पों की बरसात करने लगे। शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र जब बाँह छोड़ कर चामर बींझते, तब अन्य इन्द्र शिबिका उठाते। इस शिबिका को पहले मनुष्यों ने उठाया। फिर सुरेन्द्र, असुरेन्द्र और नागेन्द्र ने उठाया। अन्य सब देव हर्षित हो कर आकाश में नृत्यादिक करने लगे। जैसे वनखंड फूलों से तथा शरद ऋतु में पद्मसरोवर कमलों से सुशोभित होते हैं, वैसे ही आकाश में रहे हुए देवगण शोभायमान हो रहे थे। जैसे अलसीवन, कनेरवन और चंपावन फूलों से संकीर्ण हो जाते हैं, वैसे ही क्षत्रियकुंड नगर से देवभवन तक आकाश देव-देवियों से संकीर्ण हो गया। प्रधान पटह, भेरी, झल्लरी, दुदुंभी इत्यादिक करोड़ों बाजे आकाश में तथा धरती पर बज रहे थे। यह सब देखने के लिए अपने घर के काम छोड़ कर सब लोग इकट्ठे हो गये

थे। जब पालकी चलने लगी, तब सब देव-देवियाँ और नर-नारी अपनी-अपनी खुशी से मन के अनुसार हर्ष के बाजे बजाने लगे, नाच-गान करने लगे और फल-फूल-मोती प्रमुख बरसाने लगे।

जुलूस में भगवान के आगे अनुक्रम से सबसे पहले आठ मंगल, फिर भृंगारकलश (पूर्ण कलश), विशाल वैजयंती ध्वजा, छत्रधर, मणिपीठ (सिंहासन), सवाररहित सजाये हुए एक सौ आठ हाथी, एक सौ आठ घोड़े, एक सौ आठ शस्त्रपूरित रथ, एक सौ आठ पुरुष, अश्वदल, हस्तिदल, रथदल, पैदल लश्कर (चार प्रकार की सेना), एक हजार योजन ऊँचा और छोटी छोटी एक हजार ध्वजाओं से मंडित महेन्द्रध्वज, कुन्तग्रहा, बाणग्रहा, तीरग्रहा, गोफणग्रहा, हास्यकारिका, कर्मकारिका, वशकारिका, ज्ञानकारिका, विनोदकारिका, खड्गधर, धनुर्धर आदि एक के पीछे एक चलते थे। उनके पीछे तख्ती रखने वाले और अनेक चारण भिखारी याचना करते हुए चलते थे। उनके पीछे अनेक उग्र-भोगादिक कुलवाले क्षत्रिय, मांडविक, कौटुंबिक, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, देव-देवियाँ और प्रजाजन चलते थे। भगवान के पीछे सेनासहित, अनेक आंडबरसहित छत्र-चामर धारण किये हुए नन्दीवर्द्धन राजा चल रहे थे तथा अन्य भी अनेक लोग चल रहे थे। उस समय अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। उनकी ध्वनि सुन कर नगर की स्त्रियाँ अपना-अपना काम छोड़ कर वहाँ पहुँच गयीं। वे कैसे पहुँचीं? सो कहते हैं-

तीन बातें स्त्रियों को प्रिय हैं- एक झगड़ा, दूसरा काजल और तीसरा सिन्दूर। इसी प्रकार अन्य तीन भी उन्हें प्रिय हैं- एक दूध, दूसरा दामाद और तीसरा तूर याने बाजा। कहा भी है कि-

तिण्णि वि तियां वल्लहा, कलि कज्जल सिन्दूर।
ए पुण अतिहि वल्लहा, दूध जमाई तूर।।१।।

इसलिए वे स्त्रियाँ बाजों की ध्वनि सुन कर वहाँ उतावली पहुँची। इस कारण से किसी स्त्री ने काजल आँखों के बदले गालों पर लगा लिया और कस्तूरी गालों के बदले आँखों में लगा ली। किसी स्त्री ने झन झन करते झांझर पैरों के बदले गले में पहन लिये। कई स्त्रियों ने गले के गहने पैरों

में डाल दिये। कई स्त्रियों ने कटिमेखला गले में डाल दी और गले का हार कटिमेखला के स्थान पर कमर में बाँध दिया। कई स्त्रियों ने चन्दन घिस कर पैरों में चुपड़ लिया और अलता मस्तक पर चुपड़ लिया। कई स्त्रियाँ अधूरा स्नान कर के भागती गयीं। कोई-कोई घाघरा ओढ़ कर चली गयी। कोई-कोई अन्य स्त्रियों के पुत्रों को अपनी बगल में उठा कर भागती गयी, कई स्त्रियाँ अपने रोते हुए बालक को छोड़ कर देखने गयीं। कई स्त्रियों ने अपना वस्त्र खींच कर नहीं बाँधा, इसलिए वह हवा के कारण उड़ गया। इससे नववधुएँ बालकुमारी जैसी दीखने लगीं, किसी स्त्री ने एक कान में आभूषण पहना और दूसरे कान में पहनना भूल गयी, कोई स्त्री जीम कर चलु करना भूल गयी, किसी स्त्री ने एक पैर धोया और दूसरा धोना रह गया। कोई कंचुली पहनना भूल गयी। ऐसी उतावल से सब देखने निकल पड़ीं। वहाँ कई स्त्रियाँ चावल उछाल रही थीं और कई नाच-गान कर रही थीं। ऐसे ठाट-बाट से भगवान का दीक्षा महोत्सव मनाया गया। वह किस दिन मनाया गया? सो कहते हैं-

उस काल में उस समय में श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी हेमन्तऋतु याने जाड़े की ऋतु का पहला महीना पहला पक्ष मार्गशीर्ष वदि दशमी, सुव्रत नामक दिन की पिछली छाया में याने एक प्रहर दिन बीतने पर विजय मुहूर्त्त में चन्द्रप्रभा पालकी में बैठे। उनके आगे-पीछे देव और मनुष्य चल रहे थे। शंखवादक, सुवर्णचक्र धारक, हलधर तथा मंगल शब्द बोलने वाले भिक्षुक प्रमुख, चारणप्रमुख और भाटप्रमुख तथा घंटानाद करने वालों का समुदाय आशीर्वाद देते हुए कह रहा था कि-

हे समृद्धिवन्त ! आपकी जय हो, विजय हो। हे कल्याणवन्त आपका कल्याण हो। आपके ज्ञान, दर्शन और चारित्र अतिचार रहित हों। उनका भंग न हो। जो जीती नहीं जा सकतीं अर्थात् जिन्हें जीतना बहुत कठिन है, ऐसी इन्द्रियों को आप जीतें और साधुधर्म का पालन करें। आप सर्व विघ्नरहित हों। उग्रविहार करने में आपका नाम हो। राग-द्वेष रूप दो मल्लों का आप नाश करें तथा तपरूप धैर्य धारण कर संतोषरूप लंगोट कस कर

आप आठ कर्मरूप शत्रुओं का मर्दन करें। उत्तम शुक्लध्यान से अप्रमत्त रहते हुए आप विचरें। हे वीर ! आप आराधना-पताका ग्रहण करें। तीन लोकरूप रंग याने मल्ल के अखाड़े में अंधकाररहित अनुपम केवलज्ञान आप प्राप्त करें। मोक्षरूप परमपदप्राप्ति का केवली भगवान द्वारा दिखाया गया जो सीधा मार्ग है, उस मार्ग से आप जायें। किस तरह जायें? सो कहते हैं-

आप बाईस परीषहरूप फौज का नाश करते जायें। हे क्षत्रियों में वृषभसमान ! आपकी जय हो। अनेक दिन, अनेक पक्ष, अनेक मास और अनेक वर्ष आपकी जय हो। दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु और तीन ऋतुओं का एक अयन होता है अर्थात् छह मास का एक अयन होता है। ऐसे अनेक अयनों तक तथा दो अयन का एक वर्ष होता है और पाँच वर्ष का एक संवत्सर होता है, ऐसे अनेक संवत्सरों तक आप परीषह तथा उपसर्गों में निर्भय रहें और बिजली, सिंहादिकों के डरावने भय-भैरव क्षमासहित सहन करें। धर्मपालन में आपको कोई विघ्न न करे।

इतना कह कर उन्होंने जय-जयकार किया।

भगवान श्री महावीरस्वामी जब दीक्षा लेने चले, तब लोग उन्हें हजारों नेत्रों से देखने लगे और देख देख कर खुश होने लगे। हजारों लोग वचन से स्तवन करने लगे। हजारों लोग मन में ऐसी चाहना करने लगे कि ये भगवान बहुत काल तक जीवित रहें। हजारों लोग यह मनोरथ करते थे कि जब ये तीर्थंकर बनेंगे, तब हम इनकी सेवा करेंगे। भगवान की कांति और रूपगुण देख कर लोग मन में यह भावना करते थे कि ये हमारे स्वामी हों। हजारों लोग अपने दाहिने हाथ की उँगली से दिखाते हुए यह कहते थे कि ये देखो भगवान बिराजे हैं। हजारों लोग याने हजारों पुरुष और हजारों स्त्रियाँ अंजली सहित हाथ जोड़ जोड़ कर प्रणाम कर रहे थे।

उनके प्रणाम दाहिने हाथ से स्वीकारते हुए, हजारों घरों की श्रेणी पार करते हुए, वीणा, हस्ताल, वाद्य, गीत, मधुर, मनोहर जय-जय शब्द के साथ मिले हुए लोगों के स्वरों से सावधान होते हुए, सर्व ऋद्धिसहित, सर्व

आडंबरसहित, सर्व बलसहित, सर्व सेनासहित, सर्व वाहनसहित, सर्व समुदायसहित, सर्व आदरसहित, सर्व सम्पदासहित, सर्व उत्सवसहित, देखने की मन में इच्छा हो, ऐसे सर्व मिलापसहित, सर्व लक्ष्मीसहित, संभ्रमसहित, सर्व नगरलोकसहित, सर्व तालेवर (मालदार) सहित, सर्व अन्तःपुर सहित, सर्व पुष्प-गंधमाला तथा अलंकारों से सुशोभित, सर्व वाद्यों के घोषसहित, महाऋद्धि-द्युति-बल-वाहन समुदाय सहित, बड़े बड़े और शुभ बाजे समकाल में बजते हुए, शंख, ढोल, पटह, झालर, खरमुखी, हुडुक्क, देवदुंदुभी प्रमुख बाजों के प्रतिशब्द सहित क्षत्रियकुंडपुर नगर के मध्य में हो कर भगवान निकले।

वहाँ से निकल कर ज्ञातखंडवन नामक उद्यान में एक सुन्दर उत्तम अशोकवृक्ष के पास पहुँचे। उस वृक्ष के नीचे पालकी रखवायी। फिर पालकी से उतरे। उतर कर अपने हाथ से माला-प्रमुख सब अलंकार उतार दिये। वे अलंकार उनके कुल की बुजुर्ग हंसलक्षणा स्त्री ने अपने वस्त्र में लिये। फिर भगवान ने अपने हाथ से पंचमुष्टि लोच किया। वे केश इन्द्र महाराज ने स्वयं ले जा कर क्षीरसमुद्र में विसर्जित किये। लोच के बाद चउविहार छट्ठ याने बेले की तपस्या करते हुए उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर शक्रेन्द्र द्वारा दिया गया एक मात्र देवदूष्य वस्त्र ले कर अकेले राग-द्वेष रहित तथा साधु-संगरहित स्थिति में द्रव्य से और भाव से मुंडित हो कर गार्हस्थ्य का त्याग कर के भगवान ने अनगारत्व (साधुत्व) को अंगीकार किया।

जिस समय भगवान ने सामायिक का उच्चारण किया, उस समय शक्रेन्द्र ने सर्व कोलाहल वाद्य प्रमुख बन्द करवाये। फिर भगवान ने 'नमो सिद्धाणं' कह कर 'करेमि सामाइयं' यावत् 'तस्स पडिक्कमामि' इत्यादि पाठ कहा। यहाँ अन्य गुरु करने का अभाव है। स्वयं स्वयंबुद्ध हैं, इसलिए 'भन्ते' पद नहीं कहा। तीर्थंकर का ऐसा ही कल्प है। सामायिक उच्चारण करते ही भगवान को चौथा मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ।

फिर इन्द्र तथा देवों ने भगवान को नमस्कार कर नन्दीश्वरद्वीप जा

कर अट्ठाई महोत्सव किया। इसके बाद वे सब अपने-अपने स्थान पर गये। भगवान ने भी अपने भाई नन्दीवर्द्धनप्रमुख से पूछ कर वहाँ से विहार किया। जब तक भगवान नजर आते थे, तब तक स्वजनादिक वहीं खड़े रहे। फिर भगवान के गुणों को याद करते हुए सशोक मन से अपने अपने घर गये।

जैनाचार्य श्रीमद् भट्टारक विजय राजेन्द्रसूरीश्वर-सङ्कलिते श्री कल्पसूत्र बालावबोधे पञ्चमं व्याख्यानं समाप्तम्।।

卐 卐 卐

षष्ठ व्याख्यान

नन्दीवर्द्धन राजा की आज्ञा ले कर प्रभु का विहार

भगवान ने दीक्षा ले कर जब विहार किया, उस समय दो घड़ी दिन शेष था। फिर भगवान कुमारग्राम के बाहर काउस्सग्ग में रहे। उस समय एक किसान वहाँ आया। वह अपने बैल भगवान को सौंप कर घर गया। फिर जीम कर कुछ देर बाद पुनः वहाँ आया। इस बीच दिन भर हल चलाने के कारण थके हुए बैल चरते चरते कहीं चले गये। किसान ने चारों ओर ढूँढा, पर वे नहीं मिले। तब उसने भगवान से पूछा कि बैल कहाँ गये? उस समय भगवान मौन धारण कर कुछ नहीं बोले। फिर उस किसान ने जंगल में रात भर बैलों को ढूँढा, पर वे नहीं मिले। जब उसने वापस लौट कर देखा, तो बैल भगवान के निकट बैठे थे, क्योंकि वन में घूम-फिर कर वे पुनः वहीं आ गये थे। अब किसान क्रोधित हो कर भगवान से बोला कि हे पापी ! हे पाखंडी ! मेरे बैल तूने ही छिपा रखे थे। यह सब काम तूने ही किया लगता है। मुझे रात भर व्यर्थ घूमना पड़ा। इतना कह कर हाथ में रास ले कर वह भगवान को मारने दौड़ा। उस समय इन्द्र महाराज ने

अवधिज्ञान से भगवान का उपसर्ग जान लिया। वे तुरन्त वहाँ आ कर किसान से बोले कि अरे दुष्ट ! क्या तुझे मालूम नहीं है कि ये श्री वर्द्धमानस्वामी नन्दीवर्द्धन राजा के भाई हैं? सिद्धार्थ राजा के पुत्र हैं ? इन्होंने दीक्षा ली है ? यह कह कर उन्होंने उस किसान को वहाँ से भगा दिया।

फिर इन्द्र महाराज ने भगवान से कहा कि हे भगवन् ! बारह वर्ष तक आपकी छद्मस्थावस्था है। इसमें बहुत उपसर्ग होने वाले हैं। इसलिए यदि आप आज्ञा करें तो मैं हमेशा आप के पास रह कर आपकी सेवा करूँ तथा आप पर आने वाले उपसर्गों का निवारण करूँ। ऐसी मेरी भावना है। तब भगवान ने कहा कि हे इन्द्र ! यह बात कभी हुई नहीं, होती नहीं और होगी भी नहीं कि श्री अरिहन्त भगवान इन्द्र की सहायता से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जायें। अरिहन्त तो अपने बलवीर्य से ही केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जाते हैं। यह सुनने पर भी मारणान्तिक उपसर्ग दूर करने के लिए इन्द्र ने भगवान की माता त्रिशलादेवी की बहन के पुत्र सिद्धार्थ व्यन्तर को आदेश दे कर भगवान के पास रखा। फिर इन्द्र महाराज अपने स्थान पर चले गये। किसान भी अपने घर गया। यहाँ सिद्धार्थ व्यंतर को मौसी का पुत्र कहा है, पर कहीं कहीं उसे काका भी कहा है। इति हालीकृत उपसर्गः।

अब तीसरे दिन प्रभात के समय भगवान वहाँ से विहार कर कोल्लाग सन्निवेश गये। वहाँ बहुल नामक ब्राह्मण के घर कांस्यपात्र में खीर ले कर प्रभु ने परमान्न से पारणा किया। पात्र धर्म बताने के लिए उन्होंने गृहस्थ के कांस्यपात्र में खीर ग्रहण की। वहाँ पाँच दिव्य प्रकट हुए। यह भगवान का अतिशय है। वे पाँच दिव्य इस प्रकार हैं- १. देव आकाश में ध्वजाविस्तार करते हैं, २. सुगंधित जल बरसाते हैं, ३. पुष्पवर्षा करते हैं, ४. देवदुंदुभी बजाते हैं और ५. 'अहो दानं अहो दानम्' की ध्वनि करते हैं। प्रकारान्तर से पाँचवें दिव्य में साढ़े बारह करोड़ सुवर्णमुद्राएँ बरसाते हैं, ऐसा भी लिखा है।

कामी पुरुषों, स्त्रियों तथा भ्रमरों का उपसर्ग

भगवान ने जब दीक्षा ली थी, तब इन्द्रादिकों ने सुगंधित बावना चन्दनादिक से भगवान के शरीर पर लेप किया था। उसकी सुगंध चार मास से अधिक समय तक बनी रहती है। उस सुगंध से भ्रमरादिक हजारों जीव मदोन्मत्त हो कर भगवान के अंगोपांगों को बेधने लगे और महाउपद्रव करने लगे। सुगंध में अन्धे बने हुए भौंरे भी भगवान के अंगोपांगों को काटते थे। भगवान भ्रमरों का इतना भारी उपद्रव होने पर भी वज्रऋषभनाराच संहनन के प्रभाव से मेरु के समान अडिग थे। अनजान कामी पुरुष सुगंध पर मोहित हो कर सुगंध पाने के लिए भगवान के शरीर से अपना शरीर घिसने लगे तथा कामी स्त्रियाँ उन्हें आलिंगन देने लगीं। इस तरह लोग भगवान से सुगंध माँगने लगे। यह उपसर्ग चार महीने से अधिक समय तक रहा, तो भी भगवान डिगे नहीं। वे मेरु के समान अडोल-अकंप रहे।

अब भगवान वहाँ से विहार करते करते मोराक सन्निवेश में दूइज्जन्त तापस के आश्रम में पहुँचे। दूइज्जन्त भगवान के पिता सिद्धार्थ राजा का मित्र था और आश्रम का कुलपति था। वह भगवान को देख कर उनकी अगवानी के लिए गया। भगवान भी पूर्व परिचयाभ्यास के कारण नजदीक ही उससे हाथ पसार कर मिले। फिर उसके आग्रह से नीरागचित्त हो कर वे वहाँ एक रात रहे। प्रभात में जब वे विहार करने लगे, तब वह तापस उन्हें बिदा करने के लिए उनके साथ चला। फिर उसने भगवान से विनती की कि आठ मास अन्यत्र विहार कर चातुर्मास के लिए आप मेरे आश्रम में पधारें। उसके बहुत आग्रह करने पर भगवान ने देशकाल का विचार कर कहा कि ऐसा ही हो। यह कह कर चार ज्ञान सहित भगवान विहार के लिए आगे बढ़ गये। फिर चातुर्मास आने पर भगवान उस तापस के आश्रम में रहने के लिए आये। कुलपति ने भगवान को रहने के लिए घास-फूस की झोंपड़ी दी।

भगवान वहाँ रहे। दैवयोग से वर्षा नहीं हुई, तब गाँव के गायप्रमुख भूखे ढोर आश्रम में आ कर झोंपड़ी की घास खाने लगे। उस समय अन्य

तापसों ने उन पशुओं को वहाँ से भगा दिया, पर भगवान ने किसी भी पशु को घास खाने से नहीं रोका। वे मौन रहे। धीरे-धीरे पशु सब घास खा गये। तब झोंपड़ी को खुला देख कर कुलपति बोला कि हे प्रभो ! पक्षी भी अपने घौंसले की रक्षा करते हैं और आप राजपुत्र हो कर अपना आश्रम भी नहीं सम्हाल सकते?

इस तरह कुलपति को अप्रीति हुई जान कर भगवान ने निर्धारित किया कि अब मुझे यहाँ रहना नहीं है। फिर आषाढ़ी पूनम से पन्द्रह दिन बीतने पर श्रावण वदि अमावस्या के दिन भगवान ने वहाँ से विहार किया। तब से यह कहा जाने लगा कि- चल दिये भगवान न गिनें चातुर्मास। भगवान ने वहाँ पाँच अभिग्रह धारण किये। वे इस प्रकार हैं- १. अप्रीति उत्पन्न हो वहाँ नहीं रहना, २. जब तक छद्मस्थता है, तब तक निरन्तर काउस्सग्ग में ही रहना, ३. गृहस्थ का विनय न करना, ४. यथासंभव मौन रहना और ५. सर्वदा हाथ में भोजन करना।

शूलपाणि यक्ष का उपसर्ग और भगवान के दस स्वप्न

ऐसे अभिग्रह सहित विचरते हुए भगवान अस्थिग्राम में शूलपाणि यक्ष के मन्दिर में प्रथम चातुर्मासार्थ पहुँचे। वहाँ अत्यन्त भयंकर उपसर्ग सहन कर के उसे प्रतिबोध दिया।

वह कथा इस प्रकार है- धनदेव सार्थवाह पाँच सौ गाड़ियों में माल भर कर व्यापार के लिए किसी ग्रामान्तर में जा रहा था। मार्ग में वर्द्धमान गाँव के पास बहुत वालुकाभरी वेगवती नदी पड़ी। गरमी के दिन होने के कारण कोई भी बैल उस रेतभरी नदी में से गाड़ी खींच न सका। उन बैलों में एक बैल बहुत ताकतवान था। उसने वे पाँच सौ गाड़ियाँ नदी के उस पार पहुँचा दीं, पर स्वयं टूट गया। इस कारण से आगे बढ़ न सका।

तब उस सार्थवाह ने उस बैल के घास-चारे की व्यवस्था के लिए वर्द्धमान गाँव के अधिकारी सेठ, पटेल, गामोद, पटवारीप्रमुख पंचों को वह धुरीण बैल सौंपा। उसके घी, गुड़, घास, जल आदि के लिए उन्हें बहुत सा धन दिया। फिर उस बैल की सार-सम्हाल लेने की बहुत भलामन कर वह वहाँ से आगे बढ़ा। बाद में उस गाँव के लोगों ने उस बैल की कोई सार-सम्हाल न ली। सेठ का दिया सब धन

वे बाँट कर खा गये। फिर वह बैल भूख-प्यास से पीड़ित होता हुआ अकामनिर्जरा के कारण मृत्यु के बाद व्यन्तरदेवों में शूलपाणि यक्ष हुआ।

उसने अवधिज्ञान से अपने पिछले जन्म का वृत्तान्त देखा, तब गाँव के लोगों पर रूठ कर उसने महामारी (मरकी) फैलायी। इससे अनेक मनुष्य और ढोर मरने लगे। ऐसी स्थिति हुई कि मुर्दे को कोई जलाने वाला न मिले। जो भी मरता, लोग उसे गाँव के बाहर फेंक आते। इससे वहाँ हड्डियों का ढेर लग गया। आने जाने वाले लोगों ने उस गाँव का नाम अस्थिग्राम रख दिया। फिर अनेक लोगों को मरते देख कर गाँव के लोगों ने मिल कर उसकी आराधना की। तब वह यक्ष प्रकट हो कर आकाशवाणी से बोला कि मैं बैल का जीव हूँ। तुमने मेरा धन खा लिया, पर मेरी कोई सेवा नहीं की। इस प्रकार तुमने मुझे कुमरण से मारा है, इसलिए मैं तुम पर कुपित हुआ हूँ। यदि तुम इन अस्थियों पर मेरे नाम का मंदिर बनवाओ और उसमें वृषभ के रूप में शूलशस्त्र हाथ में दे कर मेरी मूर्ति की स्थापना करो तथा मेरी पूजा करो, तो ही रोग मिटेगा तथा जीवित रहोगे, अन्यथा सब मर जाओगे। यह सुन कर लोगों ने मरणभय से मंदिर बनवा कर उसमें उसकी प्रतिमा स्थापन कर पूजा की। इससे महामारी दूर हो गई।

वह यक्ष कैसा था? वह यक्ष महादुष्ट था। किसी को अपने मंदिर में रात को ठहरने नहीं देता था। इस कारण से उस मंदिर के पुजारी इन्द्रशर्मा विप्र ने भगवान को वहाँ रहने के लिए मना किया तथा अन्य लोगों ने भी बहुत रोका, पर भगवान रात भर काउस्सग्ग में वहीं रहे। तब यक्ष रूठ गया। वह संध्यासमय से ही उपसर्ग करने लगा।

प्रभु को डराने के लिए सर्वप्रथम उसने अट्टाट्टहास्य किया। फिर हाथी का रूप बना कर प्रभु को उछाला, पिशाच का रूप बना कर छुरा निकाल कर डराया तथा सर्प बन कर भगवान को डंक मारा। ऐसे अनेक उपसर्ग किये, पर भगवान बिल्कुल क्षुभित नहीं हुए। इसके बाद मस्तक, कान, नासिका, आँख, दाँत, होंठ, पीठ और नाखून इन आठ स्थानों में विविध वेदना उत्पन्न की। अन्त में भगवान को अक्षोभ जान कर वह प्रतिबोधित हुआ और भगवान की भक्ति करने लगा।

इतने में सिद्धार्थ व्यन्तर वहाँ पहुँच गया। उसने कहा कि अरे यक्ष ! यह तूने क्या किया? क्या तुझे यह मालूम नहीं है कि ये राजा सिद्धार्थ के पुत्र हैं? ये महासमता के भंडार हैं? यदि इन्द्र महाराज को मालूम हो गया, तो वे तुझे यहाँ से भगा देंगे। यह सुन कर भगवान की शान्तमुद्रा देख कर यक्ष ने अपने अपराध की क्षमायाचना की और सम्यक्त्व प्राप्त किया।

भगवान को रात के चार प्रहर तक जो कदर्थना हुई थी, उसके कारण काउस्सग्ग में ही पिछली रात को दो घड़ी तक नींद लग गयी। नींद में प्रभु ने दस स्वप्न देखे- १. तालपिशाच का हनन किया, २. उज्ज्वल कोकिल पक्षी और ३. पंचरंगी विचित्र कोकिल युगल को सेवा करते देखा, ४. दो फूलमालाएँ देखीं, ५. गायों का झुंड देखा, ६. पद्मसरोवर देखा, ७. समुद्र को भुजाओं से तैर कर पार किया, ८. सूर्य को ऊगते देखा, ९. मानुषोत्तर पर्वत को आँतों से वेष्टित देखा और १० स्वयं ने मेरुपर्वतारोहण किया ऐसा देखा। ये दस स्वप्न देख कर भगवान प्रभात में जाग गये।

उत्पल निमित्तज्ञकथित स्वप्नफल

उस समय लोग यह सोचते थे कि वह साधु रात को मर गया होगा। इसलिए सुबह देखने के लिए मंदिर में आये। वहाँ भगवान की महिमा देख कर उन्होंने भगवान की पूजा की और वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वामी की महिमा बहुत बढ़ाई। उस समय भगवान पार्श्वनाथ का श्रावक उत्पल नामक निमित्तज्ञ भी वहाँ पहुँच गया। उसने वन्दन कर प्रभु से कहा कि हे स्वामिन्! आपने पिछली रात में स्वप्न में तालपिशाच का हनन किया, इससे आप शीघ्र ही मोहपिशाच (मोहनीय कर्म) का हनन करेंगे। श्वेत कोकिलपक्षी देखा, इससे अक्षोभ हो कर शुक्लध्यान ध्यायेंगे। पंचरंगी विचित्र कोकिलपक्षी का युगल देखा, इससे आप द्वादशांगी की प्ररूपणा करेंगे। गायों का झुंड देखा, इससे आप अनुपम चतुर्विध संघ की स्थापना करेंगे। देवों से सेवित पद्मसरोवर देखा, इससे चार निकाय के देव आपकी सेवा करेंगे। मेरु पर्वत की चूलिका पर आप चढ़े, ऐसा देखा, इससे आप देवनिर्मित सिंहासन पर

बैठ कर धर्मोपदेश देंगे, धर्म की प्ररूपणा करेंगे। सूर्यमंडल देखा, इससे आप केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। मानुषोत्तर पर्वत को अपनी आँतों से वेष्टित किया देखा, इससे जगत में आपकी यश:कीर्ति चारों ओर फैलेगी तथा प्रतापवन्त देवनिकाय से आप सेवनीय होंगे। अपनी भुजाओं के बल से समुद्र पार किया, इससे आप संसाररूप समुद्र से पार हो जायेंगे। हे भगवन्! आपने दो फूलमालाएँ देखीं, इसका अर्थ मैं नहीं जानता। इसलिए आप ही कृपा कर बताइये।

उस समय भगवान तो मौनी थे, इसलिए छद्मस्थावस्था में नहीं बोले। इस कारण से सिद्धार्थ व्यन्तर ने भगवान के मुख में प्रवेश कर कहा कि दो फूलमालाएँ देखीं, इसलिए श्रावक का और यति का इस प्रकार दो प्रकार के धर्म की मैं प्ररूपणा करूँगा। इस तरह स्वप्नफल सुन कर सब लोग भगवान को वन्दन कर के अपने अपने स्थान पर गये। अब भगवान ने भी पन्द्रह दिन न्यून प्रथम चातुर्मास निर्विघ्नरूप से पूर्ण कर के मेरु के समान धैर्य धारण करते हुए, समतारूप रस में रमते हुए चातुर्मासिक पारणा कर के वहाँ से विहार किया। यह प्रथम चातुर्मास हुआ।।१।।

अहच्छन्दक निमित्तज्ञ का वृत्तान्त

वहाँ से विहार कर भगवान मोराक सन्निवेश के उद्यान में जा कर काउस्सग्ग में रहे। वहाँ भगवान की महिमा बढ़ाने के लिए सिद्धार्थ व्यन्तर उनके शरीर में संक्रमित हो कर लोगों को भूत, भविष्यत् और वर्तमान से संबंधित निमित्त बताने लगा। इससे वहाँ के लोग भगवान की सेवा करने लगे। उस गाँव में अहच्छंदक नामक एक निमित्तज्ञ रहता था।

वह भगवान से ईर्ष्या करने लगा, क्योंकि लोग उससे कहने लगे कि तू देवार्य के जैसा निमित्त नहीं जानता। मैंने कल खेत में साँप देखा था, सो उसने कह बताया तथा मैं जीम कर गया था, वह भी उसने बता दिया। तब अहच्छन्दक क्रोध कर के भगवान का निमित्त असत्य करने के लिए हाथ में तृण ले कर भगवान के पास गया और उनसे पूछा कि हे आर्य! यह तृण टूटेगा या नहीं? यह सुन कर सिद्धार्थ ने कहा कि नहीं टूटेगा। तब वह तोड़ने लगा। इतने में इन्द्र महाराज ने अवधिज्ञान से देख

कर भगवान की महिमा बनाये रखने के लिए उस निमित्तज्ञ की उँगली छेद डाली। इससे तृण नहीं टूटा और निमित्तज्ञ निराश हो गया।

फिर सिद्धार्थ ने लोगों से कहा कि यह निमित्तज्ञ चोर है। यह कुछ भी पढ़ा नहीं है। इसने वीराघोष नामक कर्मकर का दस पल का काँसे का पात्र चुरा कर खजूर के पेड़ के नीचे गाड़ा है तथा यह इन्द्रशर्मा ब्राह्मण का बकरा मार कर खा गया है। उसकी हड्डियाँ इसके घर के पिछवाड़े बेर के झाड़ के नीचे इसने गाड़ी है तथा तीसरा दोष जो इसमें है, वह मैं नहीं कहूँगा। इसकी स्त्री ही बतायेगी। यह सुन कर सब बातें सत्य मान कर लोगों ने जा कर उसकी स्त्री से पूछा। तब उस स्त्री ने कहा कि यह पापिष्ट अपनी बहन के साथ भोग करता है।

ऐसी अपनी निन्दा की बातें प्रसिद्ध होने से अहच्छन्दक बहुत लज्जित हुआ और गाँव में तिरस्कृत हुआ। उसने भगवान के पास जा कर विनती की कि आप त्रिलोकपूज्य हैं, पर मैं तो यहीं सुखपूर्वक उदरभरण करते हुए रहता हूँ। तब अप्रीति हुई ऐसा जान कर भगवान ने वहाँ से विहार कर दिया।

निर्भाग्य सोमदेव विप्र की कथा

भगवान श्री महावीरस्वामी एक वर्ष और एक महीने तक इन्द्र द्वारा दिये गये देवदूष्य वस्त्रसहित रहे। फिर उसके बाद वस्त्ररहित अचेलक हो गये, पर अतिशय के योग से नग्न दीखते नहीं थे। अब वे वस्त्ररहित कैसे हुए? सो कहते हैं-

भगवान ने जब वार्षिकदान दिया था, उस समय सिद्धार्थ राजा का मित्र सोमदेव ब्राह्मण जो जन्मतः दरिद्री था, वह धनार्जन के लिए परदेश गया था, पर उसे कहीं भी धन नहीं मिला। जैसा गया था, वैसा ही खाली हाथ घर लौटा। वह एक कौड़ी भी प्राप्त नहीं कर सका। दरिद्र ही रहा। तब उसकी स्त्री ने उसकी बहुत निर्भर्त्सना की और कहा कि अरे अभागे ! श्री महावीरस्वामी ने जब वार्षिकदान दिया था, उस समय तू कहाँ मर गया था? तू जहाँ तहाँ ऐसा का ऐसा ही दरिद्री रहा। जैसे घड़ा जहाँ जाता है, वहाँ पानी से भरा जाता है तथा कपासिया जहाँ जाता है, वहाँ धुना जाता है; वैसे ही तू भी दरिद्री ही रहा। दारिद्र्य तेरा पीछा ही नहीं छोड़ता।

जैसे कोई दरिद्री पुरुष धन कमाने के लिए परदेश जाने लगा, तब उसने दारिद्र्य से कहा कि-

रे दालिद्द वियक्खण, वत्ता इक्क सुणिज्ज।
हम देसांतर चल्लिया, तू थिर घेर रहिज्ज।।१।।

याने कि हे दारिद्र्य ! हे विचक्षण ! तू मेरी एक बात सुन। अब मैं देशान्तर जा रहा हूँ, इसलिए तू घर में ही स्थिर रहना। उसके ऐसे वचन सुन कर दारिद्र्य ने कहा-

पडिवन्नो गिरुआतणो, अविहड जाण सुजाण।
तुम देसांतर चल्लिया, तो हम आगेवान।।२।।

हे भाई ! सुन। मैं बड़े का विनय नहीं छोड़ूँगा, क्योंकि उत्तम पुरुष जो अंगीकार करते हैं, वह अविचल और जीवनभर के लिए होता है। यदि तुम देशान्तर जाओगे, तो मैं भी आगेवान हो कर तुम्हारे साथ आगे ही आगे चलूँगा।

वैसे ही हे अभागे ! तेरे पीछे भी इसी प्रकार दारिद्र्य लगा हुआ है। तू अब घर में आया है, पर घर में तो कुछ भी नहीं है। न तो खाने के लिये अन्न है और न पीने के लिये पानी ही। मैं भूखी मरती बैठी हूँ। तेरे लिये खाना कहाँ से लाऊँ? घर में तो साग में डालने के लिए नमक-मिर्च भी नहीं है। क्योंकि-

जिण घर भैंस न रीके पाडो, जिण घर बलद न दीसे गाडो
जिण घर नारी न चूड़ी खलके, तिण घर दारिद्र लहेरे लहेके।।१।।

जिस घर में भैंस सहित पाड़ा रेंकता नहीं है, जिस घर में बलद और छकड़ा दीखता नहीं है और जिस घर में औरत के हाथ में चूड़ी खनकती नहीं है, उस घर में दारिद्र्य की लहरें चलती है।

इसलिए तू घर में मत आना। यदि आयेगा तो भूखा मरेगा।

अरे दरिद्री ! अब भी तू भगवान के पास जायेगा, तो कुछ न कुछ अवश्य मिलेगा।

स्त्री के ऐसे वचन सुन कर वह ब्राह्मण भगवान के पास आया और दोनों हाथ जोड़ कर हीन स्थिति दिखाते हुए पाँव पड़ कर दीन वचन से बोला कि हे कृपानाथ ! हे परदुःखभंजक ! हे परमार्थ करने वाले ! हे मेरे मित्र के पुत्र ! हे दारिद्र्यबेल के छेदक ! आप मेरी विनती शुरु से सुन कर मुझे पार लगाइये।

मेरा यह दारिद्र्यरूप बांधव मेरा सहायी मेरे साथ जन्मा, मेरे साथ बड़ा हुआ और विवाह के समय भी मुझसे पहले इसने मेरी स्त्री के साथ विवाह किया। अधिक क्या कहूँ? यह दारिद्र्य मेरे शरीर की छाया की तरह तथा अपनी बाँधी हुई कर्मप्रकृति की तरह मेरा पीछा नहीं छोड़ता।

धन कमाने के लिए परदेश जाते समय मैंने इसे बहुत रोका, तो भी यह मेरे साथ ही चला। मैंने गंगा में स्नान किया, तब इसने भी मेरे साथ ही स्नान किया। मैंने यमुना, नर्मदा से संबंधित तीर्थयात्रा की, तब इसने भी मेरे साथ ही तीर्थयात्रा की। इसलिए इसके प्रभाव से परदेश में घर घर लोगों से भिक्षा माँगते समय मैं तो सबको देखता, पर इस दारिद्र्य-बांधव के प्रभाव से मैं प्रत्यक्ष (प्रकट) होते हुए भी मुझे कोई भी नहीं देखता। जैसा कि कहा है-

दीसंति जोगसिद्धा, अंजनसिद्धा य केइ दीसंति।
दारिद्दजोगसिद्धा, पासे वि ठिया न दीसंति।।१।।

और भी कहा है कि-

भो दारिद्र्य ! नमस्तुभ्यं, सिद्धोऽहं तव दर्शनात्।
अहं सर्वं प्रपश्यामि, न मां पश्यति कश्चन।।२।।

मतलब यह है कि योग साध कर जो सिद्ध हुए हैं, वे भी आँखों से दीखते हैं तथा आँखों में अंजन कर के जो सिद्ध हुए हैं, वे भी किसी प्रयोग से प्रकट नजर आते हैं, परन्तु दारिद्र्यरूप योग से जो सिद्ध हुए हैं, वे लोग यदि पास में खड़े हों, तो भी दिखाई नहीं देते।

इसलिए हे दारिद्र्य ! तुझे नमस्कार हो, क्योंकि मैं तुम्हारे दर्शन से सिद्धपुरुष हो गया हूँ। इससे मैं तो सबको देखता हूँ, पर मुझे कोई भी नहीं देखता।

इसलिए हे स्वामिन् ! उस दारिद्र्य-बांधव के प्रसाद से मैं परदेश में बहुत घूमा, मैंने बहुत बड़ा उद्यम किया, अनेक सेठ-साहूकारों की सेवा की, पर मैं तो भाग्यहीन ठहरा। इससे एक फूटी कौड़ी मात्र धन भी मुझे नहीं मिला। घर से जैसा गया था, वैसा ही घर लौटा। इस कारण से मेरे घर में प्रवेश करने के पहले ही उसने मेरे घर में प्रवेश कर लिया।

उसके प्रताप से मेरी अनार्यिका स्त्री क्रोध कर के हाथ में मूसल ले कर मेरी ओर मुझे मारने के लिए दौड़ी। तब मुझे लगा कि वह मांगलिक कर के मेरा सत्कार करेगी, पर उसने तो मेरे पास आ कर कठोर और निष्ठुर

वचन बोलना शुरु किया।

उसने कहा कि हे निर्भाग्य शिरोमणि ! अरे जन्मदरिद्री ! अरे निर्गुण नाथ ! अरे ढोला ! मैं तेरे धनरहित साक्षात् दरिद्री रूप को क्या करूँ? तू परदेश गया, पर कुछ नहीं लाया। तेरे दारिद्र्य रूप भाई के सहाय से-

अन्नं नास्त्युदकं नास्ति, गृहे नास्ति युगन्धरौ।
शाकमध्ये लवणं नास्ति, तन्नास्ति यत्तु भुज्यते।।१।।

अर्थात् घर में खाने के लिए अन्न नहीं है और पीने के लिए पानी नहीं है। यहाँ ज्वार भी नहीं है तथा साग में डालने के लिए नमक भी नहीं है। घर में ऐसा कुछ भी नहीं है कि जिससे तुझे आदरपूर्वक घर में बिठा कर जीमाऊँ। घर में एकमात्र दारिद्र्य लहक रहा है।

आगे फिर ब्राह्मणी ने कहा- रे ढोला ! धन से ही जगत में खास प्रेमपात्र हुआ जाता है। धन के अभाव में कोई किसी को नहीं पूछता। कहा भी है कि-

धनैर्दुष्कुलीनाः कुलीना भवन्ति, धनैरेव पापात् पुनर्निस्तरन्ति।
धनिभ्यो विशिष्टो न लोकेऽपि कश्चित्, धनं प्रार्जयध्वं धन प्रार्जयध्वं।।१।।

धन से हीन कुलवाला भी उत्तम कुलवाला कहलाता है, धन हो तो पाप से निस्तार हो जाता है और धनवान ही संसार में बड़ा कहलाता है, इसलिए धनोपार्जन करने का उद्यम पुरुष के लिए श्रेष्ठ है।

इतना ही नहीं, धन के बिना जीवित मनुष्य मुर्दे जैसा होता है। जैसा कि कहा है-

धनमर्जय काकुत्स्थ, धनमूलमिदं जगत्।
अन्तरं नैव पश्यामि, निर्धनस्य मृतस्य च।।१।।

जब रामचन्द्रजी को वनवास हुआ, तब उन्होंने सोचा कि वसिष्ठ ऋषि को नमस्कार कर के आगे बढ़ें। फिर कदलीवन में जहाँ वसिष्ठ ऋषि बैठे थे, वहाँ जा कर रामचन्द्रजी ने नमस्कार किया, पर वसिष्ठ ऋषि ने आँखें खोल कर सामने तक नहीं देखा। क्योंकि रामचन्द्रजी के पास उस समय कुछ भी धन नहीं था। फिर जब लंका जीत कर चतुरंगिणी सेनासहित तथा धन-धान्य सहित लौटे, तब वसिष्ठ ऋषि सात-आठ कदम उनके सामने गये। तब रामचन्द्रजी ने पूछा कि मैं वही रामचन्द्र हूँ, यह वही कदलीवन है तथा आप वसिष्ठ ऋषि भी वही हैं, पर पहले जब मैं आपके पास आया था, उस समय आपने आँखें खोल कर सामने तक नहीं देखा था और अब उठ कर सात-आठ कदम सामने आये, इसका क्या कारण है? तब वसिष्ठजी

बोले कि हे काकुत्स्थ ! (रामचन्द्र !) एक धन का उपार्जन करो। इस संसार में धन से ही पुरुषों की शोभा है। मुझे निर्धन और मुर्दे में कोई अन्तर नजर नहीं आता। तुम जब पहले आये थे, उस समय निर्धन थे, इसलिए मैंने तुम्हारी ओर नहीं देखा और अब तो तुम सर्व विभूति सहित हो, इसलिए मैं सामने आया हूँ।

उस स्त्री ने कहा कि हे मूर्ख ! तुझ जैसे धनरहित को मैं क्या करूँ? कहा भी है कि-

पुत्ता य सीसा य समं विभत्ता, रिसी य देवा य समं विभत्ता।
मुक्खा तिरिक्खा य समं विभत्ता, मुआ दरिद्दा य समं विभत्ता।।१।।

पुत्र और शिष्य इन दोनों को समान समझना। ऋषि और देव इन दोनों को समान समझना। मूर्ख और तिर्यंच इन दोनों को समान समझना। इसी प्रकार मरे हुए और दरिद्री इन दोनों को समान समझना।

अरे भाग्यहीन ! श्री वीर भगवान ने वार्षिकदान दे कर सब के दारिद्र्य-दुःख का नाश किया, उस समय तू परदेश गया। यह तो तेरे लिए दाख पकने के समय कौए की चोंच पकने जैसा हुआ अथवा नदी तट पर जवास के झाड़ जैसा तू हुआ। अथवा रात-दिन मेघ बरसने पर भी पलाशवृक्ष के पत्ते तीन ही होते हैं। इसलिए रे अनिष्ट ! पापिष्ट ! पांडुरपृष्ठ ! तू यहाँ से चला जा।

इत्यादिक निष्ठुर वचनों से निर्भर्त्सना कर गलहत्था दे कर मुझे घर से बाहर निकाल दिया। इसलिए...

आगे दारिद्र्य पीछे दारिद्र्य, डावे जमणे पासि।
पंडियाणी मुज मारण मांड्यो, तेणे हुं आयो नासी।।१।।

हे स्वामिन् ! मेरे आगे दारिद्र्य चलता है और पीछे भी दारिद्र्य चलता है। इसी प्रकार मेरे चारों ओर दारिद्र्य चलता है। इसलिए ब्राह्मणी जब मुझे मारने लगी, तब मैं भाग कर आपके पास आ गया।

मैंने सोचा कि श्री वीरप्रभु अगम्य गतिवन्त हैं। यद्यपि उन्होंने दीक्षा ली है, तो भी परम कृपालु हैं। इसलिए मुझे अवश्य ही कुछ देंगे। यह सोच कर प्रतीतिपूर्वक निर्धार कर के मैं आपके पास आया हूँ। इसलिए मेरा

दारिद्र्य नष्ट कर मेरे मनोरथ पूर्ण कीजिये। आप मन में यह न लायें कि वार्षिकदान के अवसर पर सब लोग मनवांछित दान पा गये और यह कुछ भी क्यों नहीं पा सका ? आप ऐसा विचार मन में न लायें। कारण-

स्वामिन् ! कनकधाराभिस्त्वयि सर्वत्र वर्षति।
अभाग्यच्छत्रसंछन्ने, मयि नायान्ति बिन्दवः।।१।।

हे स्वामिन् ! आप कनकरूप धारा से सर्वत्र बरसे, पर मेरे मस्तक पर अभाग्यरूप छत्र तना हुआ था, इसलिए एक बिन्दुमात्र भी मेरे सिर पर नहीं गिरा। तब मैंने सोचा-

रे मन अप्पा खंति धर, चिन्ताजाल म पाड।
फल तित्तोहिज पामिये, जित्तो लिख्यो लिलाड।।१।।

यह सोच कर बैठा रहा। पर हे स्वामिन् ! एक तो आपका दान नहीं मिला और फिर आपके दान का वृत्तान्त सुन कर उल्टे मुझे मेरी स्त्री ने घर से निकाल दिया। कहा भी है कि-

त्वयि वर्षति पर्जन्ये, सर्वे पल्लविता द्रुमाः।
अस्माकमर्कवृक्षाणां, पूर्वपत्रेषु संशयः।।१।।

हे स्वामिन् ! आपरूप मेघ बरसने पर सर्वजनरूप वृक्ष नवपल्लवयुक्त हुए और मेरे जैसे अर्कवृक्षों को पूर्वपत्रों का भी संशय हुआ।

इत्यादि ललित पल्लवित वचन सुन कर कृपासागर भगवान ने विचार किया कि मैं निर्ग्रंथ हूँ और मेरे पास कुछ भी नहीं है, पर ब्राह्मण को न देने से प्रार्थना का भंग होता है और प्रार्थना-भंग से लघुता प्राप्त होती है। कारण कि-

तण लहुअं तुस लहुअं, तण-तुस लहुअं च पत्थणा लहुअं।
तत्तो वि सो लहुओ, पत्थणभंगो कअ जेण।।१।।

सबसे लघु तृण है, उससे भी लघु तुष है तथा तृण और तुष से भी लघु प्रार्थना करने वाला याचक है और जो प्रार्थना का भंग करता है, वह सबसे लघु है।

और भी कहा है कि-

परपत्थणापवत्ति, मा जणणी जणउ एरिसं पुत्तं।

उयरे वि मा धरिज्जउ, पत्थणभंगो कओ जेण।।२।।

हे माता ! दूसरों के पास प्रार्थना-याचना करने वाले पुत्र को तू जन्म मत देना और प्रार्थनाभंग करने वाले को तो उदर में भी धारण मत करना।

और भी कहा है कि-

यान्तु यान्तु बत ! प्राणाः, अर्थिनि व्यर्थतां गते।
पश्चादपि हि गन्तव्यं, क्व सार्थः पुनरीदृशः।।३।।

हे मेरे प्राणो ! जो याचक घर से व्यर्थ-निराश हो कर चला जाता है, उसके साथ तुम भी चले जाओ, क्योंकि तुम्हें बाद में भी तो किसी दिन जाना ही है, तो ऐसा साथ फिर तुम्हें कब मिलेगा? इसलिए तुम अभी ही चले जाओ।

इस प्रकार शिष्टाचारयुक्त आचार का विचार कर के श्री महावीरदेव ने कृपा कर के आधा देवदूष्य वस्त्र फाड़ कर उस ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण को वस्त्रदान कर भगवान ने अन्य लोगों को यह सूचित किया कि-

जा सत्ति ता देहु धन, इणपरि अक्खइ वीर।
पितामित्र बांभणभणी, आधो दीधो चीर।।१।।

जब तक घर में संपत्ति है, तब तक धन, वस्त्र और अन्नादिक का दान देना चाहिये। यह बताने के लिए प्रभु ने पिता के मित्र ब्राह्मण को आधा वस्त्र दान में दिया।

वह ब्राह्मण आधा वस्त्र ले कर अपने घर गया। उसे वस्त्रसहित घर आते देख कर ब्राह्मणी हर्षित हो कर उठी और सामने आयी। फिर दोनों हाथ जोड़ कर बोली- हे प्राणनाथ ! हे मम जीवन ! गले के हार ! हे कान्त ! हे सुभग ! मैं मेघ के समान तुम्हारी राह देख रही थी। जैसे जलबिन मछली तड़पती है, वैसे ही मैं आपके बिना तड़प रही हूँ। ऐसे मधुर मनोहर वचनरचनाकथनपूर्वक अपूर्व रीति से अत्यन्त प्रेम से उसे स्नानादि करवाया। फिर भोजन पान तांबूलप्रमुख दे कर बहुत सम्मानपूर्वक सुखशय्या-शयन प्रमुख उपचार कर के उसे बहुत प्रसन्न किया।

फिर वह ब्राह्मण उस वस्त्र की दसियाँ बँधवाने के लिए जुलाहे के पास गया। उस वस्त्र को अपूर्ण जान कर जुलाहे ने सोम विप्र से कहा कि हे ब्राह्मण ! इस वस्त्र का दूसरा टुकड़ा ले आओ, तो उसे जोड़ने पर यह

लाखमोली हो जायेगा। फिर तुम्हारा और मेरा दोनों का दारिद्र्य नष्ट हो जायेगा। तब वह ब्राह्मण लोभवश पुनः श्रीवर्द्धमान स्वामी के पास पहुँचा, पर वह मन में सोचने लगा कि मैं बार-बार याचना कैसे करूँ? अति लोभ करना मनुष्य के लिए उचित नहीं है। फिर भगवान भी ऐसा जानेंगे कि यह ब्राह्मण लोभी है। यह सोच कर वह मौन रहा। उसने मुख से नहीं माँगा। कारण-

लज्जा वारेइ मुहं, असंपया भणइ मागि रे मग्ग
दिन्नं मानकवाड़ं, देहि त्ति मग्गिया वाणी।।१।।

लज्जा मुख को रोकने लगी, पर असंपदा (दरिद्रता) ने कहा कि माँग रे माँग। पर मानरूप किंवाड़ लगा दिये गये, इसलिए 'आपो' याने दीजिये, ऐसे शब्द मुख से नहीं निकले। उसने सोचा कि जब यह वस्त्र कंधे से गिर पड़ेगा, तब उठा लूँगा। फिर भगवान के दीक्षा लेने के बाद एक वर्ष और एक महीना होने तक वह उनके पीछे पीछे घूमता रहा। एक दिन वह देवदूष्य तेज हवा के झोंके से उड़ कर उत्तरवाचाला गाँव के पास सुवर्ण-वालुका नदी के किनारे बेरवृक्ष के काँटों में उलझ गया। उसे ले कर वह ब्राह्मण चला गया। भगवान ने भी सिंहावलोकन दृष्टि से देखा।[१]

वस्त्र काँटों में उलझा, इससे भगवान ने जान लिया कि मेरे बाद जो स्वसन्तानिक साधु होंगे, वे सब बहुलकषायी, कंटकी, कलहकारी और प्रायः असमाधिकारक होंगे। मुंडे बहुत होंगे, और साधु कम होंगे।

अब वह विप्र अपनी आत्मा को धन्य कृतार्थ मानते हुए और सम्पूर्ण मनोरथवान होते हुए बुनकर (जुलाहे) के पास गया। फिर उसके दोनों खंड जुड़वा कर उसे बेच दिया। उसे एक लाख सुवर्णमुद्राएँ मिलीं। उनमें से आधी जुलाहे को दीं और आधी स्वयं ने रखीं। इस प्रकार दोनों का दारिद्र्य

---

१. यहाँ कोई कहते हैं कि ममत्व से देखा। कोई कहते हैं कि शुभ स्थान में पड़ा या अशुभ स्थान में? यह जानने के लिए देखा। कोई कहते हैं कि सहसात्कार से देखा और कोई कहते हैं कि मेरे बाद मेरे शिष्यों को वस्त्र-पात्र सुलभता से मिलेंगे या नहीं? यह जानने के लिए देखा।

दूर हो गया और वे जीवनभर के लिए सुखी हो गये।

चंडकौशिक नाग का उपसर्ग और उसे प्रतिबोध

उस दिन से भगवान अचेलक हुए। अन्य तेईस तीर्थंकरों के देवदूष्य वस्त्र जीवन भर रहे थे। कई प्रतों में मध्य के बाईस तीर्थंकरों के देवदूष्य यावज्जीव रहे, ऐसा लिखा है। इससे उन्हें सचेलक समझना। अब श्री महावीरस्वामी ने बारह वर्ष साढ़े छह महीने छद्मस्थ अवस्था में रहते हुए काया को वोसिरा दिया। किसी भी प्रकार की शुश्रूषा किये बिना वे विचरते रहे। इस काल में देवों, मनुष्यों और तिर्यंचों द्वारा अनुलोम और प्रतिलोम उपसर्ग किये गये। नाटक दिखाना, आलिंगन देना इत्यादि देवों द्वारा किये गये उपसर्ग सब अनुलोम उपसर्ग जानना तथा देवादिकों ने भय बताये, प्रहार किये, मारा-कूटा इत्यादिक सब प्रतिलोम उपसर्ग जानना। ये दोनों प्रकार के सब उपसर्ग भगवान ने अपनी खुशी से सहन किये, पर चारित्र से वे ज़रा भी चलायमान नहीं हुए। इसी प्रकार उन्होंने किसी पर राग-द्वेष भी नहीं किया। किसी से दीन वचन भी नहीं कहा। वे किसी से भयभीत भी नहीं हुए। इस प्रकार उन्होंने अनेक उपसर्ग सहन किये।

एक बार उत्तरवाचाल सन्निवेश में जाते समय भगवान मार्ग में वर्द्धमान गाँव पहुँचे। वहाँ से सुवर्णवालुका और रौप्यवालुका ये दो नदियाँ पार कर आगे बढ़े। आगे दो मार्ग थे। एक वक्रमार्ग और दूसरा सरल मार्ग। उन्हें लोगों ने बताया कि सरल मार्ग में सर्प का भय है, इसलिए आप उस रास्ते न जायें। पर भगवान उस साँप को प्रतिबोध देने के लिए वक्र मार्ग छोड़ कर सरल मार्ग में आगे बढ़े। उस मार्ग में कनकखल वन में एक तापस का आश्रम था। वहाँ एक महाबलवान बहुत डंकीला चंडकौशिक साँप रहता था।

चंडकौशिक नाग की कथा

किसी गाँव में दो साधु गुरु-शिष्य चातुर्मास में ठहरे थे। एक दिन मासखमण के पारणे के लिए वे दोनों गोचरी गये। उस समय वर्षा ऋतु के कारण अनेक जीवों

की उत्पत्ति हुई थी। इस कारण से मार्ग में गुरु के पैर के नीचे एक छोटी सी मेंढकी आने से दब कर मर गयी। तब शिष्य ने कहा कि महाराज ! आपके पाँव के नीचे मेंढकी दब कर मर गयी है। यह सुन कर गुरु ने कहा कि मेंढकियाँ तो बहुत-सी मरी पड़ी हैं, इसलिए किसी दूसरे के पाँव तले आ कर मरी होगी। इस पर शिष्य मौन रहा। फिर गोचरी आलोवते समय शिष्य ने कहा कि महाराज ! मेंढकी का मिच्छा मि दुक्कडं दीजिये। यह सुन कर गुरु को गुस्सा आ गया। उसने शिष्य से कहा कि अरे ! वह मेंढकी तो पहले से ही मरी हुई थी। मैंने उसे नहीं मारा। शिष्य ने बहुत कहा, पर गुरु ने नहीं माना।

तब शिष्य ने सोचा कि शाम को प्रतिक्रमण में आलोयणा लेंगे। गुरु ने भी शाम को प्रतिक्रमण में सब आलोयणा ली, पर मेंढकी की आलोयणा नहीं ली। तब शिष्य ने कहा कि महाराज ! मेंढकी की आलोयणा लीजिये। उस समय भी गुरु ने क्रोधपूर्वक वैसा ही जवाब दिया। पुनः रात को संथारे के समय कहा कि महाराज! मेंढकी की आलोयणा लीजिये। यह सुनते ही गुरु को बहुत गुस्सा आया। इस कारण से हाथ में रजोहरण ले कर शिष्य को मारने दौड़ा। रात का समय था। शिष्य भाग गया। गुरु उसके पीछे भागा और उपाश्रय के खंभे से टकरा गया। इससे गुरु का सिर फूट गया और वह मर गया। दूसरे भव में वह ज्योतिषी देव हुआ।

वहाँ से च्यव कर वह चंडकौशिक नामक तापस हुआ। उसके पाँच सौ शिष्य थे, पर वह बड़ा क्रोधी था। एक दिन राजकुमारों को बगीचे में फूल चुनते देख कर हाथ में परशु ले कर वह उन्हें मारने दौड़ा। रास्ते में पैर फिसल जाने से वह अंधकूप में गिर गया। उसे परशु लग जाने से आर्त्तध्यान में उसकी मृत्यु हो गयी। फिर वह उसी आश्रम में चौथे भव में चंडकौशिक सर्प बना। वह जिस किसी को देखता, उसे जला कर भस्म कर देता। अनेक तापसों को उसने जला डाला। कई तापस भाग गये। लोगों ने भी उस मार्ग से जाना छोड़ दिया। वह एक कोस (तीन किलोमीटर से कुछ अधिक) प्रमाण भूमि में रहे हुए जीवमात्र को जला डालता था। वहाँ किसी को रहने नहीं देता था।

उस साँप के बिल पर भगवान काउस्सग्ग ध्यान में खड़े रहे। यह देख कर साँप ने क्रोध कर के प्रभु को डंक मारा, तब प्रभु के पैर से दूध सरीखा खून और मांस निकला। यह देख कर साँप ने सोचा कि मैं जिसके सामने देखता हूँ, वह भी जल कर भस्म हो जाता है और इसे डंक मारा, तो भी

सफेद खून निकला। इसलिए यह तो कोई महापुरुष लगता है। यह सोच कर उसने भगवान के मुख की ओर देखा। तब भगवान बोले कि अरे चंडकौशिक ! बूझ बूझ। क्या तू नहीं जानता? यह सुन कर साँप को लगा कि ऐसा रूप मैंने कहीं देखा है। इतने में उसे मूर्च्छा आ गयी और जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसने अपना पिछला भव देखा। फिर प्रभु को तीन प्रदक्षिणा दे कर कहा कि हे करुणासागर ! दुर्गतिरूप कुएँ से आपने मेरा उद्धार कर दिया।

फिर वैराग्य प्राप्त कर पन्द्रह दिन का अनशन कर परोपकारार्थ वह सर्प अपना मुख बिल में रख कर और शेष शरीर बाहर रख कर पड़ा रहा। उस मार्ग से दूध-दही-घी बेचने के लिए जाने वाली अहीरनों ने नागराज को सन्तुष्ट हुआ जान कर दूध-दही-घी-शर्करादिक से उसकी पूजा की। इन पदार्थों की गंध से उसके शरीर पर कीड़ियाँ लग गयीं। तब उसने सोचा कि यदि मैं मेरा शरीर हिलाऊँगा, तो कीड़ियाँ मर जायेंगीं। यह जान कर उसने अपना शरीर नहीं हिलाया। कीड़ियों ने उस साँप को काट काट कर छलनी जैसा बना दिया। अन्त में वह साँप शुभ ध्यान में मर कर आठवें देवलोक में देव बना।

भगवान ने वहाँ से आगे विहार कर उत्तरवाचाल सन्निवेश में पहुँच कर नागसेन श्रावक के घर परमान्न से पारणा किया। वहाँ देवों ने पंचदिव्य प्रकट किये।

प्रभु को सुदंष्ट्र देव का उपसर्ग

वहाँ से विहार कर भगवान श्वेतांबिका नगरी पहुँचे। वहाँ परेदशी राजा ने प्रभु की महिमा की। वहाँ से विचरते हुए भगवान सुरभिपुर की ओर बढ़े। मार्ग में गंगा नदी आयी। उसे पार करने के लिए बहुत से लोग सिद्धदत्त खलासी की नाव पर चढ़े। उनके साथ प्रभु भी बैठ गये। इतने में उल्लू बोला। उसका शकुन देख कर सोमिल नामक निमित्तज्ञ बोला कि हे लोगो ! आज हम सबको मरणान्त कष्ट होगा, पर इन साधु महात्मा पुरुष के प्रभाव से हम जीवित रहेंगे-मरेंगे नहीं।

इतने में भगवान ने त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में जिस सिंह का विदारण किया था, वह सिंह अनेक भवभ्रमण कर भवनपति देवों में सुदंष्ट्र नामक नागकुमार देव हुआ। उसने अवधिज्ञान से प्रभु को देखा और पूर्व वैर का स्मरण कर वह वहाँ आ कर नाव डुबोने का उपद्रव करने लगा। उस समय नये उत्पन्न हुए कंबल और संबल नामक दो नागकुमार देवों ने वहाँ आ कर एक ने नाव को डूबने से बचाया और दूसरे ने सुदंष्ट्र के साथ लड़ाई की। सुदंष्ट्र हार गया और भगवान सुखपूर्वक गंगा नदी पार हुये।

कंबल-संबल का पूर्वभव

मथुरा नगरी में जिनदास नामक श्रावक रहता था। उसकी साधुदासी नामक स्त्री भी श्राविका थी। उन दोनों ने पाँचवें अणुव्रत में चतुष्पद जीवों को रखने का त्याग किया था। दूध-दही आदि वे एक अहीर से मोल लेते थे। इस कारण अहीर और सेठ में आपसी प्रेम था। उस अहीर के साथ लेन-देन की छूट संतोष व्रत में रखी हुई थी।

एक बार अहीर के घर विवाह था। उसने सेठ से विवाह के लिए कुछ सामान माँगा। सेठ ने भी चन्द्रवाप्रमुख सब उपकरण उसे दिये। इससे उसके यहाँ विवाह बहुत श्रीकार हुआ। तब वह अहीर खुश हो कर समान वय के दो सुन्दर बछड़े सेठ के यहाँ उनके ना कहने पर भी बाँध गया। यद्यपि सेठ की इच्छा बछड़े रखने की नहीं थी, पर फिर उसने सोचा कि यदि मैं इन्हें लौटा दूँगा, तो ये बेचारे कहीं बेचे जाएँगे और दुःखी होंगे। ये बंधे रहेंगे और भार ढोयेंगे। यह सोच कर उसने उन्हें अपने घर में रख लिया। उन्हें पुत्र के समान घास, प्रासुक जलप्रमुख खिला कर उन्हें पाला-पोसा। उनके नाम कंबल और संबल रखे।

सेठ हर पक्खी के दिन पौषध करते थे, धर्मचर्चा करते थे और शास्त्र पढ़ते थे। धर्म की बातें सुन सुन कर वे बैल भी बहुत समझदार हो गये। वे ऐसे भद्रपरिणामी हुए कि जिस दिन सेठ उपवास करते, उस दिन वे भी उपवास करते और घास-चारा बिल्कुल नहीं खाते। इस प्रकार शुभ भावनायुक्त वे रहने लगे।

एक बार सेठ का एक मित्र उस पुष्ट वृषभयुगल को देख कर सेठ को पूछे बिना उठा ले गया। सेठ उस समय पौषध में थे, इसलिए कुछ न बोल सके। वह मित्र उन बैलों को रथ में जोड़ कर भंडीरवन में किसी यक्ष की यात्रा में ले गया। मार्ग में उन्हें बहुत दौड़ाया। इससे उनकी नाड़ियाँ टूट गयीं। फिर वह चुपचाप उन्हें

सेठ के घर बाँध गया। उनकी हड्डियाँ टूट गयी थीं, इस कारण से उन्होंने घास-चारे का त्याग कर दिया। अपने पुत्रसमान उन बैलों को दुःखी जान कर सेठ ने बड़े दुःख से उन्हें अनशन कराया और चारों प्रकार के आहार का पच्चक्खाण करवा कर नवकार मन्त्र सुनाया। इससे वे बैल शुभध्यान में मर कर नागकुमार देव बने। उन्होंने अवधिज्ञान से देखा, तब नाव में भगवान पर उपसर्ग हो रहा था। यह देख कर उन्होंने तुरन्त वह उपसर्ग दूर किया और भगवान के आगे नाटक-गीतगान कर के, पूजा-सत्कार कर के वे अपने स्थान पर गये। इति कंबल-संबल दृष्टान्त।

पुष्य निमित्तिज्ञ और गोशालक का वृत्तान्त

एक दिन भगवान ने विहार करते हुए गंगा नदी पार की। उस समय नदी की महीन बालू में प्रतिबिंबित पदचिह्नों की श्रेणी में चक्र, ध्वज, अंकुश प्रमुख लक्षण प्रकट हुए। इतने में वहाँ सामुद्रिक शास्त्र का जानकार एक पुष्य नामक निमित्तज्ञ जा पहुँचा। उसने पदचिह्न देख कर मन में सोचा कि यह कोई चक्रवर्ती होने वाला जीव है। चक्रवर्ती को छोड़ कर ऐसे पैर अन्य के नहीं हो सकते। इस समय वह अकेला है, इसलिए मैं उसके पास जा कर उसकी सेवा करूँ। फिर वह चरणानुसार भगवान के पास जा पहुँचा। वहाँ भगवान को वस्त्ररहित अचेलक रूप में देख कर वह निराश हो गया। वह सोचने लगा कि मैं व्यर्थ ही सामुद्रिक शास्त्र पढ़ा हूँ। यदि ऐसे लक्षणों का स्वामी भिक्षुक रूप में अकेला है, तो मेरे ये ग्रंथ मिथ्या हैं-पानी में डुबोने लायक हैं। यह सोच कर वह अपने ग्रंथ पानी में डुबोने लगा।

इतने में इन्द्र महाराज ने यह वृत्तान्त जान लिया। वे तुरन्त वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने भगवान की सेवा बजायी। पुष्य निमित्तज्ञ को भगवान का स्वरूप समझाया और उसे शास्त्र जल में विसर्जन करने से रोका। फिर भगवान का गुणग्राम कर के वे अपने स्थान पर गये। पुष्य भी इन्द्र के पास से मणिकनकादिक धन प्राप्त कर हर्षित हो कर अपने घर गया।

भगवान ने परोपकारार्थ गंगा नदी पार कर विहार किया। दूसरे चौमासे में भगवान राजगृही नगरी में नालन्दा पाड़ा में किसी बुनकर की शाला में एक कोने में आज्ञा ले कर रहे और वहाँ प्रथम मासखमण किया।

यहाँ शरवण ग्रामनिवासी मंखलीपुत्र सुभद्रा का अंगज गोशालक घूमते घूमते भगवान के पास आया। बहुल द्विज की गोशाला में वह जन्मा था, इसलिए उसका नाम गोशालक रखा गया था।

भगवान ने वहाँ कुल चार मासखमण और चार पारणे किये। पहले मासखमण के पारणे में विजय सेठ ने क्षीरादिक विपुल भोजन से पारणा कराया। वहाँ देवों ने पंच दिव्य प्रकट किये। फिर सरस क्षीरादिक, कूरादिक और मोदकादिक का आहार देख कर गोशालक ने सोचा कि इन्हें घर घर वहोराते हैं, इसलिए मैं भी भिक्षा के लिए अलग घूमूँगा, तो मेरी भी मान्यता बढ़ेगी। तब भगवान को जिसने वहोराया था, उसके पड़ोसी के यहाँ गोशालक वहोरने गया। यह देख कर पड़ोसी खुश हुआ कि मेरे घर भगवान पधारे हैं। वह उठ कर बैठ गया। फिर वन्दन कर कहा कि हे महाराज ! मेरे घर पारणा कीजिये। तब गोशालक ने दो हाथ पसारे। उस गृहस्थ ने गरम गरम रसोई परोसी और ऊँचा सिर कर के देखने लगा कि मेरे घर सुवर्णमुद्राएँ बरसें। इतने में एक कौआ आ कर उसके सिर पर बैठा। उस समय छत पर से एक स्त्री ने गोशालक के हाथ पर अंगारे डाले। यह देख कर सेठ ने सोचा कि पड़ोसी के घर तो सुवर्णमुद्राएँ बरसीं और मेरे घर तो कोयले बरसे। गोशालक के हाथ जल गये। वह वहाँ से उदास हो कर निकल गया।

भगवान को दूसरा पारणा नन्द ने पक्वान्नादिक से कराया। तीसरे मासखमण में तीसरा पारणा सुनन्द ने परमान्नादिक से कराया। वहाँ भी सर्वत्र पंचदिव्य प्रकट हुए। यह देख कर गोशालक ने विचार किया कि इनके पास कोई सारविद्या है, जिससे ये घर घर सोना बरसाते हैं। फिर वह भगवान से बोला कि हे भगवन् ! मैं आपका शिष्य हूँ। यह कह कर वह भगवान के साथ घूमने लगा। भगवान ने वहाँ से निकल कर चौथा पारणा कोल्लाग सन्निवेश में बहुल नामक ब्राह्मण के घर केवल खीर के भोजन से किया। वहाँ पाँच दिव्य प्रकट हुए। यह दूसरा चौमासा जानना।।२।।

गोशालक को भगवान दिखाई नहीं दिये। उसने नगर में चारों ओर

तलाश की, घर भगवान नहीं मिले। तब सब उपकरण किसी ब्राह्मण को दे कर क्षुरमुंड हो कर वह वहाँ से निकला। कोल्लाग सन्निवेश में भगवान को देख कर वह बोला कि आपकी दीक्षा मुझे हो। मैं आपका शिष्य हूँ। यह बात भगवान ने भी मान ली।

फिर गोशालक सहित विहार कर भगवान एक दिन स्वर्णखल गाँव की ओर चले। मार्ग में किसी ग्वाले को खीर पकाते देख कर गोशालक बोला कि भगवन्! यह खीर तैयार होगी, तब इसे खा कर निकलेंगे। थोड़ी देर बैठिये। तब सिद्धार्थ बोला कि यह खीरपात्र फूट जायेगा। फिर गोशालक ने ग्वाले से कहा कि यह हाँडी फूट जायेगी। ग्वाले ने बहुत प्रयत्न किये, तो भी हाँडी फूट गयी। तब गोशालक ने- जो होना होता है, वह होता ही है, ऐसा निर्धार कर हठपूर्वक नियतिवाद का स्वीकार किया।

वहाँ से विहार कर भगवान ब्राह्मणगाँव गये। वहाँ एक नंद का और दूसरा उसके भाई उपनन्द का ऐसे दो मोहल्ले थे। भगवान ने नन्द के मोहल्ले में पारणा किया। गोशालक को उपनन्द के घर सात दिन की बासी घाट मिली। इससे कोपायमान हो कर उसने कहा कि मेरे धर्माचार्य के प्रभाव से तेरा घर जल कर भस्म हो जाये। उसके ऐसा कहते ही व्यंतरदेवों ने भगवान का महत्त्व रखने के लिए उसका घर जला डाला।

तीसरे चौमासे में दो दो मास की तपस्या से प्रभु चंपानगरी में रहे।।३।। वहाँ से अंतिम पारणा कर के कोल्लाग सन्निवेश गये। वहाँ शून्यगृह में काउस्सग्ग में रहे। वहाँ सिंह राजपूत चौधरी का पुत्र विद्युन्मती दासी के साथ क्रीड़ा कर रहा था। उसे रममाण देख कर गोशालक हँसा। तब उसने गोशालक को मारा-पीटा। फिर गोशालक ने प्रभु से कहा कि यह मुझे मारता है, आप इसे रोकते क्यों नहीं हैं? प्रभु तो मौन थे। इसलिए सिद्धार्थ बोला कि अब आगे से ऐसा हँसी का काम मत करना। ऐसा काम करेगा, तो ऐसा ही फल पायेगा।

इसके बाद प्रभु मोराक सन्निवेश में रमणीय उद्यान में काउस्सग्ग में रहे। वहाँ एक कुम्हारशाला में श्री पार्श्वनाथ के शिष्य मुनिचन्द्रसूरिजी

अनेक शिष्यों के साथ ठहरे हुए थे। उन साधुओं को देख कर गोशालक ने पूछा कि तुम लोग कौन हो? वे बोले कि हम साधु हैं। तब गोशालक बोला कि कहाँ तुम और कहाँ मेरे धर्माचार्य ! इस पर वे साधु बोले कि जैसा तू है, वैसा ही तेरा गुरु भी होगा। तब गोशालक क्रोधित हो कर बोला कि मेरे धर्माचार्य के तप-तेज के प्रभाव से तुम्हारा आश्रम जल कर भस्म हो जाये। इस पर वे साधु बोले कि इससे हम कोई डरने वाले नहीं हैं। आश्रम नहीं जला। फिर गोशालक ने जा कर प्रभु से कहा कि हे स्वामिन् ! जैसा पहले आपका प्रभाव था, वैसा अब नहीं रहा। लगता है, तप-तेज घट गया है। तब सिद्धार्थ बोला कि अरे ! उन साधुओं को शाप नहीं लगता। वे नहीं जलेंगे।

फिर वे पार्श्वनाथ के शिष्य मुनिचन्द्रसूरि जिनकल्प की तुलना करते हुए काउस्सग्ग में खड़े थे, तब एक कुम्हार ने चोर समझ कर उन्हें मारा-पीटा। उस समय मुनिचन्द्रसूरिजी को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ और वे मर कर देवलोक में गये। देवों ने उनकी महिमा की। इस कारण से वहाँ उजाला हुआ। यह देख कर गोशालक बोला कि देखो ! साधुओं का आश्रम जल रहा है। मेरे गुरु सच्चे हैं। तब सिद्धार्थ व्यन्तर बोला कि अरे कुपात्र ! यह तो मुनिचन्द्रजी देवलोक गये हैं, उसका महोत्सव हो रहा है। यह सुन कर गोशालक निराश हो गया।

इसके बाद प्रभु चोरानगरी गए। वहाँ गोशालक गाँव में हेरते हुए घूमने लगा। तब वहाँ के लोगों ने उसे जासूस समझ कर कुएँ जितने गहरे खड्डे में डाला। फिर वे भगवान को भी खड्डे में डालने लगे। इतने में उत्पल नामक विप्र की बहन सोमजयन्ती जो चारित्र का त्याग कर संन्यासिनी बनी थी, वह वहाँ आ पहुँची। उसने भगवान को पहचान कर छुड़ाया। लोगों ने गोशालक को भी छोड़ दिया। फिर वहाँ से विहार कर चौथा चौमासा भगवान ने पृष्ठचंपा नगरी में किया। वहाँ वे चौमासी तप कर के रहे। वहाँ चौमासा पूर्ण कर बाहर जा कर पारणा किया।।४।।

वहाँ से विहार कर भगवान कयंगल सन्निवेश गये। वहाँ माघ मास में

जागरण के दिन दरिद्र और स्थविर पाखंडिनियाँ नाच-गान कर रही थीं। गोशालक ने उनकी हँसी उड़ायी। इसलिए उन्होंने गोशालक को मारा-पीटा। फिर भगवान का शिष्य जान कर छोड़ दिया।

वहाँ से विहार कर प्रभु श्रावस्ती नगरी जा कर काउस्सग्ग में रहे। वहाँ के पितृदत्त वणिक की स्त्री सुभद्रा के पुत्र जीवित नहीं रहते थे। उसे शिवदत्त निमित्तज्ञ ने समझाया कि मृतक पुत्र का मांस खीर में पका कर किसी भिक्षुक को खिलाने से तुम्हारे पुत्र जीवित रहेंगे। तब उस स्त्री ने पुनः मृतक पुत्र होने पर उसके मांस की खीर तैयार की। उसी समय गोशालक ने सिद्धार्थ व्यन्तर से पूछा कि आज मुझे कैसा भोजन मिलेगा। तब सिद्धार्थ ने कहा कि आज तुझे मनुष्य का मांस मिलेगा और वह तू खायेगा।

फिर सिद्धार्थ का वचन झूठा करने के लिए गोशालक एक श्रावक वणिक के घर वहोरने गया। उसने अपने मन में सोचा कि वणिक के घर मांस होता ही नहीं है। यह जान कर उसने वहाँ खीर खायी। फिर लौट कर उसने सिद्धार्थ से कहा कि आज मैंने खीर खायी है। तब सिद्धार्थ ने कहा कि तूने मांस खाया है। तब गोशालक ने गले में उँगली डाल कर वमन किया। उसमें मांस के टुकड़े दिखाई दिये। तब क्रोधित हो कर गोशालक उस वणिक के घर गया, पर उस स्त्री ने शाप के भय से पहले से ही घर का दरवाजा बदल दिया था। इससे गोशालक को घर नहीं मिला। तब उसने कहा कि मेरे स्वामी के तप के प्रभाव से तुम्हारा मोहल्ला जल कर भस्म हो जाये। इससे मोहल्ला जल गया।

वहाँ से विहार कर भगवान दरिद्रसन्निवेश के बाहर काउस्सग्ग में रहे। वहाँ पथिकों ने भगवान के पैरों के पास आग जलायी, तो भी भगवान किंचित् मात्र भी नहीं खिसके। भगवान के पैर जलते देख कर गोशालक भाग गया।

वहाँ से प्रभु गलगाँव जा कर वासुदेव के मंदिर में काउस्सग्ग में रहे। वहाँ गोशालक आँखें निकाल कर बालकों को डराने लगा। तब लोगों ने उसे मारा-पीटा और रोका। अन्त में भगवान का शिष्य जान कर छोड़

दिया।

वहाँ से विहार कर भगवान आवर्त्तगाँव में बलदेव के मंदिर में काउस्सग्ग में रहे। वहाँ गोशालक ने लड़कों को डराने के लिए मुख मरोड़ कर बताया। इससे सब लड़कों ने भयभीत हो कर अपने माता-पिता से कहा। तब उनके माता-पिता वहाँ जा कर कहने लगे कि इस शिष्य को क्या मारना? इसके गुरु को ही मारो, जिससे यह अपने शिष्य को अच्छे रास्ते पर चलने का आदेश दे। यह कह कर जैसे ही वे भगवान को मारने के लिए तैयार हुए, वैसे ही बलदेव की मूर्ति ने हाथ में हल ले कर लोगों को डराया। इससे सब लोगों ने भगवान को नमस्कार किया।

फिर वहाँ से विहार कर अनेक क्लिष्ट कर्मों की निर्जरा करने के लिए भगवान लाटदेश गये। वहाँ अनार्य लोगों ने बहुत उपद्रव किये। वे सब प्रभु ने शान्ति से सहन किये।

वहाँ से पूरणकलश नामक अनार्य गाँव में जाते समय मार्ग में भगवान को दो चोर मिले। भगवान को देख कर अपशकुन हुआ मान कर वे तलवार ले कर उन्हें मारने दौड़े। तब इन्द्र महाराज ने उन्हें वज्र से मार डाला। (कई प्रतों में ऐसा लिखा है कि इन्द्र महाराज ने उनके पैर स्तंभित कर दिये। इससे वे वृक्ष के समान वहीं खड़े रहे।) इस तरह उपसर्ग निवारण हुआ।

फिर भगवान चोरांगगाँव गये। वहाँ मंडप में धान्य पक रहा था। यह देख कर गोशालक नीचे झुक कर देखने लगा। तब लोगों ने उसे चोर समझ कर मारा। गोशालक क्रोधित हो कर बोला कि मेरे स्वामी के तप-बल से तुम्हारा मंडप जल जाये। तब वैसा ही हुआ। फिर भगवान हरिवृक्ष के नीचे काउस्सग्ग में रहे। वहाँ किसी पथिक ने पहले भूमि जलायी थी। इससे गोशालक के पैर जले। तब वह वहाँ से भाग गया। फिर भगवान पाँचवें चौमासे में भद्रिका नगरी में रहे। वहाँ उन्होंने चौमासी तप किया।।५।।

फिर पारणा कर के भगवान कुदिक सन्निवेश में गये। वहाँ उन्हें चोर जान कर लोगों ने पकड़ लिया। उस समय श्री पार्श्वनाथजी की विजया

और प्रगल्भा -इन दो साध्वियों ने जो परिव्राजकिनी बन गयी थीं, उन्हें छुड़ाया। यहाँ गोशालक ने जाना कि इनके पीछे घूमने से बहुत दुःख सहने पड़ते हैं, इसलिए वह भगवान से अलग विचरने लगा। मार्ग में उसे पाँच सौ चोर मिले। वे मामा मामा कह कर उसके कंधे पर चढ़ कर उसे आगे-पीछे घुमाने लगे। इससे वह बड़ा दुःखी हुआ। फिर वह जहाँ भी गया, वहाँ उसने तूफान किया। इससे लोगों ने उसे मारा-पीटा। तब गोशालक ने सोचा कि भगवान के साथ रहना ही ठीक है। फिर वह भगवान को ढूँढने लगा।

भगवान विशाला नगरी पहुँचे। वहाँ लुहार की कार्यशाला में काउस्सग्ग में रहे। वह लुहार छह महीने से बीमार था। उस दिन वह ठीक हुआ था, इसलिए लोहा घड़ने के उपकरण ले कर वहाँ गया। भगवान को मुंडित देख कर अपमंगल हुआ जान कर वह उन्हें घन लेकर मारने दौड़ा। इतने में इन्द्र ने अवधिज्ञान से जान कर वहाँ जा कर लुहार को रोका। (कहीं कहीं ऐसा भी लिखा है कि इन्द्र महाराज ने उस लुहार को उसी घन से मार डाला)।

फिर भगवान ग्रामाक सन्निवेश गये। वहाँ वन में बिभेलक यक्ष ने प्रभु की महिमा की। वहाँ से शालिशीर्ष गाँव के बाहर जा कर भगवान काउस्सग्ग में रहे। उस समय माघ मास की ऋतु होने के कारण बहुत ठंड पड़ रही थी। यहाँ भगवान ने शीत उपसर्ग सहन किया।

प्रभु को कटपूतना देवी का उपसर्ग

त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में भगवान की एक अपमानिती स्त्री थी। वह स्त्री अनेक भवभ्रमण कर इस समय कटपूतना नामक व्यन्तरी हुई थी। भगवान को देख कर उसे द्वेष उत्पन्न हुआ। उसने तापसी का रूप बना कर अपनी जटा में पानी भर कर भगवान के शरीर पर छाँटा। उसने बड़ा भारी शीत उपसर्ग किया। जाड़े की ऋतु तो थी ही। उसमें व्यन्तरी ने पुनः मेघवृष्टि की। बहुत ठंडी हवा चलायी। ऐसे बड़े भारी विकट उपसर्ग किये। ये सब

प्रभु के प्रमाणातीत पूर्वकृत कर्म थे, जिन्होंने यहाँ आ कर बाधा डाली। कठिन उपसर्ग सहन कर भगवान ने वे कर्म दूर किये। व्यन्तरी के उपसर्ग में प्रभु अडिग रहे। ऐसे धैर्यवान प्रभु को जान कर अपना अपराध खमा कर वह व्यन्तरी अपने स्थान पर गयी। यहाँ शीतवेदना सहन करते हुए प्रभु को छट्ठ के तप में यथार्थ लोकावधिज्ञान उत्पन्न हुआ।

गोशालक पुनः प्रभु से आ मिला

भगवान ने छठा चौमासा पुनः भद्रिकानगरी में किया। वहाँ चार महीने तक अनेक प्रकार के दुःसह अभिग्रह किये। छह महीने तक अन्यत्र भटक कर गोशालक यहाँ प्रभु से पुनः आ मिला।।६।। चौमासा पूरा होने के बाद शेषकाल आठ महीने तक भगवान मगध देश में विचरे। इन आठ महीनों में भगवान को कोई भी उपसर्ग नहीं हुआ।

फिर सातवें चौमासे में भगवान आलंभिका नगरी के बाहर देवकुल में चार मासी तप कर के रहे।।७।। यहाँ गोशालक ने बलदेव की प्रतिमा के मुख में लिंग रखा। यह देख कर लोगों ने उसे बहुत मारा। (किसी प्रति में ऐसा भी लिखा है कि बलदेव की मूर्ति पर पुरुषचिह्न रख कर सोया, इसलिए पुजारी ने मारा।)

वहाँ से विहार कर प्रभु मर्दनग्राम में वासुदेव के मंदिर में काउस्सग्ग में रहे। यहाँ भी गोशालक ने मूर्ति पर पुरुषचिह्न रखा, इसलिए मार खायी। वहाँ से प्रभु जब उन्नाग गाँव जा रहे थे, तब रास्ते में कोई एक व्यक्ति नवपरिणीत वधू को अपने साथ ले जा रहा था। वर के दाँत बाहर निकले हुए और बड़े थे और बहू कानी थी। यह देख कर गोशालक हँस कर बोला कि दैव ने यह बिल्कुल ठीक बराबर की जोड़ी मिला दी है। तब दूल्हे ने गोशालक को मार-कूट कर बाँस की झाड़ियों में फेंक दिया।

एक बार विचरते हुए भगवान पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख उद्यान में काउस्सग्ग में रहे। उस समय उस नगर का वग्गुर सेठ अपनी सुभद्रा भार्या के साथ वहाँ पहुँचा। दोनों पति-पत्नी ने पुत्रप्राप्ति के लिए

उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लीनाथजी की धारणा की थी। पुत्र हो जाने के बाद उन्होंने उद्यान में श्री मल्लीनाथजी का नया मंदिर बनवाया और वहाँ रोज पूजा करने लगे। जिस समय सेठ अपनी स्त्री के साथ पूजा करने के लिये गये, उस समय भगवान के सम्मुख इन्द्र महाराज बैठे हुए थे। उन्होंने भगवान की महिमा करने के लिए सेठ से कहा कि हे सेठ ! जिसकी तू पूजा करता है, वह मैं तुझे प्रत्यक्ष दिखाता हूँ। यह कह कर वे सेठ को भगवान के पास ले गये और उसे भगवान के पाँव लगाया। सेठ ने भी भावपूर्वक भगवान की पूजा कर के फिर श्री मल्लीनाथजी की पूजा की।

इसके बाद आठवाँ चौमासा भगवान ने राजगृही नगरी में किया।।८।। वहाँ चार महीने तक चौमासी तप किया। फिर चौमासी तप का पारणा बाहर जा कर किया।

प्रभु का अनार्य देश में विहार

चौमासे के बाद प्रभु अनार्य देश में गये। वहाँ विचरते हुए भगवान ने बहुत कठिन उपसर्ग सहन किये और नौवाँ चौमासा भी अनार्य देश में ही व्यतीत किया।।९।। यह चौमासा चार मासिक तप सहित किया। वहाँ प्रभु को रहने के लिए जगह भी नहीं मिली। इसलिए वे विचरते ही रहे। चौमासे के बाद भी भगवान दो महीने तक अनार्य देश में ही तप सहित विचरे। वह भी आहाररहित दो मासिक तप हुआ।

फिर अनार्य देश से विहार कर जब भगवान सिद्धार्थ गाँव से कूर्मगाँव जा रहे थे, तब मार्ग में एक तिल का पौधा खड़ा देख कर गोशालक ने भगवान से पूछा कि यह थंभ होगा या नहीं?

भगवान ने कहा कि इस तिल के फूल सात हैं। उनके जीव मर कर एक फली में तिल के रूप में उत्पन्न होंगे। यह सुन कर गोशालक ने भगवान का वचन झूठा करने के लिए उस पौधे को उखाड़ कर फेंक दिया। तब निकट में रहे हुए व्यन्तरदेव ने सोचा कि भगवान का वचन झूठा न हो। इसलिए उसने जल बरसाया। फिर गाय के खुर से वह तिल का

झाड़ दब जाने के कारण धरती में जम गया और बरसात के योग से फिर खड़ा हो गया। भगवान कूर्मगाँव गये। वहाँ वेश्यायन नामक एक तापस था।

वेश्यायन तापस की कथा

उसका नाम वेश्यायन क्यों पड़ा? उसकी कथा कहते हैं-

राजगृही और चंपानगरी के मध्य में गूर्वरगाँव था। वहाँ कोशंबी नामक एक कुटुंबी रहता था। गूर्वरगाँव के पास एक और गाँव था। उस गाँव के बाहर किसी राजा की फौज ने डेरा डाला। इससे गाँव के सब लोग भाग गये। उस समय एक स्त्री अपने पुत्र के साथ भाग रही थी। उसे मार्ग में चोरों ने पकड़ लिया और वें उसे उठा ले गये। उसका बालक गूर्वरगाँव के बाहर पड़ा रहा। उसे कोशंबी कुटुंबी ने बाहर भटकते देख कर उठा लिया। उसके कोई पुत्र नहीं था, इसलिए उसने उसे पुत्र के समान पाल-पोस कर बड़ा किया।

उस बालक की माता को चोरों ने चंपानगरी में किसी वेश्या को बेच दिया। इस कारण से वह वेश्या का धंधा करने लगी। फिर अनुक्रम से वह लड़का जब बड़ा हुआ, तब एक दिन चंपानगरी में व्यापार के लिए गया। वहाँ उसकी माता जो वेश्या व्यवसाय करती थी, उसके साथ अनजान में वह भोग भोगने लगा। एक दिन उसकी कुलदेवी गाय और बछड़े का रूप बना कर रास्ते में बैठ गयी। इतने में वह लड़का भी वेश्या के घर जाने के लिए उस मार्ग से निकला। उसने बछड़े की पूँछ पर पाँव रखा। तब बछड़ा बोला कि देखो माताजी ! यह मेरी पूँछ पर पाँव रख कर जा रहा है, पर रास्ता देखता नहीं है। तब गाय बोली कि बेटे ! तू इसका नाम मत ले। यह तो अपनी सगी माँ के साथ भोग करने से भी डरता नहीं है, तो तेरी क्या सुनेगा। यह बात सुन कर लड़का चौंक गया। फिर कुलदेवी ने पूरी हकीकत उसे बतायी। उसे सुन कर वह तापस बन गया। लोगों ने उसका नाम वेश्यायन रखा। वह झाड़ में औंधे मुँह लटक कर नीचे रखे हुए अग्निकुंड में तापने लगा। उसे तेजोलेश्या प्राप्त हुई।

भगवान वहाँ से जा रहे थे। उनके पीछे गोशालक भी चल रहा था। उस समय वेश्यायन अपने जटाजूट में से जमीन पर गिरी हुई जूँओं को उठा

कर पुनः अपनी जटा में रख रहा था। उसे देख कर गोशालक बोला कि अरे ! तू केवल जूँओं का ही शय्यातर है या तापस मुनि? ऐसा हास्य-वचन उसने दो-तीन बार कहा। तब वेश्यायन को क्रोध आ गया। उसने गोशालक पर तेजोलेश्या छोड़ी। उसे देख कर भगवान को करुणा आ गयी। उन्होंने उसके सामने शीतलेश्या छोड़ी। इससे गोशालक नहीं जला। तापस ने भी भगवान का प्रभाव जान कर खमाया।

फिर गोशालक ने भगवान से पूछा कि तेजोलेश्या कैसे प्राप्त होती है? इसका उपाय बताइये। तब भगवान ने कहा कि बेले की तपस्या करे याने कि छट्ठ तप कर के पारणे में एक मुट्ठी उड़द के बाकुले खा कर उस पर एक अंजुलि भर उष्ण पानी पीये और सूर्य के सम्मुख खड़ा रहे। इस प्रकार छह महीने तक करे, तो उसे अन्त में तेजोलेश्या प्राप्त होती है। (कई लोग कहते हैं कि सिद्धार्थ व्यन्तर ने यह विधि बतायी।) गोशालक ने यह सामान्य विधि धारण कर ली।

अब भगवान जब कूर्मगाँव से पुनः सिद्धार्थपुर लौट रहे थे, तब रास्ते में पूर्वोक्त तिल के पौधे को ऊगा हुआ स्तम्भ रूप देख कर गोशालक ने उसे चीरा। तब उसमें सात पुंज तिल दिखाई दिये। तब सब सत्य मान कर गोशालक ने सोचा कि जो होने वाला है, वह अवश्य होता ही है। होनी हो कर ही रहती है। इस तरह मान कर वह निश्चयवादी हुआ। उसने इस मत का निर्धार कर लिया।

इसके बाद गोशालक भगवान से अलग हो गया। उसने श्रावस्ती नगरी में जा कर तेजोलेश्या साध ली। उसे वह सिद्ध हो गयी तथा दिशाचरों के पास उसने अष्टांगनिमित्त सीख लिया। फिर यद्यपि वह जिन याने तीर्थंकर नहीं था, तो भी तीर्थंकर नाम धारण कर लोगों को अपना सिद्धत्व दिखाने लगा। इसके बाद वह श्रावस्ती नगरी में भ्रमण करने लगा।

भगवान भी विचरते-विचरते श्रावस्ती नगरी पहुँचे और वहाँ उन्होंने दसवाँ चौमासा किया।।१०।। उन्होंने अनेक प्रकार के तप किये।

प्रभु को संगमदेव का उपसर्ग

दढभूमि बहु मिच्छा, पेढालुज्जाणमागओ भयवं।
पोलास चेइयंमि, ठि एगरायं महापडिमं।।१।।
सक्को य देवराया, सभागओ भणइ हरिसीउ वयणं।
तिन्नि वि लोग समत्था, जिणवीरं न मणं चालेउं।।२।।
सामाणिय संगमओ, देवो सक्कस्स सो अमरिसेण।
अह आगओ तुरंतो, मिच्छद्दिट्ठि पडिनिविट्ठो य।।३।।

चौमासा पूरा होने के बाद भगवान दृढ़भूमि में जहाँ बहुत म्लेच्छ रहते थे, उस म्लेच्छ देश में गये। वहाँ भगवान को कुत्तेप्रमुख प्राणियों ने काटा। ऐसे अन्य भी अनेक प्रकार के कठिन उपसर्ग हुए। वे सब उन्होंने सहन किये।

एक दिन भगवान पेढाल गाँव के एक उद्यान में पोलास नामक देवचैत्य में अट्ठम तप सहित एक रात्रि महाप्रतिमा धारण कर के रहे। उस समय देवराज शक्रेन्द्र ने अपनी सभा में भगवान के धैर्य की प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि तीनों लोक एक हो जायें, तो भी श्री वीरप्रभु को डिगाने में समर्थ नहीं हो सकते। भगवान का सत्त्व ऐसा है। इन्द्र महाराज का यह वचन सब देवों ने सत्य माना, पर संगम नामक एक सामानिक देव जो अभव्य जाति का और मिथ्यादृष्टि था, उसने अमर्षपूर्वक विचार किया कि मनुष्य को डिगाना-चलायमान करना कोई बड़ी बात नहीं है। यह सोच कर उसने इन्द्र महाराज से कहा कि मैं क्षणभर में उसे डिगा कर आता हूँ। इतना कह कर इन्द्र के वचन न मानते हुए भगवान को डिगाने की प्रतिज्ञा कर वह तुरन्त उनके पास गया। वहाँ जा कर एक रात में उसने बीस महाउपसर्ग किये।

सबसे पहले उसने धूल उड़ा कर और धूल की वर्षा कर के भगवान का श्वासोच्छ्वास अवरुद्ध किया। फिर वज्रमुखी कीड़ियाँ उत्पन्न कर भगवान के शरीर को कटवाया और उसे छलनी जैसा बना दिया। इसके बाद वज्रमुखी डाँस-मच्छर बना कर प्रभु के शरीर को कटवाया। फिर

घीमेल कीड़ियाँ बना कर कटवाया। पाँचवीं बार बिच्छू बना कर प्रभु को डंक लगवाये। छठी बार साँप के रूप बना कर प्रभु को डँसवाया। सातवीं बार नेवले के रूप बना कर मुख और नख से भगवान का शरीर-विदारण किया। आठवें उपसर्ग में चूहों के रूप बना कर शरीर कुतरवाया। नौवें में हाथी और हथिनी के रूप बना कर सूँड से ऊपर उछाला। दसवें में दाँत और पैरों से शरीरमर्दन करवाया याने कुचलवाया।

ग्यारहवें में पिशाच के रूप बना कर अट्टाट्ट हास्य कर के भगवान को डराया। बारहवें में सिंह के रूप बना कर नख लगाये और शरीर-विदारण किया। तेरहवें में पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला के रूप बना कर विलाप करते हुए बोला कि हे पुत्र ! हम तेरे माता-पिता अब आ गये हैं, इसलिए तू दुःख मत देख। हमारे साथ आ जा। हम तुझे सुख प्रदान करेंगे। चौदहवें में तीक्ष्ण चोंचवाले प्रक्षियों के रूप बना कर भगवान के कान और मुख का मांस निकलवाया। पन्द्रहवें में चांडाल का रूप बना कर भगवान की तर्जना की। सोलहवें में लकड़ी के टुकड़े जला कर दोनों पैरों पर हाँडी रख कर खीर पकायी और भगवान को आग से जलाया। सतरहवें में प्रचंड वायु चला कर भगवान को ऊँचे उछाल कर पुनः नीचे जमीन पर पटक दिया। अठारहवें में कलिकाल वायु उत्पन्न कर उस वायु से भगवान को चक्र की तरह घुमाया। उन्नीसवें में हजार भार प्रमाण लोहे का गोला बना कर भगवान के मस्तक पर डाला, जिससे भगवान कमर तक (कई प्रतों के अनुसार घुटनों तक) जमीन में धँस गये। यहाँ भगवान की जगह यदि अन्य कोई चाहे जितना बलवान होता, तो भी उसका शरीर चूर्ण हो जाता। पर यह तो तीर्थंकर का शरीर है, इसलिए उसे कुछ भी नहीं हुआ। बीसवें उपसर्ग में रात के समय दिन कर के बताया और कहा कि हे देवार्य ! प्रभात हो गया है, इसलिए अब विहार कर के गोचरी जाइये। उस समय भगवान ने अवधिज्ञान से रात जान कर सोचा कि यह देवकृत चरित्र है।

इसके बाद संगम ने देवों की ऋद्धि बता कर और देवांगनाओं के रूप बना कर हावभाव दिखा कर अनेक अनुकूल उपसर्ग किये। फिर कहा कि

तुम्हें चाहिये सो वर माँगो। यदि स्वर्ग माँगो, तो स्वर्ग दे दूँ। ऐसा कहा तो भी भगवान किंचित् मात्र भी नहीं डिगे- चलायमान नहीं हुए। इस प्रकार महाभयंकर बीस उपसर्ग संगम ने एक रात में किये।

फिर जब भगवान गोचरी जाते, तब वह उस घर का आहार अशुद्ध कर देता। उसे भगवान के लिए अकल्पनीय बना देता तथा गाँव में चोरी कर के माल भगवान के पास रख देता। इससे लोग भगवान को मारते। वह भगवान का शिष्य बन कर गाँव में लोगों के छिद्रान्वेषण के लिए जाता। जब लोग उससे पूछते कि तू यहाँ इधर-उधर क्यों देखता है? तब वह कहता कि मेरा गुरु रात को चोरी करने आयेगा, इसलिए पहले से ही देख रखता हूँ। यह सुन कर लोग जा कर भगवान को मारते। ऐसा उपसर्ग देख कर भगवान ने अभिग्रह किया कि जब तक मुझे यह उपसर्ग होता रहेगा, तब तक मैं आहार-पानी नहीं लूँगा। संगम कभी कभी ऐसा कर दिखाता कि जिससे लोग यह मान लें कि गाँव की कतिपय स्त्रियाँ भगवान से संबंध रखती हैं। फिर भी भगवान एकान्त स्थान में रहे।

इस प्रकार उसने छह महीने तक ऐसे उपसर्ग किये, तो भी इन्द्र महाराज ने उसे उपसर्ग करने से नहीं रोका। उन्होंने सोचा कि यदि मैं इसे रोकूँगा, तो यह कहेगा कि मैं तो भगवान को चलायमान कर देता, पर क्या करूँ? तुमने मुझे रोक दिया, इसलिए मैं लाचार हुआ। ऐसा अपवाद टालने के लिए इन्द्र ने उसे कुछ भी नहीं कहा। तो भी जब तक उसने उपद्रव किया, तब तक इन्द्र ने सुख से साँस नहीं ली। वे मन में बहुत उदास रहे। अन्य भी सब देव-देवियाँ आदि शोक में निस्तेज हो कर बैठे रहे।

ऐसा करते छह महीने के अन्त में संगम देव स्वयं हार कर बोला कि हे आर्य ! आप सुख से गोचरी कीजिये। मैं अब बिलुकल उपसर्ग नहीं करूँगा। तब भगवान ने कहा कि मैं मेरी इच्छा से गोचरी जाऊँगा। किसी के कहने से नहीं जाऊँगा।

अन्त में हार कर संगम स्वर्ग में गया। इन्द्र महाराज ने उसका मुख भी नहीं देखा। मार-पीट कर उसे स्वर्ग से भगा दिया। फिर वह अपनी

देवांगनाओं के साथ मेरुपर्वत की चूलिका पर जा कर रहा। ऐसा कहा जाता है कि उसका आयुष्य एक सागरोपम का था और वह अभव्य जीव की जाति का था।

इस तरह दसवें वर्ष में भगवान को बहुत उपसर्ग हुए। फिर छह मासी तप का पारणा भगवान ने वज्रगाँव जा कर किसी गोपालक के घर खीर के भोजन से किया। (कई प्रतों में लिखा है कि गोकुल में वत्सपाली नामक वृद्ध स्त्री ने परमान्न से पारणा कराया।) वहाँ पाँच दिव्य प्रकट हुए। फिर चौसठ इन्द्रों तथा देवों ने भगवान के पास आ कर उन्हें सुखशाता पूछी। श्रावस्ती नगरी में शकेन्द्र ने यक्षप्रतिमा में प्रवेश कर के प्रभु को वन्दन किया। यह देख कर लोगों ने भगवान की बड़ी महिमा की।

जीर्णसेठ और चन्दनबाला का अधिकार

ग्यारहवाँ चौमासा भगवान ने विशाला नगरी में किया।।११।। वहाँ जीर्ण सेठ ने भावना भायी कि हे भगवन्! भात-पानी का लाभ देना। इस तरह चार महीने तक भावना भायी, तो भी मिथ्यात्वी पूरण सेठ ने दासी के हाथ से उड़द बाकुले दिलवाये। उन्हें ग्रहण कर भगवान ने उसके घर पारणा किया। वहाँ पाँच दिव्य प्रकट हुए। तब सब लोग पूरण सेठ को धन्य धन्य कहने लगे। उस समय जीर्ण सेठ को लगा कि मैं भाग्यहीन हूँ। इसलिए मुझे ऐसा योग कैसे मिले? इस तरह वह पश्चात्ताप करता रहा।

कुछ दिन बाद विशाला में केवली भगवान पधारे। उस समय राजाप्रमुख ने पूछा कि मेरे नगर में भाग्यवान कौन है? तब केवली भगवान ने कहा कि जीर्ण सेठ भाग्यवान है। राजा ने पूछा कि भगवान को दान तो पूरण सेठ ने दिया है? इस पर केवली ने कहा कि उसने भावरहित दान दिया है, इसलिए उसे द्रव्य से लाभ हुआ है और जीर्ण सेठ ने भाव से दान दिया है, इसलिए उसने बारहवें देवलोक का आयुष्य बाँधा है।

भगवान वहाँ से विहार कर सुसुमारपुर गये और वहाँ प्रतिमा धारण कर काउस्सग्ग में रहे। उस समय चमरेन्द्र का सौधर्म देवलोक में गमन

हुआ था और उसने प्रभु की शरण ग्रहण की थी। यह अधिकार दस अच्छेरों में विस्तार से आ गया है, इसलिए यहाँ नहीं लिखा।

इसके बाद अनुक्रम में चन्दनबाला ने प्रभु को पारणा करवाया है। भगवान ने कुछ कर्म शेष रहे जान कर कौशांबी नगरी में पौष वदि एकम के दिन अपनी इच्छा से ऐसा अभिग्रह लिया कि- १. द्रव्य से सूप के कोने में उड़द बाकुले रखे हों, २. क्षेत्र से एक पैर घर की देहली के भीतर और एक पैर बाहर रहा हो, ३. काल से सब भिक्षुक लोगों के भिक्षा माँग कर जाने के बाद और भाव से राजा की पुत्री हो और उसे दासत्व प्राप्त हुआ हो, ५. सिर मुंडित हो, ६. उसके पैरों में बेड़ियाँ लगी हों, ७. अट्ठम तप किया हो और रुदन करती बैठी हो, ऐसी स्त्री यदि दो प्रहर दिन होने पर मध्याह्न के बाद भिक्षा दे, तो पारणा करना। ऐसा अभिग्रह धारण कर श्री वीर भगवान गोचरी के लिए नित्य भ्रमण करने लगे, पर कहीं भी ऐसा योग नहीं बना। राजा के मंत्रीप्रमुख ने अनेक उपाय किये, पर किसी भी प्रकार से प्रभु का अभिग्रह पूरा नहीं हुआ। अन्त में कौशांबी के बाजार में बिके जाने के कारण दासत्व को प्राप्त चन्दनबाला के द्वारा प्रभु का अभिग्रह पूरा हुआ। वह चंपानगरी के दधिवाहन राजा और धारिणी रानी की पुत्री थी। उसके हाथों से उड़द बाकुले ग्रहण कर पाँच महीने और पच्चीस दिन के उपवास का प्रभु ने पारणा किया। देवों ने वहाँ पंचदिव्य प्रकट किये।

वह घटना इस प्रकार है- चंपानगरी के दधिवाहन राजा की धारिणी रानी के वसुमती नामक पुत्री थी। उसका दूसरा नाम चन्दनबाला था। एक बार कौशांबी के शतानीक राजा ने राज्यविरोध के कारण आक्रमण कर के चंपानगरी को लूटा। उस समय दधिवाहन राजा भाग गया और धारिणी रानी तथा चन्दना ये दोनों शतानीक राजा के पायदल के एक सैनिक के हाथ लगीं। उसने धारिणी से कहा कि मैं तुझे अपनी स्त्री बनाऊँगा। यह सुन कर धारिणी रानी जीभ चबा कर मर गयी। फिर उस सुभट ने सोचा कि कहीं यह लड़की भी मर न जाये, इसलिए उसे विश्वास दे कर कौशांबी नगरी के बाजार में उसे बेचने के लिए ले गया। वहाँ एक वेश्या उसे खरीदने लगी। तब चन्दना ने उससे पूछा कि तुम्हारा आचार क्या है? उत्तर में वेश्या ने कहा कि धनी-मानी उत्तम पुरुषों से प्रीति करना और मनमाना भोजन करना, यह

हमारा आचार है। तब चन्दना ने कहा कि यह मुझसे नहीं होगा। तो भी वेश्या उसे जबरदस्ती मोल लेने लगी। तब शासनदेवी ने उसके कान और नाक छेद डाले। वेश्या वहाँ से भाग गयी।

फिर जैनधर्मी धनावह सेठ मूल्य दे कर खरीद कर उसे अपने घर ले गया और उसका नाम चन्दना रख कर उसे अपनी पुत्री के रूप में रखा। चन्दना का सुरूप देख कर सेठ की फूहड़ और बाँझ पत्नी मूला उससे द्वेष करने लगी। उसने सोचा कि कहीं यह मेरी सौत न बन जाये, इसलिए पहले से ही कुछ उपाय करना ठीक होगा। फिर एक दिन सेठ के पैर धोते वक्त चन्दना की वेणी जमीन पर गिर पड़ी। सेठ ने उसे भीगने से बचाने के लिए अपनी छड़ी से ऊपर उठा लिया। यह देख कर दुराचारिणी मूला सोचने लगी कि सेठ इसकी वेणी पर मोहित हुआ लगता है। मुख से तो इसे पुत्री कहता है, पर कालान्तर में इसे स्त्री बना देगा। इसमें कोई शक नहीं है, क्योंकि मैं तो अब बूढ़ी हो गई हूँ और यह रूपवती है।

फिर एक दिन सेठ के अन्य गाँव चले जाने पर मूला ने चन्दना का मस्तक मूँड कर, उसके हाथ-पाँव में बेड़ियाँ डाल कर और उसे धुस्से का वस्त्र पहना कर उसे कंडों के कमरे में बन्द कर दिया। फिर अपने घर को ताला लगा कर वह अपने पीहर चली गयी। चन्दना उस कमरे में बैठी बैठी नवकार गिनने लगी और अपने कर्म को दोष देने लगी। चौथे दिन सेठ घर लौटा, तब चन्दनबाला उसे दिखाई नहीं दी। उसने पड़ोसियों से भी पूछा,पर उस झगड़ालू मूला के डर से किसी ने भी उत्तर नहीं दिया। अन्त में एक बुढ़िया ने सब बातें बता दीं। फिर सेठ ने ताला खोल कर चन्दना को बाहर निकाला। उसे देहली पर बिठा कर उसने कहा कि मैं लुहार को बुला लाता हूँ, वह तेरी बेड़ियाँ खोल देगा। तब चन्दना ने कहा कि मैं बहुत भूखी हूँ। फिर सेठ ने उड़द के बाकुले सूप के एक कोने में रख कर उसे दिये और कहा कि तू तीन दिन से भूखी है, इसलिए ये बाकुले खाना। मैं बेड़ी निकालने के लिए लुहार को बुला लाता हूँ। यह कह कर चन्दना को पूर्वावस्था सहित देहली पर बिठा कर वह लुहार को बुलाने गया।

अब शुद्ध सम्यक्त्वधारिणी चन्दना सती सोचने लगी कि कोई अतिथि आये, तो उसे यह वहोरा कर खाऊँ। इतने में मध्याह्नकाल होने पर प्रभु पधारे। उन्हें देख कर चन्दनबाला हर्षित हो कर उन्हें बाकुले देने लगी, पर भगवान ने अपने लिए हुए अभिग्रह के चार भेद तो मिलते देखे, पर पाँचवाँ रुदन नहीं देखा, इसलिए वे लौट गये। तब चन्दना अत्यन्त दुःखी हो कर रुदन करने लगी कि साधु भी मेरे हाथ का

आहार नहीं लेते, इसलिए मुझे धिक्कार है। फिर भगवान ने उसे रुदन करते देख कर अपना अभिग्रह सम्पूर्ण हुआ जान कर उड़द बाकुले हाथ में लिये। वहाँ देवों ने पंचदिव्य प्रकट किये।

उसी समय बेड़ियाँ टूट गयीं और नूपुर बन गये तथा मस्तक पर वेणी बन कर तैयार हो गयी। वहाँ इन्द्र महाराज का आगमन हुआ। चन्दना की माता की बहन मृगावती चन्दना की मौसी होती थी। उस संबंध से शतानीक राजा धन लेने आया। तब इन्द्र ने उसे रोका और कहा कि यह धन चन्दना की दीक्षा के समय काम आयेगा। चन्दना ने कहा कि यह धन सेठ को दे दीजिये। सेठ को वह धन सौंप कर इन्द्र ने कहा कि यह चन्दना भगवान की प्रथम साध्वी बनेगी। यह कह कर इन्द्र महाराज अपने स्थान पर चले गये। यहाँ पाँच दिन कम छहमासिक तप का प्रभु का पारणा हुआ।[१]

गोपालककृत कर्णकीलोपसर्ग

फिर भगवान षड्जृंभिका गाँव में काउस्सग्ग में रहे। उस समय इन्द्र महाराज वन्दन करने आये। वन्दन करने के बाद वे यह कह कर चले गये कि हे भगवन्! आपको इतने दिन बाद अमुक दिन केवलज्ञान उत्पन्न होगा। फिर प्रभु विचरते हुए चंपानगरी आये। वहाँ स्वातिदत्त ब्राह्मण की शाला में बारहवाँ चातुर्मास किया।।१२।।

वहाँ से पारणा कर भगवान विचरते हुए षण्मानिक गाँव के बाहर उद्यान में काउस्सग्ग में स्थित रहे। उस अवसर पर एक ग्वाले ने भगवान के कानों में खीले ठोंके। उस उपसर्ग का वर्णन करते हैं- प्रभु ने त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में शय्यापालक के कान में सीसा गरम कर के उँडेलवाया

---

१. किसी-किसी प्रत में ऐसा भी लिखा है कि अपने घर वसुधारा की वर्षा हुई, यह जान कर मूला अपने पीहर से वहाँ दौड़ी आयी। उसने उतावल से धन अपनी झोली में भरना शुरु किया, पर धन हाथ में लेते ही अग्निज्वाला भड़क उठी। इससे उसके सब वस्त्र जल गये। फिर वह श्यामवदन हो कर वहाँ से चली गयी। देव ने उसकी तर्जना करके कहा कि यह धन चन्दनबाला का है। चन्दना ने वह धन सेठ को सौंप दिया। सेठ ने वह सब धन उसके दीक्षा महोत्सव में खर्च किया।

था, वह कर्म यहाँ उनके उदय में आया। वह शय्यापालक अनेक भवभ्रमण कर अब गोपालक हुआ था। बैर के कारण उसने भगवान को अपने बैल सौंपे और स्वयं गाँव में गया। वहाँ से लौटने पर उसे अपने बैल दिखाई नहीं दिये। फिर रात भर घूम घूम कर उसने अपने बैलों को ढूँढा। सुबह जब भगवान के पास आया, तब उसे वहाँ अपने बैल दिखाई दिये।

उस समय पूर्व भव के बैर के कारण उसके मन में द्वेष उत्पन्न हुआ। इससे उसने भगवान के कानों में खीले ठोंके और कोई देख न सके, किसी को मालूम न हो, इसलिए उन्हें बाहर से काट कर समान कर दिया। उसने ये खीले शरकट वृक्ष के अग्र काट कर कान में ठोंके। (शरकट वृक्ष के तीर बनते हैं।) इससे भगवान को महावेदना हुई और भगवान अत्यन्त कृश हो गये।

फिर भगवान वहाँ से विहार कर मध्यम अपापा नगरी में सिद्धार्थ वणिक के घर गोचरी गये। वहाँ खरक वैद्य उपस्थित था। उसने मार्गानुसार से भगवान को सशल्य देखा। तब उसने सेठ से कहा कि भगवान को कोई व्यथा है। इस पर सेठ ने कहा कि यह व्यथा मिटाने का लाभ तुम क्यों नही लेते? फिर सेठ और वैद्य दोनों प्रभु के पीछे पीछे गये। वहाँ वैद्य ने विचार कर के दो सँडसे ले कर दो वृक्षों की डालियाँ रेशम से बाँध कर कान में रही हुई कील सँडसे से पकड़ कर रेशम की डोरियों से दोनों तरफ दो वृक्षों की डालों से बाँधा। फिर वे दोनों डालियाँ झुका कर एक ही समय में एक साथ उन्हें छोड़ा। इससे दोनों कानों के खीले तुरन्त एक साथ निकल गये। इस तरह बुद्धिप्रपंच से खीले तो निकाल दिये, पर उस समय प्रभु को इतनी तीव्र वेदना हुई कि उसके योग से प्रभु हाँक मार कर चीख पड़े। इससे जंगल में घोराकार शब्द हुआ। पर्वत फट गये। वे पर्वत वर्तमान में बंभणवाड़ गाँव के पास हैं। वहाँ बंभणवाड़ तीर्थ हुआ।

प्रभु मूर्च्छित हो कर धरती पर गिर गये। लोग कहते हैं कि उन्हें दो पुरुषों ने उठा कर बिठाया, पर तीर्थंकर के लिए यह संभव नहीं है। इस पर से अनुमान करते हैं कि काया के व्यापार से हाँक हुई होगी, पर भाव से

हुई नहीं लगती, ऐसा 'अनन्तबलित्वात्' इस वचन से निर्धार होता है।

फिर वैद्य ने कानों पर व्रणसंरोहिणी औषधि लगायी। इससे घाव भर गया। समाधि हुई। सेठ और वैद्य दोनों मृत्यु के बाद देवलोक गये। ग्वाला मर कर सातवीं नरक में गया। इस तरह भगवान को यह अंतिम महाउपसर्ग ग्वाले ने किया।

जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ऐसे तीन प्रकार के उपसर्ग भगवान को हुए। उसमें प्रत्येक प्रकार के उपसर्गों में सबसे बड़ा उपसर्ग कौनसा हुआ, वह कहते हैं। प्रथम जघन्य उपसर्गों में शीतपरीषह का महाउपसर्ग कटपूतना व्यन्तरी ने किया, मध्यम उपसर्गों में संगमदेव ने महाउपसर्ग किया और उत्कृष्ट उपसर्गों में महाउपसर्ग कान में खीले ठोंके गये तथा निकाले गये सो हुआ।

इस तरह बारह वर्ष तक भगवान ने काया को वोसिराया। भगवान जब भी जहाँ जहाँ बैठे, गोदुहासन में बैठे, पर किसी भी दिन धरती पर नहीं बैठे। इन बारह वर्षों में मात्र दो घड़ी शूलपाणि यक्ष के मंदिर में नींद ली। शेष सब काल निद्रारहित बीता। इस तरह श्री वीरप्रभु को बहुत उपसर्ग सहन करने पड़े और श्री ऋषभदेव तीर्थंकर को एक वर्ष तक भिक्षा नहीं मिली, यही इतना ही उपसर्ग हुआ तथा मध्य के बाईस तीर्थंकरों को स्वल्प उपसर्ग हुए हैं।

प्रभु की आचार-विचार-दिनचर्या

भगवान जब आगार याने घर, उससे रहित ऐसे अनगार हुए तब एक चलने की ईयासमिति याने देख कर चलना, दूसरी भाषासमिति याने विचारपूर्वक बोलना, तीसरी एषणासमिति याने दोषरहित आहार लेना, चौथी आदान-भंड-मत्त-निक्खेवणासमिति याने भंडमात्रप्रमुख देखभाल कर जयणा से ग्रहण करना व जयणा से रखना और पाँचवीं उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्ठापनिकासमिति याने ठल्ला, मात्रा, खंखार और सेडा (श्लेष्म) ये सब निर्जीव स्थान पर परठना, इन पाँच समितियों से समता हुए। पर श्री तीर्थंकर का आहार-निहार किसी की नजर में नहीं

आता तथा किसी के जानने में भी नहीं आता। खेल, नाक-मल और खंखार उनके होते ही नहीं, क्योंकि उन्हें रोग का अभाव होता है।

भगवान ने मन, वचन और काया को कुकर्म में नहीं लगाया। मन, वचन और काया को भली रीति से चलाने के कारण ये तीन समितिसहित हुए तथा भगवान मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन तीन गुप्तियों से गुप्ता हुए। वे इन्द्रियों का गोपन कर नव बाड़ सहित शीलवान हुए और क्रोध, मान, माया और लोभ रहित अत्यन्त शीतलस्वभावी हुए। उनके क्रोधादिक उपशान्त हो गये थे और उन्होंने पाप को रोक लिया था। वे निरास्रव, ममत्वरहित, धनरहित हुए और ग्रंथरहित होने से निर्ग्रन्थ हुए।

जैसे काँसे के पात्र को पानी नहीं लगता, वैसे भगवान भी निर्लेप स्नेहरहित थे। जैसे शंख को रंग नहीं लगता, वैसे वे निरंजन थे। उन्हें किसी पर न तो राग था और न ही द्वेष, इसलिए वे राग-द्वेषरहित थे। जैसे जीव की गति में कहीं भी रुकावट नहीं आती, वैसे ही कहीं भी जाने में भगवान की गति का हनन नहीं होता था। याने कि भगवान को विहार करने में कोई रोक नहीं सकता था। जैसे आकाश निरालंब है, वैसे ही भगवान भी किसी का आधार लेते नहीं थे।

वे हवा की तरह अप्रतिबद्ध-विहारी थे। उनका हृदय शरद्ऋतु के मेघ के समान निर्मल था। वे कमलपत्र की तरह निर्लेप थे। कछुए के समान उन्होंने अपनी इन्द्रियों का गोपन किया था। वे खड्गी जानवर के सींग की तरह एकाकी थे। जैसे पक्षी अपने पास कोई परिग्रह नहीं रखते, वैसे ही भगवान भी अपने पास कोई परिग्रह नहीं रखते थे। वे भारंडपक्षी की तरह अप्रमत्त, हाथी की तरह कर्मरूप शत्रुओं का मथन करने में महापराक्रमी, वृषभ के समान संयमरूप भार वहन करने में सामर्थ्यवान, सिंह की तरह परीषह जीतने में दुर्द्धर और मेरु के समान अचल अकंप थे।

वे समुद्र के समान गंभीर और चन्द्रमा के समान सौम्य लेश्यावान थे। सूर्य के समान उनका तेज प्रकाशमान था। तपाये हुए कुन्दन के समान वे जातरूप थे। वे पृथ्वी के समान सब स्पर्श सहन करने वाले थे। वे घी होमे

हुए अग्नि के समान अपने तेज से जाज्वल्यमान थे। इस कारण से उन्हें कहीं भी प्रतिबंध नहीं था।

प्रतिबंध चार प्रकार का है, सो कहते हैं- प्रथम द्रव्य से प्रतिबंध तीन प्रकार का है। उसमें पहला माता-पिता-पुत्रादिक का प्रतिबंध। यह द्रव्य से सचित्त प्रतिबंध जानना। दूसरा अलंकारप्रमुख का प्रतिबंध। यह द्रव्य से अचित्त प्रतिबंध जानना। तीसरा श्रृंगार की हुई स्त्रीप्रमुख का प्रतिबंध। यह मिश्र प्रतिबंध जानना। इस तरह तीनों प्रकार का प्रतिबंध उन्हें नहीं था, इसलिए वे ममत्वरहित थे।

दूसरा क्षेत्र से प्रतिबंध- गाँव, नगर, उद्यान, खेत, खलिहान, घर, घर का आँगन, आकाश इत्यादिक किसी पर उन्हें ममत्व नहीं था।

तीसरा काल से प्रतिबंध- उस समय में आवलिका, श्वासोच्छ्वास, सात श्वासोच्छ्वास का एक स्तोक (क्षण), सात स्तोक का एक लव, दो घड़ी का एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त का एक दिन-रात, पन्द्रह दिन-रात का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन-तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयन का एक वर्ष, पाँच वर्ष का एक संवत्सर इत्यादिक अन्य भी दीर्घकाल में किसी समय यह अमुक काम मैं करूँगा, ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं था।

तथा चौथा भाव से प्रतिबंध- क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, हास्य, राग-द्वेष, वचनयुद्ध, किसी पर झूठा कलंक लगाना, चुगली करना, दूसरों के दोष प्रकट करना, अरति-द्वेष, रति-प्रीति, कपटपूर्वक बोलना और मिथ्यात्व शल्य; ये काम करे तो भाव से प्रतिबंध किया कहा जाता है। इनमें से भगवान के एक भी नहीं था।

भगवान ने वर्षाकाल छोड़ कर शेष गरमी और जाड़े के आठ महीनों में गाँव में एक रात और नगर में पाँच रात से अधिक न रहते हुए सतत विहार किया। जैसे कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है, पर चन्दन तो उल्टे उसकी धार को सुगंध ही देता है और जो नहीं छेदता, उसे भी सुगंध देता है, वैसे ही भगवान को कोई बसूले से छेदता या कोई चन्दन का लेप करता, तो वे दोनों पर समान मन रखते थे। वे अर्घावतारन और असिप्रहारन में सदा समताधारी थे। उनके लिए तृण और मणि तथा पाषाण और सुवर्ण दोनों समान थे। इहलोक और परलोक से उन्हें कोई मतलब नहीं था। उन्हें न तो जीने की इच्छा थी और न ही मरने की। वे संसारसमुद्र से पार होने

वाले थे और कर्मरूप शत्रु को मारने में तत्पर होते हुए विचरते थे। उनके ज्ञान, दर्शन और चारित्र उत्कृष्ट थे। वे आदिरहित थे। उनके स्थान, विहार, पराक्रम, आर्जव, मार्दव, अल्प उपधि, क्षमा, निर्लोभता, गुप्ति, मनःप्रसन्नता आदि सब काम उत्कृष्ट थे। सच्चा संयम-तप पालन करने से उपचय किया हुआ फल निर्वाणमार्ग, उसके विषय में आत्मा को लगाते हुए वे विचरते रहे। इस तरह भगवान को बारह वर्ष व्यतीत हुए।

प्रभुकृत तप और पारणा की संख्या

अब भगवान ने बारह वर्ष में जो तप किया, उसकी संख्या और जो पारणे किये उनकी संख्या कहते हैं- एक संगमदेव के उपसर्ग में छहमासिक तप और उसका एक पारणा, दूसरा पाँच दिन न्यून छहमासिक तप और उसका एक पारणा, नौ बार चौमासिक तप किया, उसके नौ पारणे, दो तीनमासिक तप के दो पारणे, दो ढाई मासिक तप के दो पारणे, छह दो मासिक तप के छह पारणे, दो डेढ मासिक तप के दो पारणे, बारह एकमासिक तप के बारह पारणे, बहत्तर अर्द्धमासिक तप के बहत्तर पारणे, दो सौ उनतीस छट्ठ तप के दो सौ उनतीस पारणे (यह बेले की तपस्या करने में पन्द्रह महीने और आठ दिन तपस्या में गये।), भद्रप्रतिमा दिन दो, महाभद्रप्रतिमा दिन चार और सर्वतोभद्र प्रतिमा दिन दस इन तीन प्रतिमाओं के तीन पारणे और तप के सोलह दिन जानना तथा एक रात्रिकी प्रतिमा बारह के बारह पारणे, इस तरह सब तप के दिन जोड़ने से कुल ग्यारह वर्ष छह महीने पच्चीस दिन हुए। ये सब दिन निराहार चउविहार जानना।

तपयंत्र में दो सौ उनतीस छट्ठ तप बताये हैं। उनके पारणे दो सौ उनतीस हुए। उनमें से एक छट्ठ का अंतिम पारणा केवली अवस्था में हुआ। शेष दो सौ अट्ठाइस पारणे लिखे हैं तथा बारह एक रात्रिकी प्रतिमा के स्थान पर बारह अट्ठमतप लिखने से कुल ४१६५ दिन चउविहार तप के हुए और ३५० दिन प्रथम पारणासहित आहार के हुए। कुल मिला कर ४५१५ दिन भगवान छद्मस्थ रहे। इनके एक साल के ३६० दिन के हिसाब से बारह वर्ष और साढ़े छह महीने हुए। इस तरह भगवान ने नित्य

भोजन तो दूर रहा, पर चतुर्थभक्त तप याने एक उपवास कर के भी कभी पारणा नहीं किया। कम से कम तप जो किया, वह भी छट्ठ का याने दो उपवास का ही किया है।

तपसंख्यायंत्र - स्थापना

तप नाम	तपसंख्या	कुल दिन	पारणा संख्या
छह मासिक (पूर्ण)	१	१८०	१
पाँच दिन कम छहमासिक	१	१७५	१
चार मासिक	९	१०८०	९
तीन मासिक	२	१८०	२
ढाई मासिक	२	१५०	२
दो मासिक	६	३६०	६
डेढ़ मासिक	२	९०	२
एकमासिक	१२	३६०	१२
अर्द्धमासिक	७२	१०८०	७२
अट्ठम तप (तेला)	१२	३६	१२
छट्ठ तप (बेला)	२२९	४५८	२२८
भद्रप्रतिमा	१	२	१
महाभद्र प्रतिमा	१	४	१
सर्वतोभद्र प्रतिमा	१	१०	१

कुल १२ वर्ष ६ महीने १५ दिन तप के तथा ३५० दिन पारणे के जानना। सब पारणे भी एकलठाणे के समझना।

चातुर्मास-संख्या और प्रभु को केवलज्ञान

छद्मस्थावस्था में पहला अस्थिग्राम में, दूसरा नालंदापाडा में, तीसरा चंपानगरी में, चौथा पृष्ठचंपा में, पाँचवा और छठा भद्रिका में, सातवाँ आलंभिका में, आठवाँ राजगृही में, नौवाँ वज्रभूमि में, दसवाँ श्रावस्ती में, ग्यारहवाँ विशाला में और बारहवाँ चंपानगरी में इस तरह भगवान के बारह चौमासे हुए।

तेरहवें वर्ष के जारी रहते गरमी का दूसरा महीना चौथा पक्ष याने वैशाख सुदि १० के दिन, पिछला एक प्रहर दिन शेष रहते सुव्रत नामक दिन में विजय मुहूर्त्त में, जृंभिकगाँव के बाहर ऋजुवालुका नदी के किनारे, वैयावर्त्त नामक चैत्य से न तो अधिक दूर और न ही अधिक नजदीक ऐसे स्थान पर, श्यामाक गाथापति के खेत में शालिवृक्ष के नीचे गोदुह याने गाय दोहने बैठने के आसन में उकडूँ बैठ कर आतापना लेते हुए, पानीरहित बेला की तपस्या में आत्मा का चिन्तन करते हुए उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर, ध्यान में वर्तमान अर्थात् शुक्लध्यान ध्याते हुए भगवान को जिसके समान अन्य कोई ज्ञान नहीं है अर्थात् अनन्य, व्याघातरहित, आवरण याने आच्छादनरहित, सब द्रव्य-पर्यायों को ग्रहण करने वाला और पूर्णिमा के सम्पूर्ण चन्द्रमा की तरह केवल याने एक-अकेला याने जिसे अन्य कोई सहायक नहीं ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

फिर भगवान श्री महावीरस्वामी अर्हन् याने पूजनीय हुए, राग-द्वेषरहित हुए, केवली हुए, सब जानने वाले और सब देखने वाले हुए। सब देव, मनुष्य, असुरलोक के पर्यायों को वे जानने और देखने लगे। सर्वलोक, सब जीवों की आगति, गति, भवान्तर में जाना, आयुष्य, देवलोकादि से च्यवन, देवलोकादि में जा कर उत्पन्न होना, जीव जो मन में सोचते हैं वह, खाते हैं वह, चोरी प्रमुख करते हैं वह, मैथुनादिक सेवन करते हैं वह, प्रकट कर्म करते हैं वह, चोरी-छिपे कर्म करते-कराते हैं वह, इत्यादि सब बातों में से कोई भी बात जिनसे छिपी हुई नहीं रहती, ऐसे वे ज्ञानी हुए। जिनकी जघन्य से भी एक करोड़

देव सेवा करते हैं, ऐसे वे हुए। वे तीनों कालों से संबंधित मन-वचन-काया के योग में वर्तमान सब जीवों के सब भाव जानने वाले हुए।

प्रथम देशना की निष्फलता और रात्रिविहार

भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न होते ही चौसठ इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। तब चौसठ इन्द्र दीक्षामहोत्सव की तरह ही केवलज्ञान का महोत्सव करने के लिए वहाँ पहुँच गये। महोत्सव कर के जृंभिका गाँव के बाहर उन्होंने समवसरण की रचना की। वहाँ भगवान ने क्षणेक बार देशना दी, पर वह देशना निष्फल गयी। किसी ने सामायिकादिक व्रत भी ग्रहण नहीं किये तथा देव सब अव्रती होते हैं, इस कारण से नवकारसीप्रमुख पच्चक्खाण भी किसी ने नहीं किया। तीर्थंकर की देशना कभी खाली नहीं जाती, पर वीरप्रभु की देशना खाली गयी। इसलिए 'इदमप्याश्चर्यम्' याने यह भी आश्चर्य जानना।

भगवान ने वहाँ लाभ का अभाव जान कर और आगे लाभ होने का अवसर जान कर उसी समय वहाँ से विहार किया। कहा गया है कि-

तत्रादिश्य क्षणं धर्मं, देवोद्योते जगद्गुरुः।
लाभाभावान्मध्यमायां, महसेनवनेऽगमत्।।१।।

जहाँ केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वहाँ तीर्थंकर का आचार पालने के लिए एक क्षणमात्र देशना दे कर देवों के उद्योत में जगत के गुरु श्री महावीरस्वामी लाभ का अभाव जान कर वहाँ से बारह योजन दूर मध्यमा पावानगरी के महसेन नामक वन में गये।

रात्रि में विहार करने की मर्यादा नहीं है, पर भगवान ने विहार किया। यह कल्पातीतत्व बताने के लिए जानना। परन्तु छद्मस्थ साधु को तो तीर्थंकर भगवान ने जिस प्रकार आज्ञा दी है, उसी प्रकार से चलना चाहिये। यदि वह विपरीत चलता है, तो प्रायश्चित्त पाता है तथा रात का विहार जीव की जयणा के लिए वर्जित है, क्योंकि रात में कोई भी जीव दिखाई नहीं देता। ऊपर के श्लोक में 'देवोद्योते' ऐसा पाठ कहा है, सो व्यवहार मात्र से

जानना। अन्यथा तीर्थंकर के तो केवलज्ञानरूप उद्योत सदा सर्वदा विद्यमान है तथा प्रभु देवरचित कनक कमल पर चरण रख कर चलते हैं, इसलिए उनका चलना सदा रात-दिन एक समान ही है। पर भगवान का दृष्टान्त दे कर जो साधु रात में विहार करते हैं, उन्हें सुखशीलिये, तीर्थंकर की आज्ञा बाहर और चारित्र से भ्रष्ट जानना।

गणधरादिक संघस्थापना-

१. श्री गौतम गणधर

जब वीर प्रभु मध्यमा पावापुरी में पधारे, तब देवों ने विशेष समवसरण की रचना की। वहाँ भगवान ने पूर्व के द्वार से प्रवेश कर, अशोकवृक्ष को तीन प्रदक्षिणा दे कर, सिंहासन पर बैठ कर 'नमो तित्थस्स' कह कर धर्मोपदेश दिया। तीर्थ ऐसा सूत्र का नाम है। उसे नमस्कार किया, सो मंगलाचार बताने के लिए जानना।

इसी समय में वहाँ एक यज्ञार्थी सोमिल नामक ब्राह्मण यज्ञ याने होम करा रहा था। उसमें अनेक ब्राह्मण सम्मिलित हुए थे।

अपापायां महापुर्यां, यज्ञार्थी सोमिलो द्विजः।
तदाहूताः समाजग्मु-रेकादशद्विजोत्तमाः।।१।।

अपापा महानगरी में रहने वाले सोमिल ब्राह्मण ने यज्ञ करने के लिए ग्यारह बड़े ब्राह्मण पंडितों को आमंत्रित किया था। उनके नाम कहते हैं- १. इन्द्रभूति, २. अग्निभूति, ३. वायुभूति, ४. व्यक्त, ५. सुधर्म, ६. मंडित, ७. मौर्यपुत्र, ८. अकंपित, ९. अचलभ्राता, १०. मेतार्य और ११. प्रभास। ये ग्यारहों पंडित चौदह विद्याओं के जानकार, वेदपाठी और महाअभिमानी होने से ऐसा मानते थे कि संसार में उनके जैसा कोई पंडित नहीं है। इसी प्रकार लोग जिसे सर्वज्ञ कहते हैं, वह हम ही हैं।

उन ग्यारहों के मन में ग्यारह भिन्न भिन्न सन्देह थे। वे इस प्रकार हैं- पहले इन्द्रभूति के मन में यह सन्देह था कि जीव है या नहीं? दूसरे अग्निभूति के मन में कर्म के विषय में सन्देह था। तीसरे वायुभूति के मन

में जीव और कर्म भिन्न हैं या एक हैं, यह सन्देह था। ये तीनों सन्देह वाले तीनों सहोदर याने सगे भाई थे। इनका गौतम गोत्र था।

चौथे व्यक्त के मन में पंचभूत के विषय में सन्देह था। पाँचवें सुधर्म के मन में यह सन्देह था कि जो जैसा होता है, वह मरने के बाद पुनः वैसा ही होता है। याने कि स्त्री मर कर दूसरे भव में भी स्त्री ही होती है और पुरुष मर कर पुरुष ही होता है। क्या यह सच है? छठे मंडित के मन में बन्ध और मोक्ष वास्तव में है या नहीं? यह सन्देह था। सातवें मौर्यपुत्र के मन में देवों के अस्तित्व के विषय में सन्देह था। आठवें अकंपित के मन में नरक के अस्तित्व के विषय में सन्देह था। नौवें अचलभ्राता के मन में यह सन्देह था कि पाप और पुण्य वास्तव में हैं या नहीं? दसवें मेतार्य के मन में परलोक है या नहीं? यह सन्देह था और ग्यारहवें प्रभास के मन में मोक्ष के अस्तित्व के विषय में सन्देह था।

इन ग्यारहों के मन में वेद का अर्थ विपरीत ग्रहण करने के कारण सन्देह रह गये थे। स्वयं के पास पंडिताई का बल अधिक होने के कारण अभिमान से दूसरे की बात वे चलने नहीं देते थे। इन ग्यारहों के पास जो छात्र पढ़ते थे, उनकी संख्या कहते हैं-

पंचण्हं पंचसया, अद्धुट्ठसयाइं हुंति दुन्निगणा।
दुन्नं तु जुअल सयाणं, तिसओ तिसओ हवइ गच्छो।।१।।

पहले पाँच पंडितों के पास पाँच पाँच सौ छात्र पढ़ते थे। उन पाँचों के पच्चीस सौ छात्र हुए। छठे और सातवें के पास साढ़े तीन सौ साढ़े तीन सौ छात्र पढ़ते थे। इन दोनों के मिल कर सात सौ हुए। आठवाँ और नौवाँ यह प्रथम युगल और दसवाँ और ग्यारहवाँ यह दूसरा युगल मिल कर चार जनों के पास तीन सौ-तीन सौ छात्र पढ़ते थे। इन चारों के मिल कर बारह सौ छात्र हुए। इस प्रकार कुल ग्यारहों के मिल कर ४४०० छात्रों का समुदाय हुआ। याने कि ग्यारहों पंडितों के चवालीस सौ विद्यार्थी थे। इस प्रकार वहाँ यज्ञ में अनेक विप्र इकट्ठे हुए थे। वे सब यजन, जापन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह ये षट्कर्म साधते थे। वे प्रभात में ब्रह्मगायत्री, मध्याह्न में

विष्णुगायत्री और संध्या समय में शिवसरस्वती जपते थे।

उनमें से उपाध्यायों के नाम कहते हैं- शंकर, शिवंकर, ईश्वर, महेश्वर, धनेश्वर, सोमेश्वर, शुभंकर, सीमंकर, क्षेमंकर, करुणाकर इत्यादिक।

जानी के नाम कहते हैं- गंगाधर, गयाधर, विद्याधर, महीधर, श्रीधर, लक्ष्मीधर, धरणीधर, भूधर, दामोदर, वृषोदर इत्यादिक।

दुबे के नाम कहते हैं- महादुबे, शिवदुबे, रामदुबे, धामदुबे, कामदुबे, सहदुबे, हरदुबे, वासुदुबे, श्रीदुबे, बलदुबे, धनदुबे, चन्द्रदुबे इत्यादिक।

व्यास के नाम कहते हैं- श्रीपति, उमापति, गणपति, प्रजापति, विद्यापति, भूपति, महीपति, लक्ष्मीपति, गंगापति, पृथ्वीपति, देवपति, दानवपति, धनपति इत्यादिक।

पंडितों के नाम कहते हैं- नागार्जुन, गोवर्द्धन, गुणवर्द्धन, विष्णु, कृष्ण, मुकुन्द, गोविन्द, आनन्द, परमानन्द, उद्धव, माधव, केशव, पुरुषोत्तम, नरोत्तम इत्यादिक।

जोषी के नाम कहते हैं- खिमाइत, भीमाइत, रामाइत, प्रभाइत, गुणाइत, विख्याइत, सोमाइत, धनाइत, कर्माइत, धर्माइत, देवाइत, चन्द्राइत, सूराइत इत्यादिक।

त्रिवेदी के नाम कहते हैं- हरिशर्म, अग्निशर्म, महाशर्म, देवशर्म, नरशर्म, सोमशर्म, सूरशर्म, राजशर्म, वासशर्म, गुणशर्म, धर्मशर्म, कर्मशर्म, कुमारशर्म, धनशर्म, जयशर्म, नागशर्म, विष्णुशर्म, शिवशर्म इत्यादिक।

चतुर्वेदी के नाम कहते हैं- हरि, हरिहर, नरहरि, नारायण, नीलकंठ, कालकंठ, वैकुंठ, श्रीकंठ, मुरारि, हरिराम, जगन्नाथ, विश्वनाथ, श्रीराम, रामकृष्ण, शुकदेव, वामदेव, चन्द्रदेव, स्वयंभू इत्यादिक।

शुक्ल के नाम कहते हैं- कमलाकर, दिवाकर, प्रभाकर, शंकर, यशस्कर, शोभाकर, गुणाकर, रत्नाकर, श्यामदास, रामदास, गोकुलदास, कृष्णदास, देवीदास, हरदास, द्वारिकादास इत्यादिक भिन्न-भिन्न शाखाओं के नाम वाले ब्राह्मण देवलोक के सुख प्राप्त करने के अर्थी होते हुए यागकर्म कर रहे थे।

उस अवसर में श्री वीरस्वामी पूर्व सम्मुख बैठे हुए मिथ्यात्व कर्दम दूर करने वाली देशना मेघसमान गंभीर ध्वनि से दे रहे थे। उसे सुनने के लिए वैमानिकदेव आकाश में देवदुंदुभी बजाते हुए आ रहे थे। उस दुंदुभी का नाद सुन कर सब ब्राह्मण हर्षित हो कर सोचने लगे कि हमारे यज्ञमंत्र इतने प्रभावक हैं कि इन मंत्रों का उच्चारण करते ही देव भी आ गये। इतने में

तो जैसे अस्पृश्यों का मोहल्ला अलग कर मनुष्य अन्य रास्ते से चलता है, वैसे ही देव भी विप्रों का यागमंडप छोड़ कर श्री वीर के समवसरण में जाने लगे। वे देव आपस में यह कहते जा रहे थे कि जल्दी उतावल से जा कर सर्वज्ञदेव को वन्दन करें।

देवों के मुख से ऐसी वाणी सुन कर इन्द्रभूति मन में अमर्ष ला कर अन्य ब्राह्मणों से कहने लगा कि देखो भाइयो ! यह आश्चर्य की बात है कि मनुष्य तो अनजान है, मूर्ख है, इसलिए भूल सकता है, पर ये देव ज्ञानवान हो कर भी भूल रहे हैं। इसलिए हमें आश्चर्य होता है कि इतना विशाल यज्ञमंडप छोड़ कर न जाने ये देव कहाँ जा रहे हैं? मुझे छोड़ कर और कौन ऐसा सर्वज्ञ है, जिसके पास ये जाते हैं? तब उन ब्राह्मणों में से एक ब्राह्मण ने कहा कि हे स्वामिन् ! इस नगर के बाहर कोई महाढोंगी ऐन्द्रजालिक आया है। वह अपना इन्द्रजाल फैला कर स्वयं ज्ञानी बन बैठा है। वह अन्य लोगों से कहता है कि मैं दूसरों के मन की सब बातें जानता हूँ। इस प्रकार बहुत लोगों को उसने भरमाया है। इसलिए देव भी वहाँ देखने के लिए जा रहे हैं।

यह सुनते ही इन्द्रभूति को अत्यन्त मानसहित क्रोध चढ़ा। फिर वह कहने लगा कि ऐसा कौन है जो मेरे होते हुए ज्ञान का अभिमान धारण कर यहाँ आये? क्या वह मुझे नहीं जानता? इसलिए देखो भाइयो ! ये देव जो भूले हैं, वे भी उसके जैसे ही नासमझ होंगे। जैसा वह ज्ञानी है, वैसे ही ये देव भी जानना। कारण कि-

अहो सुराः कथं भ्रान्त्या, तीर्थांश्च इव वायसाः।
कमलाकरवद् भेकाः, मक्षिका चन्दनं यथा।।१।।

आश्चर्य है कि ये देव हो कर भी भ्रान्ति से जैसे कौए तीर्थ छोड़ कर चले जाते हैं, वैसे ही ये भी यज्ञ छोड़ कर जा रहे हैं। इसलिए ये देव कौए जैसे हैं अथवा मेंढक जैसे समुद्र छोड़ कर चला जाता है, वैसे ही ये भी समुद्र जैसा यज्ञ छोड़ कर जा रहे हैं। इसलिए ये देव मेंढक जैसे हैं अथवा जैसे मक्षिका चन्दन को छोड़ जाती है, वैसे ही ये देव भी यज्ञरूप चन्दन को

छोड़ कर जा रहे हैं। इसलिए ये देव मक्खी जैसे हैं।।१।। अथवा-

करभा इव सद्वृक्षान्, क्षीरान्नं शूकरा यथा।
अर्कस्यालोकवद् घूका, त्यक्त्वा यागं प्रयान्ति यत्।।२।।

जैसे ऊँट भले वृक्षों को छोड़ कर कंटीले वृक्ष के पास जाते हैं, वैसे ही ये देव भी यज्ञ छोड़ कर जा रहे हैं। इसलिए ये ऊँट जैसे हैं। अथवा क्षीरभोजन को छोड़ कर जैसे सूअर विष्टा पसन्द करता है, वैसे ही ये देव भी यज्ञरूप क्षीरभोजन छोड़ कर विष्टाभोजन के समान उस ऐन्द्रजालिक के पास जा रहे हैं। इसलिए ये देव भी सूअर जैसे हैं। अथवा जैसे सूर्यप्रकाश को छोड़ कर उल्लू अंधेरे में जाता है, वैसे ही ये देव भी यज्ञरूप सूर्य को छोड़ कर अन्धकाररूप ऐन्द्रजालिक के पास जा रहे हैं। इसलिए ये उल्लू के समान हैं।

और यह भी एक रीति है कि जो बुरा मनुष्य होता है, वह बुरे के पास जाता है। कहा भी है कि-

अहवा जारिसो चिय, सो वाणी तारिसा सुरा वेन्ति।
अणुसरिसो संजोगो, गामनडाणं च मुक्खाणं।।१।।

अथवा जैसा वह ज्ञानी है, वैसे ही ये देव भी हैं। इसलिए इन दोनों का यह समान संयोग हुआ है। जैसे ग्रामनट मूर्ख हैं, वैसे ही गाँव के लोग भी मूर्ख हैं। इन दोनों का समान संयोग मिलता है। वैसे ही ये देव भी जो जा रहे हैं, वे भी मूर्ख हैं और जो वह ज्ञानी है, वह भी मूर्ख है। इसलिए जो जैसा होता है, वह अपने जैसे अन्य के पास जाता है। इस तरह एक समान लोग एक-दूसरे के पास जाते-आते हैं। यही रीति है तथा-

रे हिल्ली विहिल्ली करेली, म चढीस पायवे निंबे।
अहवा तुज्झ न दोसो, सरिसा सरिसेण रज्जन्ति।।१।

करेले की बेल को नीम के पेड़ पर चढ़ते देख कर कोई मनुष्य बोला कि हे करेली ! तू इस नीम के पेड़ पर मत चढ़, क्योंकि तू स्वयं कड़वी है और यह नीम का पेड़ भी कड़वा है। इसलिए अरी भूँडी ! तू और भी अधिक कड़वी हो जायेगी। पर उसकी बात उसने नहीं मानी और उसने नीम

के वृक्ष पर चढ़ना नहीं छोड़ा। तब उसने कहा कि हे भोली ! यह तेरा दोष नहीं है, क्योंकि संसार में बराबरी वाले लोग जब मिलते हैं, तब वे प्रसन्न होते हैं। वैसे ही तुम दोनों बराबर हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है

इसी प्रकार ये देव और ज्ञानी भी दोनों जोड़ के मिले हैं। उस ऐन्द्रजालिक को ये देव वहाँ जा कर वन्दन करते हैं, तो क्या ये देव भी भूले पड़े, ऐसा नहीं कहा जायेगा?

इन्द्रभूति और भी सोचने लगा कि मेरे जैसे पंडित के होते हुए यह लोगों को ठगता है और ज्ञानी नाम धारण करता है, तो यह मुझ जैसे पंडित से कैसे सहन किया जाये? मुझसे तो इसका मिथ्या अभिमान सहा नहीं जाता और इस ढोंगी का ढोंग भी मेरे अलावा अन्य कोई प्रकट नहीं कर सकता। इसलिए मैं वहाँ जा कर इसका अभिमान नष्ट करूँ।

जैसे एक आकाश में दो सूर्य नहीं हो सकते, एक गुफा में दो सिंह साथ नहीं रह सकते और एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं, वैसे ही यह भी सर्वज्ञ और मैं भी सर्वज्ञ ऐसा कभी हो नहीं सकता। यह ऐन्द्रजालिक तो विदेश में कला सीख कर आया है और सर्वज्ञ नाम धारण कर लोगों और देवों को भरमाता है, पर मैं तो सब विद्याओं में निपुण हूँ।

इतने में भगवान को वन्दन कर समवसरण से कई लोग वहाँ पहुँचे। उनसे इन्द्रभूति ने पूछा कि हे लोगो ! तुम जिसके पास गये थे, वह सर्वज्ञ कैसा है? तब उन्होंने कहा कि उसकी बात बताई नहीं जा सकती, पर तुम स्वयं सर्वज्ञ नाम धारण कर हमसे क्या पूछते हो? वह सर्वज्ञ तो मन की बातें जानता है, पर तुम तो इतना भी नहीं जानते। व्यर्थ सर्वज्ञ कहलाते हो।

यह सुन कर इन्द्रभूति ने जान लिया कि वह माया का घर याने मायावी है, इसलिए सब लोग तो उसे मानने लगे, पर जब मैं वहाँ जाऊँगा, तब तो वह मेरे आगे बोल भी नहीं सकेगा। क्योंकि-

घरसूरा मठपंडिया, गामगमारां गोठ।
भरी सभा में बोलता, थर-थर धूजे होठ।।१।।

अपने घर में तो सब कहते हैं कि हम शूरवीर हैं और अपने मठ में सब

कहते हैं कि हम पंडित हैं तथा गाँव में जो गँवार होता है, वह भी पंच बनता है, परन्तु जब पंडितों से भरी हुई सभा में बोलना पड़ता है, तब होंठ थर-थर धूजने लगते हैं। वैसे ही यह भी दूसरों के आगे अपना नाम सर्वज्ञ कहता है, पर मेरे आगे बोल भी नहीं सकेगा।

अरे ! जिस अग्नि ने पर्वतों को जला डाला, उसके आगे वृक्ष का क्या भार है? जिस वायु ने हाथी जैसों को उड़ा दिया, उसके आगे पूनी का क्या जोर है, जिस नदी में हाथी बह गये, उसके आगे बिचारी कीड़ी किस गिनती में है?

इस प्रकार इन्द्रभूति यह सोच रहा था कि इतने में अग्निभूति ने कहा कि भाई ! उस ऐन्द्रजालिक को जीतने के लिए तुम इतने सोच में क्यों पड़े हो? कीड़ी पर कटक क्या ले जाना है? केंचुए के लिए गरुड़ को क्या बुलाना है? तृण पर कुल्हाड़ी चलाना किस काम का है? कमल की नाल को तोड़ने के लिए परशु उठाना किस काम का है? बेल उखाड़ने के लिए हाथी का क्या काम है? वैसे ही उस बेचारे गरीब सर्वज्ञ के पास वाद करने के लिए तुम क्या जाते हो? मुझे ही आज्ञा दो, तो मैं ही उसे जीत कर आ जाऊँ।

भाई के ऐसे वचन सुन कर इन्द्रभूति ने कहा कि हे भाई ! उसे क्या जीतना है? उसे तो मेरे पाँच सौ शिष्यों में से कोई भी जीत सकता है। फिर भी मुझसे रहा नहीं जाता। क्योंकि थोड़ा सा शल्य भी काम का नहीं होता। इसलिए मैं स्वयं जाऊँगा। अन्य सब वादियों को तो मैंने जीत लिया है, पर यह कहीं रह गया लगता है। जैसे हाथी के मुख में कोई कण रह जाता है, मूँग राँधने में कोई करडु मूँग रह जाता है, कोल्हू में पीलते वक्त कोई तिल रह जाता है, अगस्तिऋषि द्वारा समुद्र को तीन चुल्लू में पीये जाते समय कोई बिन्दु रह जाता है और चने भूनते समय कोई चना बाहर रह जाता है, वैसे ही यह भी रह गया है। इसलिए हे भाई ! इस एक को न जीतने पर लोक में यह कहा जायेगा कि मैंने सबको नहीं जीता। एक बार किसी स्त्री का शील खंडित हो जाये, तो वह स्त्री असती कहलाती है, वैसे ही इसे जीते

बिना लोक में मेरा यश नहीं रहेगा। इसलिए इसके साथ वाद करने के लिए मुझे ही जाना पड़ेगा। इसे मैं हराऊँगा, तो ही संसार में मेरा यश रहेगा।

फिर पुनः अभिमान पूर्वक इन्द्रभूति ने कहा-

हं हो ! वादिगणा भोटाः, कर्णाटादि-समुद्भवाः।
कस्माददृश्यतां प्राप्ता, यूयं मम पुरः सदा।।१।।

अरे कर्णाटादिक देशों में उत्पन्न वादियो ! तुम मेरे आगे दिखाई क्यों नहीं देते? तुम अदृश्य क्यों हो गये हो? तुम सब मेरे आगे हारे हुए हो, इसीलिए छिप गये हो। क्योंकि मैंने इतने देशों के पंडितों को हराया है-

लाटा दूरगताः प्रवादिनिवहा, मौनं श्रिता मालवाः।
मूकत्वं मगधागता गतमदा, गर्जन्ति नो गुर्जराः।।
काश्मीराः प्रणताः पलायनकरा, जातास्तिलङ्गोद्भवाः।
विश्वे चापि स नास्ति यो हि कुरुते, वादं मया साम्प्रतम्।।१।।

भोट-कर्नाटक देश के वादी मुझे देख कर अदृश्य हो गये, तो फिर अन्य देशों के वादियों की मेरे आगे क्या ताकत है? लाट देश के वादीसमूह ने मेरा नाम सुन कर यह सोचा कि वहाँ जायेंगे, तो हार कर लौटना पड़ेगा। यह सोच कर वे दूर चले गये। एक लाख बानवे हजार मालव देश के वादी थे। वे हार जाने के भय से मेरे आगे मौन धारण कर के रहे। इसी प्रकार मगध देश के दस लाख वादी मेरे आगे मूक (गूँगे) हो गये याने एक शब्द भी नहीं बोल सके तथा गुजरात देश के एक लाख सत्तर हजार वादी मेरे आगे मदरहित हो गये। वे हाथी के समान गर्जना कर एक शब्द भी नहीं कह सके। वे ऐसे दीन हो गये। जहाँ सरस्वती का वास है, ऐसे श्री काश्मीर देश के वादी आ कर मेरे पाँव पड़े। इस कारण तैलंग देश में उत्पन्न नौ लाख वादी मेरा नाम मात्र सुन कर ही भाग गये। अन्य कोई बात उन्हें सूझी ही नहीं। अधिक क्या कहूँ? संसार में ऐसा कोई भी पंडित नहीं है, जो इस समय यहाँ आ कर मेरे साथ वाद करे। याने कि मैंने सब वादियों को जीत लिया है, पर मुझे जीतने वाला संसार में कोई नहीं है।

फिर इस ऐन्द्रजालिक की क्या शक्ति है? मैं जब तक प्रमाद में हूँ, तब तक ही यह सर्वज्ञ कहलाता है। पर जब मैं वाद करने के लिए सामने जाऊँगा, तो यह उसी समय भाग जायेगा। कहा भी है कि-

तावद् गर्जन्ति खद्योतास्तावद् गर्जति चन्द्रमाः।
उदिते तु सहस्रांशौ, न खद्योतो न चन्द्रमाः।।१।।

जुगनूँ का प्रकाश जब तक चन्द्रमा का उदय नहीं होता, तब तक ही रहता है और चन्द्रमा का प्रकाश भी जब तक सूर्य का उदय नहीं होता, तब तक रहता है, पर जब हजार किरणों को धारण करने वाले सूर्य का उदय होता है, तब जुगनूँ और चन्द्रमा इन दोनों का प्रकाश नहीं रहता।

इसी तरह अन्य वादियों को हराने में तो यह ऐन्द्रजालिक समर्थ है, पर मेरे आगे इसका प्रभाव नहीं चलेगा। इसने जब तक मुझे नहीं देखा है, तब तक ही यह अन्य लोगों को भरमा सकता है। अब व्यर्थ घर में बैठ कर अभिमान करना मेरे लिए किस काम का? मैं स्वयं वहाँ जा कर उसका बल-पराक्रम देखूँ तो सही, कि वह क्या पढ़ा है? अरे मुझे इतने शास्त्र तो 'भले' के पाठ की तरह आते हैं और याद हैं-

लक्षणे मम दक्षत्वं, साहित्ये संहिता मतिः।
तर्केऽकर्कशता नित्यं, क्व शास्त्रे नास्ति मे श्रमः।।१।।

लक्षणशास्त्र में मेरा दक्षत्व है। याने लक्षणशास्त्र मैं अच्छी तरह जानता हूँ। स्त्री-पुरुषादिकों के बत्तीस लक्षण कुशलतापूर्वक कह सकता हूँ तथा पदार्थ के लक्षणों का तो ऐसे प्रतिपादन करता हूँ कि उसमें अव्याप्तिप्रमुख दोष न रहे। काव्यादिक साहित्यशास्त्र के प्रतिपादन में मैं सदा अस्खलित हूँ। तर्कशास्त्र में मैं इतना निपुण हूँ कि कोई मुझे प्रत्युत्तर नहीं दे सकता। ऐसे कठिन तर्क मैं जानता हूँ। इसलिए तर्कशास्त्र मेरे लिए कठिन नहीं है। वह सदा अकर्कश है। अधिक क्या कहूँ? ऐसा कौनसा शास्त्र है कि जिसमें मेरी गति न हो?

अर्थात् अठारह व्याकरण, अगणित कोश, छन्दरत्नाकरादिक अलंकार याने कि काव्य की शोभा अतिशयालंकारादिक, नवरसादिक याने कि

वात्स्यायनादिक, धर्मशास्त्र याने कि सर्व पुराण मीमांसादिक, ज्योतिषशास्त्र सो चूडामणि प्रमुख, वैद्यकशास्त्र, कालज्ञानादिक ये सब शास्त्र मेरे लिए अनजान नहीं है। फिर यह ऐन्द्रजालिक क्या मुझे जीत सकता है? इसलिए अब मैं वहाँ जा कर सब देव-दानव-मानव के देखते उसे हरा कर उसका सर्वज्ञता का अभिमान नष्ट करूँ, ऐसा मन में अभिमान कर के पाँच सौ छात्रों को साथ ले कर- जैसे मानो इन्द्र ही उसे खींच कर ले जाता हो, वह इसलिए कि भगवान की देशना प्रथम खाली गयी थी, इस कारण से भगवान एक रात में बारह योजन चल कर यहाँ आये। इससे इन्द्र महाराज ने सोचा कि इन्हें शिष्य की प्राप्ति हो तो अच्छा हो, इसलिए मानो- इन्द्र से प्रेरित इन्द्रभूति समवसरण की तरफ जा रहा था। कवि ऐसी कल्पना करता है, अन्यथा तो ऐसा ही होने वाला है।

पाँच सौ छात्रों से घिरा हुआ इन्द्रभूति वाद करने की इच्छा से समवसरण की तरफ चला। उस समय पाँच सौ छात्र इन्द्रभूति की बिरुदावली बोल रहे थे। वह इस प्रकार कि- सरस्वती-कंठाभरण, वादिविजयलक्ष्मी-शरण, ज्ञात-सर्वपुराण, वादिकदली-कृपाण, पंडितश्रेणी-शिरोमणि, कुमतांधकार-नभोमणि, जितवादिवृन्द, वादिगरुड-गोविन्द, वादिघटमुद्गर, वादिघूक-भास्कर, वादिसमुद्र-अगस्ति, वादिवृक्ष-हस्ति, वादिमुख-भंजन, सकलभूपालरंजन, षट्भाषावलीमूल, परवादिमस्तकशूल, वादिगोधूमघरट्ट, मर्दित वादिमरट्ट, वादिकंदकुदाल, वादिवृंद-भूपाल, वादिगजसिंह, वादिशिरलीह, वादिवेश्याभुजंग, शब्दलहरीगंगातरंग, सरस्वतीभंडार, चतुर्दशविद्या-अलंकार, वादिहृदयशाल, वादियुद्धमाल, बहुराजसमाज-मुकुट, बहुबुद्धिविकट, ज्ञानरत्नाकर, शब्ददिवाकर, महाकवीश्वर, कृतशिष्य-बृहस्पति, निर्जितभार्गवमति, कौजंगम-सरस्वती, प्रत्यक्षभारती, जितानेकवाद, सरस्वती-लब्धप्रसाद इत्यादिक अनेक प्रकार की बिरुदावली छात्र बोल रहे थे और इन्द्रभूति शान से चल रहा था।

वह रास्ते में पुनः विचार करने लगा कि अरे देखो तो सही, इस मूर्ख ने यह क्या किया? इसने सर्वज्ञता के आटोप से मुझे नाहक क्रोध चढ़ाया।

अब इससे वह क्या सुखी होने वाला है? जैसे कोई आग में गिरता है, तो वह भस्म हुए बिना नहीं रहता, वैसा ही इसने भी किया है।

ऐसा सोचते हुए जब उसने समवसरण की पहली सीढ़ी पर चढ़ कर देखा, तो उसे तीन गढ़ दिखाई दिये। वे गढ़ कैसे हैं? पहला गढ़ रौप्य का है। उसके कंगूरे सुवर्णमय हैं। चार दिशाओं में चार प्रवेशद्वार हैं। दूसरा सुवर्णगढ़ है। उसके कंगूरे रत्न के हैं। तीसरा रत्नगढ़ है। उसके कंगूरे मणिकान्त के हैं। समवसरण का विस्तार एक योजन का है। उसके मध्य में अशोकवृक्ष है। ऊपर तीन छत्र सहित सुवर्ण का सिंहासन है। उस पर स्वामी बैठे हैं।

यह सब इन्द्रभूति ने अपनी आँखों से देखा। तब मन में सोचा कि मैंने वादी तो अनेक देखे हैं, पर ऐसा तेजस्वी वादी कहीं नहीं देखा। क्या यह ब्रह्मा है? नहीं, यह ब्रह्मा तो नहीं लगता। क्योंकि ब्रह्मा के तो सावित्री नामक स्त्री है। उसके हाथ में पवित्री और कमंडलु है। वह हंसवाहन है। उसके पाँचवाँ गर्दभमुख है। ये सब इसमें नहीं मिलते। इसलिए यह ब्रह्मा तो नहीं है।

फिर क्या यह विष्णु है? नहीं, यह वह भी नहीं है। क्योंकि विष्णु के लक्ष्मी नामक स्त्री है, चार हाथ हैं, शंख-चक्र-गदा-धनुष्य ये आयुध हैं, गरुड़ वाहन है और उसका वर्ण श्याम है। इसलिए यह विष्णु भी नहीं है।

तो क्या यह ब्रह्मज्ञानी है? नहीं, वह भी नहीं है, क्योंकि वह तो अरूपी है। चन्द्रमा सोलह कलाओं से सम्पूर्ण है, पर कलंकसहित है, इसलिए यह चन्द्रमा भी नहीं है। यदि इसे सूर्य कहूँ, तो सूर्य से भी इसका तेज बहुत अधिक है। परन्तु सूर्य की किरणें उष्ण हैं, वे उष्ण किरणें इसके नहीं हैं। इसलिए यह सूर्य कैसे हो सकता है? यदि इसे इन्द्र कहूँ, तो यह इन्द्र भी नहीं है, क्योंकि उसके हजार आँखें हैं। वे इसके नहीं हैं और यदि इसे मेरु कहूँ, तो मेरु कठिन है, वह कठिनता इसमें नहीं है। इसलिए यह मेरु भी नहीं है।

तो यह सर्वगुण-सम्पूर्ण सबसे अधिक जो तीर्थंकर कहा जाता है, वह तीर्थंकर है। क्योंकि ऐसे गुण तो तीर्थंकर के अलावा अन्य किसी में होते ही नहीं है। इसलिए समस्त पापहर, सर्वलोक के शिवंकर, षट्काय के रक्षक, अनाथ के नाथ, अशरण-शरण, तरण-तारण ऐसे जो श्री वर्धमान सर्वज्ञ तीर्थंकर कहे जाते हैं, ये वे ही लगते हैं। सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान सौम्य, समुद्र के समान गंभीर ऐसे ये श्री महावीर तीर्थंकर के अलावा और कौन हो सकते हैं? इन्द्रभूति श्री वीरप्रभु को देख कर सोचते हैं-

किं नन्दी किं मुरारिः किमु रतिरमणः किं नलः किं कुबेरः;
किं वा विद्याधरोऽसौ किमिह सुरपतिः किं विधुः किं विधाता।
नायं नायं न चायं न खलु न हि न वा नापि नासौ न चैव;
तीर्थं कर्त्तुं प्रवृत्तो निजगुण विभवैर्वीर देवाधिदेवः।।१।।

क्या ये महादेव हैं? कृष्ण हैं? अत्यन्त रूपवान कामदेव हैं? नलराजा हैं? इन्द्र के भंडारी कुबेर हैं? क्या ये विद्याधर हैं? इन्द्र हैं? चन्द्र हैं? या ये विधाता हैं? इस तरह कल्पनाएँ कर के फिर विचारपूर्वक निर्णय करने लगे कि ये महादेव तो नहीं है, क्योंकि वे तो लंगोटधारी हैं। इनका सुवर्ण जैसा वर्ण है, इसलिए ये कृष्ण भी नहीं हैं। राज-चिह्नों से वर्जित होने के कारण ये नलराजा भी नहीं हैं। ये त्यागी हैं, इसलिए कुबेर भंडारी भी नहीं हैं। ये पादचारी हैं, इसलिए विद्याधर भी नहीं है। भगरहित हैं, इसलिए इन्द्र भी नहीं हैं। कलंकरहित हैं, इसलिए चन्द्र भी नहीं हैं। इसी प्रकार घटना-विवर्जित हैं, इसलिए विधाता भी नहीं हैं। ये तो सबसे अधिक लक्षणवान दीखते हैं। फिर कौन हैं ये? इस प्रकार विचार करते करते उनके ध्यान में आया कि अरे ! ये तो तीर्थस्थापना करने के लिए अपने अतिशयादि गुणरूप धन के द्वारा जो प्रवर्तित हैं ऐसे देवाधिदेव, जिन्हें लोग श्री वीरजिनेन्द्र कहते हैं, वे ये ही हैं। अन्य कोई नहीं हैं, ऐसा लगता है।

हा ! हा ! ये मैंने क्या किया? यहाँ मैं कैसे संकट में फँस गया? इनके आगे मेरा मान कैसे रहेगा?

कथं मया महत्त्वं मे, रक्षणीयं पुरार्जितम्।
प्रासादं कीलिकाहेतो-र्भंक्तुं को नाम वाञ्छति।।१।।

अब पूर्वोपार्जित महानता को मैं कैसे सुरक्षित रख सकूँगा? मैंने पूर्व में अनेक वादियों को जीता है। इससे मैं लोकप्रसिद्ध हुआ हूँ और पंडित कहलाता हूँ। अब मैं मेरी पंडिताई को बचाने का क्या उपाय करूँ कि जिससे मेरी प्रतिष्ठा लोगों में बनी रहे? यदि मैं इनके साथ वाद न करूँ, तो लोग क्या कहेंगे? वे पूछेंगे कि वाद करने गये थे, फिर लौट क्यों आये? इसलिए यद्यपि मैंने मूर्खता की है, तो भी अब बिना वाद किये लौटना ठीक नहीं है। अब तो सिर्फ़ एक को ही जीतना शेष रहा है। थोड़े के लिए अब मुझे मेरा सब यश गँवाना नहीं चाहिये। एक खीले के लिए अपना पूरा प्रासाद तोड़ कर खीला निकालना कोई भी नहीं चाहता। ऐसा मूर्ख कोई नहीं होता। तथा-

सूत्रार्थी पुरुषो हारं, कस्त्रोटयितुमीहते।
कः कामकलशस्यांशं, स्फोटयेत् ठिक्करी कृते।।१।।

ऐसा कौन पुरुष होगा, जो सूत्र याने धागे के लिए हार तोड़ने की इच्छा करे? याने कि धागे के टुकड़े के लिए कोई हार तोड़ना नहीं चाहता, वैसे ही इस एक को न हरा कर मेरा यशरूपी हार मुझे तोड़ना नहीं चाहिये। तथा कौन पुरुष ठीकरे को पाने के लिए मनोवांछित पूर्ण करने वाले कामकुंभ को फोड़ेगा? अर्थात् ठीकरे के लिए कोई भी कामकुंभ को नहीं फोड़ता। वैसे ही मैं भी इनके साथ वाद किये बिना ऐसे ही लौट जाऊँगा, तो कामकुंभ समान मेरा यशरूपी घट फोड़ डालने जैसा होगा। इससे मेरी गिनती मूर्खों में होगी। इसलिए मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये। तथा-

भस्मने चन्दनं को वा, दहेद् दुष्प्राप्यमप्यथ।
लोहार्थी को महाम्भोधौ, नौ भङ्गं कर्तुमिच्छति।।२।।

कौन बुद्धिमान पुरुष भस्म याने राख के लिए दुष्प्राप्य-कठिनाई से प्राप्त होने वाले चन्दन को जलायेगा? याने कि भस्म के लिए मलयागिरि चन्दन को कोई नहीं जलाता। तथा ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो लोहे के टुकड़े

के लिए महासागर में नाव याने जहाज को तोड़ने की इच्छा करेगा? अर्थात् कोई भी जहाज नहीं तोड़ेगा, पर जो मूर्ख होगा, वह अवश्य तोड़ डालेगा। वैसे ही यदि मैं इनके साथ वाद न करूँ, तो मेरा यशरूप मलयागिरि चन्दन जल कर भस्म हो जाता है और मेरी यशरूपी नौका महासमुद्र में तोड़ डालने जैसा होता है। इसलिए ऐसा मूर्ख मुझे नहीं होना चाहिये।

अथवा पूर्वोक्त श्लोकों का अर्थ इस प्रकार मिलाना-

भगवान के अतिशय देख कर इन्द्रभूति ने सोचा कि ये कोई महापुरुष हैं, इसलिए इनके साथ वाद कर के मैं अवश्य हार जाऊँगा। इससे इनके सम्मुख आ कर मैंने एक खीले के लिए मेरा यशरूपी प्रासाद तोड़ने की मूर्खता की है तथा एक तंतु के लिए हार तोड़ डालने की इच्छा की है। यह तो मैंने एक ठीकरे के लिए कामकुंभ फोड़ डालने जैसा किया, राख के लिए चन्दन जलाने जैसा किया तथा लोहे के एक टुकड़े के लिए महासमुद्र में मेरे सम्पादन किये हुए यशरूपी जहाज को तोड़ डालने जैसा किया। इस प्रकार विचार कर वे प्रभु का वचनातिशय देखने लगे।

सारङ्गी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया, नन्दिनी व्याघ्रपोतं;
मार्जारी हंसबालं प्रणयपरिवशात्, केकिकान्ता भुजङ्गम्।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा, जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति;
श्रुत्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुशं, योगिनं क्षीणमोहम्।।१।।

समपरिणामपूर्वक एकान्त में रहने से प्रकर्षता से जिनके कलुष याने पाप उपशमित हुए हैं तथा क्षीण हुआ है मोहजिनका ऐसे योगियों को सुन कर याने कि उपशमसहित, पापरहित और मोहरहित ऐसे जो योगी मुनिराज हैं, उन्हें सुन कर अर्थात् ऐसे मुनियों के वचन सुन कर, जिन्हें जन्म से ही आपस में एक-दूसरे के साथ बैर है, ऐसे तिर्यंच जीव भी समवसरण में मदरहित होते हुए अपने अपने बैर को छोड़ देते हैं। याने कि जिनके वचन ऐसे हैं कि उन्हें सुनने से जीव आजन्म के बैर भी भूल जाते हैं। यह बैर किन किन में है? सो कहते हैं-

प्रभु के समवसरण में आयी हुई हरिणी सिंह के शावक (छौने) को स्पर्श करती है। याने कि सिंह और हरिण में आजन्म का बैर है, पर समवसरण में उनका बैर मिट जाता है। इस कारण से वे समवसरण में आपस में मिल कर इकट्ठे बैठे हैं। गाय अपने पुत्र की बुद्धि से बाघ के बालक को चाट रही है। याने कि बाघ और गाय में बैर है, तो भी यहाँ वह बैर मिट गया है। इसलिए वह बाघ के बच्चे के साथ बैठी हुई लाड़ कर रही है। बिल्ली स्नेहवश हो कर हंस के बच्चे को स्पर्श कर के बैठी है। याने कि बिल्ली भी बालहंस को मारती नहीं है। इसी प्रकार मोर और सर्प में आपस में बैर है, तो भी वे प्रभु के समवसरण में ऐसे हो कर बैठे हैं कि मोरनी साँप के साथ बैठी है। इस तरह यहाँ ऐसे जन्मजात बैर सब जीवों के मिट गये हैं।

भगवान का ऐसा वचनातिशय देख कर इन्द्रभूति विस्मित हो गये। इतने में भगवान बोले कि हे इन्द्रभूति ! गौतम गौत्रिय ! तुम भले आये। तुम सुख-समाधि में हो।स्वामी का ऐसा वचन सुन कर इन्द्रभूति मन में विचार करने लगे कि ये मेरा नाम और गोत्र भी जानते हैं? मैं पूर्व में कभी इनसे मिला तो नहीं हूँ, पर मेरा नाम तो संसार में प्रसिद्ध है। मेरा नाम कौन नहीं जानता? सब जानते ही हैं। मैं कोई सामान्य मनुष्य तो नहीं हूँ ? सूर्य कहाँ छिपा रहता है? पर इन्होंने मुझे मेरा नाम ले कर जो पुकारा है, इसका रहस्य मेरी समझ में आ गया है। इन्होंने मात्र मुझे भरमाने के लिए ही नाम ले कर बुलाया लगता है। पर मैं कोई ऐसा नासमझ (भोला) नहीं हूँ कि इनके मीठे वचनों से मोहित हो जाऊँ। मैं तो इन्हें तभी मानूँगा, जब ये मेरे मन में रहा हुआ यह सन्देह कि जीव है या नहीं? बता देंगे या मिटा देंगे। तभी मैं इन्हें वास्तव में सर्वज्ञ मानूँगा। यदि ऐसा नहीं होता, तो मैं यह समझ लूँगा कि मेरे साथ वाद में हार जाने के भय से मुझे प्रसन्न रखने के लिए ये मुझे मधुर वचन से बुला रहे हैं। ये अपने मन में सोचते होंगे कि मधुर वचनों के कारण मैं इनसे वाद नहीं करूँगा।

इन्द्रभूति ऐसा विचार कर रहे थे कि इतने में भगवान बोले कि हे इन्द्रभूति ! तुम्हारे मन में यह सन्देह है कि जीव है या नहीं? जीव का उत्थापन करने वाले और जीव की स्थापना करने वाले वेदपदों को जान कर तुम सन्देह में पड़े हो। तुम पदों का अर्थ विपरीत करते हो, इसलिए तुम्हें संदेह है। वेद के पदों का पूर्वापर विरोधरहित अर्थ मैं तुम्हें बताता हूँ। उसे सुनो।

यह कह कर स्वयं भगवान स्वमुख से वेद के पदों का उच्चारण करने लगे। उनकी ध्वनि कैसी थी? सो कहते हैं-

समुद्रो मथ्यमानः किं, गङ्गापूरोऽथवा किमु?
आदिब्रह्मध्वनिः किं वा, वीर वेदध्वनिर्बभौ।।१।।

भगवान की ध्वनि सुन कर लोग विचार करते थे कि-

समुद्रमंथन किये जाते समय जो ध्वनि होती है, क्या वैसी ही ध्वनि हो रही है? अथवा गंगानदी में बाढ़ आने पर जो ध्वनि होती है, क्या वैसी ही ध्वनि हो रही है? अथवा क्या आदिब्रह्म की ध्वनि हो रही है? ऐसी ध्वनि वीर भगवान के मुख से निकली।

भगवान ने कहा कि वेद में जीवसत्तानिषेधक पद ऐसे हैं-

विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति।
न प्रेत्यसंज्ञास्तीति जीवाभावश्रुतिः।।

हे गौतम ! वेद के इन पदों का अर्थ तुमने ऐसा जाना है कि 'विज्ञानघन' - याने विज्ञानसमूह जो चेतनपिंड है, 'स एव' - वही चेतनपिंड 'एतेभ्यो भूतेभ्यः' - पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश इन पाँच भूतों से 'समुत्थाय' - उत्पन्न हो कर 'तान्येवानुविनश्यति' - उन भूतों का नाश होने के बाद नष्ट होता है (याने कि उन भूतों का नाश होने के बाद उस विज्ञानघन चेतन का भी नाश होता है।) इसलिए 'न प्रेत्यसंज्ञास्ति' - परलोक नहीं है। अर्थात् इन पृथिव्यादिक पाँच भूतों से जीव उत्पन्न होता है और ये पृथिव्यादिक पाँच भूत जब नष्ट हो जाते हैं, तब जीव का भी नाश हो जाता है। इसलिए जीव मर कर परलोक में जाता है, यह कहना वृथा है। क्योंकि परलोक में जाये, ऐसा कोई जीव

नहीं है।

तो फिर क्या है? तो कहते हैं कि ज्ञान है। यह ज्ञान ही इन भूतों से उत्पन्न होता है। जैसे दीपक उत्पन्न हो कर जब विनष्ट होता है, तब उसका प्रकाश भी चला जाता है। वैसे ही इन भूतों का नाश होने पर जीव का भी नाश हो जाता है। प्रयोग भी है कि- ज्ञानं नान्यभवगं भौतिकत्वात् दीपवत्।। ज्ञान है सो भूतों से उत्पन्न होता है, इसलिए अन्य (दूसरे) भव में जाने वाला नहीं है। जैसे दीपक है, वैसे ही यह भी है। इसलिए परभव में जाने वाला जीव नहीं है और हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि पाँच भूत तो देखने में आते हैं, पर जीव देखने में नहीं आता। जब मनुष्य मर जाता है, तब उसे जला कर राख कर देते हैं। वहाँ अस्थिप्रमुख तो देखने में आते हैं, पर जीव का चिह्न तो कुछ नहीं दीखता। वेद के इस पद के अर्थ से तुम्हें ऐसा लगता है कि जीव नहीं है।

और तुम्हारे मन में ऐसा भी जँचा है कि वेद में ऐसा भी पद है-

स वै अयमात्मा ज्ञानमयो मनोमयो वाङ्मयश्चक्षुर्मय, आकाशमयो वायुमयस्तेजोमयः आपोमयः पृथिवीमयः क्रोधमयः अक्रोधमयः हर्षमयः शोकमयः धर्ममयः अधर्ममयः इत्यादिक।

'स' - वह 'अयं' - यह 'आत्मा' - जीव जो है वह 'ज्ञानमयः' - याने ज्ञानवान, मनवाला, वचनवाला, नेत्रवान और इसी प्रकार आकाशमय, वायुमय, तेजमय, जलमय, पृथिवीमय तथा क्रोधमय, अक्रोधमय, हर्षमय, शोकमय, धर्ममय, अधर्ममय इत्यादिक वेद के पद देखने से तुम्हें यह संदेह हुआ है कि जीव है या नहीं?

हे इन्द्रभूति ! योगीश्वर द्वारा यह आत्मा प्रत्यक्ष जाना हुआ है। याने कि ज्ञानी को यह आत्मा प्रत्यक्ष है। जैसे कि परमाणु अन्य सामान्य जीवों को दिखाई नहीं देते, पर ज्ञानवान उन्हें जानता है।

अनुमान से भी जीव की सत्ता सिद्ध होती है। वह अनुमान इस प्रकार है- अस्त्यात्माशुद्धपदवाच्यत्वाद् घटवत्। आत्मा है शुद्धपद की वाच्यता से अर्थात् शुद्धपद के कथन से। इसलिए जैसे घट पद जो है, वह असंयोगी पद है।

इसलिए घट नहीं है, ऐसा नहीं कहा जाता। वैसे ही आत्मा पद जो है, वह भी संयोगरहित पद है। इसलिए उसकी नास्ति नहीं कही जा सकती। याने कि उसका निषेध नहीं किया जा सकता। संसार में जो जो पदार्थ शुद्धपदवाच्य हैं, वे असत् नहीं हैं अर्थात् सत् हैं। और शास्त्र में भी आत्मा का कथन किया गया है। तो अब क्या समझना? जीव है या नहीं? क्योंकि एक सूत्र 'जीव है' कहता है और दूसरा सूत्र 'जीव नहीं है' कहता है। ऐसा जान कर ही हे इन्द्रभूति ! तुम्हें सन्देह हुआ है। पर यह सन्देह गलत है, व्यर्थ है, क्योंकि जीव को नास्ति (नहीं है) कहने वाला जो 'विज्ञानघन' पद है, उसका अर्थ तुम विपरीत करते हो। इस कारण से पूर्वापर विरोध के कारण तुम्हें शंका हो रही है।

इसलिए उस पद का अर्थ इस प्रकार करना योग्य है कि- विज्ञान याने ज्ञान और दर्शन। इन दोनों की अभिन्नता के कारण विज्ञानघन नाम जीव का है। वह 'एतेभ्यो भूतेभ्यः'- याने घटादिक जो भूत हैं, उन्हें देख कर उत्पन्न होता है। याने कि ज्ञाता जो विज्ञानघन है, उसे घटादिक जो ज्ञेय हैं, उन्हें देख कर ज्ञान उत्पन्न होता है। तब वह जानता है कि घट जो है सो यही है। यह ज्ञान 'समुत्थाय'- याने उत्पन्न हो कर 'तान्येव' याने वही ज्ञान उस ज्ञेय का उपयोग चले जाने से उसमें ही 'अनुविनश्यति'- याने नष्ट हो जाता है। फिर उस घटना-बोध की पर्याय विनष्ट होती है।

'न प्रेत्य संज्ञास्ति इति।'- याने जो पूर्व की ज्ञानसंज्ञा थी, वह नहीं रहती। याने कि जो घट देखा, उस घट का ज्ञान घट में ही रहा, पर घट का उपयोग पट में नहीं होता। परमार्थ यह है कि इन्द्रभूति को विज्ञानघन की श्रुति के अर्थ में यह सन्देह था कि जीव भूत में से उत्पन्न होता है और भूत में ही नष्ट होता है। परलोक नहीं है।

भगवान ने उस श्रुति का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि जो उपयोग घट का था, वह घट में ही रहा, पर पट में नहीं। यदि ऐसा न मानें तो- 'यथाकारी तथा भवति'- जैसा करे वैसा होवे, 'साधुकारी साधुर्भवति' - भला करने वाला भला होता है, 'पापकारी पापी भवति' - पाप करने वाला

पापी होता है, 'पुण्यं पुण्येन कर्मणा भवति' - पुण्य कर्म करने से पुण्य होता है, 'पापः पापेन भवति' - पाप करने से पाप होता है। तथा 'द द द' इन तीन दकारों का अर्थ दया, दान और दम है। 'इति दकारत्रयं यो वेत्ति स जीवः' - इन तीन दकारों को जो जानता है, वह जीव है। ये यजुर्वेदादिक के पद कैसे मिलें?

इसलिए अनुमान करते हैं कि- 'विद्यमान भोक्तृकमिदं शरीरं भोग्यत्वादोदनादिवत्' - विद्यमान है भोक्ता जिसका ऐसा यह शरीर है। इस सूत्र से शरीर को भोगनेवाला जीव है और वह विद्यमान है, यह सिद्ध हो गया। इससे यह शरीर भोगने योग्य है, इसलिए इसको भोगने वाला भी है। जैसे आहार भोग्य है, तो उसका भोक्ता भी है, वैसे ही इस शरीर को भोगने वाला जीव है। इस अनुमान से जीव है।

इसलिए हे इन्द्रभूति ! जैसे 'क्षीरे घृतं'- दूध में घृत, 'तिले तैलं' - तिल में तेल, 'काष्ठें अग्निः'- काष्ठ में अग्नि, 'सौरभ्यं कुसुमे' - फूल में सुगंध और 'चन्द्रकान्तौ सुधा" - चन्द्र की कान्ति में अमृत 'यद्वत्' - जैसे है, वैसे ही 'आत्माङ्गतः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः' - आत्मा शरीर में है। प्रत्येक शरीरक्षेत्र में भिन्न भिन्न है। वह 'अपौद्गलिकः' - पुद्गलरहित, 'पारिणामिकः' - पारिणामिक, कर्ता और भोक्ता है। 'स जीवः' - वह जीव है। 'अन्यथा जीवं विना दया किं विषया स्यात्' - इस प्रकार यदि जीव न मानें तो जीवदया किसमें हो सकती है? 'तस्मादस्ति जीवः' - इसलिए हे इन्द्रभूति! जीव है।

इत्यादिक वेदपद के अर्थ सुन कर, संशय दूर कर और मद छोड़ कर तथा वैराग्य प्राप्त कर श्री वीरप्रभु को तीन प्रदक्षिणा दे कर इन्द्रभूति उनके पाँव पड़े और शुद्ध भाव से पाँच सौ छात्रों सहित उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। उनका गौतम गोत्र था, इसलिए वे गौतम नाम से प्रसिद्ध हुए। भगवान के मुख से 'उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' - यह त्रिपदी ग्रहण कर उन्होंने द्वादशांगी की रचना की। कहा भी है कि-

श्री वीरमुखतो वेदपदार्थमवगत्य च।

प्रव्रज्य त्रिपदीं लब्ध्वा, द्वादशाङ्गी स निर्ममे।।१।।

श्री वीरप्रभु के मुख से वेदपद का अर्थ जान कर दीक्षा ले कर त्रिपदी प्राप्त कर उन्होंने बारह अंगों की रचना की।

२. श्री अग्निभूति गणधर

इन्द्रभूति के दीक्षा लेने की बात जब उनके भाई अग्निभूति ने सुनी, तब उन्होंने सोचा कि कदाचित् अग्नि पानी हो जाये, पाषाण नरम हो जाये, पर्वत हवा से हिल जाये, सूर्य का उदय पश्चिम दिशा में हो जाये, चन्द्रमा से अंगारे बरसने लगें, पानी अग्निज्वाला बन जाये, अमृतपान से मृत्यु हो जाये, विषभक्षण से जीवनदान मिल जाये, पृथ्वी पाताल में प्रवेश कर दे, मेरुपर्वत चलायमान हो जाये और समुद्र मर्यादा का उल्लंघन कर दे, तो भी मेरा भाई उस ऐन्द्रजालिक से हार नहीं सकता। ऐसी बात कभी हो नहीं सकती।

वे यह सोच ही रहे थे कि इतने में समवसरण से कई अन्य लोग गाँव में आये। उनसे जब अग्निभूति ने अपने भाई के समाचार पूछे, तब उन्होंने कहा कि पूछना क्या है? वे तो भगवान के शिष्य बन गये हैं। हमने हमारी आँखों से यह देखा है। यह सुन कर अग्निभूति ने सोचा कि मेरा भाई अत्यन्त समझदार होते हुए भी कैसे फँस गया? शायद दैवेच्छा से फँस गया लगता है। इसलिए अब मुझे वहाँ जा कर उस ऐन्द्रजालिक को जीत कर अपने भाई को छुड़ा लाना चाहिये। इसके साथ ही उस ऐन्द्रजालिक का सर्वज्ञता का बिरुद भी मिटा देना चाहिये।

यह सोच कर बिरुदावली बोलने वाले पाँच सौ छात्रों के परिवार से घिरे हुए अग्निभूति अमर्ष सहित वहाँ से निकल पड़े। जब उन्होंने समवसरण की पहली सीढ़ी पर कदम रखा, तब प्रभु ने उन्हें भी पूर्व की तरह नाम-गोत्र सहित बुलाया। फिर उन्होंने कहा कि हे अग्निभूति ! तुम्हें यह संदेह है कि कर्म है या नहीं? वेदपद का अर्थ ठीक से मालूम न होने के कारण तुम्हें यह सन्देह है। वह सन्देह इस प्रकार है-

'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यं' इत्यादिक वेदपदों से तुम यह जानते हो कि जो जीव है, वही सर्व है। फिर इससे अन्य कर्म भिन्न कैसे हो सकता है? इसलिए कर्म नहीं है। आत्मा तो अमूर्त है, फिर उसे कर्म कैसे लग सकता है? क्योंकि मूर्त और अमूर्त का आपस में संयोग नहीं होता। इसलिए कर्म नहीं है और कर्म से जीव को सुख-दुःख भी कैसे हो सकता है? इस प्रकार इस पद से तुम यह मानते हो कि कर्म नहीं है।

और फिर वेद के कुछ पद ऐसे भी हैं- 'पुण्यः पुण्येन पापः पापेन।' इस पर से कर्म है, ऐसा भी दीखता है। फिर कर्म है या नहीं? यह तुम्हारा सन्देह है।

पर हे अग्निभूति ! वेद के ये पद आत्मस्तुति के हैं। कर्म का निषेध करने वाले नहीं है। क्योंकि अमूर्त होते हुए भी उसका मूर्तद्रव्य के साथ संयोग प्रत्यक्ष दीखता है। अमूर्त आकाश और मूर्त बादलों का परस्पर योग होता है। जो मूर्त है, वह अमूर्त को सुख-दुःख देता है। जैसे मदिरापान करने वाले को मदिरा के कारण अचेत अवस्था प्राप्त होती है। मदिरा मूर्तिवन्त है, पर अमूर्त जीव को बेचैन बनाती है। इसलिए कर्म है, यह सिद्ध होता है।

और लोक में भी एक भाग्यवान, एक अभागा:, एक सुन्दर, एक कुरूप, एक धनवान, एक दरिद्री ये सब शुभाशुभ कर्म के बिना संभव कैसे हो सकते हैं? इस तरह वेद में भी कर्मसत्ता सिद्ध है। इससे कर्म अवश्य है।

इत्यादिक वेदपद के अर्थ सुन कर अग्निभूति का भी संशय मिट गया। उन्होंने भी अहंकार छोड़ कर भावसहित पाँच सौ छात्रों के साथ दीक्षा ग्रहण की।

३. श्री वायुभूति गणधर

फिर तीसरे भाई वायुभूति ने अग्निभूति की दीक्षा की बात सुनी। वे सोचने लगे कि मेरे दो भाइयों ने उस सर्वज्ञ के पास दीक्षा ली है, तो अवश्य ही वह कोई महात्मा पुरुषोत्तम है। इसलिए मैं भी उसको वन्दन करूँ, पूजूँ और संशय पूछ कर पापरहित होऊँ। यह सोच कर वे भी भगवान के पास आये। भगवान ने उन्हें भी पूर्वोक्ति रीति से बुलाया और कहा कि हे वायुभूति ! तुम्हें यह संशय है कि जीव सो ही शरीर याने जीव और शरीर ये दोनों एक हैं या नहीं है? वेदपद का अर्थ बराबर न समझने के कारण तुम्हें यह संशय है। वह वेदपद इस प्रकार है- विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय... इत्यादि।

इस पद से जीवसत्ता सिद्ध है। जीव है तो इस जीव का भोग्य जो शरीर है, वह जीव से भिन्न है तथा 'सत्येन लभ्यस्तपसा होष ब्रह्मचर्येण' इत्यादि वेदपद का अर्थ यह है कि सत्य, तप, ब्रह्मचर्य से संयुत पुरुष यह जानता है कि जीव शरीर से भिन्न है।

प्रमाण से भी जीव और शरीर भिन्न दीखते हैं, क्योंकि यह मेरा शरीर है, ऐसा कहा जाता है। जब कोई यह कहता है कि यह मेरा शरीर है, तो यहाँ 'मेरा शरीर है' यह कहने वाला जीव है। इसलिए जीव और शरीर भिन्न हैं।

यह सुन कर वायुभूति ने भी दीक्षा ली।

४. श्री अव्यक्त गणधर

चौथे अव्यक्त भी भगवान के पास आये।स्वामी ने कहा कि तुम्हें यह सन्देह है कि पाँच भूत हैं या नहीं? तुम वेदपद का अर्थ बराबर नहीं जानते, इसलिए तुम्हें यह सन्देह है।

'स्वप्नोपमं वै सकलं' - स्वप्न के समान सब है। इस वेदपद से तुम यह जानते हो कि पाँच भूत हैं या नहीं? पर यह पाठ जो है, सो अनित्यता बताने वाला है। भूत की नास्ति करने वाला नहीं है।

तथा पृथ्वीदेवता, आपो देवता इत्यादिक वेदपद जो हैं, वे सब भूत की सत्ता भिन्न भिन्न कहते हैं। इसलिए पाँच भूत हैं और वे प्रत्यक्ष दीखते हैं।

यह सुन कर संशयरहित हो कर अव्यक्त ने भी दीक्षा ली।

५. श्री सुधर्म गणधर

पाँचवें सुधर्म भी आये। भगवान ने कहा कि हे सुधर्म ! इस भव में जो जैसा होता है, वह परभव में भी वैसा ही होता है याने पुरुष मर कर पुरुष ही होता है और स्त्री मर कर परभव में स्त्री ही होती है, ऐसा तुम्हें सन्देह है।

'पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशुः पशुत्वं' - इसका अर्थ तुम ऐसा करते हो कि पुरुष मर कर पुरुष होता है और पशु मर कर पशु होता है। यह अर्थ तुम 'नित्य' जानते हो, पर यह 'नित्य' नहीं है। यह वेदपद किसी एक जीव के आश्रय से है। यदि यह पद नित्य हो, तो वेद में लिखा है कि 'शृगालो वै जायते यः स पुरुषो दह्यते' - जो पुरुष जलता है, वह पुरुष शृगाल-सियार होता है याने जो पुरुष जलता है, वह पुरुष मर कर सियार होता है। इसमें वह पुरुष सियार होता है, ऐसा कहा। इसलिए पुरुष मर कर पुरुष ही होता है, ऐसा संदेह नहीं रखना। पुरुष मर कर सियार भी होता है।

यह सब सुन कर संशय दूर कर सुधर्म ने भी दीक्षा ली।

६. श्री मंडित गणधर

छठे मंडितजी भी आये। उनसे प्रभु ने कहा कि बंध-मोक्ष है या नहीं? यह तुम्हें संशय है। वेदपद का अर्थ तुम्हें मालूम नहीं है। वह वेदपद इस प्रकार है- स एष विगुणो विभुर्न बध्यते, संसरति वा न मुच्यते। अर्थात् वह सत्वगुणादि रहित (विगुण) सर्वव्यापी (विभुः) जीव कर्म से बद्ध नहीं होता (न बध्यते) अथवा संसरण नहीं

करता याने चलता भी नहीं (संसरति वा) और कर्मादि बंधन से छूटता भी नहीं (न मुच्यते।)

इस अर्थ से तुम यह जानते हो कि जीव के बंध-मोक्ष नहीं है। परन्तु ऐसा नहीं जानना। यह वेदपद सिद्धजीव के वर्णन का है, क्योंकि सिद्ध के जीवों के बंध-मोक्ष नहीं है, पर जो रागादि युक्त संसारी जीव हैं, उनके तो बन्ध और मोक्ष दोनों हैं।

यह सुन कर संशय दूर कर उन्होंने भी दीक्षा ली।

७. श्री मौर्यपुत्र गणधर

फिर सातवें मौर्यपुत्र आये। प्रभु ने उनसे कहा कि हे मौर्यपुत्र ! तुम्हें देव हैं या नहीं? यह सन्देह है। तुम जिस वेदपद का अर्थ बराबर नहीं समझे, वह इस प्रकार है- मायोपमान इन्द्रयमवरुणकुबेरादि। अर्थात् इन्द्र, यम, वरुण, कुबेरादिक मायोपमान हैं। इससे तुम्हें यह सन्देह है कि देवादि सब मायारूप हैं, परन्तु वास्तविक नहीं है। ऐसा तुम जानते हो।

पर इन्हें जो मायारूप कहा है, वह अनित्यता बताने के लिए कहा है और वेद में यह भी कहा है कि- स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति। अर्थात् यज्ञरूप आयुध है जिसका, वह यज्ञ करने वाला यजमान तत्काल सीधे स्वर्ग याने देवलोक में जाता है। इस वेदपद से देवलोक है, यह सिद्ध होता है।

वेदपद का यह अर्थ सुन कर मौर्यपुत्र का सन्देह दूर हुआ और उन्होंने दीक्षा ली।

८. श्री अकंपित गणधर

अब आठवें अकंपित आये।स्वामी ने उनसे कहा कि हे अकंपित तुम्हें 'नारकी हैं या नहीं?' यह सन्देह है और यह सन्देह वेदपद के अर्थ का रहस्य न जानने के कारण है। 'नेह वै प्रेत्य नरके नारकास्सन्ति' - इस वेदपद का अर्थ तुम ऐसा जानते हो कि परलोक में नारकी नहीं हैं, परन्तु तुम्हारा यह अर्थ गलत है।

सही अर्थ इस प्रकार है- नेह याने नहीं यहाँ, प्रेत्य याने परलोक में, नरके याने नरक में शाश्वत नारका याने नरक के जीव, वै याने निश्चय अर्थात् नारकी के जीव शाश्वत नहीं हैं ऐसा जानना, पर नारकी नहीं है ऐसा नहीं जानना। क्योंकि- नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नं अश्नाति याने जो शूद्र का अन्न खाता है, वह नारकी होता है। इस वेदपद से नारकी हैं, यह सिद्ध होता है।

यह सुन कर निःसन्देह हो कर अकंपित ने भी दीक्षा ली।

९. श्री अचलभ्राता गणधर

फिर नौवें अचलभ्राता समवसरण में आये। भगवान ने उनसे कहा कि पुण्य-पाप हैं या नहीं? ऐसा तुम्हें सन्देह है और वह सन्देह वेदपद का अर्थ विरुद्ध समझने के कारण है। वह वेदपद इस प्रकार है- पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं..... इत्यादिक। (दूसरे गणधर के वेदपद के पाठ में इसका अर्थ स्पष्ट किया गया है। वहाँ से जान लेना।) इसलिए जीव पुण्य से सुख पाता है और पाप से दुःख पाता है। इस तरह पुण्य और पाप ये दोनों वेद में हैं।

यह अर्थ सुन कर सन्देह का निवारण कर उन्होंने भी दीक्षा ग्रहण की।

१०. श्री मेतार्य गणधर

दसवें मेतार्य भी प्रभु के पास आये। प्रभु ने उनसे कहा कि हे मेतार्य! परलोक है या नहीं?, यह तुम्हें सन्देह है। इनका सन्देह दूर करने के लिए वेद के पदों का जो अर्थ प्रथम गणधर को बताया था, वही यहाँ सब स्पष्ट किया। फिर-

'अस्ति परलोक इहलोकस्यान्यथानुपपत्तेस्त्वत् पूर्वजवत्।'- परलोक है। यदि न हो तो यह लोक भी कैसे कहा जा सकता है? इसलिए तुम्हारे पूर्वजों की तरह परलोक भी है। जैसे तुम्हारे पूर्वज हैं, तो तुम भी हो। और जो पाप कर के मरता है, वह नरक में जाता है और धर्म करने वाला मोक्ष में जाता है।

यह अर्थ सुन कर उन्होंने भी दीक्षा ली।

११. श्री प्रभास गणधर

अन्त में ग्यारहवें श्री प्रभास समवसरण में आये। भगवान ने उनसे कहा कि हे प्रभास ! तुम्हें यह सन्देह है कि मोक्ष है या नहीं? वेदपद का अर्थ बराबर न जानने के कारण तुम्हें सन्देह है। वे वेदपद इस प्रकार हैं-

'जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रं'- अग्निहोत्रं याने जो अग्निहोत्र है, तत्सर्वं याने वह सब, जरामर्यं वा याने यावज्जीव करना और इस होम में जीव मरता है, सो यह पापरूप है। यह स्वर्ग का सुख देता है, पर इससे मोक्ष नहीं होता। क्योंकि यावज्जीव करने के लिए कहा है, इसलिए स्वर्ग में ही जाया जाता है। पर उसके बिना मोक्ष जाने का उपाय नहीं है। तो फिर मोक्ष कैसे हो? इसका विचार करते हुए मोक्ष नहीं है, ऐसा अर्थ तुम करते हो। इसलिए तुम्हें सन्देह है। पर वह अर्थ तुम जैसा करते हो, वैसा नहीं है।

उसका अर्थ इस प्रकार है कि- अग्निहोत्र जो है, सो यावज्जीव सर्व भी है,

परन्तु 'वा' शब्द से मुक्ति के अर्थी जो जीव हैं, उन्हें मोक्ष के कारण के लिए भी क्रियानुष्ठान करना चाहिये। याने कि यह होम ही सर्व काल नहीं करना, पर मोक्ष का भी उपाय करना।

तथा ब्रह्म दो हैं- परमपरं। उनमें एक परब्रह्म है और दूसरा अपरब्रह्म। 'तत्र परं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'- वहाँ परमब्रह्म तो सत्यरूप, ज्ञान अनन्तरूप, नाशरहित है। याने कि अनन्तज्ञानमय ब्रह्म परब्रह्म है। इस श्रुति से मोक्ष है, ऐसा जानना।

यह अर्थ सुन कर निःसन्देह हो कर श्री प्रभास ने भी दीक्षा ली।

गणधरस्थापना और चन्दनबाला की दीक्षा

श्री गौतमस्वामी से ले कर प्रभासजी पर्यन्त कुल ग्यारह विद्वान भगवान के पास आये। भगवान ने उन सबके मन में जो जो संशय थे, वे दूर किये। इससे उन ग्यारह जनों ने अपने चवालीस सौ शिष्यों सहित भगवान के पास दीक्षा ली। भगवान ने सबको त्रिपदी प्रदान की। वह इस तरह कि-

प्रथम 'उप्पन्नेइ वा' याने सब उत्पन्न होता है, ऐसा कहा। तब शंका उत्पन्न होती है कि यदि सब उत्पन्न होता है, तो वह संसार में कैसे समा सकता है? इसलिए भगवान ने दूसरा पद कहा कि 'विगमेइ वा'। याने नष्ट होता है। इस पद में भी यह शंका उत्पन्न होती है कि यदि विनाश होता जायेगा, तो सारा संसार शून्य हो जायेगा। यह सोच कर तीसरा पद कहा कि- 'धुवेइ वा'। याने इस संसार की स्थिति निश्चल है।

तब यह जान लिया गया कि उत्पन्न होता है, नष्ट होता है और रहने वाला है, वह रहता भी है। संसार की ऐसी स्थिति सदा सर्वदा तीनों कालों में चलती रही है।

यह त्रिपदी प्रभु के पास से प्राप्त कर उन ग्यारहों गणधरों ने दो घड़ी में याने एक मुहूर्त्त में द्वादशांगी की रचना की। उस अवसर पर इन्द्र महाराज स्वयं रत्नथाल में वासक्षेप ले कर हाजिर हुए। भगवान ने उसमें से मुट्ठी भर कर ग्यारहों गणधरों के सिर पर अनुक्रम से वासक्षेप किया। इस तरह तीर्थ की स्थापना हुई।

देवों ने देवदुन्दुभी बजायी और जय जय शब्दोच्चार किया। फिर

चन्दनबाला ने भी भगवान की देशना सुन कर प्रतिबोध प्राप्त कर महा महोत्सव सहित भगवान के पास दीक्षा ली। उसके पश्चात् अन्य भी अनेक लोगों ने दीक्षा ली। बहुत श्रावक हुए और श्राविकाएँ भी बहुत हुईं। इस तरह चार प्रकार के संघ की स्थापना हुई।

गौतमस्वामी की अष्टापद तीर्थ की यात्रा व १५०३ तापसों की दीक्षा

गौतमस्वामी का रूप उत्कृष्ट था। उनके प्रथम संहनन और प्रथम संस्थान था। वे छट्ठ-अट्ठमादिक तपश्चर्या करते हुए और धर्मदेशना देते हुए विचरते थे। वे चार ज्ञानवन्त, चौदह पूर्वधारी और श्रुत केवली बने। उन्हें तेजोलेश्यादिक अट्ठाईस लब्धियाँ प्राप्त थीं। वे जिसे दीक्षा देते, उसे केवलज्ञान उत्पन्न होता था, पर उन्हें भगवान पर स्नेह बहुत था, इसलिए केवलज्ञान होता नहीं था। तब वे सोचने लगे कि मुझे केवलज्ञान प्राप्त होगा या नहीं? उनका ऐसा चिन्तन देख कर श्री वीर भगवान ने देशना में यह कहा कि जो अपनी लब्धि से अष्टापद पर्वत पर चढ़ कर चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना करता है, वह जीव उसी भव में मोक्ष जाता है।

ऐसी वीरवाणी सुन कर श्री गौतमस्वामी सूर्य की किरण का अवलंबन ले कर अपनी लब्धि से बत्तीस कोस ऊँचे और आठ सीढ़ियों वाले अष्टापद पर्वत पर चढ़ गये। वहाँ चौबीस जिनों को वन्दन किया और 'जगचिन्तामणि' स्तवन बनाया। वहाँ श्री वयरस्वामी का जीव तिर्यग्जृंभक नामक सामानिक देव, उसे पुंडरीकाध्ययन से प्रतिबोध दे कर वे नीचे उतरने लगे। तब पन्द्रह सौ तीन तापसों ने जो चौथ, छट्ठ और अट्ठम तप के पारणे में कन्दमूलफलादिक का भोजन करते थे और इस तरह जिन्हें बारह महीने हो गये थे, गौतमस्वामी को नीचे उतरते देखा। तब उन्होंने सोचा कि अपन इनके शिष्य बन जायें, तो अष्टापद पर जा कर महादेव को वन्दन कर सकेंगे। यह सोच कर वे उठे और श्री गौतमजी के पाँव पड़े। गौतमजी ने उन्हें प्रतिबोध दे कर दीक्षा दी। फिर वहीं खड़े रह कर सब तापसों को अपने लब्धिबल से ऊपर चढ़ा कर और देववन्दन करवा कर पुनः नीचे उतारा।

फिर गौतमस्वामी ने पूछा कि हे शिष्यो ! क्या तुम सब पारणा करोगे? उनके हाँ कहने पर वे अपनी लब्धि से सवा सेर का एक पात्र भर लाये और तापसों से कहा कि उठो और पारणा करो। तब खीरपात्र देख कर तापस कहने लगे कि खीर तो थोड़ी है और खाने वाले अधिक हैं। तो इतनी-सी खीर से क्या आँखों में अंजन होगा? या सबको एक एक तिलक किया जायेगा? फिर गौतमस्वामी ने कहा कि हे शिष्यो ! मंडली में चलो। मुझे पारणा कर के गुरु के पास जाना है। यह कह कर उन्हें मंडली में बिठाया। फिर तापसों का सन्देह मिटाने के लिए खीरपात्र में अपना अंगूठा रखा और अक्षीण लब्धि से पन्द्रह सौ तीन तापसों को पारणा कराया तथा स्वयं ने भी पारणा किया।

वहाँ पाँच सौ एक तापसों को तो खीर से पारणा करते करते, श्री गौतम के गुणों का चिन्तन करते करते केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और पाँच सौ एक को प्रभु का समवसरण देख कर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तथा शेष पाँच सौ एक तापसों को श्री वीर भगवान का मुख देखते ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इस तरह पन्द्रह सौ तीन तापस केवली हो गये।

वे वीर भगवान को वन्दन कर केवली की सभा में जाने लगे, तब गौतमजी ने कहा कि हे शिष्यो ! तुम सब छद्मस्थों की सभा में बैठो। वह तो केवली की सभा है, इसलिए वहाँ नहीं बैठना चाहिये। तब श्री वीर भगवान बोले कि हे गौतम ! तुम केवलियों की आशातना मत करो। ये पन्द्रह सौ तीन केवली हो गये हैं। यह सुन कर गौतम बहुत चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि देखो ! मेरे शिष्य केवली हो गये, पर मैं केवली नहीं हो सका। इस प्रकार मन में बहुत बहुत खेद करने लगे। तब भगवान ने कहा कि हे गौतम! तुम खेद मत करो। अन्त में अपन दोनों एक समान होंगे।

चातुर्मास संख्या और प्रभु महावीर का निर्वाण

उस काल में उस समय में श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी का अस्थिग्राम में वर्षाकाल का पहला चौमासा हुआ। उसके बाद चंपानगरी में

और पृष्ठचंपा में तीन चौमासे वर्षाकाल के हुए। विशाला नगरी में और वाणिज्यग्राम में बारह चौमासे वर्षाकाल के हुए। राजगृह नगर के नालंदापाड़ा के बाहर चौदह चौमासे वर्षाकाल के हुए। मिथिला नगरी में छह चौमासे हुए। भद्रिका नगरी में दो चौमासे हुए। आलंभिका नगरी में एक चौमासा हुआ। श्रावस्ती नगरी में एक चौमासा हुआ और अनार्य देश में एक चौमासा हुआ। इस प्रकार कुल इकतालीस चौमासे हुए। अंतिम बयालीसवें चौमासे में मध्यमा पावापुरी नगरी में हस्तिपाल राजा की पुरानी लेखकशाला में जकात के कारकून की सभा में भगवान वर्षाकाल में रहे।

उस चौमासे का चौथा महीना सातवाँ पखवाड़ा कार्तिक वदी अमावस्या की मध्यरात्रि में भगवान श्री महावीरस्वामी कालप्राप्त हुए। जाति-जरा-मरण-बंधन याने जन्मना, वृद्ध होना और मरना, इनके बन्धन को काट कर सिद्ध हुए। तत्त्व के जानकार हुए और मुक्त हुए। सब दुःखों का उन्होंने अन्त किया। वे सन्तापरहित हुए। उनके सब दुःखों का क्षय हुआ।

पाँच संवत्सरों में से चन्द्र नामक दूसरा संवत्सर चल रहा था तब, प्रीतिवर्द्धन नामक मास याने कार्त्तिक मास में, नन्दीवर्द्धन नामक पक्ष में, अग्निवेश्य नामक दिन-कहीं इस दिन का नाम 'उपशम' भी कहा गया है, देवानन्दा नामक रात्रि- कहीं इसका दूसरा नाम 'निरत्ति' भी लिखा है, जिस लव में भगवान मोक्ष में गये, उस लव का नाम अर्च है, याने अर्च नामक लव, मुहूर्त्त नामक प्राण याने श्वासोच्छ्वास, सिद्ध नामक स्तोक, नाग नामक करण, सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त्त, स्वाति नामक नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर भगवान कायस्थिति, भवस्थिति समाप्त कर कालगत हुए। यावत् मन से संबंधित, शरीर से संबंधित सब दुःखों से रहित हुए।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी कालगत हुए, उस रात्रि में चार निकाय के बहुत से देव और बहुत सी देवियाँ ये सब स्वर्गलोक से नीचे तिरछे लोक में उतरने लगे। इससे तथा ऊँचे ऊर्ध्वलोक में जाने लगे, इससे उस रात में आकाश में बहुत उद्योत हुआ। जिस रात में श्रमण

भगवान श्री महावीरस्वामी कालगत हुए उस रात में बहुत देव-देवियाँ आते-जाते बहुत ही आकुल-व्याकुल हुए। इससे अव्यक्त शब्द (कोलाहल) हुआ। जिस रात्रि में भगवान श्री महावीरस्वामी कालगत हुए, उस रात्रि में गौतम इन्द्रभूति अणगार जो भगवान के शिष्य थे, उनका प्रेमबन्धन टूटा। इससे श्री गौतमस्वामी को केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

श्री गौतमस्वामी को केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हुआ?

अपना अन्त समय जान कर परमात्मा श्री महावीरदेव ने श्री गौतमस्वामी का अपने पर निबिड स्नेह जान कर, उस प्रशस्त स्नेहराग का निवर्त्तन करने के लिए संध्या समय से पूर्व श्री गौतमस्वामी को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए समीपवर्ती गाँव में भेज दिया था। उस ब्राह्मण को प्रतिबोध दे कर वहाँ रातभर ठहर कर वे सुबह लौट पड़े। तब मार्ग में उन्होंने कई देवों को शून्यचित्त (उदास) देखा। फिर उपयोग से वीर निर्वाण जान लिया, तब वे वज्राहत जैसे मूर्च्छित हो गये। थोड़ी देर बाद सावधान हुए, तब मोहवश विलाप करने लगे कि-

हे प्रभो ! आप तीन लोक के सूर्य अस्त हो गये, इसलिए अब मिथ्यात्व अंधकार फैलने लगेगा। कुतीर्थरूप उल्लुओं के समूह जागृत हो कर गर्जारव करेंगे। दुर्मति दुष्कालरूप राक्षस प्रवेश करेगा। कुमतिरूप चोर सावधान होंगे। जैसे सूर्य अस्त होने पर कमल मुरझा जाता है, वैसे चतुर्विध संघरूप कमल मुरझा जायेगा। जैसे चन्द्र के बिना आकाश, दीपक के बिना मंदिर और सूर्य के बिना दिन सुशोभित नहीं होता, वैसे आपके बिना यह भरतक्षेत्र शोभारहित हो जायेगा। हे वीर ! आपके बिना अब सात प्रकार के ईति उपद्रव शुरु होंगे। हे वीर ! आपके बिना पाखंडीरूप तारे टिमटिमाने लगेंगे। आपके बिना धर्मरूप चन्द्रमा को पापरूप राहु ग्रसेगा।

हे महावीरदेव ! अब मैं किसके चरणकमल में बैठ कर उल्लसित हो कर अपने मन के सन्देह पूछूँगा? किसे मैं भगवान कह कर बुलाऊँगा? मैं किसे नमन करूँगा? हे प्रभो ! अब मुझे आपके बिना कौन 'गौतम' कह के

बुलायेगा? हा ! हा ! हे वीर ! हे वीर ! यह आपने क्या किया, जो ऐसे समय में मुझे दूर कर दिया? लौकिकता भी नहीं रखी। क्या मैं बालक की तरह आड़े आ कर आपका पल्ला पकड़ लेता? क्या मैं केवलज्ञान का भाग माँगता? क्या मोक्षमार्ग संकीर्ण हो जाता? क्या आपका भार बढ़ जाता, जो मुझे भरमा कर चले गये?

हे वीर ! जिस समय में अपने दूर रहे हुए बालक को भी बुला कर अपने पास रखना चाहिये, ऐसे समय में उल्टे आपने मुझे दूर कर दिया। हे वीर ! क्या आपने मेरा आपके प्रति कृत्रिम स्नेह जाना था? हे वीर ! क्या मैं आपके लिए असुखकारी था, जो आप मुझे छोड़ गये? हे वीर ! आपने मुझे क्यों भुला दिया? हे वीर ! आपने आज मुझे महाविरहसागर में धकेल दिया। प्रभो ! आपके बिना मैं वियोगरूप दाह में जल गया। अब आपके बिना मेरा दुःख कौन दूर करेगा?

हे वीर ! अब समवसरण की शोभा समाप्त हो गयी। अब मुक्तिमार्ग का साथ छूट गया और अब जैसे जलंबिन मछली तड़पती है, वैसे ही आपके बिना चतुर्विध संघ तड़पता रहेगा। हे वीर ! आपके वचनरूप उपशम जल के अभाव में जिनशासनरूप फुलवारी, बाग-बगीचे आदि सब सूख जायेंगे। आपके बिना समतारूप केतकी सूख जायेगी। इसलिए हे वीर ! अब भव्य जीवों के मनरूप भ्रमर कहाँ जा कर गुंजारव करेंगे?

हे वीर ! हे गुणनिधान ! हे जिनशासननायक ! हे भव्यजीव सुखदायक ! हे जिनशासन श्रृंगार ! हे करुणासागर ! आप मुझे तड़पता छोड़ कर सात राज दूर जा कर बस गये। हा ! हा ! वीर ! अब मैं किसके साथ संदेश भेजूँ?

इस तरह अनेक प्रकार से गौतमस्वामी प्रशस्त मोह के उदय से नाना प्रकार से दुःख प्रकट करते रहे। बार बार ऐसा करने से मोह के वश से वी ! वी ! ये अक्षर उनके मुख में रह गये। तब गौतमस्वामी ने सोचा कि ये श्री वीतराग तो निःस्नेही ही होते हैं। इसलिए यह तो मेरा ही अपराध है। मैं ही मूर्ख बना, जो मैंने मोह के वश हो कर श्रुत का उपयोग लगा कर नहीं

देखा। इसलिए मेरे इस इकतरफा स्नेह को धिक्कार हो।

अरे ! इस मोहराजा का कैसा माहात्म्य है कि मुझ जैसे को भी जब यह इतनी पीड़ा दे रहा है, तो फिर अन्य जीव तो किस गिनती में हैं? अरे! मैंने राग के वश हो कर यह नहीं सोचा कि ये श्री वीरप्रभु तो निरागी और निःस्नेही थे। फिर मेरा इन पर राग करना तो व्यर्थ क्लेशकारक ही जानना चाहिये इन निर्मोही को किसका मोह हो सकता है? अर्थात् इन्हें किसी का कुछ भी मोह नहीं होता।

और फिर हे जीव ! तू कौन है और वे कौन हैं? यदि निश्चय दृष्टि से विचार किया जाये, तो श्री वीर और मैं कोई भिन्न नहीं हैं। क्योंकि यह आत्मा तो एक ही ज्ञान-दर्शन-चारित्र-मय शाश्वत है और अन्य सब भाव अशाश्वत है। मैं अकेला हूँ। मेरा अन्य कोई स्नेही नहीं है। संसार में कोई किसी का नहीं है। इस प्रकार समभावना भाते हुए श्री गौतमस्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। इन्द्रादिक देवों ने प्रभातकाल में केवलज्ञान का महोत्सव सम्पन्न किया।

यहाँ कवि कहता है कि श्री गौतमस्वामी ने अहंकार से प्रतिबोध प्राप्त किया, राग से गुरुभक्ति की तथा विषाद में केवलज्ञान प्राप्त किया। यह आश्चर्य की बात है।

गौतमस्वामी ने सुधर्मास्वामी को दीर्घायु जान कर पाट सौंपा। फिर बारह वर्ष तक केवल पर्याय पाल कर कुल बानवे वर्ष की आयु पूर्ण कर श्री गौतमस्वामी मोक्ष पहुँचे। गौतमस्वामी जिसे दीक्षा देते थे, वह उसी भव में मोक्ष जाता था। यह उनका महान अतिशय था।

दीपमालिका पर्व की उत्पत्ति

जिस रात्रि में भगवान मोक्ष गये, उस रात्रि में भगवान के मामा चेटक महाराज के मित्र अठारह देशों के राजा नौ मल्लकी जाति में उत्पन्न और नौ लिच्छवी जाति में उत्पन्न, काशी-कौशलादिक देशों के मालिक, गण याने परिवार के स्वामी ऐसे राजा उन्हें मिलने आये थे। वे सब अमावस्या के दिन

उपवास कर के रात्रि-पौषध में बैठे थे। उन राजाओं ने यह निश्चय किया कि भगवान का निर्वाण हो जाने से केवलज्ञानरूप भावउद्योत तो चला गया, इसलिए अब हम द्रव्यउद्योत करेंगे याने पौषध-उपवासरूप द्रव्य उद्योत प्रतिवर्ष इस अमावस्या के दिन करेंगे। अथवा अब द्रव्यउद्योत करेंगे। ऐसा विचार कर उन्होंने दीपकप्रमुख द्रव्य उद्योत किया। उस दिन से मांगलिक के निमित्त महापर्व दीपावली का प्रारम्भ हुआ। इस पर्व में भगवान मोक्ष गये याने कि शिवसुख-निरुपद्रव सुख उन्होंने प्राप्त किया।

कार्त्तिक सुदि एकम के दिन गौतमस्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इसलिए इसका हर्ष (खुशी) जानना।

कार्तिक सुदि बीज के दिन भगवान के बड़े भाई नन्दीवर्द्धन जो भगवान का निर्वाण सुन कर बहुत शोकातुर हुए थे, उनका शोक मिटाने के लिए भगवान की बहन सुदर्शना ने नन्दीवर्द्धन को अपने घर बुला कर भोजन कराया और उसका शोक दूर किया। उस दिन से लोगों में 'भाई दूज' का प्रारम्भ हुआ।

जिस रात्रि में भगवान मोक्ष गये, उस रात्रि में क्षुद्र याने क्रूर स्वभावी अट्ठासी ग्रहों में से तीसवाँ, एक नक्षत्र पर दो हजार वर्ष की स्थितिवाला भस्मराशि नामक ग्रह भगवान के उत्तराफाल्गुनी नामक जन्म नक्षत्र पर आया हुआ था। जिस दिन से भस्मराशि नामक यह महाग्रह भगवान के जन्म नक्षत्र पर आया है, उस दिन से निर्ग्रन्थ साधु-साध्वियों की अतिपूजा याने उठ कर खड़े होना, आहारादिक देना तथा सत्कार याने वस्त्रादिक देना, आदि की वृद्धि नहीं होगी।

निर्वाण के समय भगवान से प्रथम सौधर्मेन्द्र ने विनती की थी कि हे महाराज ! आप तो मोक्ष जा रहे हैं, पर आपके सन्तानिकों को दो हजार वर्ष तक पीड़ा होगी। अब दो घड़ी यह भस्मग्रह शेष रहा है। इसलिए दो घड़ी तक आपकी आयु बढ़ा लें, तो भस्मग्रह उतर जाने के कारण पश्चात् के आपके संतानिकों याने साधु-साध्वियों को शाता उत्पन्न होगी।

यह सुन कर भगवान ने कहा कि हे इन्द्र ! यह बात तीन काल में नहीं

हो सकती। तुम दो घड़ी आयु बढ़ाने के लिए कह रहे हो, पर मुझसे एक समय मात्र भी आयु बढ़ाई नहीं जा सकती। टूटी आयु किसी से भी बढ़ाई नहीं जा सकती। यह ऐसा ही भावी है। यदि मेरे तीर्थ में दो हजार वर्ष तक मेरे शिष्यों को बाधा होने बाली है, तो उसे कौन रोक सकता है, ऐसा सामर्थ्य किसी में भी नहीं है।

और फिर जब इस भस्मराशि ग्रह के दो हजार वर्ष पूर्ण हो जायेंगे, तब निर्ग्रंथों की पूजा-सत्कारादिक के रूप में बहुत मानता होगी और धर्म का उदय होगा। श्रीसंघ को भी हर्ष होगा। इसलिए-

घड़ी न लब्भे आगली, इश्युं आखे वीर।
इम जाणी जीव धर्म कर, ज्यांलगि वहे शरीर।।१।।

जिस रात्रि में भगवान मोक्ष गये, उस रात्रि में बहुत सूक्ष्म कुंथुआदिक तेइन्द्रिय जाति के जीव उत्पन्न हुए, जो उठाये नहीं जा सकते थे और उठा कर दूर भी नहीं किये जा सकते थे तथा वे साधु-साध्वियों की नजर में भी नहीं आते थे। वे शीघ्र चलते थे, तब दिखायी देते थे। यह देख कर बहुत से साधु-साध्वियों ने आहार-पानी आदिक चारों आहार का त्याग कर अनशन किया। शिष्यों ने पूछा कि हे गुरो ! इस तरह का उपद्रव क्यों हुआ? तब गुरु ने कहा कि हे वत्स ! आज के बाद चारित्र का पालन बड़े कष्ट से होगा।

श्री महावीरप्रभु की संपत्ति

उस काल में उस समय में भगवान श्री महावीरस्वामी को इन्द्रभूतिप्रमुख चौदह हजार साधुओं की उत्कृष्टी सम्पदा हुई। उन्हें चन्दनबालाप्रमुख छत्तीस हजार साध्वियों उत्कृष्टी की सम्पदा हुई। उन्हें शंखजी तथा शतकजीप्रमुख एक लाख उनसाठ हजार श्रावकों की तथा सुलसा-रेवतीप्रमुख तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओं की उत्कृष्टी सम्पदा हुई। केवली तो नहीं पर केवली समान सब अक्षरों के संयोग जानने वाले और केवली की तरह सत्य प्ररूपणा करने वाले ऐसे तीन सौ चौदह पूर्वधर साधुओं की भगवान को

उत्कृष्टी सम्पदा हुई। भगवान को तेरह सौ अवधिज्ञानी साधुओं की और सात सौ सम्पूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारकों की उत्कृष्टी सम्पदा हुई।

भगवान को देवों की ऋद्धि बना सकने में समर्थ ऐसे सात सौ वैक्रियलब्धिधारक मुनियों की उत्कृष्टी सम्पदा हुई। उन्हें ढाई द्वीप और दो समुद्र में रहने वाले संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्ता जीवों के मन के भाव जानने वाले पाँच सौ विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी साधुओं की उत्कृष्टी सम्पदा हुई तथा देव और मनुष्यों की पर्षदा में बैठ कर वाद में किसी से पराजित न हों ऐसे चार सौ वादियों की उत्कृष्टी सम्पदा हुई।

श्री महावीर के अंते याने समीप और वासी याने रहने वाले ऐसे अन्तेवासी सात सौ शिष्य उत्कृष्ट मोक्ष गये। ये सब भगवान के स्वहस्तदीक्षित जानना तथा चौदह सौ साध्वियाँ उत्कृष्टी मोक्ष गयीं। वे भी भगवान की हस्तदीक्षित जानना। श्री महावीर के आगामी भव में मोक्ष जाने वाले जिनकी गति का आयुष्य भला- शुभ है, ऐसे उत्कृष्ट आठ सौ साधु विजयादि पाँच अनुत्तर विमानों में गये।

दो प्रकार की मोक्ष मर्यादा

श्रमण भगवान महावीरस्वामी के दो प्रकार की अन्तकृत् भूमि याने मुक्तिमार्ग की मर्यादा हुई। वह इस प्रकार है- भव याने संसार। इसका अन्त करने की भूमिका याने मर्यादा अथवा कर्म का अन्त करने की मर्यादा अन्तकृत् भूमि है। यह मर्यादा दो प्रकार की हुई- एक युगान्तकृत् भूमि और दूसरी पर्यायान्तकृत् भूमि। इसमें प्रथम युग याने कालमान विशेष। अनुक्रम से गुरु-शिष्य-प्रशिष्यादिरूप पुरुषों के अनुसार कालमान जानना।

यहाँ श्री वीर भगवान से तीन पुरुषों के पाट तक के काल तक कर्म का अन्त हुआ याने अन्य बहुत जीवों ने कर्म खपाये। उन श्री वीर भगवान के पाट से श्री जंबूस्वामी तक मोक्ष मार्ग चला। उसमें एक तो श्री वीर भगवान स्वयं, दूसरे उनके पाट पर उनके शिष्य श्री सुधर्मास्वामी और

तीसरे भगवान के प्रशिष्य और श्री सुधर्मास्वामी के शिष्य श्री जम्बूस्वामी इन तीन पाट तक मोक्षमार्ग चला है। इसे युगान्तकृत् भूमि कहते हैं। दूसरी पर्यायान्तकृत् भूमि, वह भगवान श्री महावीरस्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् के काल के आश्रय से जानना। भगवान श्री महावीरस्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् चार वर्ष की केवल पर्याय होने के बाद अन्य किसी जीव के कर्म का अन्त हुआ याने कोई मुनि मोक्ष गया। इस तरह चार वर्ष बीतने के बाद मोक्षमार्ग का प्रवर्तन हुआ है। अन्य जीवों के कर्म का अन्त हुआ है। इसे पर्यायान्तकृत् भूमि कहते हैं।

उस काल में उस समय में श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी तीस वर्ष गृहवास में रहे और कुछ महीने अधिक बारह वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहे तथा कुछ कम याने साढ़े छह महीने कम तीस वर्ष केवली अवस्था में विचरे। कुल बयालीस वर्ष तक चारित्रपर्याय में रह कर साधुता का पालन किया। कुल बहत्तर वर्ष का आयुष्य पाल कर वेदनीय कर्म, आयुकर्म, नामकर्म और गोत्रकर्म ये चार कर्म जो शेष रहे थे, इनका क्षय होने पर इसी अवसर्पिणी काल में दुःषम-सुषमा नामक चौथा आरा बहुत बीत गया और उस आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष रहे तब, पावापुरी नगरी में हस्तिपाल राजा के कारकुन की सभा में स्वयं अकेले, पर साथ में अन्य कोई नहीं याने कि अन्य तीर्थंकर सब साधुओं के परिवार सहित मोक्ष गये हैं और श्री वीर भगवान तो अकेले ही बेला का तप याने पानी रहित चउविहार दो उपवास कर के पालथी मार कर बैठे हुए स्वातिनक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर पिछली चार घड़ी रात शेष थी तब, पुण्यफल कहने वाले पचपन अध्ययन, पापफल कहने वाले पचपन अध्ययन तथा बिना पूछे छत्तीस अध्ययन कह कर अंतिम प्रधान नामक मरुदेवी का अध्ययन प्ररूपित करते हुए कालगत हुए। ऊँचे गये। जाति, जन्म, जरा, मरण का बन्धन काट कर सिद्ध हुए। वे बुद्ध हुए, मुक्त हुए और कर्मों का अन्त कर के सर्व सन्ताप रहित हुए। वे दुःख से अलग हो गये।

भगवान श्री महावीरस्वामी मोक्ष जाने के बाद नौ सौ साल बीत गये और दसवीं सदी के अस्सी वर्ष हुए तब याने वीर निर्वाण से नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। वाचनान्तर से नौ सौ तिरानबे में पुस्तकलेखन हुआ, ऐसा दीखता है।

निर्वाण में इन्द्रादिकों का कर्त्तव्य

भगवान का निर्वाण हुआ तब इन्द्रादिक के आसन चलायमान हुए। भगवान का पाँचवाँ निर्वाण कल्याणक जान कर सब इन्द्र मिल कर निर्वाणस्थल पर आये। चमरेन्द्रादिकों ने बावनाचन्दन से भगवान की चिता रची। अग्निकुमार देवों ने अग्नि जलायी। वायुकुमार देवों ने हवा चलायी और भगवान का मांस सब सुखा दिया। फिर मेघकुमार देवों ने जलवर्षा की। शरीर की राख क्षीरसमुद्र में डाली।

भगवान की ऊपर की दाढ़ें सौधर्मेन्द्र ने और निचली दाढ़ें चमरेन्द्र ने लीं। उन दाढ़ों को रत्नमय करंडक में पूजने के लिए रखा। यह अधिकार श्री जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में विस्तार से कहा है। वहाँ से जान लेना।

पुस्तकलेखन कब और कैसे हुआ ?

श्री वीरनिर्वाण के बाद वल्लभीपुर नगर में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण प्रमुख सर्व श्री संघ ने मिल कर सिद्धान्त को पुस्तकारूढ़ किया। याने कि पूर्व में तो सब सूत्र आचार्यप्रमुख को मुखपाठ थे। फिर बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। इस कारण से कई साधुओं की मृत्यु हो गई। अतः बहुत से सूत्रपाठ जो साधुओं को कंठस्थ थे, उनका विच्छेद हो गया। फिर जब सुकाल हुआ तब सूत्रों का विनाश होते देख कर संघ ने इकट्ठे हो कर जिस साधु को जितना पाठ स्मरण में था, वह सब ताड़पत्र पर लिखवा लिया और उसे पुस्तकारूढ़ किया तथा कई प्रतों में नौ सौ अस्सीवें वर्ष में सब सिद्धान्त पुस्तक में लिखा जाने लगा और वह नौ सौ तिरानबेवें वर्ष में सम्पूर्ण लिखा गया, ऐसा लिखा है। कारण-

वल्लहीपुरम्मि नयरे, देवड्डिपमुह सयलसंघेहिं।
पुत्थे आगम लिहिओ, नवसयअसीयाओ वीराओ।।१।।

तथा कोई ऐसा कहते हैं कि स्कन्दिलाचार्य ने माथुरीवाचना कर के पुस्तक लिखी है तथा कोई कहते हैं कि कालिकाचार्य ने चौथ की संवत्सरी नौ सौ तिरानबेवें वर्ष में स्थापित की और पाक्षिक-चौमासी एक दिन की स्थापित की। ऐसा कई लोग मतान्तर से कहते हैं। इसका मुद्दा केवली जानें। इस बात का विशेष विस्तार दीपिका प्रमुख से जान लेना।

श्री वीरप्रभु के शासन का परिमाण इक्कीस हजार वर्ष का कहा है। उनके नौ गणधर तो उनकी हाजिरी में ही राजगृही नगरी में एक महीने की संलेखना धारण कर परिवारसहित मोक्ष गये तथा वीरनिर्वाण के बारह वर्ष बाद श्री गौतमस्वामी मोक्ष गये। वर्तमान में पाँचवें काल में जो मुनिराज हैं, वे सब भगवान के प्राट पर पाँचवें गणधर श्री सुधर्मास्वामी बैठे थे, उनका परिवार जानना। वे श्री सुधर्मास्वामी वीरनिर्वाण के बीस वर्ष बाद मोक्ष गये हैं।

तथा श्री वीर भगवान का जन्म चैत्र महीने में है और कार्तिक मास में वे मोक्ष गये हैं, इसलिए बहत्तर वर्ष की आयु बराबर मिलती नहीं है। इस विषय में कई ग्रंथों में संवत्सर के दिनमान का अन्तर दिखा कर समाधान करते हैं, परन्तु सत्य बात केवलीगम्य है। ये श्री महावीर के पाँच कल्याणक विस्तार से कहे।

इस छठे व्याख्यान तक श्री वीर भगवान का अधिकार जानना।

जैनाचार्य श्रीमद् भट्टारक-विजयराजेन्द्रसूरीश्वर-सङ्कलिते श्री कल्पसूत्र-बालावबोधे षष्ठं व्याख्यानं समाप्तम्।।

卐 卐 卐

सप्तम व्याख्यान

पश्चानुपूर्वी न्याय से श्री पार्श्वनाथस्वामी के पाँच कल्याणक कहते हैं

उस काल में उस समय में श्री पार्श्वनाथ अरिहंत तिरसठ शलाकापुरुषों में प्रसिद्ध, जिन्हें सब मत वाले जानते हैं, उनके पाँच कल्याणक विशाखानक्षत्र में हुए। विशाखानक्षत्र में देवलोक से च्यव कर वामादेवी की कोख में उत्पन्न हुए, विशाखानक्षत्र में जन्म हुआ, विशाखानक्षत्र में गृहस्थपने का त्याग कर साधुपना ग्रहण किया याने कि दीक्षा ली, विशाखानक्षत्र में सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन उन्हें उत्पन्न हुआ और विशाखानक्षत्र में वे मोक्ष गये। इति संक्षेप वाचना।

पार्श्वनाथ प्रभु का च्यवन और उनके दस भव

उस काल में उस समय में पुरुषों में प्रधान श्री पार्श्वनाथ का ग्रीष्म का पहला महीना, पहला पखवाड़ा याने चैत्र वदि चौथ के दिन प्राणत नामक दसवें देवलोक से बीस सागरोपम की आयु पूर्ण कर च्यवन हुआ। वे इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में वाराणसी नगरी में अश्वसेन राजा की वामादेवी रानी की कोख में मध्यरात्रि में विशाखा नक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर, देव से संबंधित आहार और देव से संबंधित शरीर का त्याग कर गर्भरूप में उत्पन्न हुए। श्री पार्श्वनाथ भगवान प्राणत देवलोक में किस भव से गये थे? यह दिखाने के लिए प्रथम उनके दस भव कहते हैं-

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में पोतनपुर नगर के अरविन्द राजा के विश्वभूति नामक एक पुरोहित था। उसके अनुद्धरी नामक स्त्री थी तथा एक कमठ और दूसरा मरुभूति ये दो पुत्र थे। अनुक्रम से उनके माता-पिता के निधन के बाद राजा ने कमठ को पुरोहित पद दिया।

कमठ स्वभाव से कठोर, लंपट, दुष्ट और बुरे लक्षण वाला था। उसकी स्त्री का नाम वरुणा था। इसके विपरीत मरुभूति सरल स्वभावी,

भद्रकपरिणामी, धर्मात्मा तथा श्रावकधर्म का पालन करने वाला था। उसकी स्त्री वसुंधरा अत्यन्त स्वरूपवान तथा चपल स्वभाव वाली थी। एक दिन कमठ ने मरुभूति की स्त्री को देख कर उसके रूप से मोहित हो कर भोग करने के लिए उसे दो-तीन बार बुलाया। तब वह स्त्री भी कमठ पर राग करने लगी।

एक दिन कमठ ने प्रधान वस्त्राभूषण दे कर वसुंधरा को अपने वश में कर के आपस में प्रेम निर्माण किया और वह उसके साथ भोगकर्म करने लगा। यह बात कमठ की स्त्री वरुणा के जानने में आयी। तब उसने अपने भरतार से कहा कि तुम जो यह अकृत्य कर रहे हो, सो अच्छा नहीं है। यदि देवर को मालूम हो गया तो लोगों में निन्दा होगी। अपनी स्त्री का यह उपदेश कमठ ने नहीं माना। इसलिए नाराज हो कर वरुणा ने कमठ के अनाचार की बात मरुभूति को बता दी। तब मरुभूति ने विचार किया कि अपनी आँखों से देखे बिना एकाएक स्त्रियों की बात नहीं माननी चाहिये। यह सोच कर किसी गाँव जाने का बहाना कर के वह बाहर चला गया। फिर तीर्थवासी संन्यासी का वेश बना कर पुनः घर आ कर रहा। उस रात उसने दुराचारी कमठ और अपनी स्त्री, इन दोनों को क्रीड़ा करते देखा। फिर सुबह के समय उसने कमठ के दुराचार की बात अरविन्द राजा को बतायी। राजा ने कमठ को पकड़ कर चोर की तरह बुरा हाल कर के उसे गधे पर बिठा कर नगर में घुमाया। इस तरह उसकी विडंबना कर के उसे नगर से बाहर निकाल दिया और मरुभूति को पुरोहित बनाया।

फिर कमठ ने दुःखी हो कर किसी तापस से दीक्षा ले कर बारह वर्ष तक तपस्या करते हुए जगह-जगह भ्रमण किया। अन्त में पोतनपुर आ कर नगर के बाहर एक पर्वत पर तपस्या करने लगा। वह गाँव में जाता नहीं था। गाँव के सब लोग उसे तपस्वी जान कर भोजनादिक देते थे और उसकी प्रशंसा करते थे। यह बात सुन कर मरुभूति ने सोचा कि यह मेरा बड़ा भाई है और मैंने इसे दुःख दिया है तथा इसी कारण से यह तापस हुआ है। इसलिए मुझे वहाँ जा कर अपने अपराध की क्षमायाचना करनी

चाहिये। यह सोच कर बहुत भोजनादि तैयार करा कर अपने साथ ले कर वह कमठ को खमाने गया। वहाँ जा कर उसके पाँव पड़ कर उसने अपने अपराध की क्षमायाचना की। फिर जब वह वापस मुड़ा, तब कमठ ने मरुभूति को पहचान कर अपना बैर याद कर के उसके सिर पर एक बडी शिला डाल दी। इससे मरुभूति की मृत्यु हो गयी। यह प्रथम भव जानना।

मरुभूति का जीव आर्त्तध्यान में मर कर दूसरे भव में विंध्याचल की अटवी में सुजातिक नामक हाथी हुआ। कमठ का जीव भी दुष्ट कर्म के जोर से पर्वत से उतरते समय फिसल पड़ा। इससे मर कर उसी विंध्याचल की भूमि में उड़ने वाला कूर्कट नामक सर्प हुआ।

एक बार संध्या के समय अरविन्द राजा को आकाश में पंचरंगी बादल देख कर वैराग्य हुआ। उन्होंने दीक्षा ले कर ग्यारह अंगों का अभ्यास किया। फिर वे उग्रतप करते हुए एकाकी विचरने लगे। एक बार वे सागरचन्द्र नामक सार्थवाह के संघ के साथ अष्टापद और सम्मेतशिखर की यात्रा के लिए गये। वहाँ विंध्याचल के जंगल में एक सरोवर के किनारे संघ ने मुकाम किया।

इतने में मरुभूति का जीव जो हाथी हुआ था, वह अपनी हथिनियों के परिवारसहित सरोवर में जल पीने के लिए आया। उसने क्रोधित हो कर सर्व संघ को उपद्रव किया। इससे संघ के सब लोग भाग गये। फिर वह हाथी काउस्सग्ग में रहे हुए अरविन्द मुनि को मारने के लिए गया, पर मुनिके तपप्रभाव से वह स्तंभित हो गया। तब वह दूर खड़े खड़े मुनि को देखने लगा। मुनि को देखते हुए उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब पूर्वभव देख कर उसने मुनि को पहचाना। फिर सूँड लम्बी कर के वह मुनि के पाँव पड़ा। मुनि ने भी भव्य जीव जान कर उसे प्रतिबोध दिया। इससे उसे सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। यह देख कर अन्य भी बहुत से लोग प्रतिबोध पाये। फिर हाथी ने श्रावक धर्म अंगीकार किया। श्रावक के बारह व्रतों की अभिलाषा करते हुए मुनि को नमस्कार कर के सरोवर में पानी पी कर वह अपने स्थान पर गया। मुनि भी वहाँ से विहार कर संघ के साथ यात्रा के

लिए गये। फिर चारित्रपालन करते हुए मृत्यु के बाद उन्होंने शुभगति प्राप्त की।

अब मरुभूति का जीव वह हाथी एक दिन गरमी के दिनों में प्यास से पीड़ित होने से मध्याह्न के समय पानी पीने के लिए तालाब पर गया। वहाँ कीचड़ में फँस गया। उस समय कमठ का जीव कूर्कट सर्प भी प्यास से पीड़ित होने के कारण उड़ते-उड़ते वहाँ आया। पानी पी कर जब उसने हाथी को देखा, तब पूर्वभर के बैर के कारण हाथी पर चढ़ कर उसके सिर पर उसने डंक मारा। इससे उसी समय हाथी के शरीर में जहर फैल गया। श्रावकधर्म का पालन करने के कारण वह शुभध्यान में मरा। यह दूसरा भव जानना। तीसरे भव में हाथी वहाँ से मर कर आठवें देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ और हाथी के गिरने से वह सर्प भी उसके नीचे दब कर मर गया। हाथीहत्या के पाप से वह पाँचवी नरक में नारकी के रूप में उत्पन्न हुआ। यह तीसरा भव जानना।

चौथे भव में मरुभूति का जीव आठवें देवलोक से च्यव कर जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेहक्षेत्र में सुकच्छ नामक विजय के वैताढ्य पर्वत की दक्षिणश्रेणी में तिलवती नगरी में विद्युत्गति राजा की कनकवती नामक स्त्री की कोख से पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम किरणवेग रखा गया। अनुक्रम से युवावस्था में सुरूपा नामक स्त्री से उसका विवाह हुआ। बाद में किरणवेग राजा भी बना। एक दिन रानी के साथ सुखोपभोग करते हुए झरोखे में बैठे-बैठे संध्या फूली देख कर उसे वैराग्य हुआ। फिर उसने दीक्षा ग्रहण की।

एक बार वैताढ्य पर्वत के हेमशैल पर मुनि किरणवेग काउस्सग्ग में खड़े थे। उस समय कमठ का जीव पाँचवीं नरक से निकल कर वहाँ सर्प के रूप में उत्पन्न हुआ था। उसने मुनि को डंक दिया। इससे मुनि का देहान्त हो गया। यह चौथा भव जानना। पाँचवें भव में मुनि बारहवें देवलोक में देव बने और सर्प मृत्यु के बाद पाँचवीं नरक में गया। यह पाँचवाँ भव जानना।

छठे भव में मरुभूति का जीव बारहवें देवलोक से च्यव कर जंबूद्वीप

के पश्चिम महाविदेह में गंधिलावती विजय की शुभंकरा नगरी के वज्रवीर्य राजा की लक्ष्मीवती रानी की कोख से पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। माता-पिता ने उसका नाम वज्रनाभ रखा। अनुक्रम से पिता ने उसे राजगद्दी पर बिठाया। इस प्रकार यौवनवय में राज्य-संचालन करते हुए वह सांसारिक सुख भोगने लगा। एक दिन शुभंकरा नगरी के उद्यान में श्री क्षेमंकर तीर्थंकर का समवसरण लगा। वज्रनाभ उन्हें वन्दन करने गया। वहाँ तीर्थंकर की देशना सुन कर संसार अनित्य जान कर उसने भगवान से दीक्षा ग्रहण की। फिर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। जंघाचारण लब्धि के बल से एक बार मुनि वज्रनाभ सुकच्छ विजय में निज्वलन पर्वत पर काउस्सग्ग में रहे। उस समय कमठ का जीव पाँचवीं नरक से निकल कर संसार में अन्य भी अनेक भव भ्रमण कर उस पर्वत पर कुरंग नामक भील हुआ था। वह अपने स्थान से शिकार के लिए बाहर निकला। तब वज्रनाभ मुनि को देख कर पूर्वभव के बैर के कारण उन्हें देखते ही अपशकुन हुआ जान कर उसे क्रोध उत्पन्न हुआ। उसने मुनि के मर्मस्थान में एक बाण खींच कर मारा। इससे मुनि शुभध्यान में चल बसे। यह छठा भव जानना।

सातवें भव में मुनि शुभध्यान में मर कर मध्यम ग्रैवेयक में देवरूप में उत्पन्न हुए और भील भी मृत्यु के बाद मुनिहत्या के पाप से सातवीं नरक में गया। यह सातवाँ भव जानना। आठवें भव में मरुभूति का जीव मध्यम ग्रैवेयक से च्यव कर जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेह में शुभंकर विजय के पुराणपुर नगर में कुशलबाहु नामक वासुदेव की सुदर्शना रानी की कोख से पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। उस समय माता ने चौदह स्वप्न देखे। पुत्रजन्म के बाद माता-पिता ने उसका नाम सुवर्णबाहु रखा। रानी के चौदह स्वप्न-दर्शन के प्रभाव से उसे चक्रवर्तीपद प्राप्त हुआ। फिर छह खंड साध कर चक्रवर्ती पद भोग कर तीर्थंकर की देशना सुन कर वृद्धावस्था में सुवर्णबाहु ने दीक्षा ग्रहण की। फिर बीस स्थानक तप की आराधना कर के तीर्थंकर गोत्र बाँधा (तीर्थंकरनामकर्म निकाचित किया।)

वे राजर्षि एक दिन वीरान स्थान में काउस्सग्ग ध्यान में खड़े थे। उस

समय कुरंग भील का जीव सातवीं नरक से मध्यम आयु पूर्ण कर उस वीरान में क्षीरगुफा में सिंह के रूप में उत्पन्न हुआ था। उसने सुवर्णबाहु मुनि को देखा और पूर्वभव के बैर से उन राजर्षि को मार डाला। यह आठवाँ भव जानना। नौवें भव में राजर्षि शुभध्यान में मर कर दसवें प्राणत देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए और सिंह मर कर चौथी नरक में गया। यह नौवाँ भव जानना।

दसवें भव में मरुभूति का जीव दसवें देवलोक से च्यव कर श्री वामादेवी की कोख में उत्पन्न हुआ और कमठ का जीव चौथी नरक से आयु पूर्ण कर एक दरिद्री ब्राह्मण के घर पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। उसके माता-पिता बचपन में ही मर गये। फिर उसे दुःखी जान कर लोगों ने उस पर दया कर के उसे बड़ा किया। अनुक्रम से उसे युवावस्था प्राप्त हुई, तब निर्धनता के कारण उसे स्त्री की प्राप्ति नहीं हुई। इससे अमर्ष धारण कर के पेट भरने के लिए उसने अज्ञान तप शुरु किया। तापसी दीक्षा ले कर वह पंचाग्नि साधने लगा। इससे वह कमठ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पार्श्वप्रभु का जन्म, विवाह और नागोद्धार

पुरुषों में प्रधान श्री पार्श्वनाथ अरिहन्त तीन ज्ञानसहित माता की कोख में उत्पन्न हुए। माता ने चौदह स्वप्न देखे। (यहाँ स्वप्न पाठकों को बुलाया यावत् गर्भ की प्रतिपालना की, इत्यादि सब अधिकार श्री महावीरस्वामी की तरह जान लेना।)

उस काल में उस समय में श्री पार्श्वनाथस्वामी शीतकाल का दूसरा महीना, तीसरा पखवाड़ा पौष वदि दशमी के दिन नौ महीने साढ़े सात दिन गर्भ में रह कर मध्यरात्रि में विशाखा नक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर वामारानी की कोख से पुत्ररूप में जन्मे। जिस रात्रि में श्री पार्श्वनाथ जन्मे, उस रात्रि में बहुत देव आये। यावत् चौसठ इन्द्र जन्ममहोत्सवप्रमुख करने आये तथा दिग्कुमारिकाएँ आयीं, यह सब श्री महावीरस्वामी की तरह श्री पार्श्वनाथस्वामी का समझना। फिर अश्वसेन राजा ने जन्म महोत्सव कर के

अपने ज्ञाति-गोत्रियों से कहा कि मेरी वामारानी की कोख में जब यह पुत्र आया था, तब वामारानी ने शय्या में अपने पास से निकलता हुआ काला साँप देखा था। इस कारण से हमारे इस पुत्र का नाम पार्श्व होवे। यह कह कर उन्होंने 'श्री पार्श्व' यह नाम रखा।

पाँच धायों से पालन किये जाने वाले श्री पार्श्वकुमार ने दूज के चन्द्रमा की तरह बढ़ते हुए, माता-पितादिक को प्रसन्न करते हुए अनुक्रम से युवावस्था प्राप्त की। उस समय कुशस्थल नगर के प्रसेनजित राजा को म्लेच्छ लोगों ने घेर लिया था। उसकी सहायता के लिए अश्वसेन राजा जाने लगे। तब पिता को रोक कर श्री पार्श्वकुमार वहाँ जाने के लिए तैयार हुए। यह देख कर इन्द्र महाराज ने अपना रथ सारथी सहित वहाँ भेजा। उस पर चढ़ कर प्रभु आकाशमार्ग से वहाँ गये। उन्हें देख कर सब म्लेच्छ लोग वहाँ से भाग गये। प्रसेनजित राजा ने भगवान का बहुत सम्मान किया।

उस समय नीलवर्ण छबि वाले, नौ हाथ शरीर वाले, युवान अवस्था वाले, एक हजार आठ लक्षणधारक, अत्यन्त रूपवान, महाकांतिवान, सुन्दर देदीप्यमान और तेजस्वी श्री पार्श्वकुमार को देख कर प्रसेनजित राजा की पुत्री प्रभावती ने कहा कि हे पिताजी ! श्री पार्श्वकुमार के साथ मेरा ब्याह करा दीजिये। यद्यपि प्रभु की विवाह करने की इच्छा नहीं थी, तो भी राजा ने अत्यंत आग्रह कर के अपनी पुत्री का उनके साथ विवाह किया। इस तरह विवाह कर के भगवान घर लौटे। वे प्रभावती के साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

एक बार वाराणसी नगरी के बाहर कमठ तापस आया। अनेक लोग हाथ में पूजापा ले कर पंचाग्नि तापने वाले उस तापस के पास जाने लगे। झरोखे में बैठे हुए भगवान ने उन्हें देख कर कहा कि ये सब लोग कहाँ जा रहे हैं? उस समय पास में रहा हुआ एक सेवक बोला कि महाराज ! एक दरिद्री ब्राह्मण बचपन में ही मां-बाप मर जाने के कारण, तापस हो कर कमठ नाम धारण कर के घूमता है। वह घूमते-घूमते यहाँ आया है। ये सब

लोग उसकी पूजा के लिए जा रहे हैं। यह सुन कर भगवान भी वहाँ गये।

वहाँ अवधिज्ञान से काष्ठ में जलते हुए सर्प को देख कर भगवान बोले कि अरे मूढ़ तपस्वी ! तू यह दयारहित वृथा कष्ट क्यों कर रहा है? दया के बिना तेरी यह मेहनत सब व्यर्थ है। तब क्रोध कर के कमठ तापस ने कहा कि अरे ! राजाओं के पुत्र तप-जप की क्या परीक्षा कर सकते हैं? तुम तो हाथी-घोड़ों की परीक्षा करो। तप की बात तो हम योगीपुरुष ही जानते हैं। इसमें तुम क्या समझते हो?

कमठ के ऐसे बोल सुन कर भगवान ने उस अग्निकुंड में से एक जलता काष्ठ बाहर निकाल कर उसे कुल्हाड़ी से तोड़ा। उसमें से अर्द्धदग्ध व्याकुल सर्प निकला। वह सर्प भगवान का मुख देखते हुए श्रद्धापूर्वक भगवान के मुख से नवकार मंत्र सुन कर तत्काल मर कर धरणेन्द्र नामक नागराज हुआ। अनेक प्रतों में ऐसा लिखा है कि भगवान ने अग्निकुंड में से जलता काष्ठ सेवक के हाथ से बाहर निकलवा कर कुल्हाड़ी मँगवा कर तुड़वाया तथा जलते साँप को नवकार मंत्र भी सेवक के मुख से सुनवाया। ऐसा स्पष्ट लिखा है।

फिर वहाँ इकट्ठे हुए लोग कमठ से कहने लगे कि अरे अज्ञानी! तू अधर्म कर रहा है। जीवों की हत्या कर रहा है। ऐसा अपना अवर्णवाद सुन कर कमठ बहुत लज्जित हुआ। भगवान के चले जाने के बाद कमठ मानभ्रष्ट हो कर वहाँ से अन्यत्र चला गया। फिर बहुत काल तक विशेषरूप से अज्ञान तप कर के मरने के बाद भवनपति निकाय में मेघमाली नामक देव हुआ।

श्री पार्श्वनाथ प्रभु की दीक्षा

एक बार वसन्त ऋतु में भगवान अपनी रानी के साथ वनक्रीड़ा करने गये। वहाँ एक सुन्दर प्रासाद में ठहरे। उस प्रासाद में चित्रित श्री नेमीश्वर भगवान की बारात से संबंधित चित्र का अवलोकन किया। उस चित्र में राजीमती का त्याग कर नेमीनाथ के दीक्षा-ग्रहण का दृश्य चित्रित था। वह

चित्र देख कर भगवान को वैराग्य हुआ।

भगवान श्री पार्श्वनाथ अरिहन्त, दक्ष,चतुर, प्रतिज्ञापालक, रूपवान, गुणवान, भद्रक और विनयवान थे। वे तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहे। फिर लोकान्तिक देवों ने आ कर उन्हें इष्टकारी वाणी से कहा कि हे समृद्धिमान ! आपकी जय हो। यावत् हे कल्याणवान ! आपकी विजय हो। यह कह कर उनका जय-जयकार किया। श्री पार्श्वनाथजी मनुष्य योग्य गृहस्थ धर्म में भी अवधिज्ञान सहित थे। इसलिए उन्होंने यह जान लिया कि अब दीक्षाग्रहण का अवसर आ गया है। यह जान कर संवत्सरी दानप्रमुख श्री महावीरस्वामी की तरह दे कर शीतकाल का दूसरा महीना तीसरा पखवाड़ा पौष वदि एकादशी के दिन दोपहर के पूर्व वे विशाला नामक पालकी में बिराजमान हुए। देवों और मनुष्यों ने पालकी उठायी। यह सब दीक्षा महोत्सव श्री महावीरस्वामी की तरह जान लेना। पर इतना विशेष है कि वाराणसी नगरी में हो कर आश्रमपद उद्यान में अशोकवृक्ष के पास आ कर पालकी से उतर कर, अशोकवृक्ष के नीचे अपने हाथ से अलंकारप्रमुख सब उतार कर, अपने हाथ से पंचमुष्टि लोच कर के और अट्ठम तप पानीरहित कर के विशाखानक्षत्र में चन्द्रयोग होने पर, एक देवदूष्य वस्त्र ग्रहण कर तीन सौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली और वे अनगार हुए।

श्री पार्श्वनाथ अरिहन्त ने तिरासी दिन तक नित्य काया को वोसिरा कर देव, मनुष्य और तिर्यंच के जो-जो उपसर्ग हुए, वे सब सहन किये। प्रभु ने अट्ठम तप का पारणा कोपट सन्निवेश में धन्ना नामक गृहस्थ के घर परमान्न से किया। वहाँ पाँच दिव्य प्रकट हुए और साढ़े बारह करोड़ सुवर्णमुद्राओं की वर्षा हुई।

कलिकुंड और कुकड़ेश्वर तीर्थ की स्थापना

एक बार भगवान विचरते हुए कादंबरी अटवी में आये। वहाँ कलिंगिरि पर्वत की तलहटी में कुंड सरोवर के पास काउस्सग्ग में रहे। वहाँ महीधर नामक हाथी पानी पीने पहुँचा। भगवान को देख कर उसे जातिस्मरणज्ञान

हुआ। इससे उसने अपना पूर्वभव देखा। तब उसे मालूम हुआ कि पूर्वभव में मैं हेमल नामक वामन कुलपुत्र था। मेरे स्वजन परिवारवाले मेरी हँसी उड़ाते थे। इससे मुझे चिन्तातुर देख कर मेरा सुप्रतिष्ठ नामक मित्र मुझे गुरु के पास ले गया। उनके पास मैंने श्रावकधर्म ग्रहण किया। पर अंतिम अवस्था में अपनी वामनी (छोटी) काया की निन्दा करते हुए मैंने नियाणा किया। उसके योग से मैं बड़ी काया वाला हाथी हुआ हूँ।

ऐसा जान कर उस हाथी ने भगवान की कमल से पूजा की। हाथी की घटना सुन कर चंपानगरी का करकंडू राजा वहाँ आया, पर तब तक भगवान विहार कर गये थे। इससे राजा बड़ा दुःखी हुआ। तब इन्द्र ने वहाँ आ कर नौ हाथ की श्री पार्श्वनाथस्वामी की प्रतिमा प्रकट की। फिर राजा ने उसकी पूजा कर के वहाँ मंदिर बनवाया। इस तरह वहाँ कलिकुंड तीर्थ हुआ। हाथी मृत्यु के बाद व्यन्तरदेव हुआ और उस चैत्य का अधिष्ठायक बना।

एक बार राजपुर के ईश्वर राजा को श्री पार्श्वनाथ भगवान को काउस्सग्ग में खड़े देख कर जातिस्मरणज्ञान हुआ। तब वह अपना पूर्वभव देख कर मूर्च्छित हुआ। फिर जब वह सावधान हुआ, तब मंत्री ने पूछा कि हे स्वामिन् ! आप बेहोश क्यों हो गये थे। तब राजा ने कहा कि मैंने मेरा पूर्वभव देखा। पूर्वभव में मैं वसन्तपुर नगर में एक कोढ़ी ब्राह्मण था। कोढ़रोग के दुःख के कारण मैं गंगानदी में डूब कर मरने के लिए तैयार हुआ था। उस समय एक चारणमुनि ने वहाँ आ कर मुझे प्रतिबोध दिया। फिर समकितवासना से मैं नित्य मंदिर में दर्शन के लिए जाने लगा। वहाँ मुझे पुष्कल नामक श्रावक ने देखा।

मुझे देख कर वह कहने लगा कि अरे ! देखो, यह कोढ़ी मंदिर में क्यों जा रहा है? फिर उसने एक मुनि से पूछा कि महाराज ! यह कोढ़ी मंदिर में जाता है। इसे कोई दोष लगता है या नहीं? तब मुनि ने कहा कि दूर से नमन करने में कुछ भी दोष नहीं है। हे श्रावक ! यह ब्राह्मण अगले भव में राजपुर नगर में ईश्वर नामक राजा होगा और श्री पार्श्वनाथजी को

काउस्सग्ग में रहे हुए देख कर इसे जातिस्मरण ज्ञान होगा।

इसलिए हे प्रधान ! वह कोढ़ी ब्राह्मण मर कर मैं ईश्वर नामक राजा हुआ हूँ। फिर उस ईश्वर राजा ने भक्तिभाव से वहाँ मंदिर बनवाया और उसमें श्री पार्श्वनाथजी की प्रतिमा स्थापन की। वह कुकड़ेश्वर नामक तीर्थ हुआ।

पार्श्वनाथ प्रभु को कमठासुर का उपसर्ग

एक बार विहार करते हुए भगवान किसी नगर के नजदीक तापस के आश्रम के पास पहुँचे। इतने में सूर्यास्त हो गया। तब भगवान वटवृक्ष के नीचे एक कुएँ के पास अडिग ध्यान में काउस्सग्ग में रहे। उस समय पूर्वभव का वैरी अधम मेघमालीदेव अवधिज्ञान के बल से भगवान को खड़े देख कर, पूर्वभव का बैर याद कर, अमर्ष से क्रोध कर के उपसर्ग करने लगा।

प्रथम उसने वेताल के रूप बना कर भगवान को डराया। पर भगवान उससे नहीं डरे। फिर सिंह, बिच्छू, सर्प, हाथी आदि तथा अन्य भी अनेक प्रकार के रूप बना कर वह भगवान को काटने लगा और मसलने लगा, तो भी भगवान उससे क्षुभित नहीं हुए। वे चलायमान नहीं हुए। तब विशेष क्रोधारुण हो कर उसने भारी गर्जारव कर के बिजली उत्पन्न की तथा उसके साथ कल्पान्तकाल का पवन प्रवाहित कर उस पवन से धूल उड़ाते हुए आकाश को आच्छादित कर दिया। फिर धूल के साथ मिले हुए जल की मूसलाधार वर्षा की तथा ब्रह्मांडस्फोट सदृश गर्जारव किया और दसों दिशाओं में बिजली के कण उत्पन्न कर के त्रास पहुँचाने लगा।

पानी का प्रवाह नदी की तरह बहने लगा। जोरदार पानी चढ़ा। आकाश अंधकारमय हो गया। उस समय भगवान के कंठ तक पानी आ गया, तो भी प्रभु नहीं डिगे। उसी समय धरणेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। तब अवधिज्ञान के उपयोग से प्रभु पर उपसर्ग आया जान कर पद्मावतीप्रमुख अग्रमहीषियों सहित वहाँ आ कर उसने प्रभु के मस्तक पर

फनाटोप कर के छत्र रखा और प्रभु के चरणों के नीचे कमल की रचना की। इस तरह वर्षा बन्द रखने का उपाय कर के वह स्वयं इन्द्राणीसहित भगवान के सम्मुख नाटक करने लगा। पर वर्षा बन्द नहीं हुई।

तब धरणेन्द्र ने सोचा कि यह प्रलयकाल तो नहीं है, फिर इस तरह मेघ क्यों बरस रहा है? यह सोच कर अवधिज्ञान से देखा, तो मेघमालीकृत उपसर्ग मालूम पड़ा। तब उसने मेघमाली को ललकार कर कहा कि अरे दुष्ट! पापिष्ट ! उल्लंठ ! अधम ! तूने यह कैसा अकार्य शुरु किया है ! प्रभु ने तो तुझ पर गुण किया था, पर उल्टे तूने उसे अवगुण मान लिया। इससे तू विपरीत हो कर इनसे द्वेष करता है। यद्यपि भगवान स्वयं अतुलबल के स्वामी हैं, तो भी वे क्षमावान और दयालु हैं। वे तो सब सहन कर लेंगे, पर मैं तेरा अपराध सहन नहीं करूँगा। अरे मूर्ख ! तुझे अच्छा उपदेश भी बुरा लगा। वह तेरे लिए बैरकारक हो गया। इसलिए अब तुझे मैं तेरी कमाई दिखाऊँगा। तूने स्वामी की बहुत आशातना की है, पर अब तू भाग कर कहाँ जायेगा?

यह कह कर धरणेन्द्र ने उस पर वज्र छोड़ा। तब जैसे बाज को देख कर तोते तथा कबूतर भयभीत होते हैं, वैसे कमठ भी भयभ्रान्त होते हुए अपनी देवांगनासहित भगवान के पास आ कर, उनके चरणों की शरण ले कर, भगवान को नमस्कार कर के अपना अपराध खमाने लगा और कहने लगा कि हे प्रभो ! आज के बाद मैं कभी ऐसा नहीं करूँगा। यह देख कर धरणेन्द्र ने कहा कि तू बड़े की शरण में आया है, इसलिए मेरा साधर्मिक भाई समझ कर तुझे छोड़ रहा हूँ।

फिर दस भव का बैर खमा कर भगवान के आगे नाटक कर के कमठ अपने स्थान पर गया और धरणेन्द्र भी नाटक कर के अपनी इन्द्राणियों सहित अपने स्थान पर गया। यहाँ धरणेन्द्र ने तीन दिन तक भगवान के मस्तक पर फन का छत्र रखा था। इस कारण से वह नगरी अहिच्छत्रा नाम से प्रसिद्ध हुई।

पार्श्वप्रभु का परिवार और मोक्षगमन

श्री पार्श्वनाथस्वामी अनगार हुए तथा पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त हुए। इस तरह ग्रामानुग्राम विचरते हुए और आत्मभाव में लीन रहते हुए तिरासी दिन बीते। फिर चौरासीवाँ रात्रि-दिन प्रवर्तमान था तब गरमी का पहला महीना और पहला पखवाड़ा चैत्र वदि चौथ के दिन विशाखानक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर प्रथम दो प्रहर के काल समय में धावड़ी वृक्ष के नीचे पानीरहित चौविहार छट्ठ तप किये हुए, निर्व्याघात रूप से आवरणरहित, परिपूर्ण प्रकाशमान सूर्यसमान केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रभु को उत्पन्न हुए। इससे वे सब जीवों के भाव जानते हुए और देखते हुए विचरने लगे।

श्री पार्श्वनाथजी को एक शुभ, दूसरा आर्यघोष, तीसरा विशिष्ट, चौथा ब्रह्मचारी, पाँचवाँ सोम, छठा श्रीधर, सातवाँ वीरभद्र और आठवाँ यशस्वी ये आठ विशाल गच्छ के स्वामी ऐसे गणाधरों की सम्पदा हुई। उन्हें आर्यदिन्नप्रमुख सोलह हजार साधुओं की उत्कृष्टी सम्पदा हुई तथा पुष्पचूलाप्रमुख अड़तीस हजार साध्वियों की उत्कृष्टी सम्पदा हुई। इसी प्रकार सुव्रत आदि एक लाख चौसठ हजार श्रावक तथा सुनन्दाप्रमुख तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाओं की उत्कृष्टी सम्पदा हुई।

श्री पार्श्वनाथजी को केवली तो नहीं, पर केवली जैसे साढ़े तीन सौ चौदह पूर्वधर मुनियों की उत्कृष्टी सम्पदा हुई। उन्हें चौदह सौ अवधिज्ञानियों की उत्कृष्टी सम्पदा हुई। इसी प्रकार एक हजार केवलियों की, ग्यारह सौ वैक्रियलब्धिवन्तों की और छह सौ ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानियों की उत्कृष्टी सम्पदा हुई। उनके एक हजार साधु मोक्ष गये और दो हजार साध्वियाँ मोक्ष गयीं। भगवान को आठ सौ विपुलमति और छह सौ वादियों की सम्पदा हुई। उनके बारह सौ साधु अनुत्तर विमान में गये- एकावतारी हुए। यह प्रभु के परिवार का परिमाण जानना।

पुरुषादानी श्री पार्श्वनाथजी के दो प्रकार की अन्तकृत् भूमि हुई। उसमें एक युगान्तकृत् भूमि, सो श्री पार्श्वनाथजी के चार पाट तक मोक्षमार्ग चला। दूसरी पर्यायान्तकृत् भूमि, सो भगवान केवलज्ञान पाने के बाद तीन

वर्ष के बाद कोई मुनि सिद्ध हुआ याने तीन वर्ष के बाद मोक्षमार्ग चला।

उस काल में उस समय में श्री पार्श्वनाथ पुरुषादानी तीस वर्ष तक गृहवास में रहे, तिरासी दिन छद्मस्थ अवस्था में रहे तथा तिरासी दिन कम सत्तर वर्ष तक केवलपर्याय में रहे। परिपूर्ण सत्तर वर्ष तक साधुत्व का पालन किया। कुल मिला कर एक सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर, शेष रहे हुए चार कर्म खपा कर, इस अवसर्पिणी काल का दुःखमसुखमा नामक चौथा आरा बहुत बीत गया और स्वल्प रहा, तब उस अवसर में वर्षा का पहला महीना दूसरा पखवाड़ा याने श्रावण सुदि आठम के दिन समेतशिखर पर्वत पर मासखमण के चौविहार (पानीरहित) तप में अनशन किये हुए शैलेशी अवस्था में योगसंवरण कर तैंतीस अन्य साधु और चौंतीसवें स्वयं श्री पार्श्वनाथ, विशाखानक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर मध्यरात्रि के समय में लम्बे हाथ कर के काउस्सग्ग में खड़े खड़े कालप्राप्त हुए- निर्वाण को प्राप्त हुए। सब दुःख से रहित हुए। विशेष बात श्री पार्श्वनाथ चरित्र से जान लेना।

श्री पार्श्वनाथस्वामी मोक्ष जाने के बारह सौ तीस वर्ष बाद श्री कल्पसूत्र पुस्तक पर लिखा गया, क्योंकि श्री पार्श्वनाथ मोक्ष जाने के ढाई सौ वर्ष बाद श्री महावीरस्वामी मोक्ष गये। उनके नौ सौ अस्सी वर्ष बाद श्री कल्पसूत्र पुस्तकारूढ़ हुआ। इति श्री पार्श्वनाथ चरित्र।

श्री नेमिनाथ भगवान का जन्म

पश्चानुपूर्वी से बाईसवें श्री नेमिनाथस्वामी का चरित्र कहते हैं- उस काल में उस समय में अरिहन्त श्री अरिष्टनेमि के पाँच कल्याणक चित्रानक्षत्र में हुए। एक चित्रानक्षत्र में उनका देवलोक से च्यवन हुआ, दूसरा चित्रानक्षत्र में जन्म हुआ, तीसरा चित्रानक्षत्र में दीक्षा ली, चौथा चित्रानक्षत्र में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और पाँचवाँ चित्रानक्षत्र में वे मोक्ष गये। इति संक्षेप वाचना।

अब विशेष वाचना कहते हैं- उस काल में उस समय में श्री नेमिनाथस्वामी वर्षाकाल का चौथा महीना, सातवाँ पक्ष याने कार्तिक वदि बारस के दिन अपराजित नामक महाविमान जहाँ बत्तीस सागरोपम की आयु

है, वहाँ से च्यव कर इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में शौरीपुर नगर के समुद्रविजय राजा की शिवादेवी भार्या की कोख में मध्यरात्रि के समय चित्रानक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर गर्भरूप में उत्पन्न हुए। तब माता ने चौदह स्वप्न देखे इत्यादिक सब वर्णन श्री महावीरस्वामी के समान जानना।

उस काल में उस समय में श्री नेमिनाथ अरिहन्त वर्षाकाल का पहला महीना दूसरा पखवाड़ा याने श्रावण सुदि पंचमी के दिन नौ महीने साढ़े सात दिन गर्भ में पूर्ण होने पर यावत् चित्रानक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर पुत्ररूप में जन्मे। यहाँ जन्म महोत्सवप्रमुख सब श्री महावीरस्वामी की तरह श्री नेमिनाथजी के नाम से कहना।

माता-पिता ने उनका नाम अरिष्टनेमि रखा, क्योंकि भगवान की माता शिवादेवी ने पन्द्रहवें स्वप्न में अरिष्टरत्न का चक्र देखा था तथा लोगों के अरिष्ट चूर चूर हो गये, मिट गये, इसलिए अरिष्टनेमि नाम रखा। भगवान को उनके बचपन में इन्द्राणी आ कर खेलाती थी। जब प्रभु को भूख लगती, तब वे अंगूठा चूसते। उस अंगूठे में देव अमृतसंचार करते। भगवान माता का स्तनपान करते नहीं थे।

अनुक्रम से भगवान बढ़ने लगे। भगवान के शरीर का श्यामवर्ण था, फिर भी वे महास्वरूपवान थे। एक दिन भगवान पलने में खेल रहे थे, उस समय इन्द्र महाराज ने अपनी सभा में प्रभु के बल पराक्रम की प्रशंसा की। उस बात पर एक देव को विश्वास नहीं हुआ। उनसे राजमहल में आ कर भगवान को पालने में से उठा लिया। फिर वह उन्हें सवा लाख योजन दूर ले गया। तब भगवान ने यह कोई देवप्रयोग है, ऐसा जान कर अपना स्वल्प बल प्रकट किया। इससे वह देव नीचे आ गिरा। फिर इन्द्र महाराज ने अनुकंपा कर के उसे मुक्त किया। भगवान को पुनः पालने में रख कर स्तवना कर इन्द्र महाराज अपने स्थान पर गये।

यादवों और पांडवों की उत्पत्ति

श्री नेमीश्वर भगवान ने द्वारिका नगरी में दीक्षा ली। यह सुन कर श्रोता को यह आशंका होगी कि उनका जन्म शौरीपुर में हुआ है और उन्होंने दीक्षा द्वारिका में

ली है, यह कैसें हुआ? यह संदेह मिटाने के लिए अब यादवों की उत्पत्ति कहते हैं-

पूर्व में हरि और हरिणी इन दो युगलिकों से हरिवंशकुल प्रकट हुआ, यह बात दस अच्छेरों के अधिकार में संक्षेप में लिखी जा चुकी है। इसके बाद हरिराजा का पुत्र 'अश्व' हुआ। अश्व का पुत्र वसुराजा हुआ। उसके वंश में अनुक्रम से यदु राजा हुआ। यदु राजा से यादववंश प्रकट हुआ।

यदु राजा का पुत्र शूर राजा हुआ। शूर राजा के शौरी और दूसरा सुवीर ये दो पुत्र हुए। शूर राजा ने अपने बड़े पुत्र शौरी को मथुरा का राज्य दे कर सुवीर को युवराज बनाया और स्वयं ने चारित्र ग्रहण किया। फिर शौरी राजा ने अपने छोटे भाई सुवीर को मथुरा का राज्य दे कर स्वयं कुशावर्त्त देश में जा कर अपने नाम से शौरीपुर नगर बसाया। वहाँ वह राज करने लगा।

शौरी राजा के अंधकवृष्णि नामक पुत्र हुआ और सुवीर राजा के भोजकवृष्णि नामक पुत्र हुआ। भोजकवृष्णि के उग्रसेन नामक पुत्र हुआ। भोजकवृष्णि ने उग्रसेन को मथुरा का राज्य दे कर दीक्षा ग्रहण की। अंधकवृष्णि के दस पुत्र हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं- एक समुद्रविज., दूसरा अक्षोभ, तीसरा स्तमित, चौथा सागर, पाँचवाँ हिमवन्त, छठा अचल, सातवाँ धरण, आठवाँ पूरण, नौवाँ अभिचन्द्र और दसवाँ वसुदेव। ये दसों दशार्ह कहलाये। अंधकवृष्णि ने अपने बड़े पुत्र समुद्रविजय को शौरीपुर का राज्य दिया। अंधकवृष्णि के दो पुत्रियाँ थीं- कुन्ती और माद्री। उसने कुन्ती का विवाह पांडु राजा के साथ और माद्री का विवाह दमघोष राजा के साथ किया।

अब संक्षेप में पांडवों की उत्पत्ति कहते हैं- प्रथम श्री ऋषभदेवजी का पुत्र कुरु नामक हुआ। उसने कुरुदेश बसाया। उसके बाद उसके पाट पर असंख्य राजा हुए। उनमें से हस्ति नामक राजा ने हस्तिनागपुर बसाया। फिर बहुत काल बीतने पर सुभूम नामक चक्रवर्ती राजा हुआ। उसके बाद और भी अनेक राजा हुए। फिर एक शन्तनु नामक राजा हुआ। उसके दो स्त्रियाँ थीं। उनमें से एक विद्याधरपुत्री गंगा थी। उसके गांगेय नामक पुत्र हुआ। उसका दूसरा नाम भीष्म पितामह लोक में प्रसिद्ध हुआ। दूसरी सत्यवती नामक रानी थी। उसके दो पुत्र हुए। एक का नाम चित्रांगद और दूसरे का नाम विचित्रवीर्य था। शन्तनु राजा चित्रांगद को राज्य दे कर परलोकवासी हुआ।

एक दिन चित्रांगद नीलांगद राजा के साथ युद्ध में मारा गया। तब विचित्रिवीर्य राजा हुआ। विचित्रवीर्य के तीन रानियाँ थीं- अंबिका, अंबालिका और अंबा।

अंबिका के पुत्र का नाम धृतराष्ट्र था। उसके गांधारीप्रमुख आठ स्त्रियाँ थीं। उनके दुर्योधनादिक सौ पुत्र हुए। अंबालिका के पुत्र का नाम पांडु था। उसके एक कुन्ती नामक स्त्री थी। उसके एक युधिष्ठिर, दूसरा भीम और तीसरा अर्जुन ये तीन पुत्र हुए। पांडु के माद्री नामक एक और स्त्री भी थी। उसका दूसरा नाम पद्मा था। उसके एक नकुल और दूसरा सहदेव ये दो पुत्र हुए। इस तरह इन दोनों स्त्रियों से मिल कर पांडु राजा के पाँच पुत्र हुए। वे पाँच पांडव कहलाये। विचित्रवीर्य की तीसरी स्त्री अंबा के एक पुत्र हुआ। उसका नाम विदुर था। इस तरह पांडवों का संबंध संक्षेप से कहा

अन्धकवृष्णि की दूसरी पुत्री माद्री जो दमघोष राजा के साथ ब्याही गयी थी, उसके शिशुपाल नामक पुत्र हुआ। उसका वध श्रीकृष्ण ने किया है। इस तरह की व्यवस्था करने के बाद अंधकवृष्णि ने दीक्षा ग्रहण की। अब मथुरा का राज्य उग्रसेन चलाने लगा। धारिणी उसकी रानी थी तथा शौरीपुर का राज्य समुद्रविजय चलाने लगे। शिवादेवी उनकी रानी थी। शिवादेवी के नेमिकुमार नामक पुत्र हुआ। अन्य भी सब भाई साथ साथ मिल कर रहते थे।

मथुरा में उग्रसेन राजा सुखपूर्वक राज करता था। एक दिन नगर के बाहर जंगल में एकमासिक उपवास करने वाला एक तापस आया। महीने के उपवास के मध्य यदि कोई आ कर उससे अपने घर पारणा करने के लिए कहता, तो उसके घर वह पारणा करता था। अन्य किसी के घर वह पारणा नहीं करता था। यदि आमंत्रण देने वाला भूल जाता और तापस को पारणा के लिए बुलाने नहीं आता, तो वह पुनः एक मास के उपवास का पच्चक्खाण कर लेता था। ऐसा उसका नियम था।

वह तापस मासिक उपवास कर जंगल में बैठा था, तब उग्रसेन राजा वहाँ पहुँच गया। उसने तापस को देख कर अपने घर पारणा करने की विनती की। पारणा करना कबूल करा कर वह अपने घर गया। पर जिस दिन पारणा कराना था, उस दिन भूल जाने के कारण तापस को बुलाने के लिए सेवक नहीं भेजा। तापस ने भी शाम तक राह देख कर बुलाने के लिए कोई नहीं आया जान कर पुनः दूसरे महीने की तपस्या का नियम कर लिया।

कुछ दिन बाद राजा को उस तापस की याद आई कि अरे ! मैंने यह कैसा अकार्य कर दिया कि तापस को आमंत्रण दे कर भी उसे भोजन के लिए नहीं बुलाया? यह सोच कर पुनः वह उस तापस को पारणा के लिए आमंत्रण दे आया।

परन्तु दूसरी बार भी पारणा के दिन भोजन के लिए बुलाना भूल गया। इसी तरह तीसरे महीने में भी आमंत्रण दे कर भोजन के लिए बुलाना भूल गया। इससे तापस को राजा पर क्रोध आया। उसने सोचा कि यह दुष्ट राजा मुझे आमंत्रण दे जाता है, पर भोजन नहीं कराता। इसलिए यदि मेरे तप का प्रभाव हो, तो मैं इसे भवान्तर में दुःख देने वाला होऊँ। ऐसा नियाणा कर के वहाँ से मरने के बाद उग्रसेन राजा की धारिणी रानी की कोख में आ कर उत्पन्न हुआ।

उसके प्रभाव से तीसरे महीने में रानी को राजा का कलेजा खाने का दोहद हुआ। इससे वह शरीर से दुर्बल हो गयी। राजा के बार बार पूछने पर उसने दोहद से संबंधित जो बात थी, वह बता दी। फिर राजा ने प्रधान की बुद्धि से वह दोहद पूर्ण किया। रानी ने भी गर्भ गिराने के बहुत उपाय किये, पर गर्भ नहीं गिरा। अंत में नौ महीने पूर्ण होने पर पुत्र का जन्म हुआ। उसके जन्मते ही रानी ने उसे काँसे की पेटी में रख कर और साथ में नामांकित मुद्रिका रख कर वह पेटी यमुना नदी में बहा दी।

तैरती हुई वह पेटी मथुरा से शौरपुर आयी। उस समय घी-तेल बेचने वाला सुभद्र वणिक यमुना नदी में स्नान करने आया। उसने वह पेटी नदी में से बाहर निकाली। खोल कर देखा, तो उसमें बालक दिखाई दिया। फिर उस वणिक ने मुद्रिकासहित उस बालक को उठा लिया और गुप्तरूप से घर ला कर अपनी पत्नी को सौंप दिया। उसने लोगों से कहा कि मेरी पत्नी के गूढ़गर्भ पुत्र हुआ है। उसने उस बालक का नाम कंस रखा।

अनुक्रम से वह बालक बड़ा हुआ, तब बहुत उधम करने लगा। वह लोगों के बालकों के साथ मारपीट करता। तब लोग आ कर सुभद्र से नित्य शिकायत करते। तब उस वणिक ने विचार किया कि मैं तो सामान्य मनुष्य हूँ और यह राजपुत्र है। इसलिए मेरे घर यह कैसे रह सकता है? ऐसा जान कर उस वणिक ने वह बालक वसुदेवकुमार को सौंप दिया। फिर कंस भी वसुदेवजी का सेवक बन कर रहा। वसुदेवजी भी कंस पर बहुत कृपादृष्टि रखने लगे।

इसी अवसर पर वसुराजा के वंश में बृहद्रथ राजा हुआ। उसका पुत्र जरासंध प्रतिवासुदेव तीन खंडों का भोक्ता था। वह राजगृही नगरी में राज करता था। सब यादव भी उसी की आज्ञा का पालन करते थे। उस जरासंध राजा ने समुद्रविजयजी को दूत के साथ एक पत्र लिख भेजा कि वैताढ्य पर्वत के पास रहने वाला सिंह नामक पल्लीपति जो सिंहपुर नगर का राजा है, उसे जीवित पकड़ कर बाँध कर जो

मेरे पास लायेगा, उसके साथ मैं मेरी पुत्री जीवयशा का विवाह करूँगा और वह जो नगर पसन्द करेगा, उसका राज्य भी दूँगा।

यह पत्र पढ़ कर समुद्रविजयजी अपनी सेना तैयार कर सिंह पल्लीपति पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुए। इतने में वसुदेवकुमार ने आ कर उन्हें रोका और कंस को साथ ले कर स्वयं सैन्य सहित रवाना हुआ। वहाँ जा कर कंस को आगेवान कर के उसके साथ युद्ध किया। कंस ने सिंह राजा को पकड़ कर बाँध कर वसुदेवजी के अधीन किया।

वसुदेवजी जब आक्रमण करने के लिए गये थे, तब समुद्रविजयजी ने कोष्टक निमित्तज्ञ से पूछा था कि वसुदेवजी और जीवयशा की जोड़ी मिलती है या नहीं? तब निमित्तज्ञ ने कहा था कि यह जीवयशा विवाह के बाद श्वसुरकुल और अपना पितृकुल इन दोनों कुलों का क्षय करने वाली है। इसलिए आप विचारपूर्वक काम करें। मेरे वचन में जरा भी संदेह न रखें। यह सुन कर उस निमित्तज्ञ को बिदाई दे कर बिदा किया।

निमित्तज्ञ की बात से वे चिन्तातुर हो कर सोचने लगे कि वसुदेवजी जीत गये, तो जरासंध अपनी पुत्री वसुदेवजी को देगा, पर वह कन्या तो दोनों कुलों का क्षय करने वाली है। तो अब हम इसका क्या उपाय करें? इस तरह वे चिन्तातुर हो कर बैठे थे, तब वसुदेवजी भी सिंह राजा को बाँध कर समुद्रविजयजी के पास ले आये। उन्होंने समुद्रविजयजी को चिन्तातुर देख कर पूछा कि आप किस चिन्ता में बैठे हैं? तब वसुदेवजी को एकान्त में ले जा कर समुद्रविजयजी ने कहा कि जीवयशा दोनों कुलों का क्षय करने वाली है। तब वसुदेवजी ने कहा कि सिंह राजा को मैंने नहीं बाँधा। उसे कंस ने बाँधा है।

यह बात सुन कर समुद्रविजयजी सोच में पड़ गये कि इस वणिकपुत्र में इतना बल नहीं हो सकता। इसलिए उसकी हकीकत पूछने के लिए उन्होंने सुभद्र वणिक को बुलाया। उसने सब वृत्तान्त सच सच बता दिया। फिर उस वणिक के पास से मुद्रिका मँगवा कर उन्होंने कंस को दी। फिर सिंह राजा सहित कंस को राजगृही में जरासंध के पास भेजा। जरासंध ने कंस के साथ अपनी पुत्री जीवयशा का विवाह किया। फिर कंस ने मथुरा का राज्य माँगा, तब जरासंध ने उसे अपना सबल सैन्य दिया। सैन्य ले कर कंस मथुरा गया। उसने अपने पिता उग्रसेन को जीवित पकड़ कर काष्ठ के पिंजरे में डाल दिया और स्वयं मथुरा का राज करने लगा। अपने

पिता काष्ठपिंजरं में पड़े पड़े दुःख भोगते हैं, यह देख कर कंस का छोटा भाई अतिमुक्तक संसार से विरक्त हो कर दीक्षा ले कर चला गया।

वसुदेवजी का पूर्वभव

वसुदेवकुमार ने पूर्वभव में स्त्रीवल्लभ कर्म उपार्जन किया था। उस पूर्वभव की बात कहते हैं- वसुदेवजी का जीव पिछले भव में किसी गाँव में नन्दीषेण नामक कुलपुत्र था। उसकी बाल्यावस्था में ही उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई थी। इसलिए वह मामा के घर बड़ा हुआ। अनुक्रम से उसने युवावस्था प्राप्त की। पर उसका कुदर्शन, काला रूप, बिल्ली के जैसी छोटी आँखें, गणेश के जैसा बड़ा पेट, हाथी के जैसे बड़े दाँत, ऊँट के जैसे बड़े होंठ, बन्दर के जैसे कान, चपटी नाक, तिकोना ललाट आदि बातों के कारण ऐसा कुरूप जान कर उसे कोई कन्या नहीं देता था। सब स्त्रियाँ उसकी निन्दा करती थीं। इससे चिन्तातुर हो कर उसने मामा के घर कामकाज करना छोड़ दिया।

तब मामा ने कहा कि मेरे सात पुत्रियाँ हैं। उनमें से एक का विवाह तेरे साथ कर दूँगा। तू चिन्ता मत कर। फ़िर मामा ने अपनी पुत्रियों से पूछा, तब उन सातों ने कहा कि हम इस दाँतले के साथ कभी विवाह नहीं करेंगीं। यह सुन कर नन्दीषेण मरने के लिए किसी पर्वत पर चढ़ कर वहाँ से कूदने लगा। इतने में एक मुनिराज ने उसे रोका और कहा कि अरे भोले ! इस प्रकार मरन से तेरा दुःख नहीं मिटेगा। फिर प्रतिबोध प्राप्त कर उसने चारित्र ग्रहण किया और साधुओं की वैयावच्च करने का अभिग्रह धारण किया। वह स्वयं मासखमण की तपस्या करता और साधुओं की वैयावच्च भी करता।

एक दिन इन्द्रराज ने अपनी सभा में नन्दीषेण की वैयावच्च करने के बारे में बहुत प्रशंसा की और कहा कि उसके जैसा वैयावच्च करने वाला अन्य कोई नहीं है। इस बात पर अविश्वास कर के एक देव वहाँ आया। उसने अतिसारग्रस्त एक साधु का रूप बना कर उसे गाँव के बाहर बिठाया। फिर अन्य एक साधु का रूप बना कर उसे नन्दीषेण के पास भेजा। नन्दीषेण उस समय पारणा करने की तैयारी में था। उस कृत्रिम साधु ने आ कर नन्दीषेण से कहा कि अरे ! अतिसार का रोगी एक साधु गाँव के बाहर पड़ा है। उसे वैयावच्च की आवश्यकता है।

यह सुन कर नन्दीषेण पारणा करना छोड़ कर तुरन्त उस साधु की शरीर-शुद्धि के लिए प्रासुक पानी लेने के लिए गाँव में घूमने लगा। उस देव ने अपनी देवमाया से सब पानी अप्रासुक कर डाला। इससे नन्दीषेण को लेने योग्य पानी कहीं

नहीं मिला। तो भी उसे मन में खेद नहीं हुआ। उल्टे वह पश्चात्ताप करने लगा कि अरे! देखो तो सही। मैं कैसा भाग्यहीन हूँ कि ऐसे मुनियों की वैयावच्च करने में भी मुझे अन्तराय हो रहा है। अन्त में उसे पानी मिला। पानी ले कर वह साधु के पास आया। तब उस रुग्ण साधु ने गुस्से में आ कर लात मार कर वह सब पानी गिरा दिया। फिर वह कहने लगा कि अरे मूर्ख ! इतनी देर से क्यों आया? ऐसा कहा तो भी नन्दीषेण ने उस पर क्रोध नहीं किया।

फिर वह उस साधु को कंधे पर बिठा कर गाँव में ले चला। तब उस साधु ने देवमाया से उस पर अत्यन्त दुर्गंधित विष्टा करना शुरु किया। इससे नन्दीषेण का सम्पूर्ण शरीर मल से भर गया। तो भी नन्दीषेण को किसी प्रकार का द्वेषभाव नहीं हुआ। उसका ऐसा धैर्य देख कर देव सन्तुष्ट हुआ और उसे वन्दन कर देवलोक में अपने स्थान पर गया। इस तरह नन्दीषेण ने बारह हजार वर्ष तक चारित्र का पालन किया। अनेक ग्रंथों में पचपन हजार वर्ष तक चारित्रपालन किया ऐसा लिखा है। अन्त में नन्दीषेण मुनि ने अनशन किया। उस समय कोई चक्रवर्ती उसे वन्दन करने आया। तब चक्रवर्ती की पटरानी को देख कर उसने नियाणा किया कि मैं परभव में स्त्रीवल्लभ होऊँ। फिर वहाँ से काल कर वह देवलोक में गया। वहाँ की आयु पूरी कर उसने वसुदेव के रूप में जन्म लिया।

पूर्वजन्म में किये हुए नियाणे के प्रभाव से उसे कामदेव जैसा रूप मिला। वसुदेवजी जब शौरीपुर नगर में घूमते, तब नगर की स्त्रियाँ अपने घर खुले छोड़ कर तथा अन्य सब कामकाज छोड़ कर उनके रूप से मोहित हो कर उनके पीछे घूमती थीं और अपने पति का कहा भी नहीं मानती थीं। इससे किसी किसी के घर में चोर घुस जाते और घर लूट कर चले जाते। यह देख कर नगर में रहने वाले सब लोगों ने समुद्रविजय राजा के पास जा कर विनती की कि गाँव की सब स्त्रियाँ अपने-अपने घर सूने छोड़ कर वसुदेवकुमार के पीछे घूमती हैं। इसलिए यदि आप वसुदवजी को नहीं रोकें, तो हमें अन्यत्र कहीं रहने के लिए जगह दीजिये। यह सुन कर समुद्रविजय राजा ने कहा कि हे पंचो ! आप जैसा कहते हैं, वैसा ही मैं करूँगा। आप लोग सुखपूर्वक अपने अपने घर जाइये और सुख-समाधि में रहिये। यह कह कर महाजनों को बिदा किया।

थोड़ी देर बाद वसुदेवजी भी समुद्रविजयजी के पाँव छूने आये। तब वसुदेवजी को पास में बिठा कर समुद्रविजयजी ने कहा कि हे भाई ! आजकल शरीर से तू बहुत दुबला-पतला नजर आता है। मुझे लगता है कि तू जहाँ-तहाँ बहुत भटकता

है, यह ठीक नहीं है। क्योंकि समय-असमय में कोई छिद्र देख कर तेरे रूप को बिगाड़ देगा तथा अपन राजा हैं, इसलिए अपने बैरी भी बहुत हैं। वे भी कोई उपद्रव कर सकते हैं। इसलिए आगे से तू अपने घर के बगीचे में खेला कर। अब बाहर घूमना छोड़ दे। बाहर घूमने से सीखी हुई विद्या का विस्मरण हो जाता है। यह सुन कर वसुदेवजी ने भी विनयपूर्वक कहा कि आपका आदेश मुझे मान्य है। फिर वे घर की बाड़ी में ही खेलने लगे।

जब गर्मी के दिन आये, तब शिवादेवी ने चन्दन घिस कर कटोरी में भर कर ढँक कर दासी के हाथ में दिया और उसे समुद्रविजयजी के पास भेजा। जब दासी कटोरी ले कर जा रही थी, तब वसुदेवजी ने पूछा कि यह क्या है?

तब दासी ने कहा कि हुजूर के विलेपन के लिए रानी ने चंदन की कटोरी दी है, उसे ले जा रही हूँ। तब वसुदेवजी ने दासी के हाथ से कटोरी छीन कर अपने शरीर पर चन्दन का विलेपन कर दिया। यह देख कर दासी ने क्रोध से कहा कि तुम्हारे ऐसे लक्षण होने के कारण ही तुम कैदखाने में पड़े हो। यह सुन कर वसुदेवजी ने दासी से पूछा कि कैदखाना कैसा? तब दासी ने कोई उत्तर नहीं दिया। पर जब अधिक हठ कर पूछा, तब दासी ने गाँव के लोगों से संबंधित सब विचार कह सुनाया।

इससे वसुदेवजी राजा तथा पंचों पर अमर्ष ला कर आधी रात के समय अकेले ही घर से बाहर निकल गये। फिर सोचा कि मुझे कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे समुद्रविजयजी मेरी आशा छोड़ दें और बाद में खोज के लिए न निकलें। फिर नगर के बाहर एक मुर्दे को जला कर दरवाजे के किंवाड़ पर खून से अक्षर लिखे कि हे नगरवासीजनो ! तुम सुनो। मैं तुम्हारे तथा मेरे बड़े भाई के सुख के लिए जल कर भस्म हुआ हूँ। अब तुम सब सुख-समाधि में रहना। ऐसा लिख कर वसुदेवजी वहाँ से चले गये।

सुबह के समय द्वाररक्षक ने जब दरवाजा खोला, तब जला हुआ मुर्दा देखा और किंवाड़ पर वसुदेवजी के लिखे हुए अक्षर पढ़े। फिर उसने समुद्रविजयजी को सब हाल कह सुनाया। समुद्रविजयजी ने जब वहाँ जा कर देखा, तब वे शोकातुर हो कर मरने के लिए तैयार हो गये। पर प्रधानादि लोगों ने उन्हें समझा कर रोक दिया। फिर वे शोक में डूबे रह कर राज करने लगे।

अब वसुदेवजी गाँव गाँव घूमने लगे। वे जहाँ जाते वहाँ पूर्व जन्म में किये हुए नियाणे के प्रभाव से कहीं दस, कहीं बीस, कहीं सौ, कहीं पाँच सौ कन्याओं के

साथ उनका विवाह होता था। वे सब विद्याधर राजाओं की, अन्य भूचर राजाओं की तथा सेठप्रमुख महाधनाढ्य लोगों की पुत्रियाँ जानना। इस तरह कुल मिला कर बहत्तर हजार कन्याओं के साथ वसुदेवजी का विवाह हुआ तथा अनेक विद्याएँ भी उन्हें प्राप्त हुईं।

इसी अवसर में रोहक राजा की पुत्री रोहिणी का स्वयंवर रचा गया। वहाँ त्रिखंडाधिपति जरासंध आदि सब राजा स्वयंवर मंडप में आये। इसी प्रकार समुद्रविजयजी प्रमुख सब यादव भी आये। उस रात में वसुदेवजी को रोहिणी, प्रज्ञप्ति विद्यादेवी ने स्वप्न में आ कर कहा कि हे वसुदेव ! तुम रोहिणी के स्वयंवरमंडप में जाओ। वह तुम्हारे साथ विवाह करेगी। रोहिणी के अलावा एक और कन्या के साथ भी तुम्हारा विवाह होगा। इस तरह तुम्हें दो कन्याओं की प्राप्ति होगी। तुम सो क्यों रहे हो? सुबह तुम वहाँ जाना। यह कह कर विद्यादेवी ने रोहिणी के पास जा कर उससे भी स्वप्न में कहा कि तुम मृदंग बजाने वाले कुबड़े के साथ विवाह करना।

सुबह के समय रोहक राजा ने स्वयंवर मंडप सजाया। वहाँ सब राजा और राजकुमार भी सज-धज कर अपने अपने नाम के सिंहासन पर जा कर बैठे। इतने में राजकन्या रोहिणी भी सोलह शृंगार कर सखियों के साथ हाथ में फूलमाला ले कर स्वयंवरमंडप में आयी। तब सब राजा लोग उसे देखने लगे। प्रतिहारिणी प्रत्येक राजा के गुणरूपादिक का वर्णन करने लगी। रोहिणी सती थी, इसलिए दर्पण में से सब देख नहीं सकती थी। इस कारण से प्रतिहारिणी ने सब राजाओं का वर्णन किया।

फिर कुलदेवी के वचन को हृदय में धारण कर के रोहिणी ने देखा, तो उसे मालूम हुआ कि कुबड़े के रूप में वसुदेव आये हैं और उनके पास मृदंग है। कुबड़े ने जब मृदंग बजाया, तब उसमें से 'यही वसुदेव यही वसुदेव' ऐसी ध्वनि निकली। उस समय रोहिणी ने कुबड़े के गले में वरमाला डाल दी। तब वह कुबड़ा नाचने लगा और मुख से कहने लगा कि अहो ! इन सब राजाओं से मैं अधिक भाग्यवान हूँ। इसी कारण से ये सब राजा बैठे रहे और वरमाला मुझे मिल गयी।

यह देख कर मंडप में आये हुए सब राजा कन्या पर क्रोधित हुए। कई कन्या की निन्दा करने लगे, कई कन्या के पिता की निन्दा करने लगे और कइयों ने कहा कि इस कुबड़े को मार कर इसके पास से वरमाला खींच लो। व्यर्थ दूसरों पर क्रोध करने से क्या होगा? ऐसा आपस में विचार कर उन्होंने कहा कि जिसके सुभट कुबड़े के पास खड़े हैं, वे कुबड़े के पास से वरमाला खींच लें। वरमाला जो छीन

लेगा, उसी की वह वरमाला होगी।

यह सुन कर सब राजाओं के सेवक कुबड़े के पास गये। कुबड़े ने सब सेवकों को अपने सोने के मृदंग से मार मार कर जमीन पर गिरा दिया। यह देख कर सब राजा शस्त्र ले कर मारने दौड़े। तब वसुदेव ने सब राजाओं को बदसूरत कर दिया। किसी की मूछें तो किसी की दाढ़ी काट डाली और किसी को रुंडमुंड कर दिया। यह देख कर जरासंध राजा ने समुद्रविजयजी की तरफ देखा। तब समुद्रविजय राजा बख्तर-टोप पहन कर धनुष्य-बाण ले कर युद्ध करने के लिए उठे। उन्हें देख कर वसुदेव ने सोचा कि भाई के साथ लड़ना ठीक नहीं है। इसलिए अब मुझे मेरा स्वरूप प्रकट कर देना चाहिये। नहीं तो लड़ाई होगी।

यह सोच कर कुबड़े का रूप त्याग कर मृदंग फेंक कर समुद्रविजयजी की तरफ एक बाण छोड़ा। उसमें सुनहरे अक्षरों में यह लिखा था कि वसुदेव का आपको नमस्कार हो। यह पढ़ कर समुद्रविजयजी ने सविस्मय सोचा कि वसुदेव तो मर गया था, फिर यहाँ कहाँ से आ गया? यह कोई ऐन्द्रजालिक मुझे भरमाता तो नहीं है? वे यह सोच ही रहे थे कि इतने में वसुदेव ने आ कर उनके पाँव छूए। तब समुद्रविजयजी ने उन्हें अच्छी तरह पहचाना और सब यादव खुश हुए। जरासंधप्रमुख राजा भी खुश हुए। महोत्सवपूर्वक वसुदेव का रोहिणी के साथ विवाह किया गया। फिर पूर्व में उन्होंने जिन जिन स्त्रियों के साथ विवाह किया था, उन सबकी हकीकत समुद्रविजयजी को बता दी। फिर अपनी बहत्तर हजार स्त्रियों को इकट्ठा कर उन्हें विमान में बिठा कर वसुदेवजी अपने घर आये। स्नेह के कारण कंस वसुदेवजी को मथुरा ले गया। वहाँ कंस और वसुदेवजी दोनों रहने लगे।

एक बार देवक राजा की पुत्री देवकीजी वसुदेव के साथ विवाह करने के लिए मथुरा आयी। देवकीजी और जीवयशा दोनों साथ खेलती थीं, पर जीवयशा अपने पिता के बल के गर्व से उन्मत्त थी। जब देवकीजी का विवाह शुरु हुआ, तब जीवयशा मदिरापान कर देवकीजी को अपने कंधे पर बिठा कर नाचने लगी। उस समय कंस के छोटे भाई अतिमुक्तक मुनि गोचरी के लिए घूमते घूमते कंस के घर आये। उन्हें देखते ही जीवयशा मदोन्मत्त हो कर उनके गले से लिपट कर बोली कि देवरजी ! तुम अच्छे अवसर पर आये हो। अब एक राजकन्या के साथ तुम्हारा भी विवाह कर दूँगी। यह बोलती हुई वह उन्हें पकड़े रही। तब उसे डराने के लिए साधु बोले कि अरी मुग्धे ! तू क्या नाच-कूद रही है? जिसे तूने अपने कंधे पर बिठाया है, उसका सातवाँ गर्भ तेरे पति को तथा तेरे पिता को मारने वाला होगा।

साधु के ऐसे वचन सुन कर उसने साधु को छोड़ दिया। साधु वहाँ से विहार कर गये।

अब जीवयशा का नशा उतर गया। उसके मन में शंका हुई कि साधु का वचन झूठा नहीं होता। फिर उसने वह बात एकान्त में अपने पति से कही। कंस ने भी उसकी बात सत्य मानी। पर मुनि का वचन झूठा करने के लिए उसने सोचा कि यह बात कोई जान न ले, इस प्रकार इसका उपाय करना चाहिये। यह सोच कर उसने एक दिन वसुदेवजी को प्रसन्न किया। तब वसुदेवजी ने कहा कि हे कंस ! मैं तुम पर तुष्टमान हूँ, इसलिए तुम जो माँगोगे, वह मैं तुम्हें दूँगा। यह सुन कर कंस ने कहा कि हे मित्र ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो देवकी के पहले सात गर्भ मुझे देना। यह बात वसुदेवजी ने सरल मन से मान ली और कंस से कहा कि मैं तुम्हें सातों गर्भ दे दूँगा। इस तरह वसुदेवजी वचन से बँध गये। फिर उन्होंने यह बात देवकीजी से कही। तब देवकीजी ने अतिमुक्तक मुनि के कहे हुए वचन वसुदेवजी को सुनाये और कहा कि यह कंस अपने पुत्रों को ले कर उन्हें मार डालेगा। यह सुन कर वसुदेवजी को बहुत पछतावा हुआ। पर वचन से बँध गये थे, इसका क्या उपाय हो सकता है? सत्पुरुष का बोलना बदलता नहीं है।

इसी अवसर में भद्दिलपुर नगर में नागसेठ रहता था। उसके सुलसा नामक स्त्री थी। उसे मृतवत्सा दोष था। इसलिए वह मरे हुए पुत्रों को जन्म देती थी। उसने अट्ठम तप कर हरिणैगमेषीदेव की आराधना की। तीसरे उपवास में वह देव प्रकट हो कर बोला कि मुझे क्यों याद किया है? तब सुलसा ने कहा कि हे देव ! मुझे मृतकपुत्र जन्मते हैं। उन्हें जीवित कर दो। तब देव ने कहा कि किसी का कर्म दूर करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। इसलिए तेरे पुत्र तो जीवित नहीं होंगे। यह बात निश्चयात्मक है, तो भी तुम्हारी पुत्र से संबंधित इच्छा मैं पूरी करूँगा। यह कह कर देव चला गया।

फिर कर्मयोग से देवकीजी और सुलसा इन दोनों को एक साथ गर्भ रहा और एक साथ ही जन्मा। तब हरिणैगमेषीदेव ने देवकीजी के जीवित पुत्र ले जा कर सुलसा के पास रख दिये और सुलसा के मरे हुए पुत्र देवकीजी के पास ला कर रखे। उन मरे हुए बालकों को कंस के चौकीदारों ने ले जा कर कंस को सौंपा। कंस ने उन्हें शिला पर पछाड़ कर मार डाला। इस तरह देवकीजी के छह पुत्र सुलसा के पास बड़े हुए और सुलसा के मृतक पुत्र देवकीजी के पास से ले कर कंस ने मार डाले।

देवकीजी ने पूर्वभव में अपनी सौत के सात रत्न चुरा लिये थे। इससे शोकमग्न और दिलगीर हो कर वह बहुत रुदन करने लगी, तब एक रत्न उसने लौटा दिया था। इस कर्म के योग से अनीकयशा, अनन्तसेन, विजयसेन, निहतारि, देवयशा और शत्रुसेन ये छह पुत्र देवकीजी के ले कर हरिणैगमेषीदेव ने सुलसा को दिये।

श्रीकृष्ण वासुदेव का जन्म और उनके हाथों कंसवध

अब सात स्वप्नसूचित सातवाँ गर्भ पाँचवें देवलोक से च्यव कर देवकीजी की कोख में आ कर उत्पन्न हुआ। उस गर्भ का जन्म होते ही उसे ले जाने के लिए कंस के पहरेदार बैठे हुए थे। इसलिए देवकीजी ने वसुदेवजी से कहा कि यह सातवाँ गर्भ उत्तम है, इसलिए किसी भी उपाय से कदाचित् इसके लिए झूठ बोलना पड़े तो झूठ बोल कर भी हमें इस गर्भ की रक्षा करनी चाहिये। यह बात वसुदेवजी ने मान ली।

वसुदेवजी का देवकीजी के साथ जब विवाह हुआ था, तब देवक राजा ने जो दहेज दिया था, उसमें गोकुल गाँव भी साथ में दिया था। उस गाँव में नंद नामक गोप और उसकी पत्नी यशोदा ये दोनों रहते थे। इसलिए ये भी दहेज में आ गये थे। ठीक समय पर देवकीजी ने पुत्र को जन्म दिया। वह वर्ण से काला था। इसलिए वसुदेवजी कृष्ण कृष्ण कहते हुए वहाँ से गुप्तरूप से निकल गये। उस समय कंस के पहरेदारों को भी नींद आ गयी।

फिर वे दरवाजा खोल कर जब आगे बढ़े, तब उग्रसेन ने पूछा कि यह कौन है? तब वसुदेवजी ने कहा कि यह तेरा काष्ठ का पिंजरा तोड़ कर तुझे मुक्त करने वाला है। इतना कह कर वे आगे बढ़ गये। मार्ग में यमुना नदी ने भी मार्ग दिया। नदी पार कर वे गोकुल में गये और उन्होंने यशोदाजी को वह बालक सौंप दिया और उस समय यशोदाजी के जो पुत्री हुई थी, उसे ले कर देवकीजी को दे दिया। फिर जब पहरेदार नींद से जागे, तब उन्होंने पूछा कि क्या जन्मा? पुत्र या पुत्री? तब वसुदेवजी ने उन्हें पुत्री दे दी। कंस ने उसकी नाक काट कर पुनः वसुदेवजी को दे दी।[१]

अब कंस निश्चिन्त हो गया। वहाँ गोकुल में यशोदाजी वसुदेव के कहने से कृष्ण का पुत्र के समान पालन-पोषण करती थीं। कृष्ण भी सुखपूर्वक बढ़ रहे थे।

---

१. अन्य दर्शन वाले कहते हैं कि कन्या को कंस ने शिला पर पछाड़ कर मार डाला और वह मर कर बिजली हुई। पर यह बात मिथ्या है।

श्री कृष्णजी को देखने की देवकीजी की बहुत इच्छा होती, पर कंस के भय से पन्द्रह पन्द्रह दिन या महीने महीने बाद आज वत्स बारस है, आज गोत्राट है, आज काजली तीज है, ऐसे नये नये बहाने बना कर वे गोकुल में जातीं। इस कारण से ये सब दिन जैनेतरों के पर्व हुए। वहाँ जा कर देवकीजी श्रीकृष्ण को खेलातीं, स्तनपान करातीं और यशोदा से कहतीं कि तेरा पुत्र मुझे बहुत प्यारा लगता है। ऐसे वचन बोल कर वे पुनः लौट आतीं। इस तरह कृष्णजी बाललीला करते हुए यशोदाजी के दूध-दहीप्रमुख के बर्तन गिरा देते, फोड़ देते इत्यादि अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते थे। एक बार वसुदेवजी ने देवकीजी से कहा कि तुम्हें वहाँ बार बार नहीं जाना चाहिये। यदि कंस को यह मालूम हो गया, तो वह और कुछ उत्पात करेगा।

कृष्णजी जब सात-आठ वर्ष के हुए, तब उन्हें विविध कलाएँ सिखाने के लिए वसुदेवजी ने रोहिणी के पुत्र बलदेवजी को गुप्तरूप से भेजा और उसके गुप्त रहने का कारण कंस से संबंधित सब हकीकत उन्हें बता दीं। इस तरह बलदेवजी और कृष्ण दोनों गोकुल में रहने लगे। बलदेवजी ने श्रीकृष्ण को अनेक विद्याएँ और कलाएँ सिखायीं। अब श्रीकृष्ण चौदह वर्ष के हुए। राम और कृष्ण दोनों भाई ग्वालों के संग नाचते-कूदते, गाते-बजाते और नीले-पीले वस्त्र पहनते। कृष्ण अपने मस्तक पर मोरपंख लगाते, मुरली बजाते, गोपियों के संग गाते, दिनभर खेल खेलते और शाम को घर आते।

एक बार कंस के मन में यह बात आयी कि साधु का वचन झूठा हुआ या नहीं? यह जानने के लिए उसने किसी निमित्तज्ञ से पूछा कि मुझे कोई मारने वाला है या नहीं? यह सुन कर निमित्तज्ञ ने कहा कि साधु का वचन झूठा नहीं हो सकता। तुम्हारा शत्रु कहीं पर बड़ा हो रहा है। वह मरा नहीं है। तब कंस ने पूछा कि यह मैं कैसे जान सकता हूँ? तब निमित्तज्ञ ने कहा कि जो अरिष्ट नामक बैल का दमन करेगा, कालियानाग को वश करेगा, तेरे केशीघोड़े का दमन करेगा, खर और मेष नामक खरों को मारेगा, चंपोत्तर और पद्मोत्तर नामक हाथियों को मारेगा, सारंगधनुष्य चढ़ायेगा और चाणूरमल्ल तथा मुष्टिकमल्ल को मारेगा, वह तुझे मारने वाला होगा।

यह बात सुन कर कंस ने इसकी निगाह करने के लिए ढिंढोरा पिटवाया कि जो सारंगधनुष चढ़ायेगा, उसके साथ मैं मेरी बहन सत्यभामा का विवाह करूँगा। यह घोषणा सुन कर अनेक राजा वहाँ इकट्ठे हुए।

उस समय वसुदेवजी का एक महाबलवान पुत्र अनादृष्ट भी धनुष्य चढ़ाने के लिए रवाना हुआ। रास्ते में संध्या हो गयी, इसलिए गोकुल में ठहर गया। बलभद्र उसे पहचानते थे। उन्होंने उसकी बहुत सेवा की। सुबह होने पर अनादृष्ट ने बलभद्र से कहा कि मुझे कोई ऐसा मार्गदर्शक दो, जो मथुरा का मार्ग बता दे। तब बलभद्र ने श्रीकृष्ण को अनादृष्ट के साथ मार्ग बताने के लिए भेजा। रास्ते में अनादृष्ट का रथ पेड़ों में अटक गया। अनादृष्ट उसे पेड़ों से बाहर निकाल नहीं सका। तब श्रीकृष्णजी ने दोनों पेड़ों को लात मार कर उखाड़ दिया और मार्ग बना कर रथ को निकाल दिया। यह देख कर श्रीकृष्ण को बलवान जान कर अनादृष्टि अपने साथ मथुरा ले गया।

वहाँ जा कर अनादृष्ट धनुष्य उठाने लगा, पर दैवयोग से उठा न सका। तब लोग उसे देख कर हँसने लगे। अनादृष्ट का उपहास श्रीकृष्ण से सहन नहीं हुआ। उन्होंने धनुष्य को सहजता से उठा लिया और प्रत्यंचा चढ़ा दी। सत्यभामा पास ही खड़ी थी। उसने श्रीकृष्ण के गले में वरमाला पहना दी। उस समय वसुदेवजी ने क्रोध कर के अनादृष्ट से कहा कि इसे तू यहाँ क्यों लाया है? इसे अभी ही वापस वहीं पहुँचा दे। यह सुन कर अनादृष्ट चुपचाप श्रीकृष्ण को गोकुल में ले गया। इतने दिन तक श्रीकृष्ण को यह मालूम नहीं था कि बलभद्र उनके भाई हैं।

अनुक्रम से श्रीकृष्ण सोलह वर्ष के हुए। उस समय कंस ने केशी घोड़ा, मेषखर तथा अरिष्टवृषभ ये सब गोकुल में भेजे। इन्होंने वहाँ जा कर गोकुल में उपद्रव करना शुरु किया। श्रीकृष्ण ने इन सबको मार डाला। इसी समय में कंस ने मल्लों का अखाड़ा लगाया। वहाँ अनेक मल्ल इकट्ठे हुए। उनमें चाणूरमल्ल और मुष्टिकमल्ल ये दोनों बहुत बलवान थे। उस समय कंस ने विचार किया कि धनुष्य चढ़ाने वाले को उस समय मैं ठीक से नहीं पहचान सका। इसलिए अब यदि वह किसी तरह यहाँ आ जाये, तो मैं उसे मार डालूँगा। यह सोच कर कंस एक तरफ बैठ गया।

ऐसे में श्रीकृष्ण ने सुना कि आज मल्लयुद्ध है। उन्होंने मल्लयुद्ध देखने जाने का निश्चय कर बलभद्र को गुरु जान कर उन्हें पाँव छू कर कहा कि हे स्वामिन्! आप आज्ञा दें तो मैं आज मल्लयुद्ध देखने मथुरा जाऊँ। तब बलभद्र ने सोचा कि वहाँ जाने से कदाचित् कंस के साथ युद्ध हो जाये, इसलिए कृष्ण को हमारा भाई भाई का रिश्ता बता देना चाहिये। यह सोच कर बलभद्र ने कहा कि हे यशोदा! हमें स्नान के लिए गरम पानी दे। हमें आज मल्लयुद्ध देखने जाना है। उस समय

यशोदा किसी अन्य काम में लगी थी, इसलिए उसने बलभद्र का वचन सुना-अनसुना कर दिया। तब बलभद्र ने कहा कि क्यों यशोदा ! मेरे भाई का पालन-पोषण करने से क्या तू रानी बन बैठी? अपना दासत्व भूल गयी? क्या इस कारण से मेरी बात नहीं मानी? इतना कह कर श्रीकृष्ण को साथ ले कर बलभद्र ने कहा कि चलो, हम यमुना में ही स्नान कर के मथुरा जायेंगे।

बलभद्र ने यशोदा से ऐसे कटु वचन कहे, इस कारण से श्रीकृष्ण नाराज हो गये। तब मार्ग में बलभद्र ने छह भाइयों का वध आदिक कंस से संबंधित सब वृत्तान्त कह दिया तथा यह भी कहा कि हम दोनों भाइयों की माताएँ अलग अलग हैं, पर पिता एक ही है। तुझे कंस के भय से यहाँ गोकुल में रखा है। यह सुन कर श्रीकृष्ण ने कहा कि यदि आज ही मैं मेरे छह भाइयों को मारने का बैर कंस से वसूल करूँ, तो ही मैं सचमुच कृष्ण हूँ।

यह कह कर मार्ग में यमुनानदी में स्नान के लिए प्रवेश किया। तब कालियद्रह में से कालीनाग सामने आया। श्रीकृष्ण ने उसे पकड़ कर उसकी नाक बींध कर, उसे कमलबेल से नाथ कर उस पर सवार हो कर उसे घोड़े की तरह दौड़ाया। यह बात मथुरा जा कर लोगों ने एक-दूसरे से कही। कंस ने भी लोगों के मुँह से सुना कि नंद गोपाल के पुत्र ने कालीनाग का दमन किया है। इतने में राम-कृष्ण दोनों अनेक ग्वालों के समूह से घिरे हुए नगर के द्वार पर आये। वहाँ चंपोत्तर और पद्मोत्तर इन दो हाथियों ने रोका। तब सब ग्वाल-बाल डरने लगे। फिर बलभद्र और श्रीकृष्ण ने हाथियों के दंतोशल उखाड़ कर उन्हें दूर फेंक दिया। इससे वे हाथी मर गये।

फिर श्रीकृष्ण और बलभद्र दोनों मल्ल के अखाड़े में गये। वहाँ एक राजा को मंच से नीचे पटक कर स्वयं उस मंच पर बैठ गये। इसके बाद बलभद्र ने श्रीकृष्ण को अपना सब परिवार बताया तथा कंस भी बताया और कहा कि यह कंस अपना ही है, पर बड़ा दुष्ट है। इतने में कंस ने चाणूरमल्ल और मुष्टिकमल्ल इन दोनों को युद्ध के लिए मैदान में उतारा। अनुक्रम से श्रीकृष्ण ने चाणूरमल्ल को तथा बलभद्र ने मुष्टिकमल्ल को मार डाला।

इस तरह दोनों मल्लों को मरे हुए जान कर कंस क्रोधित हो कर बोला कि अरे सुभटो ! जिन्होंने इन दोनों साँपों को पाल-पोस कर बड़ा किया है, उन नन्द और यशोदा दोनों को बाँध कर पकड़ लाओ और घानी में पील डालो। कंस के ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण ने रोषारुण हो कर छलाँग मार कर कंस से कहा कि अरे

दुष्ट! मेरे छह भाइयों को तूने मारा है। अब मैं उसका बदला लेता हूँ। यह कह कर कंस की चोटी पकड़ कर उसे नीचे गिरा दिया और मुक्कों से मारा। इससे कंस मर कर नरक में गया।

फिर यादवों ने मिल कर उग्रसेन राजा को पिंजरे से बाहर निकाल कर आजाद किया और सभा में ले जा कर बिठाया। तब लोगों ने जाना कि राम और कृष्ण दोनों वसुदेव के पुत्र हैं। फिर उग्रसेन राजा ने सोलह वर्ष की उम्र वाले श्रीकृष्ण के साथ तीन सौ वर्ष की उम्र वाली सत्यभामा का विवाह किया।

शौरीपुर से यादवों का निर्गमन और कालकुमार की प्रतिज्ञा

यादवों ने जरासंध के डर से जीवयशा से पूछा कि क्या हम कंस का अग्निसंस्कार करे? तब जीवयशा ने कहा कि राम-कृष्ण तथा अन्य बहुत से यादवों के साथ कंस का दाह संस्कार किया जायेगा। तुम देखो तो सही आगे क्या होता है। यह सुन कर कृष्णजी ने कहा कि अरे रंडा ! तुझसे क्या होने वाला है? यह सुन कर जीवयशा वहाँ से निकल कर सीधे राजगृह गयी और अपने पिता के आगे खुले सिर रोने लगी। उसने कहा कि आपके जीवित रहते यादवों ने आपके दामाद को मार डाला है। यादव बहुत उन्मत्त हो गये हैं। यह सुन कर जरासंध ने कहा कि हे पुत्री! तू धैर्य धर। जो होना था, सो हो गया। अब राम और कृष्ण ये दोनों मेरे अपराधी हैं। उन दोनों को यहाँ ला कर यादव मेरे स्वाधीन करेंगे, तो ही मेरे राज्य में रह सकेंगे। अन्यथा उन सब यादवों को मैं मार डालूँगा। इस तरह जीवयशा को दिलासा दे कर सन्तुष्ट किया।

फिर सोम नामक सामन्त को जरासंध ने यादवों के पास भेजा। उसने यादवों के पास जा कर समुद्रविजयप्रमुख राजाओं से कहा कि हे यादवो ! मेरी बात सुनो। जो होना था सो हो गया। अब सिर्फ राम और कृष्ण इन दो ग्वालपुत्रों को बाँध कर मेरे साथ जरासंध के पास भेज दो। इन दासों के कारण तुम्हारे सब यादवकुल का क्षय करना ठीक नहीं है। यह सुन कर समुद्रविजयजी बोले कि अरे सोम ! तू समझता नहीं है। ऐसे गुणवान और बलवान पुत्रों को मरवाने के लिए हम तुझे कैसे सौंप सकते हैं? अब तो हम वृद्ध हो गये हैं। कितने काल तक जीवित रहेंगे? इसलिए जो होना होगा, वह होगा। हम हमारे पुत्र जरासंध को नहीं देंगे।

फिर बलभद्र ने कहा कि अरे सोम ! पिताओं के पास पुत्र माँगते तुझे शर्म नहीं आती? अरे ! अभी तो हमने एक भाई को मारने का बदला कंस से लिया है, परन्तु पाँच और भाइयों को मारने का बदला लेना तो शेष है। इसलिए यदि तू जीने की

इच्छा रखता हो तो चुपचाप यहाँ से चला जा। नहीं तो तुझे अभी फल मिलेगा। यह सुन कर सोम सामन्त डर कर जरासंध के पास चला गया।

फिर भयभीत यादवों ने कोष्टिक निमित्तज्ञ से पूछा कि हमारी जीत कहाँ होगी? तब उसने कहा कि आपके कुल में राम और कृष्ण महापुरुष हैं तथा नेमीश्वर भगवान तीर्थंकर हैं, इसलिए आपका कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। परन्तु इस समय आप सब कृष्ण को राजा बना कर पश्चिम दिशा में जाइये। मार्ग में जहाँ सत्यभामा पुत्रयुगल को जन्म दे, वहाँ आप बस जाइये। वहीं आपकी वृद्धि होगी। यहाँ रहना आपके लिए हितावह नहीं है।

यह सुन कर समुद्रविजयप्रमुख ग्यारह कुल कोटि यादव शौरीपुर से और उग्रसेनप्रमुख सात कुल कोटि यादव मथुरा से इकट्ठे हो कर अपने अपने परिवार सहित सौराष्ट्र देश की तरफ चले।

सोम सामन्त ने राजगृह नगर में जा कर जरासंध को सब समाचार कह सुनाये। तब जरासंध भी अपनी सेना सज्जित कर यादवों पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुआ। उस समय जरासंध के पुत्र कालकुमार ने कहा कि यदि मेरा नाम काल है, तो मैं सब यादवों का काल बन कर उन्हें मार डालूँगा। यदि वे आकाश में ऊँचे जायेंगे, तो सीढ़ी लगा कर आकाश में जा कर उनका नाश करूँगा। यदि वे जमीन में प्रवेश करेंगे, तो जमीन खोद कर उसमें प्रवेश कर मैं उन्हें मार डालूँगा। यदि वे जल में प्रवेश करेंगे, तो मैं भी जल में प्रवेश कर उन्हें मार डालूँगा तथा यदि वे आग में प्रवेश करेंगे, तो मैं भी आग में प्रवेश कर उनका नाश करूँगा।

ऐसी प्रतिज्ञा कर के पाँच सौ भाइयों सहित पिता को प्रणाम कर के कालकुमार ने यादवों पर आक्रमण करने के लिए कूच किया। जाते समय जीवयशा से भी कहा कि मैं मेरे बहनोई की हत्या का बदला यादवों से लूँ, तो ही मेरा नाम काल जानना। जीवयशा ने भी आशीर्वाद दिया और कहा कि तेरी मृत्यु हो तो भले हो, पर यादवों का नाश अवश्य करना। इस तरह जैसा होना था, वैसा ही जीवयशा के मुख से वचन भी निकला।

कालकुमार पाँच सौ भाइयों सहित बहुत शीघ्रता से रवाना हुआ। चलते चलते वह यादवों से एक दिन के मुकाम जितने अन्तर पर पहुँचा और वहाँ ठहर गया। इतने में श्री नेमीश्वर तीर्थंकर, कृष्ण वासुदेव, राम बलदेव तथा अन्य भी तद्भव मोक्षगामी ऐसे अनेक लोग यादवों के परिवार में थे, उनके पुण्ययोग से यादवों की कुलदेवी वहाँ खिंची आयी। उसने यादवों और कालकुमार के मुकाम के मध्य एक

पर्वत बना दिया। उस पर्वत पर मार्ग में एक चिता जलायी और एक बुढ़िया का रूप बना कर वह स्वयं चिता के पास रुदन करते बैठी।

कालकुमार ने उसके पास जा कर रोने का कारण पूछा। तब कुलदेवी ने छलपूर्वक रोते हुए कहा कि हे पुत्र ! कालकुमार के भय से यादवों के सब परिवार इस चिता में प्रवेश कर गये हैं। कोई भी यादव शेष नहीं बचा है। मैं उनकी कुलदेवी हूँ। अब मेरी पूजा कौन करेगा? इस कारण से मुझे बहुत दुःख होने से मैं रुदन कर रही हूँ। यह बात सुन कर अपने मुख से की हुई प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए अनेक सामन्त तथा अनेक भाइयों सहित तलवार निकाल कर कालकुमार ने यादवों को मारने के लिए अग्नि में प्रवेश किया और वह जल कर भस्म हो गया। फिर सुबह के समय जरासंध के लश्कर के लोग देवमाया जान कर वापस फिरे और राजगृह जा कर जरासंध को सब वृत्तान्त सुनाया।

द्वारिका नगरी में यादवों का राज्य और श्री शंखेश्वरतीर्थ की स्थापना

अब सब यादव मौज करते हुए प्रसन्न मन से पश्चिम समुद्र के तट पर पहुँचे। वहाँ सत्यभामा ने भ्रमर नामक पुत्र युगल को जन्म दिया। उस निमित्तज्ञ के कहे अनुसार सब यादव वहाँ ठहर गये। फिर श्रीकृष्ण महाराज ने अट्ठम तप कर के सुस्थित नामक लवणाधिप देव की आराधना की। इससे वह देव प्रत्यक्ष हाजिर हुआ। उसके पास श्रीकृष्ण ने रहने के लिए स्थान माँगा। तब उस देव ने कहा कि इन्द्र महाराज से पूछ कर तुम्हें स्थान दूँगा। यह कह कर सुस्थितदेव ने इन्द्र महाराज के पास जा कर सब बात कही।

तब इन्द्र ने धनद नामक भंडारी को भेजा। उसने बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी द्वारिका नगरी का निर्माण किया। उसके चारों ओर अठारह हाथ ऊँचा, बारह हाथ मोटा तथा नौ हाथ पृथ्वी में गहरा ऐसा सोने का किला बनाया। उसे रत्न के कंगूरों से सुशोभित किया। फिर उस किले के चारों ओर गहरा खन्दक बनाया। इस तरह बाड़ी, बाग-बगीचे सहित सुन्दर किला बना कर धनद ने उस द्वारिकानगरी में श्रीकृष्ण को बसने की आज्ञा दी।

उस नगरी में एक सात खंडवाला मकान कल्पवृक्षों की बाड़ीसहित श्रीकृष्णजी के निवास के लिए बनाया। उस मकान के एक तरफ समुद्रविजयादिक दस भाइयों के लिए मकान बनाये तथा दूसरी तरफ उग्रसेन के लिए मकान बनाया। उसके पास अन्य सब भाइयों के लिए मकान बनाये। वे सब मकान तीन दिन में धन-धान्य, वस्त्र-अलंकार प्रमुख उत्तम वस्तुओं से भर कर श्रीकृष्ण के स्वाधीन कर के धनद

देवलोक में अपने स्थान पर गया। सब यादव मिलजुल कर द्वारिका नगरी में बस गये। यहाँ यादवों के परिवार बढ़ने लगे। पचास वर्ष की अवधि में अठारह कुल कोड़ि यादवों से बढ़ कर छप्पन्न कुल कोड़ि यादव हो गये।

ऐसे अवसर पर राजगृही नगरी में रत्नकंबल के कुछ व्यापारी पहुँचे। उनका माल वहाँ नहीं बिका। इसलिए वे कहने लगे कि इस नगरी में माल बिकता नहीं है। सत्वहीन निर्धन लोगों से यह नगरी भरी हुई है। हमारे रत्नकंबल खरीदने वाला भी कोई यहाँ नहीं मिला। सचमुच द्वारिका जैसी कोई नगरी नहीं है। वहाँ रहने वाले यादव महासुखी हैं। इस तरह द्वारिका नगरी की प्रशंसा सुन कर जरासंध ने सोचा कि मेरे बैरी अभी तक जीवित हैं। उनका नाश करना चाहिये। यह सोच कर सेना ले कर वह युद्ध के लिए रवाना हुआ।

इतने में नारदऋषि ने आ कर श्रीकृष्ण से कहा कि चेतना हो, तो तुम चेत जाओ। जरासंध तुम पर आक्रमण करने के लिए आ रहा है। यह सुन कर श्रीकृष्ण भी सेना ले कर उसका मुकाबला करने के लिए चले। उन्होंने पंचासरा गाँव के पास पड़ाव डाला। जरासंध की सेना ने भी पंचासरा से चार योजन दूरी पर मुकाम किया। जरासंध की सेना ने चक्रव्यूह की रचना की और श्रीकृष्ण की सेना ने गरुडव्यूह की रचना की। इन दोनों सेनाओं में बड़ा भारी युद्ध हुआ। लाखों सैनिक मारे गये। इत्यादि विशेष अधिकार श्री नेमिनाथचरित्रादि ग्रंथों से जान लेना। यहाँ ग्रंथगौरव के भय से नहीं लिखा है।

फिर जरासंध ने सोचा कि इन सैनिकों की लड़ाई चलते श्रीकृष्ण को जीतना कठिन है। यह सोच कर उसने अन्य कोई उपाय न सूझने से जरा नामक बाण श्रीकृष्ण की सेना पर छोड़ा। इससे उनकी सेना खून का वमन करती हुई मूर्च्छित हो गयी। तब श्री नेमिनाथजी के कहने से श्रीकृष्ण ने अट्ठम तप कर के धरणेन्द्र की आराधना की। धरणेन्द्र ने प्रत्यक्ष हो कर आगामी तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजी की प्रतिमा श्रीकृष्ण को अर्पण की। वहाँ मंगल के निमित्त श्रीकृष्णजी ने सुस्थितदेव द्वारा दिया गया शंख बजाया और धरणेन्द्र द्वारा दी गयी प्रतिमा की स्थापना की। इससे श्री शंखेश्वर नामक तीर्थ हुआ। यह तीर्थ आज भी मौजूद है।

कोई कोई आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि श्रीकृष्णजी तीन दिन तक उपवास कर के बैठे। इन तीन दिनों तक श्री नेमिनाथस्वामी ने संग्राम किया। इन्द्र महाराज ने मातली नामक सारथी सहित रथ भेजा। उस रथ पर चढ़ कर उन्होंने शंख बजाया। इससे जरासंध की सेना शिथिल हो गयी। श्रीकृष्ण ने तीन दिन तक श्री

शंखेश्वर पार्श्वनाथजी की मूर्ति का न्हवणजल अपनी सेना पर छाँटा। इससे उनकी सेना सुसज्जित हो गयी। अन्त में किसी भी तरह श्रीकृष्ण को जीतने का कोई भी उपाय जरासंध को नहीं सूझा, तब उसने अपना चक्र श्रीकृष्ण पर छोड़ा। इससे श्रीकृष्ण का कुछ नहीं बिगड़ा। उल्टे वह चक्र श्रीकृष्ण को तीन प्रदक्षिणा दे कर उनके हाथ में चला आया। फिर वही चक्र श्रीकृष्ण ने जरासंध पर छोड़ा। उसने जरासंध का मस्तक धड़ से अलग कर दिया। तब आकाश में देव दुंदुभी बजा कर बोले कि श्रीकृष्ण नौवें वासुदेव हुए। यह बात सुन कर जरासंध की समस्त सेना श्रीकृष्णजी की सेवा में उपस्थित हो गयी। फिर द्वारिका में आ कर श्रीकृष्ण सुख-समाधि में तीन खंड का राज्य संचालन करने लगे।

द्वारिका में बहत्तर कुल कोड़ि यादव रहते थे और द्वारिका के बाहर साठ कुल कोड़ि यादव रहते थे तथा महापुरुष समुद्रविजयादिक दस दशार्ह, बलदेवादिक पाँच महावीर याने महान योद्धा, उग्रसेनादिक सोलह हजार राजा, प्रद्युम्नादिक साढे तीन करोड़ कुमार, सांबादिक सोलह हजार दुर्दान्त कुमार, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर तथा महासेन प्रमुख छप्पन्न हजार बलवान राजा द्वारिका में रहते थे। रुक्मिणीप्रमुख बत्तीस हजार रानियाँ तथा अनंगसेनाप्रमुख अनेक गणिकाएँ द्वारिका में विद्यमान थीं। इतना बड़ा राज्य श्रीकृष्णजी का था।

नेमिनाथ की बलप्रशंसा और बलपरीक्षा

एक बार इन्द्र महाराज ने श्री नेमिनाथजी के बल की प्रशंसा की। उस समय सभा में से कोई एक मिथ्यात्वी देव इन्द्र महाराज के वचनों पर अविश्वास कर गिरनार पर्वत पर आया। वहाँ उसने सुरंधरा नामक नया नगर बसाया। वह देव मनुष्य का रूप धारण कर उस नगर में रहने लगा। फिर वह द्वारिका नगरी में रहने वाले लोगों को नित्य बहुत दुःख देने लगा-उन्हें उपद्रव करने लगा। यह बात सुन कर महाअभिमानी अनादृष्टकुमार ने उस देव को पकड़ने के लिए गिरनार पर रहे हुए नगर पर आक्रमण किया। देव ने अपनी माया से उसे जीत लिया और उसे बाँध कर वह अपने नगर में ले गया।

यह समाचार सुन कर समुद्रविजयजी उसके साथ युद्ध के लिए तैयार हुए। तब राम और कृष्ण इन दोनों भाइयों ने उन्हें रोका और वे दोनों लड़ने

के लिए गये। देव ने उन्हें भी हरा कर बन्दी बना लिया। तब द्वारिका में हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे कि राम और कृष्ण दोनों भाई हार गये हैं, तो अब हमारी रक्षा कौन करेगा? फिर सत्यभामाप्रमुख स्त्रियों ने श्री नेमिनाथजी से कहा कि आप जैसे अनन्तबली होते हुए दुश्मन आपके भाइयों को सताता है, इससे आपकी इज्जत घटती है।

तब नेमीश्वर भगवान ने अकेले रथ में बैठ कर अपना रथ दुश्मन के नगर के चारों ओर घुमाया। इससे कंगूरे सहित किला टूट गया। तब देव ने माया से सिंह बनाये। यह देख कर नेमिनाथ ने धनुष्य का टंकारव कर के उन सिंहों को भगा दिया। फिर देव ने चारों ओर अंधेरा कर दिया। तब भगवान ने उद्योत का बाण चला कर अंधकार का नाश किया। देव ने मेघवृष्टि की, तब भगवान ने पवन चला कर सब मेघ बिखेर दिये। देव ने अंगारों की वर्षा की, तब भगवान ने जलवर्षा कर के आग बुझा दी। फिर भगवान ने मोहबाण छोड़ा। इससे शत्रु मूर्च्छित हो कर गिर गया और महादुःखी हुआ। अन्त में इन्द्र महाराज ने आ कर विनती की कि हे महाराज! यह अज्ञानी देव आपका अनन्तबल क्या जाने? तब भगवान ने कृपा कर के उस देव को छोड़ दिया। फिर उस देव ने महामहोत्सव पूर्वक श्रीकृष्णादिक को द्वारिका में भेज दिया तथा स्वयं भगवान को नमन कर अपने स्थान पर गया।

प्रभु का आयुधशाला में गमन और कृष्ण के साथ बल परीक्षा

अनुक्रम से श्री नेमीश्वर भगवान तीन सौ वर्ष के हुए, पर वे विवाह नहीं कर रहे थे। तब शिवादेवीजी ने कहा कि हे पुत्र ! तुम विवाह कर के मेरे मनोरथ पूर्ण करो। भगवान ने कहा कि हे माताजी ! मेरे योग्य कोई कन्या होगी, तो मैं विवाह करूँगा। यह बात सुन कर माताजी चुप रहीं।

अब श्री समुद्रविजय-कुल शृंगार, शिवादेवी-मात-मल्हार एक दंडनेमि, दूसरा दृढनेमि, तीसरा अतिनेमि, चौथा अरिष्टनेमि और पाँचवाँ रथनेमि इन पाँच कुमारों में से श्री अरिष्टनेमिकुमार लघुवय-समानवय वाले मित्र जोड़ कर मन के चाव से अनेक कुमारों से घिरे हुए खेलते-घूमते श्रीकृष्ण की

आयुधशाला में जा पहुँचे और वहाँ आयुध देखने लगे। तब रक्षपाल ने कहा कि आप छोटे बालक हैं, इसलिए दूर रहिये। इन्हें स्पर्श करना भी बड़ा कठिन है। ये बच्चों के खेल नहीं है। बड़े काम तो बड़ों से ही होते हैं।

उस समय रक्षपाल की बात अनसुनी कर श्री अरिष्टनेमि कुमार ने श्रीकृष्ण के चक्र को उठा कर कुम्हार के चक्र की तरह घुमाया, सारंगधनुष्य को हाथ में ले कर कमलनाल की तरह झुकाया, कौमोदकी गदा को काष्ठ की तरह उठा कर अपने कंधे पर रखा और जब उन्होंने पांचजन्य शंख बजाया, तब उसकी ध्वनि से तीनों लोक काँपने लगे, पर्वतशिखर टूट टूट कर गिरने लगे, समुद्र का जल उछलने लगा, हाथी-घोड़े आदि के बन्धन टूट गये। इससे सब लोग भाग गये। सब लोग बहरे हो गये। धरती काँपने लगी। नगर का किला टूट गया। दिग्गज परेशान हो गये। सब यादव मूर्च्छागत जैसे हो गये। सब लोग डरने लगे। श्रीकृष्ण तथा बलभद्र काँपने लगे और भयाकुल हो कर सोचने लगे कि यह ऐसा कौन बलवान है, जिसने सारी धरती को क्षुभित कर दिया है?

इस तरह उन्हें जरा भी शान्ति नहीं मिली, इसलिए वे तुरन्त आयुधशाला में गये। वहाँ जा कर पूछा, तब लोगों ने कहा कि यह बल श्री अरिष्टनेमिकुमार का है। यह सुन कर पुनः चमत्कृत हो कर श्रीकृष्ण ने कहा कि हे भाई! चलो, हम अपने बल की परीक्षा करें, जिससे मन की मुराद पूरी हो। तब नेमिकुमार ने कहा कि भूमिलुंठनादिक बाह्य खेल करना उत्तम लोगों के योग्य नहीं है, इसलिए आपस में एक-दूसरे की भुजा झुका कर हम बल परीक्षा करें। तब श्रीकृष्ण ने उनकी बात मान कर अपनी भुजा लम्बी कर के कहा कि यह मेरी भुजा झुका कर बताओ। तब नेमिकुमार ने कमलनाल की तरह एक अंगुली से श्रीकृष्ण की भुजा झुका दी।

फिर श्री नेमिकुमार ने अपनी भुजा लम्बी की। तब कृष्ण ने बहुत जोर लगाया, पर वह नहीं झुकी। फिर वे वानर की तरह झूलने लगे। तब श्री नेमिकुमार हँसते हुए कहने लगे कि हे कृष्ण ! तुम्हें पालने में सुलाकर माता देवकी ने झुलाया नहीं है, इसलिए अब मैं झुलाता हूँ। यह कह कर उन्होंने

श्रीकृष्ण को झूले की तरह झुलाया। जैसे जुआरी दाँव हार जाता है, वैसे ही श्रीकृष्ण हार गये। यह देख कर बलभद्रजी बोले कि हे भाई ! भ्रमर के भार से तरुशाखा नहीं झुकती।

फिर श्रीकृष्ण तथा बलभद्रजी चिन्तातुर हो कर सोचने लगे कि यह चचेरा भाई हमसे अधिक बलवान है, इसलिए यदि यह हमारा राज्य ले लेगा तो कौड़ी-तीतर न्याय होगा। हमारे पास कुछ नहीं बचेगा। इतने में आकाशवाणी हुई कि अहो श्रीकृष्ण वासुदेव ! तुम चिन्ता मत करो। ये नेमीश्वर भगवान बालब्रह्मचारी बाइसवें तीर्थंकर हैं। ये अतुलबली हैं, पर तुम्हारे राज्य की इन्हें आवश्यकता नहीं है तथा स्त्री के साथ विवाह की भी इन्हें आवश्यकता नहीं है। ये तो बिना विवाह के ही संसार का त्याग कर के दीक्षा लेंगे। यह वचन सुन कर अत्यन्त हर्षित हो कर श्रीकृष्णजी अपने महल में गये।

प्रभु को विवाह मंजूर कराने के लिए गोपियों का प्रयत्न

एक दिन नेमिकुमार को निरागी जान कर शिवादेवीजी ने गोपियों को भलामण की कि तुम सब नेमीश्वर को वसन्तक्रीड़ा के लिए ले जाओ और जैसे बने, वैसे उन्हें सरागी कर के विवाह के लिए तैयार करो। तब सत्यभामाप्रमुख सोलह हजार गोपियाँ मिल कर श्री नेमीश्वर को सहस्राम्रवन में ले गयीं और वहाँ वे विचित्र वचन बोलने लगीं। एक ने कहा कि आप विवाह क्यों नहीं करते? आपके भाई श्रीकृष्ण ने सोलह हजार स्त्रियों के साथ विवाह किया है और आप एक के साथ भी विवाह नहीं करते, इसका क्या कारण है? दूसरी ने कहा कि भले पुरुष ! इस तरह अपनी जवानी व्यर्थ क्यों गँवाते हो? विवाह में आनन्द ही आनन्द है। तीसरी ने कहा कि विवाह किये बिना आप मोक्ष भी नहीं जा सकेंगे, क्योंकि ऋषभादिक सब तीर्थंकर विवाह कर के ही मोक्ष गये हैं। फिर आप क्या नये मोक्ष जाने वाले हुए हैं? फिर एक ने कहा कि ये विवाह कर के क्या करेंगे? ये तो वंठ (वांढा) होंगे। फिर सत्यभामा ने कहा कि यदि ये नहीं मानें तो इनका पल्लू पकड़ो। तब लक्ष्मणा ने कहा कि ये पूज्य हैं, इसलिए इनके साथ

जबरदस्ती नहीं करनी चाहिये, पर इन्हें विवाह तो अवश्य करना ही चाहिये। फिर सत्यभामा ने कहा कि इनके पास कोई सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि स्त्री के साथ यदि विवाह करें, तो उसे पालने का काम बड़ा कठिन है। वह इनसे नहीं होगा। फिर भी यदि ये विवाह कर लें, तो सोलह हजार का इनके भाई पालन करते हैं, वैसे ही उसका भी पालन हो जायेगा।

ऐसी बातें सुन कर नेमिनाथजी कुछ मुस्करा दिये। तब सब गोपियाँ ताली बजा बजा कर कहने लगीं कि इन्होंने विवाह कबूल किया। इससे माता-पिता ने भी मान लिया कि पुत्र ने विवाह करना मंजूर किया है। फिर शिवादेवी के कहने से श्रीकृष्ण तथा समुद्रविजयजी प्रमुख राजाओं ने उग्रसेन राजा के घर जा कर राजीमती कन्या की माँग की। उग्रसेन ने भी प्रसन्न हो कर कहा कि सुखपूर्वक उनका विवाह कीजिये।

फिर दोनों ओर विवाह का महोत्सव होने लगा। विवाह के लिए श्रृंगार किया जाने लगा, पर नेमजी विनयी थे, इसलिए माता-पिता का हर्ष भंग होने के भय से निःस्पृही होते हुए भी वे मौन धारण कर के रहे। अब जब बारात चली, उस समय अनेक यादवों के करोड़ों मनुष्य साथ चले। अनेक राजा लोग भी साथ चले। उस समय देव-देवियाँ आदि भी आकाश में चलने लगे। स्त्रियाँ गीत गाती हुई साथ चलने लगीं। श्री नेमिनाथजी हाथी पर बैठे थे। उनके दोनों ओर चामर ढुल रहे थे। बाजे बज रहे थे। इस तरह चलते चलते बारात उग्रसेन के महल के पास आयी। तब नेमजी ने सारथी से पूछा कि यह महल किसका है? सारथी ने उत्तर दिया कि यह आपके ससुरजी का महल है।

अन्य एक प्रत में नीचे मुजब लिखा है-

प्रभु का श्रृंगार और उनकी बारात

जब वसन्त मास का आगमन हुआ, तब बत्तीस हजार रानियों सहित श्रीकृष्ण वासुदेव श्री नेमिकुमार को साथ ले कर वसंतक्रीड़ा करने वन में गये। वहाँ सत्यभामादिक रानियों से नेमिकुमार को विवाह के लिए मनाने का कह कर श्रीकृष्ण अन्यत्र चले गये। फिर अनेक गोपियाँ मिल कर श्री नेमिकुमार पर केसर,

गुलाबप्रमुख सुगंधित जल छाँटने लगीं, फूलों की गेन्द बना कर हृदय पर मारने लगीं, कटाक्षबाणों से बींधने लगीं और कामचेष्टापूर्वक जल छाँटने लगीं। ऐसे अनेक प्रकार के हँसी-मजाक कर के वे कहने लगीं कि हे देवर। विवाह मानो और एक स्त्री के साथ तो विवाह कर लो। यदि स्त्री का भरण-पोषण तुमसे नहीं होता हो, तो तुम्हारे भाई बत्तीस हजार स्त्रियों का भरण-पोषण करते हैं, वैसे ही तुम्हारी एक स्त्री का भी पोषण कर लेंगे। इस बात की जरा भी चिन्ता मत करना। तुम विवाह अवश्य कर लो। स्त्री के बिना पुरुष की शोभा नहीं होती, उस पर कोई विश्वास नहीं रखता और उसे कोई नहीं मानता तथा स्त्री के बिना शरीर की शुश्रूषा कौन करे? अतिथि-सत्कार कौन करे? इसलिए पाणिग्रहण अंगीकार करो और मनमानीती कन्या वरो। यह विनती मानो, बढ़े जैसे वानो। नहीं तो भी नहीं छूटो, जोर कर के झूठो। हमारे वश हुए आज, अब कैसी रखना लाज।

ऐसे वचन सुन कर नेमीश्वर नीचे देखने लगे। स्त्रियों के साथ और क्या वचन-विचार करना? यह सोच कर उन्होंने हाँ या ना कुछ भी नहीं कहा। तब वे सब स्त्रियाँ कहने लगीं कि माना रे माना विवाह, सबको हुआ उत्साह। श्री समुद्रविजय-शिवादेवी रानी को उस काल, देवें वधामणी उजमाल।

श्रीकृष्ण नरिन्द, मन में आनन्द। उग्रसेन राजान, पास बहुमान। माँगी राजीमती कन्या, सतीशिरोमणि धन्या। उग्रसेन बोले सब साज, यहाँ लाओं वह वरराज। तो दे दूँ कन्या तास, जग विस्तरे जशवाद।

अब समुद्रविजय राजा, शिवादेवी रानी ने ज्योतिषी कोष्टुक के मुख से श्रावण सुदि छठ का लग्न मुहूर्त्त जान कर बाँटी वधामणी, बुलाये सगे-संबंधी। किया महान आडम्बर, धवल मंगल गाये घर-घर। बनाये भल भले पकवान, जुगते चलावे जान। वह इस प्रकार से- सोलह हजार मुकुटबद्ध छत्राधिपति राजान, बयालीस लाख हस्ती ऐरावत समान। बयालीस लाख घोड़ा, सुवर्ण साज उन्हें सजोड़ा। बयालीस लाख रथ, शोभा पाते पथ। अड़तालीस कोड़ी पायक, शत्रुदलघायक। नव कोड़ि सामान्य तुरंगम, एक एक से अनुपम। छियानबे कोड़ि चिरागदार, नव कोड़ि छागलियादार। बारह कोड़ि बाजे बाजें, ऊपर सारा अम्बर गाजे।

सांबकुमारप्रमुख साठ हजार दुर्दान्त कुमार पारसिक जाति के घोड़ों पर सवार हुए। प्रद्युम्नप्रमुख पचहत्तर हजार महाधीर कुमार हयरेवा जाति के घोड़ों पर आरूढ़ हुए। अरिमर्दनप्रमुख पाँच लाख कुमार बहोली जाति के अश्वों पर सवार हुए। वीरप्रमुख सात लाख कुमार पानीपंथा जाति के तुरंगों पर सवार हुए। सागरचन्द्रप्रमुख

एक लाख कुमार कंबोजा जाति के अश्वों पर चढ़े। अनादृष्टप्रमुख तेरह लाख कुमार रेवाजाति के अश्वों पर आरूढ़ हुए। पालकप्रमुख सात लाख कुमार अष्टमंगल जाति के अश्वों पर चढ़े। दंडनेमिप्रमुख बारह लाख कुमार रेमंगली जाति के अश्वों पर सवार हुए। रथनेमिप्रमुख नौ लाख कुमार चन्द्रप्रभा जाति के घोड़ों पर चढ़े। महानेमिप्रमुख पन्द्रह लाख कुमार अग्निपंथा जाति के अश्वों पर आरूढ़ हुए।

ऐसे यादव कुँवर, भोगी भ्रमर।जिनके जाने-माने कुल, भालों का बल। आगे-आगे चलें, थोड़ा-थोड़ा बोलें। थोड़े ठाकुर को नमें, थोड़ा दर्शकों के नमें। परनारी सहोदर, वाचा अविचल। शरणागत साधार, शूरवीर दातार। झूँझार, रणांगण धीर, रिपुहृदयहल-सीर। कसबोई गरकाव। केसरीए पागे, लीधी ए वागे। काँधाल, मूछाल, भलभले भूपाल। आवे ऊमह्या, पंथे वह्या। तथा दो कोड़ि सेजवाले, चौरासी कोड़ि स्त्रियाँ गीतगान करें, छप्पन्न कोड़ि प्रलंब ध्वजा, बारह कोड़ि भाट बिरुदावली बोले। बारह कोड़ि सुखासन पालकी, पन्द्रह लाख बिरुदावली बोलें। पन्द्रह लाख खच्चर द्रव्य भरे, तीन लाख श्रीछत्र, बयालीस लाख रथ, तीन कोड़ि चामर ढालें, अस्सी लाख निशान बाजें, सत्तर लाख ढोल बाजें, छियानबे कोड़ि भेरी बाजें, नौ लाख मादल बाजें, पैंतालीस कोड़ि छड़ीदार, साठ कोड़ि सुरहियाँ, बड़बड़ा वहीया। मंत्रीश्वर प्रधान, कहे कितने अभिधान। निन्यानबे कोड़ि सामान्य वहिल, हुई यों जान की चहिल पहिल।

अब वरराजा को सर्वौषधि नीर से कराया स्नान, उजवाला विशेष से वान। माता ने भालस्थल पर किया तिलक, अक्षत का प्रतिष्ठित ऊपर पदक। नौ कोड़ि का मुकुट, पचास कोड़ि का नवग्रहा, बारह कोड़ि के दो कुंडल, अड़तालीस कोड़ि का रत्नजड़ित तिलक, पच्चीस कोड़ि की मुद्रिका, पच्चीस कोड़ि का बहुरत्नजड़ित हार, दो लाख कोड़ि की रत्नजड़ित साँकली, जनोई की तरह पहनी। पन्द्रह कोड़ि की चंपकली, देवदत्त अमोलक पागड़ी, पच्चीस लाख कोड़ि की कवाइं, इकानबे कोड़ि के दो बहिरखे, पैंतालीस कोड़ि के दो बाजूबंध, सत्ताईस लाख का कन्दोरा, पच्चीस कोड़ि का रत्नजड़ित कना, तीस कोड़ि की उवानही (पगरखी), छियानबे कोड़ि का अनेक रत्नजड़ित श्रीफलरूप पुष्पगेन्द।

अमोलक वस्त्र पहना कर, सकल शृंगार करा कर, आँखें आँज कर, मुख माँज कर सिर पर बाँधा खूँप (सेहरा), शोभे सुरूप। मँगाया गजराज, सुवर्णमय साज। मेघाडंबर छत्र, प्रतिष्ठे पवित्र, चढ़े वरराज, मानो इन्द्र महाराज या मूर्तिमन्त कामराज, शोभा समाज। फैला तूर्य मंगल निनाद, गहगहा स्त्रीजनसाद।

आकाश में अनेक देवदेवांगना, इन्द्र-इन्द्राणी, रंभा-अप्सरा आयें, मन को भायें। किन्नरी गीत गाये, सरस्वती वीणा वाये (बजाये)। तुंबर गंधर्व नाचे, सहुमन साचे। कृष्ण-बलभद्र दसों दशार्ह उमावें। जीर्णदुर्ग की तरफ जान (बारात) आवे।

जैसे ज्येष्ठमास उद्भान, साजन जन को अधिक सम्मान। याचक जन को देते दान, हुआ धवल मंगल उच्चार। आया वर तोरणद्वार, देखे देखनहार। धन्य धन्य राजीमती नार, जिसने वर पाया श्री नेमिकुमार।

प्रभु का तोरण से लौटना और राजुल का सन्ताप

झरोखे में बैठी हुई राजीमती ने सखियों से पूछा कि मेरे पति कैसे हैं? तब सखियों ने कहा कि उस हाथी पर बैठ कर महाऋद्धि सहित जो चले आ रहे हैं, वे नेमजी हैं। प्रभु का रूप देख कर मोहित हो कर राजीमती सोचने लगी कि यह मेरा महान भाग्योदय है कि नेमजी जैसा वर यहाँ आ कर मेरे साथ विवाह करेगा। ऐसा सोचती हुई वह चन्द्रानना मृगलोचना सखियों के साथ बातें करने लगी।

सखी ने कहा कि यद्यपि यह वर सर्वगुणसम्पन्न है, तो भी इसमें एक अवगुण है। वह यह कि उसका वर्ण श्याम है। वर तो गोरा होना चाहिये। तब राजीमती ने कहा कि यह तो तुम दूध में से पोरे निकालने लगी। श्याम वस्तुएँ तो बहुत गुणवान हैं। भूमि, चित्रावेल, अगर, कस्तूरी, मेघ, आँख की पुतली, कसौटी का पत्थर, मसि, रात्रि इत्यादिक सब वस्तुएँ श्याम हैं, पर ये संसार में भली कही जाती हैं। सफेद वस्तु तो कपूर है। उसका मिर्च-अंगारे से मेल है। चित्रा और रोहिणी श्याम हो, तो ही शोभा देती हैं। निःकेवल नमक, अस्थि, हिम, श्वेतकुष्ठ ये सब सफेद हैं, पर इनमें क्या प्रशंसनीय है? कुछ भी तो नहीं।

श्यामलवरणी वर प्रशस्य, देखी लोचन अमिय भरे। हृदयकमल खिल गये और मनोरथरूप बेल फैल गयी। इतने में राजीमती की दाहिनी आँख फड़कने लगी। तब वह शोक करने लगी। उसने जान लिया कि सर्वथा प्रभु का संयोग नहीं मिलेगा। फिर उसने सखी से कहा कि मेरा दाहिना अंग फड़क रहा है। यह सुन कर सखी ने कहा कि तू मंगल के

समय अमंगल क्यों बोल रही है।

इतने में तोरण पर आते हुए प्रभु ने मार्ग में चौपाये प्राणियों से भरे हुए बाड़े और पक्षियों से भरे हुए पिंजरे देखे। वहाँ अनेक जलचर जीव पानी के अभाव में उछलकूद कर रहे थे तथा थलचरों में हरिण, सांबर, रोज, भेड़ें, मेढ़े, खरगोशप्रमुख अनेक जाति के जीव तथा खेचरों में कुर्कुट, तीतर, मोर, सारस-जोड़े, राजहंस, कोयल, बगुले, तोते इत्यादिक जीव जो वहाँ इकट्ठे किये हुए थे, उनकी पुकार प्रभु ने सुनी। इतने में एक हरिण और हरिणी गरदन से गरदन मिला कर विलाप करते हुए प्रभु से विनती करने लगे कि हे प्रभो ! हमें इस कष्ट से छुड़ाओ। हमने कोई अपराध नहीं किया है। हमने मुख में तृण रखा है। हे अनाथनाथ ! प्रभो ! बचाओ ! बचाओ।

यह देख कर नेमिकुमार ने महावत से पूछा कि इन जीवों को क्यों रोक रखा है? तब महावत ने कहा कि आपके विवाह के गौरव-भोज के लिए ये रखे हुए हैं। यह सुन कर प्रभु बोले कि धिक् ! धिक् ! यह विवाह अब बस हो गया। नरक का मूलरूप यह विवाह मुझे नहीं चाहिये। फिर दीनदयाल प्रभु सब जीवों को छुड़ा कर हाथी पर से उतर कर रथ पर सवार हो कर वापस मुड़ गये।

तब श्री समुद्रविजय राजा, शिवादेवी रानी, कृष्ण वासुदेव और बलभद्रप्रमुख छप्पन्न कुलकोड़ि यादव रथ रोकने के लिए आड़े आये, पर प्रभु किसी के रोके न रुके और न मुड़े। उन्होंने यह कहा कि ये सब जीव बंधन में बँधे हुए महादुःख देखते हैं, वैसे मैं बँधाऊँगा नहीं और संसार में भी रहूँगा नहीं।

हाथी बाघ से पकड़ा न जाये। जाय रे जाय यादवराय।।

यह बात सुन कर राजीमती धरती पर गिर पड़ी। फिर क्षणभर में सचेत हो कर बोली कि हा ! हा ! प्रभो ! यह हर्ष के स्थान पर कैसा विषवाद फैलाया ! ऐसा कहती हुई हार तोड़ती, वलय मोड़ती, आभरण तोड़ती, वस्त्र मसलती, किंकिणीकलाप छोड़ती, मस्तक फोड़ती, कुन्तलकलाप बिखेरती, भूमि पर लोटती, सांजन बाष्पजल से भूमि सींचती, सखियों का

अपमान करती हुई, जैसे अल्प जल में मछली तड़पती है, वैसे विकल होती हुई, विरह व्याकुल वह क्षण में रोये, क्षण में देखे, क्षण में आक्रन्द करे, क्षण में उच्छ्वास छोड़े, क्षण में घबराये, क्षण में बूझे, क्षण में जूझे, क्षण में न सूझे, ऐसी स्थिति में पहुँच गयी।

फिर वह अनेक उपालंभपूर्वक वचन कहने लगी कि- हा यादवकुल दिनकर ! हा करुणासागर ! हे शरणागतवत्सल ! मुझ जैसी अबला को ऐसे अकेला छोड़ना आप को उचित नहीं है। यदि आप जगत के सब जीवों के प्रति दयाभाव रखते हैं, तो मुझ पर दया क्यों नहीं लाते? ए मेरे निष्ठुर निर्लज्ज हृदय ! प्रभु तुझे छोड़ गये हैं, तो अब तू शतखंड़ क्यों नहीं होता? अब तू क्या सुख पायेगा?

राजीमती का ऐसा विलाप सुन कर सखीवर्ग, सज्जनवर्ग और माता-पितादिक कहने लगे कि यह तो निःस्पृही है। इस पर क्या राग रखना? तू इतना विलाप क्यों कर रही है? तेरा विवाह तो हुआ ही नहीं है। इसलिए यदि यह काला-कुरूप वर चला गया, तो क्या बिगड़ गया? तेरे लिए अन्य रूपवान वर मिल जायेगा। इसलिए अब अन्य उत्तम वर का वरण करना।

इस पर राजीमती ने कहा कि ये वचन सुनने योग्य नहीं हैं। तुम सब ऐसे वचन मुझसे मत कहो। मुझे तो श्री नेमिनाथ के चरणों की ही शरण है। काली तो कस्तूरी भी होती है। वह गुणवान है, इसलिए उसका मूल्य बहुत है। और जो सफेद लहसुन होती है, वह निर्गुणी है, इसलिए उसका कोई भाव भी नहीं पूछता। इन प्रभु ने मेरा हाथ भले ही न पकड़ा हो, पर मैं इनका हाथ मेरे सिर पर रखवाऊँगी। इन प्रभु के नाम से मैं सौभाग्यवती हूँ। इसलिए यदि इन्होंने मेरे साथ विवाह नहीं किया, तो मैं इनकी शिष्या हो कर इनके पीछे जाऊँगी। अन्य किसी वर का मैं वरण नहीं करूँगी। इतना कह कर फिर वह गिरनार से कहने लगी कि हे गिरनार ! मुझे छोड़ कर नेमजी यदि तुम्हारे पास आयें, तो तुम उन्हें प्रवेश मत देना। उन्हें उपालंभ देना कि तुम अबला को दुःखी कर के क्यों आये?

इत्यादिक विकल्प करती हुई, शील पालती हुई वह अपने पिता के घर

में रही। एक बार रथनेमि ने राजीमती से कहा कि नेमजी ने तो तुमसे ब्याह नहीं किया, पर मैं नेमजी का भाई हूँ, इसलिए तुम मेरे साथ ब्याह करो। तब राजीमती ने कहा कि अरे ! वमन किए हुए आहार की तुम क्या इच्छा करते हो? मैं तो श्री नेमीश्वर को छोड़ कर अन्य किसी की चाहना ही नहीं करती। यह सुन कर रथनेमि उदास हो गया।

नेमिनाथ की दीक्षा और केवलज्ञान

अरिहन्त श्री अरिष्टनेमि तोरण से पुनः घर लौटे। कुल मिला कर वे तीन सौ वर्ष तक कुमारावस्था में घर में रहे। फिर लोकान्तिक देवों ने आ कर कहा कि हे प्रभो ! धर्म का प्रवर्तन कीजिये। तब नेमिनाथस्वामी ने अवधिज्ञान से अपनी दीक्षा का अवसर जान कर वार्षिकदान देना शुरु किया। फिर प्रभु ने वर्षाकाल का पहला महीना दूसरा पखवाड़ा श्रावण सुदि छठ के दिन पहले प्रहर से पूर्व दिन में अर्थात् मध्याह्न के पहले देवों और मनुष्यों से उठायी गयी उत्तरकुरा नामक पालकी में बैठ कर यावत् द्वारिका नगरी के मध्य से हो कर जहाँ रैवत नामक उद्यान है, वहाँ जा कर अशोकवृक्ष के नीचे पालकी से उतर कर, अपने हाथों से सब अलंकार-आभूषण उतार कर पंचमुष्टि लोच कर के छट्ठ भत्त याने पानी रहित चउविहार दो उपवास कर के, चित्रानक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर एक देवदूष्य वस्त्र धारण कर के एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली और घर का त्याग कर साधुता का स्वीकार किया।

अरिहन्त अरिष्टनेमि ने चौवन रात्रि तक काया को वोसिराया। यावत् पचपनवें दिन की रात्रि में वर्तमान वर्षाकाल का तीसरा महीना पाँचवाँ पखवाड़ा आश्विन वदि अमावस्या के दिन, पिछले प्रहर में गिरनार पर्वत पर वेतस वृक्ष के नीचे पानीरहित अट्ठम तप में प्रभु को चित्रानक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, शुक्लध्यान ध्याते हुए अनन्त केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। वे सब भाव जानने देखने लगे।

श्री नेमिनाथस्वामी को गिरनार पर्वत के सहस्राम्रवन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवों ने समवसरण की रचना की। वनपालक ने जा कर

श्रीकृष्ण को बधाई दी। श्रीकृष्ण महाऋद्धि सहित वन्दन के लिए आये। राजीमती भी वन्दन के लिए आयी। अन्य भी बहुत से लोग वन्दनार्थ आये। भगवान की देशना सुन कर वरदत्त नामक राजा ने दो हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली। फिर श्री कृष्णजी ने पूछा कि हे स्वामिन्! आपके प्रति राजीमती का इतना मोह क्यों है?

तब भगवान ने कहा कि हे कृष्ण! मेरा इसके साथ पूर्व में आठ भवों का संबंध है। पहले भव में मैं धन नामक राजा था। उस समय यह मेरी धनवती नामक रानी थी। दूसरे भव में हम दोनों पहले देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए। तीसरे भव में देवलोक से च्यव कर मैं चित्रगति नामक विद्याधर राजा हुआ, तब यह रत्नवती नामक मेरी स्त्री हुई। चौथे भव में हम दोनों चौथे देवलोक में गये। पाँचवे भव में देवलोक से च्यव कर मैं अपराजित नामक राजा हुआ, तब यह प्रियमती नामक मेरी रानी हुई। छठे भव में हम दोनों ग्यारहवें देवलोक में देव हुए। सातवें भव में मैं शंख नामक राजा हुआ, तब यह सोमवती नामक मेरी रानी हुई। आठवें भव में हम दोनों अपराजित नामक अनुत्तर विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यव कर नौवें भव में मैं नेमि हुआ और यह राजीमती हुई। इस तरह नौ भवों से संबंधित बात सुना कर भगवान ने वहाँ से विहार किया। श्रीकृष्णादिक तथा राजीमतीप्रमुख वृत्तान्त सुन कर द्वारिका गये।

रथनेमि की भोगपिपासा और राजीमती का प्रतिबोध

एक बार श्री नेमिनाथजी का गिरनार पर समवसरण लगा। उस समय राजीमती ने अन्य अनेक राजकन्याओं के साथ दीक्षा ली और रथनेमि ने भी दीक्षा ली। एक दिन गिरनार पर्वत पर भगवान को वन्दन करने के लिए जाते समय मार्ग में वर्षा होने से राजीमती के वस्त्र भीग गये। उन्हें सुखाने के लिए उसने एक गुफा में प्रवेश किया। उस गुफा में पहले से ही रथनेमि काउस्सग्ग ध्यान में खड़े थे। राजीमती को इस बात की खबर नहीं थी। उसने गुफा में अपने भीगे हुए वस्त्र उतार कर सूखने के लिए फैला कर रखे। उस समय राजीमती को विवस्त्र देख कर रथनेमि का मन डाँवाडोल

हुआ। उसने कामदेव से पीड़ित हो कर लज्जा का त्याग कर कहा कि हे राजीमती! तुम तपस्या कर के शरीर को व्यर्थ क्यों सुखाती हो? मेरे पास आ जाओ। हम दोनों मिल कर सुखमय गृहस्थ जीवन जीयें। अभी युवावस्था में तप करने के लिए अवसर नहीं है। वृद्धावस्था में हम पुनः दीक्षा ले लेंगे।

रथनेमि के वचन सुन कर अपने अंगोपांग संकोच कर धैर्य और दृढ़ता धारण कर के राजीमती ने कहा कि "अरे ! तुझे धिक्कार है, जो तू दीक्षा ग्रहण कर के ऐसी बातें कहता है। अरे ! समुद्रविजय राजा के पुत्र ने सब सावद्य व्यापार का त्याग कर साधुता का स्वीकार किया है। उन्होंने मेरा वमन किया है और तू मेरी चाहना करता है? अगंधनकुल के साँप तिर्यंच जाति के होने पर भी वमन की हुई वस्तु की चाहना नहीं करते। वमन की हुई वस्तु की तो श्वानादिक चाहना करते हैं। इसलिए तू तेरा मन ठिकाने रख। मैं किसी तरह तेरे हाथ आने वाली नहीं हूँ। अरे ! तू भोगों का त्याग कर के पुनः नरक में जाने की अभिलाषा क्यों करता है? महानुभाव ! इस पाप की आलोचना ले कर पुनः संयम का उच्चार कर, नहीं तो दुर्गति में जायेगा।" इत्यादिक वचनरूप अंकुश से हाथी की तरह रथनेमि को स्थिर किया।

फिर रथनेमि भी पाप की आलोचना ले कर, खमा कर संयम में स्थिर हो कर, केवलज्ञान प्राप्त कर अनुक्रम से मोक्ष गये।

श्री नेमीश्वर भगवान से राजीमती उम्र में आठ वर्ष छोटी थीं, ऐसा कोई कोई आचार्य कहते हैं। राजीमतीजी चार सौ वर्ष तक गृहवास में रहीं, एक वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहीं तथा पाँच सौ वर्ष केवलपर्याय पाल कर कुल नौ सौ एक वर्ष की आयु पूर्ण कर के श्री नेमिनाथजी से पहले मोक्ष गयीं।

यहाँ कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि राजीमतीजी ने ऐसा जाना कि शिवनारी जो मोक्षरूपिणी स्त्री है, उसे मुझसे अधिक रूपवती जान कर, उस पर श्री नेमीश्वरजी मोहित हुए हैं, तो मैं पहले से ही उस स्त्री को देख तो लूँ। याने मुक्तिरूप स्त्री ने राजीमती के पति का मन वश किया, इसलिए अपनी उस

सौत को देखने के लिए राजीमती भी क्षपकश्रेणी साध कर, कर्म खपा कर अपने पति से पहले ही मुक्ति में गयीं।

श्री अरिष्टनेमि प्रभु का परिवार और निर्वाण

श्री अरिष्टनेमि भगवान के अठारह गच्छ और अठारह गणधर हुए तथा उन्हें वरदत्तप्रमुख अठारह हजार साधुओं की संपदा हुई। गुणरूप मणिरत्न के भंडार ऐसी यक्षिणीप्रमुख चालीस हजार साध्वियों की संपदा हुई। नन्दीषेणप्रमुख एक लाख उनहत्तर हजार श्रमणोपासकव्रत के धारक श्रावकों की संपदा हुई। महासुव्रताप्रमुख तीन लाख छत्तीस हजार श्राविकाओं की संपदा हुई।

श्री अरिष्टनेमि भगवान के जिन तो नहीं, पर जिनसरीखे सब अक्षरानुयोग (चौदह पूर्व) धारण करने वाले चार सौ साधुओं की संपदा हुई, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी साधुओं की संपदा हुई, तथा पन्द्रह सौ वैक्रियलब्धि के धारक साधुओं की संपदा हुई। उन्हें पन्द्रह सौ केवलज्ञानी केवली की संपदा हुई, एक हजार साधु विपुलमती के स्वामी मनःपर्यवज्ञानियों की संपदा हुई तथा आठ सौ वादी साधुओं की संपदा हुई।

भगवान श्री अरिष्टनेमि के सोलह सौ साधु पाँच अनुत्तर विमानों में पहुँचे, पन्द्रह सौ साधु भगवान की उपस्थिति में सिद्धि पाये और तीन हजार साध्वियाँ भगवान की मौजूदगी में मोक्ष गयीं- उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। इस तरह श्री नेमीश्वर भगवान का परिवार जानना।

अरिहंत श्री अरिष्टनेमि के दो प्रकार की अंतगड़ भूमि हुई। उसमें आठ पाट तक मोक्षमार्ग चला। वह युगांतकृत् भूमि जानना तथा भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न होने के दो साल बाद कोई साधु सिद्ध हुआ। वह पर्यायान्तकृत् भूमि जानना।

उस काल में उस समय में श्री अरिष्टनेमि भगवान तीन सौ वर्ष गृहस्थावास में कुमारावस्था में रहे। उन्होंने चौवन दिन छद्मस्थ पर्याय में दीक्षा पाली तथा चौवन दिन कम सात सौ वर्ष तक केवलपर्याय का पालन

किया। याने कि सात सौ वर्ष तक साधुपने में रहे। इस तरह कुल एक हजार वर्ष की पूर्ण आयु भोग कर, शेष रहे हुए चार घाती कर्मों को खपा कर, इस अवसर्पिणी काल का दुष्षमसुषमा नामक चौथा आरा बहुत बीत गया और थोड़ा शेष रहा तब, उस समय में ग्रीष्म का चौथा महीना आठवाँ पखवाड़ा आषाढ़ सुदि अष्टमी के दिन गिरनार पर्वत पर मध्यरात्रि के समय, चित्रानक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, पाँच सौ छत्तीस साधुओं के साथ एक मास का चउविहार (पानी रहित) अनशन करते हुए पद्मासन में बैठे भगवान कालधर्म को प्राप्त हुए। यावत् सब दुःखों से रहित हुए।

श्री पार्श्वनाथ भगवान से तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष पूर्व श्री नेमिनाथ भगवान हुए। याने कि श्री अरिष्टनेमि भगवान मोक्ष जाने के बाद चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तक लिखी गयी- वाचना हुई। इति श्री नेमिनाथ चरितम्।।

इक्कीसवें तीर्थंकर से श्री ऋषभदेव तक का अंतर

(२१) इक्कीसवें श्री नमिनाथ भगवान के निर्वाण के बाद पाँच लाख वर्ष बीतने पर बाईसवें श्री नेमिनाथजी का निर्वाण हुआ। नेमिनाथजी से चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (२०) बीसवें श्री मुनिसुव्रतस्वामी के मोक्षगमन के बाद छह लाख वर्ष बीतने पर इक्कीसवें श्री नमिनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद पाँच लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (१९) उन्नीसवें श्री मल्लीनाथ मोक्ष जाने के चौवन लाख वर्ष बाद बीसवें श्री मुनिसुव्रतस्वामी मोक्ष गये। उनके बाद ग्यारह लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ।

(१८) अठारहवें श्री अरनाथ मोक्ष जाने के एक हजार करोड़ वर्ष बाद उन्नीसवें श्री मल्लिनाथस्वामी मोक्ष गये। उनके बाद पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (१७) सतरहवें श्री कुंथुनाथ मोक्ष जाने के एक हजार करोड़ वर्ष कम एक पल्योपम का चौथा भाग, इतने वर्ष बाद अठारहवें श्री अरनाथ मोक्ष गये। उनके बाद एक

हजार करोड़ ऊपर पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (१६) सोलहवें श्री शान्तिनाथजी मोक्ष जाने के आधा पल्योपम बाद श्री कुंथुनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद एक पल्योपम के चौथे भाग ऊपर पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ।

(१५) पन्द्रहवें श्री धर्मनाथ मोक्ष जाने के बाद पौन पल्योपम कम तीन सागरोपम बीतने पर श्री शान्तिनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद पौन पल्योपम अधिक पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (१४) चौदहवें श्री अनन्तनाथजी मोक्ष जाने के बाद चार सागरोपम बीतने पर श्री धर्मनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद तीन सागरोपम अधिक पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (१३) तेरहवें श्री विमलनाथ मोक्ष जाने के बाद नौ सागरोपम बीतने पर श्री अनन्तनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद सात सागरोपम अधिक पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ।

(१२) बारहवें श्री वासुपूज्यस्वामी मोक्ष जाने के बाद तीस सागरोपम बीतने पर श्री विमलनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद सोलह सागरोपम अधिक पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (११) ग्यारहवें श्री श्रेयांसनाथ का निर्वाण होने के बाद चौवन सागरोपम बीतने पर श्री वासुपूज्यस्वामी मोक्ष गये। उनके बाद छियालीस सागरोपम अधिक पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (१०) दसवें श्री शीतलनाथजी मोक्ष जाने के एक सौ सागरोपम तथा छासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष अधिक- इतने वर्ष एक करोड़ सागरोपम में से कम, याने एक करोड़ सागरोपम में से एक सौ सागरोपम कम करें तथा छासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष और कम करें, तब शेष जितने वर्ष रहें, उतने वर्ष बाद श्री श्रेयांसनाथजी का निर्वाण हुआ। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने कम ऐसे छासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष अधिक एक सौ सागरोपम बीतने के बाद श्री महावीरस्वामी मोक्ष गये।

उनके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ।

(९) नौवें श्री सुविधिनाथ मोक्ष जाने के बाद नौ करोड़ सागरोपम बीतने पर श्री शीतलनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने कम एक कोड़ि सागरोपम बीतने पर श्री वीर का निर्वाण हुआ। उसके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (८) आठवें श्री चन्द्रप्रभस्वामी मोक्ष जाने के बाद नब्बे कोड़ि सागरोपम बीतने पर श्री सुविधिनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने न्यून दस कोड़ि सागरोपम बीतने के बाद श्री वीर का निर्वाण हुआ। उसके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (७) सातवें श्री सुपार्श्वनाथ मोक्ष जाने के बाद नौ सौ करोड़ सागरोपम बीतने पर श्री चन्द्रप्रभस्वामी मोक्ष गये। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने न्यून एक सौ करोड़ सागरोपम बीतने के बाद श्री वीर प्रभु का निर्वाण हुआ। उसके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ।

(६) छठे श्री पद्मप्रभजी मोक्ष जाने के बाद नौ हजार करोड़ सागरोपम बीतने पर श्री सुपार्श्वनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने न्यून एक हजार करोड़ सागरोपम बीतने के बाद श्री वीर प्रभुमोक्ष गये। उनके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (५) पाँचवें श्री सुमतिनाथजी के निर्वाण के बाद नब्बे हजार करोड़ सागरोपम बीतने पर श्री पद्मप्रभस्वामी का निर्वाण हुआ। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने न्यून दस हजार करोड़ सागरोपम काल बीतने के बाद श्री महावीरस्वामी मोक्ष गये। उनके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (४) चौथे श्री अभिनन्दनजिन मोक्ष जाने के बाद नौ लाख करोड़ सागरोपम काल बीतने पर श्री सुमतिजिन का निर्वाण हुआ। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने न्यून एक लाख करोड़ सागरोपम काल बीतने के बाद श्री महावीरजी का निर्वाण हुआ। उसके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ।

(३) तीसरे श्री संभवनाथजी के निर्वाण के बाद दस लाख करोड़

सागरोपम बीतने पर श्री अभिनन्दनजिन का निर्वाण हुआ। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने न्यून दस लाख करोड़ सागरोपम बीतने पर श्री वीर का निर्वाण हुआ। उसके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में पुस्तकलेखन हुआ। (२) दूसरे श्री अजितजिन मोक्ष जाने के बाद तीस लाख करोड़ सागरोपम बीतने पर श्री संभवनाथजी मोक्ष गये। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने कम बीस लाख करोड़ सागरोपम बीतने पर श्री वीरजिन मोक्ष गये। उसके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में जिनागम पुस्तकारूढ हुआ।

(१) पहले श्री ऋषभदेव भगवान मोक्ष जाने के बाद पचास लाख कोड़ि सागरोपम बीतने पर श्री अजितनाथ भगवान का निर्वाण हुआ। उनके बाद बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने कम पचास लाख करोड़ सागरोपम बीतने पर श्री वीर प्रभु का निर्वाण हुआ। उसके बाद नौ सौ अस्सीवें वर्ष में जिनागम पुस्तकारूढ हुआ।

यह श्री महावीर प्रभु के निर्वाण से ले कर पश्चानुपूर्वी से अन्तर हुआ।

अब चौथा, पाँचवाँ और छठा इन तीन आरों का प्रमाण एक कोड़ा-कोड़ि सागरोपम का है। उसमें बयालीस हजार पचहत्तर वर्ष साढ़े आठ महीने कम करें, तब श्री महावीरजिन का जन्म हुआ। उसमें बहत्तर वर्ष की श्री महावीरस्वामी की आयु थी। चौथे आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष रहे, तब श्री वीरप्रभु का निर्वाण हुआ। तथा इक्कीस हजार वर्ष का कालमान पाँचवें आरे का जानना और इक्कीस हजार वर्ष का कालमान छठे आरे का जानना। इन सब का योग करें तब एक कोड़ाकोड़ि सागरोपम काल पूर्ण होता है।

जैनाचार्य श्रीमद् भट्टारक- विजय राजेन्द्रसूरीश्वर-सङ्कलिते श्रीकल्पसूत्र-बालावबोधे सप्तमं व्याख्यानं समाप्तम्।।

卐 卐 卐

अष्टम व्याख्यान

श्री आदिनाथ भगवान का चरित्र कहते हैं

उस काल में उस समय में श्री ऋषभनाथ अरिहंत अयोध्या नगरी में हुए। इस कारण से ही भगवान कौशलिक कहलाते हैं। उनके चार कल्याणक उत्तराषाढ़ानक्षत्र में हुए और पाँचवाँ कल्याणक अभिजित्नक्षत्र में हुआ। उत्तराषाढ़ानक्षत्र में देवलोक से च्यव कर गर्भ में आये, उत्तराषाढा में जन्म हुआ, उत्तराषाढा में दीक्षा ली और उत्तराषाढा में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार अभिजित् नक्षत्र में भगवान मोक्ष गये।

भगवान श्री ऋषभदेवजी के तेरह भव

धण मिहुण सुर महब्बल, ललियंगो वयरजंघ मिहुणे य।
सोहम्म विज्ज अच्चु, चक्की सव्वत्थ उसभे य।।१।।

प्रथम भव- इस जंबूद्वीप के महाविदेहक्षेत्र में सुप्रतिष्ठित नगर में प्रियंकर राजा राज करता था। उस नगर में महा धनवान धन्ना नामक एक सार्थवाह रहता था। एक बार वह वसंतपुर नगर जाने के लिए तैयार हुआ। उसने नगर में घोषणा करवायी कि जिस किसी को वसंतपुर आना हो, वह मेरे साथ चले। मैं उसका निर्वाह करूँगा। ऐसी घोषणा सुन कर अनेक लोग उसके साथ जाने के लिए इकट्ठे हुए। बहुत बड़ा काफ़िला हुआ।

उस नगर में श्री धर्मघोषसूरिजी पाँच सौ साधुओं के साथ ठहरे हुए थे। यात्रा के लिए उनकी भी वसंतपुर जाने की इच्छा हुई। उन्होंने धन्ना सार्थवाह के पास जा कर उसे धर्मलाभ दे कर कहा कि हे सार्थवाह ! यदि तुम्हारी आज्ञा हो, तो हम भी वसंतपुर जाने के लिए साथ चलें। तब धन्ना ने कहा कि हे स्वामिन् ! आप सुखपूर्वक हमारे साथ पधारिये। तब आचार्य भी उसके साथ चले। रास्ते में चलते वक्त सेठ को आम का उपहार मिला। सेठ वह

उपहार साधुओं को देने लगा, पर साधुओं ने सचित्त जान कर नहीं लिया।

वह सार्थ धीरे धीरे प्रतिदिन थोड़े थोड़े कोस चलता था। मार्ग में चातुर्मास आ गया। बहुत बरसात हुई। नदियों में बाढ़ आ गयी। इस कारण से यात्रा का मार्ग बन्द हो गया। हरितकायप्रमुख जीवों की उत्पत्ति हुई। कीचड़ भी बहुत हो गया। इससे लोगों का चलना मुश्किल हो गया। तब सार्थ इकट्ठा हो कर तंबू तान कर- डेरा डाल कर जंगल में ही रहा। आचार्य धर्मघोष भी एक पर्वत की गुफा में निरवद्य स्थानक देख कर पाँच सौ साधुओं सहित मासखमण की तपस्या कर के चातुर्मासार्थ रहे और धर्मध्यान करने में प्रवृत्त हुए।

धीरे-धीरे सार्थ के लोगों का संबल समाप्त हो गया। इसलिए सब लोग कन्दमूलफलादिक का आहार कर के दिन बिताने लगे। इससे साधुओं को भी पारणे में शुद्ध आहार मिलता नहीं था। एक बार वहाँ एक भाट आ पहुँचा। उसने सेठ को प्रसन्न करने के लिए सुभाषित वचन सुनाया। उसने कहा कि हे सेठ ! महापुरुष जो काम उठाते हैं- जो बात अंगीकार करते हैं, उसे पूरा करते हैं, अधूरा नहीं छोड़ते।

यह बात सुन कर सेठ को धर्मघोषसूरिजी याद आये। वह मन में सोचने लगा कि अरे ! मेरे कहने से साधु मेरे साथ आये और मैंने तो एक दिन भी उनकी सार-सम्हाल नहीं ली। इसलिए यह तो उनका विश्वासघात हुआ। अब सुबह के समय मुझे उनके पास जा कर क्षमायाचना करनी चाहिये। यह सोच कर प्रभातकाल में आचार्य के पास जा कर उन्हें वंदन कर के वह लज्जा से अपना मुँह नीचे कर के बैठ गया। फिर उसने विनती की कि हे स्वामिन् ! मेरा अपराध क्षमा करें। मैंने आपकी तरफ कभी ध्यान नहीं दिया। आपकी निगाह नहीं रखी। महाराज ! लोगों का सब संबल क्षीण हो गया है। आप मुझे कुछ आदेश दीजिये। हुक्म फरमाइये। तब आचार्य ने कहा कि हे सार्थेश ! हमारे लिए तुम किसी प्रकार की चिंता मत करो। हमारा धर्मध्यान सुखपूर्वक हो रहा है। तुम्हारे साथ के कारण हमने बहुत जंगल पार कर लिया। इसमें तुमने हमारे प्रति बहुत वात्सल्य रखा।

यह सुन कर धन सेठ बहुत खुश हुआ। सब साधुओं को आहार के लिए निमंत्रण कर वह उन्हें अपने डेरे में ले आया। उसके पास शुद्ध आहार में घी के कुप्पे थे। वह उन साधुओं को बड़े उत्साह से घी वहोराने लगा। उसके भाव बढ़ने लगे। इससे उसे समकित प्राप्त हुआ।[१] फिर वर्षाकाल बीतने के बाद सब वसंतपुर पहुँचे। धर्मघोष आचार्य भी सार्थवाह को धर्मलाभ दे कर तीर्थयात्रा करने गये। धन भी अनेक दिन समकित पाल कर अन्त में शुभध्यान में देह त्याग कर दूसरे भव में उत्तरकुरुक्षेत्र में युगलिकों में उत्पन्न हुआ। वहाँ तीन पल्योपम की आयु भोग कर मरने के बाद तीसरे भव में सौधर्म देवलोक में देव हुआ।

चौथे भव में देवलोक से च्यव कर पश्चिम महाविदेह की गंधिलावती विजय में शीतबल राजा की चन्द्रकान्ता रानी का महाबल नामक पुत्र हुआ। बड़े होने पर वह महाविषयलोलुपी भोगपुरन्दर हुआ। विनयवतीप्रमुख अनेक रानियों के साथ वह विषयसुख भोगने में मग्न रहता था और धर्म की बात जानता नहीं था। वह हमेशा गीत-गान, तान-मान और नाटक आदि में मस्त रहता था। इस तरह महामोह की निद्रा में उसका काल व्यतीत हो रहा था।

एक बार उसके आगे नाटक हो रहा था और वह तन्मय हो कर देख रहा था। गीत में उसका मन लगा हुआ था। उस समय सुबुद्धि नामक प्रधान ने राजा को प्रतिबोधित करने के लिए एक गाथा कही-

सव्वं विलवियं गीअं, सव्वं नट्टं विडंबणा।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा।।१।।

ये सब गीत विलापतुल्य हैं, सब नाटक विडंबनातुल्य हैं, सर्व आभरण भारतुल्य हैं और सर्व कामभोग दुःखदायी हैं।

यह गाथा सुन कर राजा ने कहा कि हे प्रधान ! तुमने बिना प्रस्ताव के

---

१. कई आचार्यों का लिखना है कि घी के भरे हुए पाँच सौ कुप्पे वहोराये। फिर धन्ना ने सोचा कि अब तो बहुत वहोरा दिया। इस तरह धन्ना के परिणाम घटते जान कर साधुओं ने कहा कि बस, अब अधिक आवश्यकता नहीं है। सेठ के परिणाम थोड़ी देर घटे न होते, तो उसे केवलज्ञान हो जाता। पर वैसे अभिवर्द्धित भाव न रहने से उसे केवल समकित ही प्राप्त हुआ।

यह वैराग्य उत्पन्न करने वाली गाथा क्यों कही?

यत्र सरागस्तत्र विरागः कथं?

यत्र विरागस्तत्र सरागः कथं?

यत्र श्रीरर्थः तत्राश्रीरर्थः कथं?

इसलिए हे मंत्री ! बिना प्रस्ताव के यह बात किस काम की?

तब प्रधान ने कहा कि महाराज ! मैंने यह बात प्रस्ताव से ही कही है। आज मुझे केवली मिले थे। उन्होंने कहा कि तुम्हारे राजा की आयु एक महीना शेष है। इसलिए मैं आपको सचेत कर रहा हूँ।

यह सुन कर राजा चौंक गया। मृत्यु के समान कोई भय नहीं है। फिर उसने मंत्री से कहा कि मैं तो मोहनींद में सोया हुआ था। तुमने जगाया तो सही, पर जब आग लगी हो तब कुआँ कैसे खोदें? आयु तो एक महीने की ही शेष है। अब धर्मसाधन कैसे हो सकता है? तब प्रधान ने कहा कि आप खेद मत कीजिये। एक दिन का चारित्र भी मोक्ष देने वाला होता है। यदि मोक्षप्राप्ति न हो, तो देवगति के सुख तो देता ही है। यह सुन कर पुत्र को राज्य सौंप कर, सात क्षेत्र में धन का उपयोग कर उसने अट्ठाई महोत्सव किया। फिर सुगुरु के पास चारित्र ले कर चौंतीस दिन तक चारित्र-पालन कर अन्त में अनशन पूर्वक देहत्याग किया।

पाँचवें भव में वह ईशान देवलोक में ललितांग नामक सामानिक देव हुआ। उसे स्वयंप्रभा देवी बहुत प्रिय थी। वह उसके साथ विषयसुख भोगता था। एक दिन स्वयंप्रभादेवी का च्यवन हो गया। उसके विरह से ललितांग मूर्च्छित हो गया। फिर होश में आने पर दुःखी हो कर शोक करते हुए वह रुदन करने लगा। उस समय सुबुद्धि मंत्री भी वहीं देवरूप में उत्पन्न हुआ था। उसने उसे प्रतिबोध दिया, तो भी उसका शोक नहीं मिटा। तब उस देव ने कहा कि तुम्हारी स्त्री को मैं जानता हूँ। उसे प्राप्त करने का उपाय भी बताता हूँ। तुम शोक मत करो। उस स्त्री का संबंध सुनो-

धातकीखंड के महाविदेहक्षेत्र में नन्दगाँव में नागिल नामक एक महादरिद्री गृहस्थ रहता है। उसकी स्त्री नागश्री ने छह पुत्रियों को जन्म दिया है। कहा

भी है कि दरिद्री के कन्याएँ अधिक होती हैं। फिर उसने सोचा कि अब यदि मेरी स्त्री के सातवीं पुत्री हुई, तो मैं देश छोड़ कर चला जाऊँगा। देवयोग से स्वयंप्रभा देवी का जीव भी उसके घर पुत्रीरूप में जन्मा. यह सातवीं पुत्री हुई, इसलिए सेठ और सेठानी दोनों दुःख करने लगे और दुःखपीड़ित नागिल परदेश चला गया।

इसके बाद परिवारजनों ने उस पुत्री का कोई नाम नहीं रखा। लोग उसे अनामिका कह कर बुलाने लगे। बड़ी हो जाने पर भी उस अभागिनी के साथ कोई विवाह नहीं करता था। इस कारण काष्ठ के गट्ठर बेच कर तथा लोगों के घर काम कर वह अपना पेट भरती थी। एक दिन किसी अमीर के बालक को मोदक खाते देख कर अनामिका ने माता से मोदक माँगा। तब माता ने कहा कि तेरे पिता मोदक लाने गये हैं। वे आयेंगे तब दे दूँगी। तब तक तू अंतरतिलक नामक पर्वत से काष्ठ का एक गट्ठर ले आ। फिर रोती हुई वह काष्ठ लाने गयी।

उस पर्वत पर युगंधर मुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। इसलिए वहाँ इन्द्र महाराज महोत्सव कर रहे थे। अनामिका भी नमस्कार कर के वहाँ बैठ गयी। धर्मदेशना सुन कर उसने केवली से पूछा कि मुझे ऐसी दुःखद अवस्था क्यों मिली? मुझे पतिप्रमुख का कोई सुख नहीं है, इसका क्या कारण है? तब प्रभु ने कहा कि तूने पूर्वभव में धर्म की आराधना नहीं की। धर्म के बिना सुख नहीं होता। अब यदि सुख की इच्छा हो, तो धर्म कर। धर्म के प्रभाव से देवों का सुख प्राप्त होता है। फिर अनामिका ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये। वह उपाश्रय में बैठ कर श्रावकधर्म का पालन करने लगी। लोगों ने उसे 'धर्मिणी' नाम दिया। साधर्मिक श्रावक उसे पारणाप्रमुख में सहायता करने लगे। इस तरह धर्म के प्रभाव से वह सुखी हुई।

सुबुद्धिदेव ने ललितांग से आगे कहा कि इस समय वह अनशन कर के लेटी हुई है। तुम वहाँ जा कर उसे अपना रूप दिखाओ, जिससे वह नियाणा करे। यह सुन कर ललितांग ने वहाँ जा कर उसे अपना उत्कृष्ट रूप

दिखाया। उसे देख कर व्यामोहित हो कर अनामिका ने नियाणा किया कि मेरी तपस्या का कोई फल हो, तो मैं इसकी स्त्री होऊँ। फिर अनामिका मृत्यु के बाद स्वयंप्रभादेवी हुई। ललितांग उसके साथ देवसुख भोगने लगा।

वहाँ से च्यव कर ललितांग छठे भव में जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेह की पुष्कलावती विजय के लोहार्गल नगर में सुवर्णजंघ राजा की लक्ष्मीवती रानी का वज्रजंघ नामक पुत्र हुआ। स्वयंप्रभादेवी भी उसी विजय की पुंडरीकिणी नगरी में वज्रसेन नामक चक्रवर्ती की श्रीमती नामक पुत्री हुई। अनुक्रम से वह युवान हुई।

एक दिन जब वह चन्द्रोदयसभा में बैठी थी, उस समय किसी साधु को केवलज्ञान उत्पन्न होने से देव उन्हें वन्दन करने जा रहे थे। उन देवों को देख कर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसने सोचा कि मेरे पूर्व भव के पति ललितांग देव का जीव कहाँ उत्पन्न हुआ होगा? वह मिले और उसके साथ मेरा विवाह हो, तो अच्छा हो। यह सोच कर उसने मौन धारण कर लिया।

माता-पिता ने अनेक उपचार किये, पर वह नहीं बोली। फिर धायमाता ने एकान्त में उससे बात पूछी, तब उसने एक कागज पर अपने हाथ से ललितांगदेव का चित्र बना कर दिया। धाय ने वह चित्र राजा को दिया। फिर वज्रसेन चक्रवर्ती के वर्षमहोत्सव पर अनेक राजपुत्र जब वहाँ आये, तब धाय वह चित्र ले कर राजमार्ग में बैठ गयी। वहाँ से जाने वाले राजकुमार उस चित्र को देखते जाते। वज्रजंघ ने जब वह चित्र देखा, तब उसे जातिस्मरणज्ञान हो गया। वह कहने लगा कि यह चित्र मेरी पूर्वभव की स्त्री स्वयंप्रभादेवी ने बनाया है। फिर धाय ने यह बात श्रीमती को बतायी। धाय की बात सुन कर श्रीमती[१] ने वज्रजंघ के साथ विवाह किया।

---

१. कई प्रतों में ऐसा लिखा है कि उस पुत्री को तीर्थंकर की सभा में देवों को देख कर जातिस्मरणज्ञान हुआ। इससे उसने अपना पूर्वभव जाना। वहाँ अनामिका और स्वयंप्रभा का भव देख कर उसने सोचा कि मेरा पूर्वभव का पति ललितांग कैसे मिले? फिर पिता ने पूछा, तब उसने अपने पूर्वभव से संबंधित बात कही। चक्रवर्ती ने केवली से पूछा कि इसका पूर्वभव का पति कहाँ उत्पन्न हुआ है? केवली ने वज्रजंघ का नाम बताया। फिर चक्रवर्ती ने उसका वज्रजंघ के साथ विवाह किया।

एक बार सुवर्णजंघ राजा ने वज्रजंघकुमार को राज्य सौंप कर दीक्षा ग्रहण की। वज्रजंघ राजा श्रीमती रानी के साथ एक दिन झरोखे में बैठे थे। उस समय संध्या को खिलते और विलीन होते देख कर उन्होंने सोचा कि संसार की सब वस्तुएँ एक दिन इसी तरह विलीन होने वाली हैं। इसलिए प्रभात के समय पुत्र को राज्य सौंप कर हम दीक्षा ले लेंगे। उस समय पुत्र ने भी राज्य के लोभ से ज़हरीला धुआँ कर के अपने माता-पिता को-श्रीमतीसहित राजा को विषप्रयोग से मार डाला। वहाँ से मर कर सातवें भव में राजा-रानी दोनों उत्तरकुरुक्षेत्र में युगलिक हुए। आठवें भव में दोनों सौधर्म देवलोक में मित्ररूप में देव हुए।

वहाँ से च्यव कर वज्रजंघ का जीव नौवें भव में जंबूद्वीप के महाविदेहक्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठित नगर में सुविधि नामक वैद्य का जीवानन्द नामक पुत्र हुआ। उसी दिन उस नगर में अन्य चार जीव भी पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। एक प्रसन्नचन्द्र राजा का पुत्र महीधर, दूसरा सुनासीर नामक प्रधान का पुत्र सुबुद्धि, तीसरा धनासेठ का पुत्र गुणाकर और चौथा सागर सेठ का पुत्र पूर्णभद्र। श्रीमती का जीव सौधर्म देवलोक से च्यव कर ईश्वरदत्त के पुत्र केशव के रूप में उत्पन्न हुआ। ये पाँचों जीवानन्द के परम मित्र थे। ये छहों मित्र साथ साथ रहते, खाते-पीते, खेलते और सुखपूर्वक रहते थे।

एक दिन छहों जन जीवानन्द के घर बैठे थे। उस समय एक कोढ़ी साधु-मुनिराज गोचरी वहोरने के लिए आये। उन्हें देख कर उन पाँचों मित्रों ने मिल कर वैद्यपुत्र से कहा कि "अरे ! वैद्य तो मतलबी होते हैं। यदि तुम पुण्य के लिए वैद्यकी करते हो, तो इस साधु का कोढ़ रोग मिटा दो। फिर हम मान लेंगे कि तुम धर्मात्मा हो।" यह सुन कर जीवानन्द वैद्य ने कहा कि हे मित्रो ! तुम मेरी बात सुनो। इस साधु का रोग मिटाने के लिए लक्षपाक

तथा एक प्रति में ऐसा भी लिखा है कि- चित्रपट बना कर कहा कि इसका स्वरूप जो बतायेगा, उसके साथ मैं विवाह करूँगी। फिर अन्य राजाओं ने अनेक प्रकार की बातें बना कर कहीं, पर ललितांग की बात नहीं मिली। परन्तु जब वज्रजंघ ने कहा कि यह मेरी स्वयंप्रभादेवी का रूप है, तब चक्रवर्ती ने श्रीमती का उसके साथ विवाह किया।

तेल चाहिये। वह मेरे घर में तैयार है। पर रत्नकंबल और गोशीर्ष चन्दन भी चाहिये। ये दोनों मेरे पास नहीं है। इसलिए ये दोनों चीजें यदि कहीं से ला दो, तो हम साधु की वैयावच्च कर सकते हैं।

यह सुन कर उन छहों मित्रों ने ढाई लाख सुवर्णमुद्राएँ जमा कीं। फिर नगरसेठ के घर जा कर उसे सुवर्णमुद्राएँ दे कर उन्होंने कहा कि हमें एक रत्नकंबल और गोशीर्ष चन्दन चाहिये। तब सेठ ने पूछा कि तुम लोग इनका क्या करोगे? उत्तर में उन्होंने कहा कि हम साधु महाराज की वैयावच्च करेंगे। यह सुन कर सेठ ने विचार किया कि ये सब बालक होने पर भी कैसे धर्मबुद्धि है ! मैं इतना बड़ा वृद्ध हो गया हूँ, तो भी अब तक धर्म में कुछ समझता नहीं हूँ। यह सोच कर सेठ ने सुवर्णमुद्राएँ लिए बिना रत्नकंबल तथा गोशीर्ष चंदन उन्हें दे दिये। फिर स्वयं ने दीक्षा ले कर साधुधर्म का पालन कर अन्तकृत् केवली हो कर मोक्ष प्राप्त किया।

अब वे छहों जन औषधि ले कर वन में गये। वहाँ मुनि काउस्सग्ग ध्यान में खड़े थे। उन्हें 'अनुजानीध्वं' कह कर चमड़े पर सुलाया। उनके शरीर पर लक्षपाक तेल से मालिश की। फिर चन्दन का लेप कर उन्हें रत्नकंबल में लपेट लिया। सबसे पहले त्वचा में रहे हुए सब कीड़े कंबल में आ गये। उन्हें गाय के मृत कलेवर में रख दिया फिर दूसरी बार तेल मसला, तब मांस में रहे हुए कीड़े बाहर आ गये। इसी प्रकार तीसरी बार भी पूर्वोक्त रीति से किया, तब हड्डी और मज्जा में से कीड़े बाहर आ गये। इसके बाद रोहिणी औषधि साधु के शरीर पर लगा कर उनका शरीर कंचनवर्णी कर दिया। फिर उन छहों ने रत्नकंबल का द्रव्य सात क्षेत्र में लगा कर दीक्षा ले कर निरतिचार चारित्रपालन किया। अन्त में काल कर दसवें भव में वे छहों जन बारहवें देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए। छहों देव मित्र बने।

ग्यारहवें भव में बारहवें देवलोक से च्यव कर जंबद्वीप के महाविदेहक्षेत्र की पुष्कलावती विजय में पुंडरीकिणी नगरी में वज्रसेन राजा की धारिणी रानी की कोख में उन छह जनों में से पाँच जन अनुक्रम से पुत्ररूप में उत्पन्न

हुए। उनमें से जीवानन्द वैद्य जो धन सार्थवाह का जीव था, वह चौदह स्वप्नसूचित माता की कोख में उत्पन्न हुआ। जन्मने के बाद माता-पिता ने उसका नाम वज्रनाभ रखा। यह जीव भविष्य में ऋषभदेव होने वाला है, पर अभी चक्रवर्ती के रूप में उत्पन्न हुआ है।

दूसरा राजा का पुत्र महीधर का जीव बाहु नामक राजा हुआ। तीसरा मंत्रीपुत्र सुबाहु नामक हुआ। चौथा सेठ का पुत्र गुणाकर का जीव पीठ नामक हुआ। पाँचवाँ सार्थवाह के पुत्र पूर्णभद्र का जीव महापीठ नामक हुआ। ये पाँचों भाई के रूप में उत्पन्न हुए। छठा केशव का जीव जो अनामिका का जीव है, वह अन्य किसी राजा के घर पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। वह वज्रनाभ को अत्यन्त प्रिय था, इसलिए भविष्य में उसका सारथी हुआ। ये छहों मित्र सुखपूर्वक रहते थे।

वज्रसेन राजा तीर्थंकर होने वाले थे। उन्होंने लोकांतिक देवों के वचन से जागृत हो कर, सांवत्सरिक दान दे कर वज्रनाभ नामक पुत्र को राज्य दे कर दीक्षा ली। फिर घनघाती कर्मों का क्षय कर के केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर बने। वे विचरते हुए पुंडरीकिणी नगरी में आये। वनपालक ने वज्रनाभ को बधाई दी। उसी समय चक्ररत्न प्रकट होने की भी बधाई आयी। तब उसने सोचा कि पहले किसकी पूजा करूँ? फिर यह निश्चय किया कि तीर्थंकर को पूज लिया, तो सबको पूज लिया। इन तीन लोक के नाथ से बढ़ कर और कौन हो सकता है? यह सोच कर उसने केवलज्ञान महोत्सव किया। वह भगवान को वन्दन करने गया। फिर उसने चक्र की पूजा की। अनुक्रम से छह खंड जीत कर वह सुखपूर्वक राज करने लगा।

एक बार पुनः वज्रसेन तीर्थंकर का वहाँ समवसरण लगा। वज्रनाभप्रमुख लोग उन्हें वन्दन करने आये। प्रभु की देशना सुन कर उन छहों ने दीक्षा ली। उनमें पहला वज्रनाभ चक्रवर्ती साधु हुआ। उसने चौदह पूर्वों का अभ्यास किया और अन्य पाँचों ने ग्यारह अंग पढ़े। उनमें से बाहु मुनि पाँच सौ साधुओं को आहार ला कर देते थे, सुबाहु पाँच सौ साधुओं के पाँव

दबाते थे तथा पीठ और महापीठ एकांत में तप-जप-सज्झाय और ध्यान करते थे।

अब बाहु और सुबाहु की गुरुप्रमुख सब प्रशंसा करते थे। इससे पीठ और महापीठ सोचने लगे कि देखो ! काम सबको वल्लभ है। ये साधु हुए हैं, तो भी मतलबी दीखते हैं। हम दोनों सज्झाय-ध्यान करते हैं, पर हमारी कोई प्रशंसा नहीं करता। बाहु-सुबाहु इनकी चाकरी करते हैं, तो उनकी प्रशंसा सब करते हैं। इसलिए संसार में सब स्वार्थी हैं।

फिर वज्रनाभ मुनि ने बीसस्थानकतप कर के तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया। बाहुमुनि ने आहारदान से भोगफल उपार्जन किया। सुबाहुमुनि ने पगचंपी के प्रभाव से बाहुबल उपार्जन किया तथा पीठ और महापीठ ने ईर्ष्या करने से स्त्रीवेद बाँधा। छठा अनामिका का जीव भविष्य में श्रेयांसकुमार होगा। ये छहों जन अन्त में अनशन कर के देहत्याग कर बारहवें भव में सर्वार्थसिद्धविमान में देवरूप में उत्पन्न हुए। फिर तैंतीस सागरोपम की आयु पूर्ण कर के सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यव कर तेरहवें भव में वज्रनाभ का जीव श्री ऋषभदेवजी हुआ, बाहु का जीव भरत चक्रवर्ती हुआ, सुबाहु का जीव बाहुबल तथा पीठ और महापीठ के जीव ब्राह्मी तथा सुन्दरी हुए। ये पाँचों जीव अनुक्रम से मोक्ष जायेंगे।

प्रभु ऋषभदेव का मरुदेवी की कुक्षि में अवतरण

उस काल में उस समय में श्री ऋषभदेव अरिहंत का ग्रीष्म का चौथा महीना सातवाँ पखवाड़ा आषाढ़ वदि चौथ के दिन सर्वार्थसिद्ध विमान से देव का आयुष्य पूर्ण होने पर च्यवन हुआ। वे इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में इक्ष्वाकुभूमि में नाभि कुलकर की मरुदेवी भार्या की कोख में मध्यरात्रि के समय देवसंबंधित आहार, भव और शरीर का त्याग कर के गर्भ में पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए, इस कारण से इक्ष्वाकुभूमि हुई। पूर्व में सब युगलिक थे। नगर आदि नहीं थे। युगलिकों में कल्पवृक्ष ही मनोरथ पूर्ण करते थे। उनमें सात कुलकर हुए।

कुलकरों की उत्पत्ति और नीतिप्रचार

इस अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अन्त में पल्योपम का आठवाँ भाग शेष रहने पर दक्षिण तरफ का आधा भरत याने दक्षिणार्द्ध भरत के तीन भागों में से मध्यभाग में याने कि बीच के भाग में प्रथम तीन कुलकर हुए। उनमें से प्रथम कुलकर इस तरह हुआ-

पश्चिम महाविदेह में दो वणिक रहते थे। वे दोनों आपस में मित्र थे, पर उनमें एक कपटी था और दूसरा सरल मन वाला था। वे जब आपस में द्रव्य बाँटते, तब कपटी वणिक सरल स्वभाव वाले को ठग कर गुप्तरूप से स्वयं धन रखता, पर सरल स्वभाव वाला तो निष्कपट रह कर व्यापार करता था। एक दिन सरल वणिक की स्त्री को देख कर कपटी मित्र मोहित हुआ। उसने उससे भोग भोगने के लिए कहा। वह स्त्री पतिव्रता थी। उसने उससे कहा कि अरे मर्यादाहीन ! तू मित्र की स्त्री को चाहता है? ऐसा कह कर निर्भर्त्सना कर के उसे बाहर निकाल दिया। फिर उस कपटी ने सरल चित्तवाले से कहा कि तेरी स्त्री मुझे चाहती थी, पर मैंने इन्कार कर दिया। यह सुन कर सरल वणिक बैरागी हो गया। मरने के बाद वह इक्ष्वाकुभूमि में मनुष्यरूप में युगलिक हुआ। कपटी मित्र भी मृत्यु के बाद उसी इक्ष्वाकुभूमि में हाथीरूप में युगलिक हुआ, क्योंकि कपट करने से जीव को बहुलता से तिर्यंच अवस्था प्राप्त होती है

एक बार हाथी युगलिक ने सरल युगलिक को देखा। इससे दोनों को आपस में जातिस्मरणज्ञान हुआ। फिर परम स्नेह से हाथी उसे अपने स्कंध पर बिठा कर रात-दिन घूमने लगा। उसे सफेद हाथी पर बैठा हुआ देख कर अन्य युगलिक कहने लगे कि यह विमलवाहन है। उन्होंने उसका यह नाम रख दिया। इस तरह कुछ काल बीता।

फिर काल के प्रभाव से कल्पवृक्ष पहले जैसे नहीं रहे। तब युगलिक आपस में लड़ने लगे और सबने अपने अपने कल्पवृक्ष कायम किये। वे वहीं रहने लगे। अपने स्थान में दूसरे को आने नहीं देते थे। यदि कोई जबरदस्ती

प्रवेश करता, तो वे विमलवाहन के पास जा कर फरियाद करते। विमलवाहन अपराधी को 'ह' कार की सजा देते। इससे वह मन में समझ लेता कि अब मेरी बात गयी। फिर वह नहीं झगड़ता। यह प्रथम 'ह'कारनीति हुई। विमलवाहन के चन्द्रयशा भार्या थी। उनका शरीर नौ सौ धनुष्य प्रमाण था। ये पहले कुलकर हुए।

फिर विमलवाहन के पुत्र चक्षुष्मान हुए। उनकी भार्या चन्द्रकान्ता थी और उनका शरीर आठ सौ धनुष्यप्रमाण था। उनकी भी 'ह' कार दंडनीति रही। ये दूसरे कुलकर हुए। तीसरे कुलकर यशोमान हुए। उनकी भार्या सुरूपा थी और उनका शरीर सात सौ धनुष्य प्रमाण था। उनके समय में 'म' कार दंडनीति रही। चौथे अभिचन्द्र नामक कुलकर हुए। उनकी भार्या का नाम प्रतिरूपा था। उनका शरीर साढ़े छह सौ धनुष्यप्रमाण था। उनके समय में भी 'म' कार दंडनीति रही।

पाँचवें प्रसेनजित नामक कुलकर हुए। उनकी भार्या चक्षुष्मति थी। उनका शरीर छह सौ धनुष्यप्रमाण था। उनके समय में 'धिः' कार इतना कहने से युगलिक समझ जाते कि मुझे बड़ा दंड हुआ है। इसलिए 'धिः' कार दंडनीति जानना। छठे मरुदेव नामक कुलकर हुए। उनकी भार्या श्रीकान्ता थी। उनका शरीरमान साढ़े पाँच सौ धनुष्य का था। उनके समय में भी धिःकार दंडनीति रही। सातवें नाभि नामक कुलकर हुए। उनकी भार्या मरुदेवी थी। उनका देहमान पाँच सौ पच्चीस धनुष्य का था। उनके समय में भी 'धिःकार' कहे जाने पर अपराधी समझ जाता कि मुझे महादंड हुआ है। वह जीवन भर फिर कभी अन्याय नहीं करता।

इस तरह पहले और दूसरे कुलकर के समय में 'ह' कार दंडनीति रही। तीसरे और चौथे कुलकर के समय में जघन्य से 'ह' कार और उत्कृष्ट से 'म' कार दंडनीति रही। याने बहुत अन्याय करने वाले को 'म' कहने से वह समझ जाता कि मुझे बड़ा दंड हुआ है। फिर वह कभी अन्याय नहीं करता। पाँचवें, छठे और सातवें कुलकर के समय में जघन्य से 'ह' कार, मध्यम से 'म' कार और उत्कृष्ट से 'धिः'कार ऐसी तीन प्रकार की दंडनीत शुरु हुई।

प्रभु का जन्म, नाम-वंशस्थापन और विवाह

श्री ऋषभनाथ अरिहन्त तीन ज्ञानसहित मरुदेवी माता की कोख में उत्पन्न हुए। यावत् मरुदेवी ने चौदह स्वप्न देखे इत्यादिक सब अधिकार श्री महावीरस्वामी की तरह कहना। परन्तु इतना विशेष है कि मरुदेवीजी ने पहले स्वप्न में वृषभ को मुख में प्रवेश करते देखा और अन्य बाईस तीर्थंकरों की माताओं ने पहले स्वप्न में हाथी को मुख में प्रवेश करते देखा तथा श्री महावीरस्वामी की माता ने पहले स्वप्न में सिंह को मुख में प्रवेश करते देखा। चौंदह स्वप्नों का फल नाभिराजा ने स्वयं ही कहा, क्योंकि स्वप्नपाठक उस समय में नहीं थे।

उस काल में उस समय में श्री ऋषभदेव अरिहन्त का ग्रीष्म का पहला महीना पहला पखवाड़ा चैत्र वदि अष्टमी के दिन नौ महीने साढ़े सात दिन-रात गर्भ में पूर्ण होने पर, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर निराबाध रूप से जन्म हुआ। (यहाँ जन्म-महोत्सव इन्द्रादिकों ने आ कर किया इत्यादिक सब अधिकार श्री महावीरजी की तरह कहना। पर बन्दीखाने से कैदियों को छोड़ देना, तौल बढ़ाना, कुलमर्यादा करना और पूजादिक के लिए द्रव्य रखना, ये कृत्य युगलिकों के समय में गाँव-नगर आदिक के अभाव के कारण नहीं थे, इसलिए नहीं किये।)

उस समय सब युगलिक थे, इसलिए प्रभु के नामस्थापन महोत्सव संबंधी व्यवहार भी नहीं चला। भगवान की जंघा में रोम का वृषभसरीखा लंछन दिखाई दिया तथा प्रभु की माता ने पहले स्वप्न में भी वृषभ देखा था, इसलिए प्रभु का नाम ऋषभ रखा। महास्वरूपवान भगवान देव-देवियों के साथ खेलते। इन्द्राणी स्वयं गोद में ले कर प्रभु को खेलाती।

सुनन्दा भगवान के साथ ही युगलरूप में जन्मी थी तथा एक युगलिक के मस्तक पर तालवृक्ष का फल गिरने से वह बचपन में ही मर गया था। उसके साथ जन्मी हुई बालिका जीवित रही। अन्य युगलिकों ने उसे देखा। उन्होंने उसे नाभि कुलकर को सौंप दिया। नाभि कुलकर ने कहा कि मेरे

पुत्र ऋषभदेव की सुनन्दा के साथ इसे भी स्त्री बना देंगे। यह कह कर उसका सुमंगला नाम रखा। वह भी भगवान के साथ बड़ी होने लगी।

कंचनवर्ण शरीर वाले भगवान श्री ऋषभदेवजी मुणमुण बोलते, रुक-रुक कर चलते, तब माता कहती कि हे पुत्र ! तू इन्द्राणी का वल्लभ है और देवों का दिया हुआ अमृत पीता है। मेरे पास तो तू रहता ही नहीं है तथा स्तनपान भी नहीं करता। फिर मैं तेरी माता हूँ, ऐसा संसार में कौन जानेगा? इत्यादि बातें करती हुई वह प्रभु को खेलाती।

जब भगवान लगभग एक साल के हुए, तब इन्द्र महाराज भगवान का वंश स्थापन करने के लिए हाथ में इक्षुदंड (गन्ना) ले कर आये। उस समय भगवान नाभि कुलकर की गोद में बैठे थे। उन्होंने गोद में बैठे बैठे ही इक्षु लेने के लिए हाथ लम्बा किया। इससे इन्द्र ने जाना कि भगवान का इक्षु खाने का मन हुआ है। इसलिए इन्द्र ने भगवान के इक्ष्वाकुवंश की स्थापना की।

श्री ऋषभदेवजी को देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के कल्पवृक्षों के फल का आहार देवों ने ला कर दिया। वह आहार गृहस्थावस्था में हुआ। बचपन में तो अंगूठे में देवों द्वारा संचारित अमृत का आहार सब तीर्थंकरों के होता है। एक श्री ऋषभदेवजी के अलावा अन्य सब तीर्थंकरों के शैशव के बाद बड़े होने पर पक्व आहार होता है और संयम लेने के बाद चौबीसों तीर्थंकरों के प्रासुक आहार होता है।

भगवान जब योग्य उम्र के हुए, तब सब इन्द्र और इन्द्राणी आदि अपने-अपने परिवार के साथ विवाह के लिए आये। इन्द्रादिक देवों ने वरराजा के पक्ष में हो कर श्री ऋषभदेवजी को दूल्हा बनाया और इन्द्राणीप्रमुख सब देवियों ने कन्यापक्ष में हो कर सुनन्दा तथा सुमंगला को दुल्हनें बनाया और उन्हें शृंगार कराया। मंडप बनाये गये। इत्यादिक विवाह संबंधी रीति कर के वर-कन्या का विवाह किया। तब से युगलिकों में विवाहप्रथा शुरु हुई, वह आज दिन तक चली आ रही है।

ऋषभदेव की सन्तति, राज्याभिषेक और विनीतानगरी की स्थापना

श्री ऋषभदेवजी ने सुनन्दा तथा सुमंगला इन दो रानियों के साथ भोग भोगते छह लाख पूर्व व्यतीत किये। तब सुमंगला ने भरत और ब्राह्मी इन दो पुत्र-पुत्री युगल को जन्म दिया तथा सुनन्दा ने बाहुबली तथा सुन्दरी इन दो पुत्र-पुत्री युगल को जन्म दिया तथा उसके उनचास केवल पुत्रयुगल ही हुए। इस तरह ऋषभदेवस्वामी के सौ पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हुईं।

काल के प्रभाव से अनुक्रम से दिन दिन युगलिकों में कषाय की वृद्धि होने लगी। उस समय 'ह' कार, 'म' कार और 'धिःकार' ये तीन प्रकार की दंडनीतियाँ जारी थीं, पर लोग इनका भी उल्लंघन करने लगे। इन्हें न मानने के कारण परस्पर क्लेश उत्पन्न होने से श्री ऋषभदेव के पास आ कर वे कहने लगे कि हमारा न्याय कीजिये। तब भगवान ने कहा कि मैं राजा नहीं हूँ। मेरे पिता नाभिकुलकर राजा हैं। तुम लोग उनके पास जाओ। यह सुन कर युगलिक नाभिराजा के पास गये। नाभिराजा ने कहा कि अब तुम्हारा राजा ऋषभदेव है। वह तुम्हारा न्याय करेगा।

इसी अवसर पर इन्द्र महाराज का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान से भगवान को राजगद्दी पर बिठाने का अवसर जान कर इन्द्र महाराज ने वहाँ आ कर भगवान को मुकुट, कुंडल, हारप्रमुख पहना कर, सिंहासन पर बिठा कर उनका राज्याभिषेक किया। उस समय युगलिक इन्द्र महाराज के कहने से जल लाने गये थे, पर राज्याभिषेक हो जाने के बाद वे जल ले कर आये। तब भगवान को श्रृंगारसहित सिंहासन पर बिराजमान देख कर युगलिकों को विवेकयुक्त विचार आया कि अन्य सब शरीर पर तो शोभा हो रही है, पर मात्र भगवान के पैर खाली दिखाई दे रहे हैं। यह सोच कर उन्होंने पैरों पर ही पानी डाला।[१] तब इन्द्र महाराज ने कहा कि ये युगलिक

१. कई प्रतों में लिखा है कि युगलिक आपस में झगड़ कर नाभिकुलकर के पास न्याय कराने आये। तब नाभिराजा ने कहा कि अब हम वृद्ध हो गये हैं, इसलिए ऋषभ से जा कर कहो। वह तुम्हारा न्याय करेगा। युगलिकों ने जा कर ऋषभजी से कहा। तब ऋषभजी ने कहा कि राज्याभिषेक कर के मुझे राजा नियुक्त करो। फिर युगलिकों ने धूल का एक बड़ा चबूतरा बना कर उस पर प्रभु को बिठाया। फिर वे अभिषेक के लिए पानी लाने गये।

भले विनीत पुरुष हैं, इसलिए यहाँ विनीता नामक नगरी बसायी जाये। यह कह कर उन्होंने वैश्रमणदेव को नगरी बसाने की आज्ञा दी।

तब वैश्रमणदेव ने बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी विनीता नगरी का निर्माण किया। उसके आठ द्वार बनाये और चारों ओर किला बनाया। ईशानकोन में सात खंड का एक चौकोन भवन नाभिराजा के रहने के लिए बनाया तथा पूर्व दिशा में भरत के रहने के लिए सतखंडा भवन बनाया। अग्निकोण में बाहुबली के रहने के लिए विशाल सदन बनाया और उसके मध्य में श्री ऋषभदेवजी के रहने के लिए इक्कीस मंजिला मकान बनाया तथा एक सौ आठ जिनमंदिर बनाये।

इसके अलावा राज्य के लिए हाथी, घोड़ा, गाय, ऊँट, खच्चर, बैलप्रमुख चतुष्पदों का संग्रह किया। पहले ये हाथीप्रमुख सब जीव जंगल में घूमते रहते थे। कई युगलिकों को अपराधियों को दंड देने के लिए 'उग्रा' नाम से स्थापित किया। कइयों को गुरुस्थान दे कर 'भोगा' नाम से स्थापित किया। कइयों को मंडलाधिप बना कर उन्हें 'राजन्य' नाम से स्थापित किया तथा अन्यों को 'पैदल क्षत्रिय' नाम से स्थापित किया। इस तरह चार प्रकार के पुरुषों की व्यवस्था हुई तथा जो ब्रह्मचर्य पाले वह ब्राह्मण, शस्त्र रखे वह क्षत्रिय, खेती कराये वह वैश्य और सेवा करे वह शूद्र, ऐसे नाम स्थापित किये।

इसी प्रकार विनीता नगरी में चौरासी बाजार बनाये। उनमें सौगंधिक-गाँधी, तंबोली, हलवाई, सुनार, मनिहार, सुवर्णविक्रेता, माणिकविक्रेता, सराफ, भड़भूँजा, धान्यबाजार, बजाज, चमार, कसेरा, माली, घृतबाजार

इतने में इन्द्र का आसन कंपायमान हुआ। उसने वहाँ जा कर ऋषभजी को मुकुटादिक अलंकार पहना कर, सिंहासन पर बिठा कर, वस्त्रविभूषित कर के राज्याभिषेक विधि सम्पन्न कर दी। प्रभु के मस्तक पर छत्र रखा और स्वयं चामर बींझते हुए इन्द्र प्रभु की सेवा करने लगा।

इतने में युगलिक भी कमलपत्र के दोने में पानी भर लाये। भगवान का स्वरूप सर्वालंकार विभूषित देख कर वे सोचने लगे कि भगवान के मस्तक पर अभिषेक करेंगे, तो सब वस्त्रालंकार भीग जायेंगे। इसलिए स्वामी का बायाँ पैर खाली है, तो इस पर अभिषेक करें। यह सोच कर उन्होंने बायें पैर पर अभिषेक किया।

तथा तेल, सूत्र, कपास, बर्तन, भाटक इत्यादिक बाजार बनाये। इस तरह अनेक व्यवसायी तैयार हुए।

युगलिक धर्म-निवारण और भोजनविधि-निरूपण

श्री ऋषभदेवस्वामी के पाँच नाम हुए- एक ऋषभदेव, दूसरा प्रथम राजा, तीसरा प्रथम भिक्षाचर, चौथा प्रथम केवली और पाँचवाँ प्रथम तीर्थंकर। श्री ऋषभदेव अरिहन्त महाचतुर, प्रतिज्ञा के पालक, रूपवान, सर्वगुण-सम्पन्न सरल और विनीत थे। वे बीस लाख पूर्व तक कुमारपद पर रहे। तिरसठ लाख पूर्व तक उन्होंने राज्यसंचालन किया। राज्यकाल में भरत के साथ ब्राह्मी जन्मी थी, उसका विवाह बाहुबली के साथ किया और बाहुबली के साथ सुन्दरी जन्मी थी, उसे भरत का स्त्रीरत्न करने के लिए रखा। इस तरह भगवान ने युगलधर्म का निवारण किया।

पूर्व में युगलिक अपनी इच्छानुसार कल्पवृक्षप्रदत्त आहार करते थे। जब वह स्थिति नहीं रही, तब लोग मूल, पत्र, कन्द, फल और फूल का आहार करने लगे। अपक्व शालिप्रमुख कच्चा धान्य खाने लगे। वह पचता नहीं था। उसके कारण पेट में दर्द होता था। इसलिए वे भगवान के पास आ कर कहने लगे कि भोजन करने से हमारा पेट फूल जाता है। तब भगवान ने कहा कि धान्य को हाथ से मसल कर उसे हाथ की उष्णता दे कर खाओ, तो वह पच जायेगा। युगलिकों ने वैसा किया, पर कुछ दिन बाद वह भी पचने योग्य न रहा। फिर बगल और हृदय पर रख कर उष्णता दे कर आहार करने के लिए कहा। वैसा करते हुए कुछ समय बाद वह भी पचना बन्द हो गया।

ऐसे समय में जंगल में बाँस घिसे जाने से आग उत्पन्न हुई। आग देख कर युगलिकों को लगा कि यह कोई अपूर्व रत्न उत्पन्न हुआ है। फिर वे उसे हाथ से उठाने लगे, तब उनके हाथ जल गये। उससे डर कर वे ऋषभदेवजी के पास आये और उनसे कहा कि हे स्वामिन्! कोई एक अपूर्व रत्न उत्पन्न हुआ है, पर उसमें क्रोध बहुत है। उसे हाथ लगायें तो वह जलाता है। (किसी प्रति में ऐसा भी लिखा है कि युगलिकों ने जा कर

भगवान से कहा कि कोई राक्षस जागा है।)

फिर भगवान ने अवधिज्ञान से देखा, तो आग उत्पन्न हुई दिखाई दी। उन्होंने युगलिकों से कहा कि तुम उसमें तृण लगा कर उसे ग्रहण करो। फिर उसमें शालिप्रमुख धान्य पका कर खाओ। तब युगलिकों ने तृण तोड़ कर अलग से आग जला कर उसमें अनाज डाला। वह सब जल गया। हाथ में कुछ नहीं आया। यह देख कर वे पुनः भगवान के पास आ कर बोले कि वह तो स्वयं ही भूखा है, इसलिए सब धान्य खा जाता है। हमें कुछ भी नहीं देता।

यह सुन कर भगवान ने कहा कि जब मैं हाथी पर सवार हो कर आऊँ, तब मुझे मिट्टी का एक पिंड देना। फिर युगलिकों ने वैसा ही किया। वे मिट्टी का पिंड ले आये। उस मिट्टी से भगवान ने हाँडी, कुंडीप्रमुख बर्तन बना कर दिये और सब विधि भी बता दी। उन्होंने कहा कि इन बर्तनों को अग्नि में पका कर इनमें अनाज और जल डाल कर आग पर रखो। इस तरह धान्य पका कर खाओ। भगवान की बताई हुई विधि से युगलिक धान्य पका कर खाने लगे, तब भोजन पचने लगा।

भगवान की दी हुई लेखनादि कलाशिक्षा

भगवान ने ब्राह्मी को दाहिने हाथ से अठारह लिपियाँ लिखना सिखाया। उनके नाम कहते हैं- १. हंसलिपि, २. भूतलिपि, ३. यक्षलिपि, ४. राक्षसलिपि, ५. उड्डीलिपि, ६. यावनीलिपि, ७. तुर्कीलिपि, ८. कीरीलिपि, ९. द्राविड़ीलिपि, १०. सैंधवीलिपि, ११. मालवीलिपि, १२. नडीलिपि, १३. नागलीलिपि, १४. लाटीलिपि, १५. पारसीलिपि, १६. अनिमित्तीलिपि, १७. चाणक्कीलिपि और १८. मौलदेवीलिपि। ये अठारह लिपियों के नाम तथा देशविशेष से अन्य भी लाटी, चौड़ी, डाहली, कानडी आदि अठारह लिपियाँ जानना तथा गणित याने अंकविधान भगवान ने सुन्दरी को बायें हाथ से करना सिखाया। ऐसा क्यों? तो कहते हैं कि- अङ्कानां वामतो गतिः अक्षराणां दक्षिणतो गतिः।

भगवान ने भरत महाराज को रूप करने का कर्म सिखाया तथा बाहुबली को पुरुषादि लक्षण तथा पुरुष की बहत्तर कलाओं का ज्ञान दिया।

उन कलाओं के नाम कहते हैं- १. लेखनकला, २. पठनकला, ३. गणितकला, ४. गीतगानकला, ५. नाटककला, ६. तालमानकला, ७. ढोल बजाने की कला, ८. मृदंग बजाने की कला, ९. वीणा-वादनकला, १०. बाँसुरीवादनकला, ११. भेरीवादनकला, १२. हाथीपरीक्षाकला, १३. अश्वपरीक्षाकला, १४. धातुर्वादकला, १५. दृष्टिवादकला, १६. मंत्रवादकला, १७. पलित-विनाशिनीकला, १८. तलक्षण, १९. नारीलक्षण, २०. नरलक्षण, २१. छन्दकरण, २२. तर्कवाद, २३. न्याय, २४. तत्त्वविचार, २५. काव्यकरण, २६. ज्योतिष, २७. चतुर्वेदकला, २८. वैद्यकला, २९. षड्भाषाज्ञान, ३०. वशीकरण, ३१. अंजन, ३२. लिपि, ३३. कृषिकर्म, ३४. स्वप्नविचार, ३५. वाणिज्य, ३६. राजसेवा, ३७. शकुनविचार, ३८. इन्द्रजाल, ३९. वायुस्तंभन, ४०. अग्निस्तंभन, ४१. मेघवृष्टिकारीकला, ४२. लेपनकला, ४३. मर्दनकला, ४४. उड़ने की कला, ४५. घटबंधनकला, ४६. घटभ्रमण, ४७. पत्रच्छेदन, ४८. मर्मभेदन, ४९. फल खींचना, ५०. जलवृष्टि, ५१. लोकाचार सीखने की कला, ५२. लोगों की मरजी रखने की कला, ५३. छलाँग मारने की कला, ५४. खड्गधारणकला, ५५. छुरीबंधन, ५६. मुद्राकरण, ५७. लोहघटन, ५८. दन्तसमारण, ५९. काष्ठच्छेदन, ६०. चित्रकरण, ६१. बाहुयुद्ध, ६२. दृष्टियुद्ध, ६३. मुष्टियुद्ध, ६४. दंडयुद्ध, ६५. खड्गयुद्ध, ६६. वाग्युद्ध, ६७. गरुडमर्दन, ६८. सर्पदमन, ६९. भूतदमन, ७०. योगध्यान, ७१. वर्षज्ञान और ७२. नामावली।

स्त्रियों की चौसठ कलाएँ बतायीं, उनके नाम- १. नाचने की कला, २. आदर देने की कला, ३. चित्रकला, ४. वादकला, ५. मंत्रकला, ६. तंत्रकला, ७. ज्ञानकला, ८. विज्ञानकला, ९. दंडकला, १०. जलस्तंभनकला, ११. गीतगानकला, १२. तालमानकला, १३. मेघवृष्टिकला, १४. फलाकृष्टीकला, १५. वाग्गोपन, १६. आकारगोपन, १७. धर्मविचार, १८. शकुन देखना, १९. क्रियाकल्प, २०. संस्कृत भाषा बोलना, २१. प्रसादनीति, २२. धर्मनीति, २३. वर्णिकावृष्टि, २४. सुवर्णसिद्धि, २५. सुगंधित तेल बनाना, २६. लीलासहित चलना, २७. हाथी-घोड़ों की परीक्षा करना, २८. पुरुष-स्त्रीलक्षण जानना, २९. सुवर्ण-रत्नभेद का ज्ञान, ३०. अठारह प्रकार की लिपि, ३१. तात्कालिक बुद्धि, ३२. वास्तुसिद्धि, ३३. वैद्यक्रिया, ३४. कामक्रिया, ३५. घटभ्रमण, ३६. सारिपरिश्रम, ३७. अंजनयोग, ३८. चूर्णयोग, ३९. हस्तलाघव,

४०. वचनचातुर्य, ४१. भोजनविधि, ४२. वाणिज्यविधि, ४३. मुखमंजन, ४४. शालिखंडन, ४५. कथाकथन, ४६. फुलगूँथन, ४७. वक्र बोलना, ४८. काव्यशक्ति, ४९. वेश बनाना, ५०. सब प्रकार की भाषाएँ बोलना, ५१. अभिधानज्ञान, ५२. अलंकार पहनना, ५३. राजा की भक्ति करना, ५४. घर का आचार सीखना, ५५. काव्यकरण, ५६. पर को हराना, ५७. धान्य राँधना, ५८. केश बाँधना-गूँथना, ५९. वीणा बजाना, ६० वितंडावाद, ६१. अंकविचार, ६२. लोकव्यवहार, ६३. अन्त्याक्षरिका और ६४. प्रश्न प्रहेलिका।

प्रभु के सौ पुत्रों के नाम

१. भरत, २. बाहुबली, ३. शंख, ४. विश्वकर्मा, ५. विमल, ६. सुलक्षण, ७. अमल, ८. चित्रांग, ९. ख्यातकीर्ति, १०. वरदत्त, ११.सागर, १२. यशोधर, १३. अमर, १४. रथवर, १५. कामदेव, १६. ध्रुव, १७. वत्स, १८. नन्द, १९. सूर, २०. सुनन्द, २१. कुरु, २२. अंग, २३. बंग, २४. कोशल, २५. वीर, २६. कलिंग, २७. मागध, २८. विदेह, २९. संगम, ३०. दशार्ण, ३१. गंभीर, ३२. वसुवर्मा, ३३. सुवर्मा, ३४. राष्ट्र, ३५. सुराष्ट्र, ३६. बुद्धिकर, ३७. विविधकर, ३८. सुयशा, ३९. यशःकीर्ति, ४०. यशस्कर, ४१. कीर्तिकर, ४२. सूरण, ४३. ब्रह्मसेन, ४४. विक्रान्त, ४५. नरोत्तम, ४६. पुरुषोत्तम, ४७. चन्द्रसेन, ४८. महासेन, ४९. नभःसेन, ५०. भानु, ५१. सुकान्त, ५२. पुष्पयुत, ५३. श्रीधर, ५४. दुर्धर्ष, ५५. सुसुमार, ५६. दुर्जय, ५७. अजेयमान ५८. सुधर्मा, ५९. धर्मसेन, ६०. आनन्दन, ६१. आनन्द, ६२. नन्दन, ६३. अपराजित, ६४. विश्वसेन, ६५. हरिषेण, ६६. जय, ६७. विजय, ६८. विजयन्त, ६९. प्रभाकर, ७०. अरिदमन, ७१. मान, ७२. महाबाहु, ७३. दीर्घबाहु, ७४. मेघ, ७५. सुघोष, ७६. विश्व, ७७. वराह, ७८. सुसेन, ७९. सेनापति, ८०. कपिल, ८१. शैलविहारी, ८२. अरिंजय, ८३. कुंजरबल, ८४. जयदेव, ८५. नागद, ८६. काश्यप, ८७. बल, ८८. सुवीर, ८९. शुभमति, ९०. सुमति, ९१. पद्मनाभ, ९२. सिंह, ९३. सुजाति, ९४. संजय, ९५. सुनाभ, ९६. नरदेव, ९७. चित्तहर, ९८. सुस्वर, ९९. दृढ़रथ और १००. प्रभंजन।[1] सौ पुत्रों में से भरत को अयोध्या नगरी का, बाहुबली को तक्षशिला (गजनी) का और अन्य अठानबे पुत्रों को अंग, बंग, कलिंग, गौड़, चौड़, कर्नाटक, लाट, सौराष्ट्र

१. कल्पद्रुमकलिका आदि के टीकाकारों ने सौ पुत्रों के नाम अन्य प्रकार से भी लिखे हैं। उन्हें उन टीकाओं से जान लेना।

आदि देशों का राज्य भगवान ने दिया।

प्रभु की दीक्षा और तापसों की प्रवृत्ति

इस तरह प्रभु ने लिखने की कला, गिनती की कला, पुरुष और स्त्रियों की कलाएँ, कारीगरों के सौ भेद, कृषीवलादि तीन कर्म लोकहित के लिए बता कर और अपने सौ पुत्रों को भिन्न भिन्न राज्य प्रदान कर, लोकान्तिक देवों की प्रार्थना मंजूर कर और वार्षिक दान दे कर तथा गोत्रजों में धन बाँट कर ग्रीष्म का पहला महीना, पहला पखवाड़ा चैत्र वदि अष्टमी के दिन पिछले प्रहर में सुदर्शना नामक पालकी में बैठ कर देव-मनुष्यसहित यावत् विनीता राजधानी में से हो कर सिद्धार्थवनउद्यान में अशोकवृक्ष के नीचे पालकी रख कर, पालकी से उतर कर सर्वालंकार अपने हाथ से उतार कर चार मुष्टि लोच कर[२], चौविहार छट्ठ कर के उत्तराषाढ़ानक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल और क्षत्रियकुल के कच्छ-महाकच्छ प्रमुख चार हजार पुरुषों के साथ इन्द्रदत्त देवदूष्य वस्त्र ले कर गृहस्थपने का त्याग कर साधुपना स्वीकार किया।

फिर भगवान घोर अभिग्रहधारी हो कर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, कठोर परीसह सहन करते हुए विचरने लगे। भगवान को यद्यपि छट्ठ तप का पारणा करना था, तथापि उस समय में साधु को दान देने की (भिक्षा देने की) विधि कोई जानता नहीं था। साधु क्या होता है? और भिक्षा क्या

---

२. सब तीर्थंकर पाँचमुष्टि लोच करते हैं, पर श्री ऋषभदेव प्रभु ने चार मुष्टि लोच किया। इसका कारण बताते हैं- भगवान ने जब चार मुष्टि लोच कर लिया और पाँचवीं मुष्टि उखाड़ना शेष रहा, तब हवा के कारण केश-शिखा बिखर कर चौड़ी हो गयी। इससे वह बहुत सुशोभित हो गयी। यह देख कर इन्द्र महाराज ने प्रभु से प्रार्थना की कि हे महाराज! यह केश-शिखा बहुत सुन्दर लगती है। इसलिए यह ऐसी ही रहे, तो ठीक होगा। तब भगवान ने भी शिखा को वैसा ही रहने दिया।

जैसे पद्मद्रह में से निकलते समय सिंधुनदी सवा छह योजन चौड़ी है और फिर अनुक्रम से बढ़ते बढ़ते समुद्र में मिलते समय साढ़े बासठ योजन चौड़ी होती है, वैसे ही यह चोटी भी मस्तक के मध्य मूल में से निकल कर आगे आगे चौड़ाई में फैलती हुई दिखाई दी। इससे पद्मद्रह सिंधु नदी के प्रवाह की तरह शोभायमान दीखने लगी। इसे लोकभाषा में अल्लाचोटी भी कहते हैं।

होती है? यह कोई समझता नहीं था। उस समय कोई भिक्षा मांगने वाला भी नहीं था। इस कारण से प्रभु जहाँ जाते, वहाँ उन्हें कोई भी अन्न नहीं देता था।

फिर चार हजार साधुओं ने भूख-प्यास से पीड़ित हो कर प्रभु से आहार का उपाय पूछा, पर प्रभु कुछ नहीं बोले। वे मौन रहे। तब उन्होंने कच्छ और महाकच्छ से पूछा। उन्होंने भी कहा कि हम कुछ नहीं जानते। तब सब सोचने लगे कि हमने पहले से ही भगवान से कुछ पूछा नहीं और अब पुनः लौट कर घर जाना भी ठीक नहीं है तथा आहार किए बिना भी चल नहीं सकता। इसलिए अब हमें वनवास में रहना ही उचित है। यह सोच कर गंगा नदी के दक्षिणी किनारे के जंगल में वे जटिल तापस बन कर रहे और वृक्ष से नीचे गिरे हुए पत्र, फल, फूल आदि का आहार करने लगे तथा वृक्ष की छाल के वस्त्र पहन कर श्री ऋषभदेवजी का ध्यान-स्तवन करते हुए विचरने लगे।

ऋषभदेवस्वामी के पुत्ररूप में माने हुए नमि-विनमि

प्रभु ने जब दीक्षा ली थी, तब सब पुत्रों में अलग अलग देशों का राज्य बाँट दिया था। उस समय प्रभु ने पुत्ररूप में पाले हुए कच्छ और महाकच्छ के पुत्र नमि और विनमि देशान्तर गये थे। भगवान उन्हें राज्य देना भूल गये। वे जब वापस लौटे, तब उन्होंने भरत से कहा कि हमें राज्य क्यों नहीं दिया? तब भरत ने कहा कि मैं तुम्हें थोड़ा सा भाग देता हूँ, पर वे नहीं माने। उन्होंने कहा कि हम तुम्हारे पास से नहीं लेंगे। तब भरत ने कहा कि भगवान जानें और तुम जानो।

दोनों भाई भरत की उपेक्षा कर के भगवान के पास आये। उन्होंने उनके चरण कमल की सेवा कर के कहा कि हे प्रभो! आपने सब को राज्य दिया है। अब हमें भी राज्य दीजिये।

भगवान ने तो संसार-त्याग किया था, इसलिए वे मौन रहे। उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब वे दोनों राज्य की इच्छा से भगवान के पीछे

चले। जहाँ भगवान खड़े रहते, वहाँ वे भूमि साफ करते, काँटे-कंकर दूर करते, पानी छिड़कते, फूल बिछाते, डांस-मशकादिक उड़ाते और त्रिकाल खड्ग धारण कर पहरा देते। इस तरह वे प्रभु की सेवा भक्ति करने लगे।

एक बार धरणेन्द्र महाराज भगवान को वन्दन करने आये। उन्होंने नमि-विनमि से कहा कि भगवान तो त्यागी हैं, इसलिए तुम भरत के पास जाओ। वह तुम्हें राज्य देगा। तब उन्होंने कहा कि भगवान के अलावा हम अन्य किसी के पास नहीं माँगते। यह सुन कर धरणेन्द्र ने उनकी भक्ति से सन्तुष्ट हो कर कहा कि तुम दोनों एकमन से प्रभु की सेवा करते हो। बड़ों की चरणसेवा कभी निष्फल नहीं होती। इस कारण से मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ। तुम जो चाहो माँग लो। मैं तुम्हें दे दूँगा। तो भी उन्होंने कुछ नहीं माँगा।

तब धरणेन्द्र ने भगवान के मुख में प्रवेश कर गिनते ही सिद्ध हो जाने वाली अड़तालीस हजार विद्याएँ उन्हें सिखायीं तथा गौरी, गांधारी, रोहिणी, प्रज्ञप्तिप्रमुख सोलह देवियाँ जो उन विद्याओं की अधिष्ठायिकाएँ थीं, वे भी अर्पण कीं तथा वैताढ्य पर्वत की दक्षिण-उत्तर श्रेणी का राज्य दिया। फिर विद्याएँ साध कर दोनों भाइयों ने विद्याधर की ऋद्धि प्राप्त की। इसके बाद अपना सब स्वजन वर्ग ले कर रथनूपुर, चक्रवालादि पचास नगर उत्तर श्रेणी के तथा गगनवल्लभप्रमुख साठ नगर दक्षिण श्रेणी के बसा कर विद्या के बल से सर्व परिवार सहित वहाँ राज करने लगे।

फिर उन दोनों भाइयों से धरणेन्द्र ने कहा कि हे विद्याधरो! मेरी बात सुनो। केवली भगवान, जिनप्रतिमा, चरम-शरीरी तथा प्रतिमाधर साधु इन चार की यदि तुम आशातना करोगे और इन चार को रास्ते में रख कर इनका दर्शन-वन्दन-सेवा आदि किये बिना ऐसे ही आगे बढ़ जाओगे तथा परस्त्री के साथ जबरदस्ती से विषय-भोग करोगे, तो ये तुम्हारी विद्याएँ निष्फल हो जायेंगीं।

इस तरह शिक्षा दे कर और यह शिक्षा रत्नभित्ति पर लिख कर धरणेन्द्र अपने स्थान पर गये। फिर भगवान की सेवा का फल भरत को

बता कर विद्याधरों की सोलह जातियों की स्थापना की। दक्षिण श्रेणी का राज्य नमि और उत्तर श्रेणी का राज्य विनमि करने लगा।

अन्तरायकर्म के उदय से प्रभु द्वारा किया गया वार्षिक तप

पूर्वकृत अन्तराय कर्म के उदय से भगवान एक वर्ष तक निराहार रहे। उन्हें कहीं भी शुद्ध भिक्षा नहीं मिली। वे जहाँ गोचरी जाते, वहाँ उन्हें बड़ा आदमी जान कर कोई वस्त्र अर्पण करता, कोई अलंकार अर्पण करता, तो कोई मणि-माणिक और मुक्ताफल से भरे थाल आगे रखता। कोई कोई तो अपनी अत्यन्त रूपवती कन्या को सोलह शृंगार से सजा कर देने के लिए तैयार होता। इसी तरह कोई हाथी, घोड़ा, रथप्रमुख वाहन देने आता और कोई धन से भरा सुवर्णथालप्रमुख उचित वस्तु देने आता। इस तरह अनेकानेक पदार्थ ला कर लोग प्रभु के आगे रखते। प्रभु उन सबको अनावश्यक जान कर ग्रहण नहीं करते। पर अन्न देने के लिए कोई आगे नहीं आता था। इस तरह प्रभु एक वर्ष तक निराहार रहे, पर आहार के अभाव में वे जरा भी डिगे नहीं। उनमें कभी दीनता नहीं आयी। इस तरह विचरते हुए भगवान एक बार गजपुर नगर में पधारे।

प्रभु के वार्षिक तप का पारणा और कर-संवाद

उस समय गजपुर नगर में बाहुबली का पुत्र सोमप्रभ राजा राज करता था। उसका पुत्र श्रेयांसकुमार युवराज था। श्रेयांसकुमार ने रात के समय सपना देखा कि मेरुपर्वत मलिन हो गया था। उसे मैंने अमृतघट से सींच कर उज्ज्वल (शोभायमान) कर दिया। श्रेयांसकुमार के पिता सोमप्रभ राजा को सपना आया कि किसी पुरुष को दुश्मन ने घेर लिया था। वह श्रेयांसकुमार की सहायता से विजयी हो कर मुक्त हुआ। उस नगर के सुबुद्धि सेठ को स्वप्न आया कि सूर्य की हजार किरणें नीचे गिर रही थीं, उन्हें श्रेयांसकुमार ने पुनः सूर्य में स्थापित किया। सुबह के समय ये तीनों राजसभा में मिले। तब सब ने अपने अपने स्वप्न की बात कही। तब सब के मन में यह विचार आया कि इन सपनों का सब फल श्रेयांसकुमार को मिलेगा और श्रेयांसकुमार

को कोई महान लाभ होगा। यह कह कर सब अपने अपने घर गये।

फिर मध्याह्न के समय श्री ऋषभदेवजी गोचरी के लिए घर घर घूमने लगे और लोग पूर्वोक्त रीति से उन्हें वस्त्राभरणादिक वस्तु देने लगे, पर भगवान कुछ भी लेते नहीं थे। इससे लोगों में कोलाहल हो रहा था कि भगवान तो कुछ भी लेते नहीं है। इतने में झरोखे में बैठे श्रेयांसकुमार को श्री ऋषभदेव भगवान दिखाई दिये। फिर ईहापोह करते उसे जातिस्मरणज्ञान हुआ। इससे उसने पूर्वभव देख कर जाना कि अहो! मैं तो इन प्रभु का पूर्वभव में सारथी था। तब मैंने भी दीक्षा ली थी। वज्रसेन तीर्थंकर ने यह कहा था कि ये वज्रनाभ राजर्षि भरतक्षेत्र में पहले तीर्थंकर होंगे। वे ही ये प्रभु तीर्थंकर, देवों के देव गोचरी के लिए घूमते दीखते हैं। यह जान कर वह तुरन्त झरोखे से नीचे उतर आया। फिर उसने कहा कि हे प्रभो! ये लोग साधु को दान देने की रीति से वाकिफ नहीं है।

यह कह कर पाँच अभिगम सम्हाल कर तीन प्रदक्षिणा दे कर "इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि।" इस तरह खमासमण दे कर फिर "इच्छकारि सुहराइ ? सुहदेवसि ? सुखतप ? शरीर निराबाध ? सुख संजम जात्रा निर्वहो छो जी? स्वामी शाता है जी? हे भगवन्! भात-पानी का लाभ देने पधारिये। मेरा गृहांगन पावन कीजिये। मेरे घर पधारिये और शुद्ध, बयालीस दोषरहित आहार ग्रहण कर मेरा उद्धार कीजिये।" इस तरह कह कर श्रेयांसकुमार प्रथम दानी के रूप में प्रकट हुए। उस समय गन्ने के रस से भरे हुए एक सौ आठ घड़े कोई व्यक्ति श्रेयांसकुमार को भेंट दे गया था। वे शुद्धमान घड़े ले कर श्रेयांसकुमार ने भगवान को भिक्षा ग्रहण करने की विनती की।

कवि घटना करता है कि दान लेते समय भगवान के दोनों हाथों में आपस में विवाद हुआ। वह इस प्रकार से कि- पहले दाहिने हाथ ने गद्‌गद् स्वर से श्रेयांसकुमार से कहा कि अहो श्रेयांस! तुम सुनो। मैं श्री ऋषभदेव का इस जन्म का सेवक हूँ। उनके प्रसाद से मैंने बड़े-बड़े उत्तम कार्य किये हैं और उनके कारण मुझे बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। वे मेरे कर्त्तव्य तुम निरपेक्ष रूप से सुनो।

१. प्रथम तो मैंने इन्द्रादिक देवों के देखते दाहिने अंगूठे से प्रभु को अमृतपान कराया। (याने कि तीर्थंकर की ऐसी मर्यादा है कि वे अपनी माता का तथा अन्य स्त्रियों का स्तनपान नहीं करते। उन्हें जब भूख लगती है, तब वे अपने दाहिने हाथ का अंगूठा चूसते हैं। उस समय तुरन्त उसमें अमृतमय पुद्गल परिणत हो जाते हैं। इससे क्षुधावेदनीय का उपशमन हो जाता है।)

२. वंशस्थापना के अवसर पर मैंने इन्द्र के हाथ से इक्षुदंड ग्रहण कर के स्वामी की इच्छा पूर्ण की। इसलिए वंश-स्थापना में भी मैं अगुआ हुआ।

३. मैंने ही भरतराजा को तिलक कर के राज्य दे कर छह खंड का अधिपति बनाया। (याने कि राज्य-स्थापना में भी दाहिने हाथ से ही मांगलिक कार्य में तिलक किया जाता है।)

४. भरत की तरह ही मैंने बाहुबली को तक्षशिला नगरी का राज्य दिया।

५. तथा प्रभु के शेष अठानबें पुत्रों को भी इसी तरह मैंने राज्य दिये।

६. सुनन्दा और सुमंगला इन दो कन्याओं का भी हस्तमिलाप के अवसर पर दाहिने हाथ से आधार दे कर स्वामी के साथ विवाह कराया।

७. मैंने एक वर्ष तक स्वइच्छित वार्षिकदान दे क्र तीन जगत के मनोवांछित पूर्ण किये। (दान भी दाहिने हाथ से ही दिया जाता है।)

८. मैं छत्र, चामर, चक्र, गदा, खड्ग, धनुष्य, अंकुश, वज्र और शंखादिक शुभलक्षणों से विराजमान हो कर सुशोभित हो रहा हूँ। ऐसे सब लक्षण मैं (दाहिना हाथ) धारण करता हूँ। लक्षण देखने वाले लोग भी मेरी रेखाएँ आदिक सब लक्षण देखते हैं।

९. तीर्थयात्रा, पुत्रप्राप्ति, सौभाग्य, यशःकीर्ति की सूचक रेखाओं का धारक भी मैं ही हूँ। (याने कि इन सब भावों को सूचित करने वाली रेखाएँ दाहिने हाथ में हों, तो ही तद्रूप फल की प्राप्ति होती है।)

१०. मैं चावल देखने और शोधने में चतुर व्यापारवान हूँ। (याने कि चावल, गोधूम आदिक में से कंकड़प्रमुख ढूँढ निकालने का काम दाहिने हाथ से ही हो सकता है।)

११. भोजन, देवपूजा, परमेश्वर-स्मरण, प्रीतिनिर्माण, बोल तथा कबूलात, दान इत्यादिक अनेक शुभकार्यों में मेरा ही अधिकार है। इसलिए मैं सबसे ऊपर हूँ। बड़े-बड़े कामों में मेरा अधिकार है। फिर इस स्वल्प गन्ने के तुच्छ रस की खातिर मैं नीचे क्यों झुकूँ? तिरासी लाख पूर्व वर्ष तक भगवान के साथ मैंने राज्य-साम्राज्य

चलाया है, तो अब मैं भगवान के आगे रह कर याचना कैसे कराऊँ? इसी कारण से मैंने खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, नाटक देखना आदि सब छुड़वा कर मौन धारण करा कर गहनवन और अटवियों में प्रभु को घुमाया। इसलिए अब मैं यह गन्ने का रस ग्रहण नहीं करूँगा। तुम बायें हाथ से कहो, तो यह माँग लेगा।

दाहिने हाथ के वचन सुन कर बायाँ हाथ बोला कि अरे! निर्लज्ज! तू व्यर्थ ही अपने मुँह से अपनी क्या प्रशंसा करता है? अपने मुँह से अपनी बड़ाई करने वाले में यदि कोई गुण हो तो भी उसे लघुता प्राप्त होती है और दूसरों की प्रशंसा करने से यदि कोई निर्गुण होता है, तो भी वह गुणवान बन जाता है। जो गुणवान होता है, उसके गुण तो अपने आप प्रकट हो जाते हैं। जैसे कपूर की सुगंध, रत्न का तेज और मणि की निर्विषता-विषापहारकता इत्यादिक गुण अपने आप प्रकट दिखाई देते हैं। वे किसी से कहने नहीं जाते।

तथा साथ-साथ रहने वाले दो जनों में से कोई एक उठ कर अपने गुण दूसरे के आगे कह कर बताये, यह योग्य नहीं है। जैसे माता के आगे मामा के गुणों का वर्णन करना योग्य नहीं कहलाता, उसके अनुसार यह भी जान लेना। इसलिए अहो! श्री श्रेयांस! श्री ऋषभदेव के प्रपौत्र! मेरा कर्त्तव्य भी अब तुम सुनो-

१. परमेश्वर ने जिन दो कन्याओं के साथ विवाह करना मंजूर किया, उन्हें सोने-बैठने का स्थान तो मैंने ही दिया है। क्योंकि स्त्रियाँ पुरुष के बायीं ओर सोती-बैठती हैं। याने कि दाहिने हाथ ने तो मात्र स्त्री का हाथ पकड़ कर उसे उठा दिया, पर उन्हें बैठने के लिए स्थान तो मैंने ही दिया।

२. मैं युद्ध के मैदान में ढाल आगे रख कर स्वामी की रक्षा करता हूँ और दाहिना हाथ तो तलवार उठा कर पुनः भाग जाता है।

३. युद्ध के दौरान मैं धनुष्य धारण कर के आगे खड़ा रहता हूँ और यह दाहिना हाथ तो तीर ले कर चुगलखोर की तरह कान के पास चला जाता है।

४. अंक गिनती का व्यापार भी मेरी ओर ही होता है। याने कि अंकों की वामगति होती है।

५. ग्रामान्तर के लिए प्रयाण करते समय गधा भी यदि मेरी दिशा की तरफ आ कर रेंकता है, तो वह सिद्धिदायक माना जाता है।

६. इसी प्रकार देवचिड़िया भी बायीं ओर आ कर बोले, तो शुभफल सूचित करने वाली होती है।

७. प्रथम प्रयाण में रात्रि के प्रथम प्रहर में सियार भी मेरी दिशा में रहते हुए

बोले, तो सिद्धिकारक होता है।

८. जो प्राणी रोगादिक से पीड़ित होता है, वह अधिकतर यदि बायीं करवट सोये, तो उसे सुख-समाधि प्राप्त होती है।

९. चन्द्रनाड़ी जब मेरी ओर चलती हो, उस समय यदि शुभ काम का प्रारम्भ किया जाये, तो वह सिद्धिदायक होता है।

९. और सुनो। इस पापी दाहिने हाथ ने प्रभु के विवाह के अवसर पर कन्याओं का हाथ ग्रहण किया, उस समय मुझे नहीं बुलाया। इतना ही नहीं, कंसार भी इसने अकेले ही खाया। इसने यह भी नहीं सोचा कि यह मेरा भाई भूखा है, इसलिए इसे भी बुला कर थोड़ा सा खिला दूँ। ऐसा विचार किए बिना मुझ से छल कर के यह अकेला ही सब खा गया। इससे यह केवल पेटू दीखता है। यह व्यर्थ ही अपने मुख से अपने गुणों का वर्णन करता है।

इसकी एक और निष्ठुरता भी मैं बताता हूँ। जिस समय यह मिष्टान्न-पान भोजन करता है, उस समय भोजन तो यह स्वयं करता है, पर मक्खियाँ मुझ से उड़वाता है। फिर भी मैं मेरी दाक्षिण्यता से इसे अपना बड़ा भाई जान कर कुछ नहीं कहता।

इस दाहिने हाथ में चतुराई या अन्य कोई गुण नहीं है। जिस समय सिर पर पगड़ी लपेटते हैं, उस समय यह तो जैसे-तैसे लपेट लेता है, पर बाद में लपेट प्रमुख सुधारने का काम, बराबर रचना करना, सुन्दर आकार करना आदि तो सब मैं ही करता हूँ।

अरे! ये दाहिना हाथ तो जुआ खेलने वाला है। कितनी बातें तुमसे कहूँ? हम दोनों के अच्छे-बुरे लक्षण तथा गुण और अवगुण सारा संसार जानता है। अथवा ये श्री ऋषभदेवस्वामी स्वयं ही तीन लोक के नाथ हैं, इसलिए ये सब जानते हैं। इस तरह हम दोनों को विवाद करते एक वर्ष बीत गया है। इससे भगवान को वार्षिक तप करना पड़ा है। इस तरह पारिवारिक विरोध कभी कल्याणकारक नहीं होता। इसलिए यद्यपि यह बड़ा हठी है, फिर भी तुम्हारी दाक्षिण्यता से मैं इसे समझाता हूँ। क्योंकि किसी प्रकार से जब परिवार में विरोध उत्पन्न होता है, तब संबंधियों को संबंधी ही आपस में प्रतिबोध दे कर समझाते हैं।

यह कह कर बायाँ हाथ दाहिने हाथ से कहने लगा कि "हे भाई! इस अवसर पर हमें विवाद करना उचित नहीं है। अभी तो स्वामी को केवलज्ञान उत्पत्ति के समय, तीर्थप्रवर्तन के समय और संघस्थापना के समय अपना ही काम है। उसमें

अन्य किसी का काम नहीं है। बड़ों का अपना काम दूसरों के लिए ही होता है, जैसे माता का पीया हुआ दूध बालक के लिए ही होता है। इस कारण से इस समय हमें विरोध करना योग्य नहीं है।'' इस तरह बायें हाथ ने दाहिने हाथ को समझाया।

तब श्रेयांसकुमार ने दोनों हाथों को समझाते हुए कहा कि ''अरे! तुम दोनों जन अपने अपने काम में कल्याणकारी हो, पर अभी तुम मेरी प्रार्थना सफल करो। तुम दोनों इकट्ठे हो जाओ, जिससे भगवान के वार्षिक तप का पारणा हो और मेरे लिए भी उत्तम दान देने से संसारसमुद्र से तैरना हो जाये। इसलिए मुझ पर कृपा कर के आप दोनों आपसी झगड़ा मिटा कर भले हो कर आपस में मिल जाओ। श्रेयांस की यह विनती सुन कर दोनों हाथ अंजुली के आकार में मिल गये। तब श्रेयांसकुमार ने शुद्ध भाव से गन्ने का रस वहोराया। उसकी शिखा ऊपर चढ़ती गयी, पर एक बूँद भी नीचे नहीं गिरी। यह भगवान की लब्धि का प्रभाव जानना।

यदि हजारों घड़े हाथ में औंधे कर दिये जायें अथवा सब समुद्रों का पानी हाथ पर उँडेल दिया जाये, तो भी एक बूँद तक हाथ से नीचे गिरे नहीं, मात्र शिखा ऊपर चढ़ती जाये। ऐसी लब्धि जब प्राप्त होती है, तब मुनि करपात्री होता है।

फिर स्वामी ने वहीं पारणा किया। उस समय पाँच दिव्य प्रकट हुए। प्रथम गंधोदक-पुष्प की वृष्टि हुई, दूसरा वसुधारा की वृष्टि हुई, तीसरा वस्त्र की वृष्टि हुई, चौथा आकाश में देवदुंदुभी बजी और पाँचवाँ 'अहो दानम्! अहो दानम्' ऐसी उद्घोषणा देवों ने की। इस पात्रदान से श्रेयांसकुमार ने मोक्षफल उपार्जन किया। उसने भगवान के पारणा करने के स्थान पर रत्नमय पीठ बनवाया।

भगवान के पारणे का दिन वैशाख सुदि तीज का था। इससे अक्षयतृतीया नामक पर्व जगत में मान्य हुआ। लोगों ने प्रशंसा करते हुए कहा कि श्री ऋषभदेव जैसा पात्र, गन्ने के रस जैसा शुद्ध आहार तथा श्रेयांसकुमार जैसा भाव ये किसी महापुण्य योग से ही प्राप्त होते हैं। श्री आदिनाथ का पारणा गन्ने के रस से हुआ और अन्य तीर्थंकरों का प्रथम पारणा खीर के भोजन

से हुआ।

प्रभु के साथ श्रेयांसकुमार का आठ भव का संबंध

श्रेयांसकुमार से लोगों ने पूछा कि हम तो यह जानते नहीं थे कि भगवान आहार लेंगे, फिर तुमने यह कैसे जान लिया? तब श्रेयांसकुमार ने कहा कि मैं भगवान के जीव के साथ आठ भव तक रहा हुआ हूँ। इस कारण से दान देने की सब विधि जानता हूँ। फिर लोगों ने पूछा कि वे आठ भव कौन-कौन से हैं? तब श्रेयांस ने कहा कि- पहले भव में भगवान का जीव ललितांगदेव था, तब मैं इनकी स्वयंप्रभा नामक देवी था। दूसरे भव में भगवान वज्रंधर राजा हुए, उस समय मैं उनकी श्रीमती रानी था। तीसरे भव में हम दोनों युगलिक हुए। चौथे भव में हम दोनों सौधर्म देवलोक में मित्ररूप में देव हुए। पाँचवें भव में प्रभु जीवानन्द वैद्य हुए और मैं उनका मित्र हुआ। छठे भव में अच्युत देवलोक में हम दोनों मित्ररूप में देव बने। सातवें भव में प्रभु वज्रनाभ चक्रवर्ती हुए और मैं उनका सारथी हुआ। उस भव में हम दोनों ने तीर्थंकर के पास दीक्षा ली। आठवें भव में हम दोनों सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यव कर ये भगवान हुए और मैं इनका प्रपौत्र श्रेयांस हुआ हूँ। यह बात इतने दिन तक मैं जानता नहीं था। पर आज मैंने भगवान को देखा, इससे मुझे जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ। मैंने सातवें भव में दीक्षा का पालन किया था। इससे सब रीति मुझे मालूम हुई और मैंने साधु की मर्यादा से आहार वहोराया। ये महापुरुष हैं। इन्हें धनादिक की कोई आवश्यकता नहीं है।

यह बात सुन कर सब लोगों ने साधु को आहार देने की विधि जान ली। इस तरह इस अवसर्पिणीकाल में श्रेयांसकुमार से प्रथम सुपात्रदान का प्रारंभ हुआ।

प्रभु ने आहारान्तरायकर्म कैसे बाँधा?

भगवान को एक वर्ष तक निराहार रहना पड़ा। उन्हें आहार नहीं मिला। यह किस अन्तराय कर्म के उदय से हुआ? सो बताते हैं- भगवान

पूर्व के किसी भव में एक सेठ के रूप में थे। वे एक दिन किसान के पास वसूली करने गये थे। एक किसान ने खला किया था। वहाँ अनाज निकालने के लिए किसान अपने बैलों को धान्य में घुमा रहे थे। वे बैल घूमते घूमते जब नीचे झुक कर अनाज में मुँह डालते, तब किसान उन बैलों के मुँह पर चाबुक मारते थे। यह देख कर सेठ को दया आ गयी। उसने उन किसानों से कहा कि अरे! तुम इन्हें व्यर्थ क्यों मारते हो? इनके मुँह पर छीका बाँध दो, तो ये धान्य नहीं खायेंगे और तुम्हें इन्हें मारने का परिश्रम भी नहीं करना पड़ेगा। फिर उन किसानों ने बैलों के मुँह पर छीके बाँधे। वे छीके बारह प्रहर तक बँधे रहे। यह अन्तरायकर्म भगवान ने बाँधा था, सो इस जन्म में उदय[1] में आया। इसलिए किसी को भी अन्तराय नहीं करना चाहिये।

धर्मचक्रपीठ की स्थापना और बाँग देने की प्रवृत्ति

एक बार भगवान विहार करते करते बहुलीदेश में तक्षशिला नगरी के उद्यान में संध्या समय काउस्सग्ग में रहे। वहाँ के वनपालक ने जा कर बाहुबली राजा को बधाई दी, तब राजा ने वनपालक को दान दे कर सन्तुष्ट किया। फिर उसने सोचा कि शाम हो जाने के कारण अब अंधेरा हो गया है, इससे थोड़े समय में सब परिवार इकट्ठा नहीं हो सकेगा, क्योंकि तीन लाख तो मेरे पुत्र ही हैं और पौत्रादिक भी अनेक हैं। वे सब इकट्ठे नहीं हो सकेंगे। इसलिए प्रातःकाल के समय महामहोत्सवपूर्वक प्रभु को वन्दन करने जाऊँगा। यह सोच कर वे बैठे रहे।

---

१. कोई कोई आचार्य कहते हैं कि भगवान ने महाविदेहक्षेत्र में जिन छह मित्रों के साथ चारित्र लिया था, उन छहों में श्री ऋषभ का जीव बड़ा था। वे सपरिवार विहार करते हुए किसी कुनबी के खेत की बाड़ में पहुँचे। उस समय वह कुनबी धान्य निकालने के लिए बैलों को फिरा रहा था। दँवरी चलाते-चलाते बीच-बीच में वे बैल नीचा मुँह कर धान्य खाते, तब वह कुनबी उन्हें पैने से मारता। यह देख कर गुरु सोचने लगे कि यह कुनबी बिचारे बैलों को पैने से मारता है, इसके बदले यदि ये बैलों के मुख पर छीका बाँध दे, तो ये कुछ भी धान्य खा नहीं सकेंगे और चलते ही रहेंगे। ऐसा वे मुख से नहीं बोले, पर मन में ही सोचा। उस कर्म के प्रभाव से प्रभु को एक वर्ष तक आहार-पानी नहीं मिला।

फिर सुबह के समय नगर को सजा कर बड़े आडम्बर से प्रभु को वन्दन करने गये। इतने में भगवान तो अप्रतिबंध विहारी होने के कारण बाहुबली के वहाँ पहुँचने के पहले ही विहार कर अन्यत्र चले गये। इससे बाहुबली को भगवान दिखाई नहीं दिये। उन्हें बहुत खेद हुआ और उन्होंने अपने कानों में उँगलियाँ रख कर उच्च स्वर से रुदन किया तथा प्रभु के भूमि पर रहे हुए पदचिह्नों के पास खड़े रह कर जोर-जोर से पुकार की। 'हे बाबा आदम! हे बाबा आदम! कहते हुए बाँग दी। इससे बाँग देने की प्रथा शुरु हुई। आज भी मुसलमान और बोहरा लोग बाँग देते हैं।

फिर भगवान की भक्ति के लिए जहाँ प्रभु काउस्सग्ग में खड़े थे, उस स्थान पर आठ योजन विस्तार वाला और एक योजन ऊँचा, हजार कोने वाला और हजार सीढ़ियोंवाला धर्मचक्र नामक एक पीठ बँधवाया- स्तूप कराया। उस पर भगवान के चरण स्थापन किये और मान लिया कि ये ही भगवान हैं। फिर ऐसी बुद्धि से उन्हें नमस्कार किया। अन्य लोगों ने भी वैसी ही महिमा की। फिर वह धर्मचक्रतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। तब से बाहुबलीकृत पीठ की महिमा बढ़ी।

भरत के प्रति मरुदेवी माता का उपालंभ

जिस दिन से भगवान दीक्षा ले कर विहार कर गये, उस दिन से मरुदेवी माता भरत महाराज को उपालंभ देती रहती थी। वह कहती कि हे भरत! जैसे कोई कमलपुष्प की माला को फेंक देता है, वैसे ऋषभ मुझे छोड़ कर चला गया है। वह एकाकी वनवासी हो गया है। वह भूख-प्यास से पीड़ित होता होगा, कहीं स्मशान अथवा गुफा में तपस्या करता होगा, सर्दी-गर्मी सहन करता होगा, वर्षाकाल में भीगता होगा और उसे डांस-मच्छर काटते होंगे। अरे! मैं पापिनी हूँ, जो पुत्र को इतना दुःख होता है, सो सुनती हूँ। मैं मर क्यों नहीं जाती? मुझ जैसी दुःखिनी कहीं भी कोई नहीं होगी।

अरे भरत! तू तो राज्य के सुख में लीन हो गया है। मेरे पुत्र की खबर

भी नहीं लाता। तू तो सब प्रकार के सुन्दर स्वादिष्ट भोजन बनवा कर खाता है और मेरा पुत्र भिक्षा माँग कर सूखे टुकड़े खाता है। तू तो बढ़िया गहने पहनता है और मेरा पुत्र नग्न फिरता है। तू सुखपूर्वक शय्या में सोता है और मेरा पुत्र कठिन पथरीली काँटों भरी जमीन पर सोता है। अरे! जो मधुर गीतगान से जागता था, वह अब सियार आदिक के कर्कश व दुष्ट स्वर से जागता होगा। उसके भूख-प्यास, शरीरशुश्रूषा आदि की कौन सम्हाल लेता होगा? वह नंगे पैर चलता होगा, इत्यादिक अनेक प्रकार के उपालंभ वह देती रहती थी।

पुत्र की चिन्ता से मरुदेवी माता की आँखों में पडल आ गये। भरत महाराजा अपनी दादी माँ को समझाते हुए कहते कि "हे माताजी! आप कुछ भी चिन्ता मत कीजिये। आपका पुत्र बहुत सुखी है।" तब माँ कहती कि मुझे दिखा। उस समय भरत कहते कि वे कुछ दिन बाद यहाँ आयेंगे, तब मैं आपको दिखाऊँगा।

मरुदेवी माता इस तरह भरत को उपालंभ देती रहती थी।

ऋषभदेव को केवलज्ञान और मरुदेवी का मोक्षगमन

श्री ऋषभदेव अरिहंत ने एक हजार वर्ष तक काया को वोसिरा दिया और शरीर की शुश्रूषा छोड़ दी। उन्हें कोई उपसर्ग नहीं हुआ। एक वर्ष तक आहार नहीं मिला, यही एकमात्र उपसर्ग हुआ। उसे सहन करते हुए और आत्मा को भावते हुए- आत्मचिन्तन करते हुए एक हजार वर्ष बीत गये। तब शीतऋतु का चौथा महीना सातवाँ पखवाड़ा फाल्गुन वदि एकादशी के दिन पूर्वाह्नकाल के समय में, पुरिमताल नगर के शकटमुख नामक उद्यान में न्यग्रोध बडवृक्ष के नीचे, पानीरहित अट्ठम तप करते हुए, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर शुक्लध्यान के मध्यभाग में वर्तते हुए, जिसके समान अन्य कोई पदार्थ संसार में नहीं है, ऐसा अनुपम, अनन्त केवलज्ञान और अनन्त केवलदर्शन प्रभु को उत्पन्न हुआ। उसके योग से प्रभु सब भाव जानने-देखने लगे।

इसी अवसर पर भरत महाराजा की आयुधशाला में चक्ररत्न भी प्रकट हुआ। तब श्री ऋषभदेव के केवलज्ञान की और आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट होने की दोनों बधाइयाँ एक साथ भरत को मिलीं। भरत ने बधाई देने वालों को हर्षदान दे कर बिदा किया। फिर भरतजी विचार करने लगे कि दो बधाइयाँ साथ आई हैं, तो इनमें से किसका महोत्सव पहले करूँ? इस तरह क्षणभर विचार कर के उन्होंने निश्चय किया कि चक्ररत्न तो सांसारिक है और श्री तीर्थंकर का केवलमहोत्सव तो लोकोत्तर है तथा पिता की पूजा की, तो सब की पूजा की। इसलिए प्रथम इस लोक और परलोक में सुखदायक ऐसे केवलज्ञान का महोत्सव कर के फिर चक्ररत्न की पूजा करूँगा।

ऐसा निश्चय कर के मरुदेवी माता के पास जा कर भरत ने कहा कि हे माताजी! आप मुझे उपालंभ देती थीं, पर आज आपके पुत्र यहाँ पधारे हैं। आप मेरे साथ चलिये। मैं आपको आपके पुत्र की महिमा बताता हूँ। यह कह कर मरुदेवीजी को हाथी पर बिठा कर और फिर स्वयं भी बैठ कर बड़े आडंबर के साथ भरतजी वहाँ से चले। चलते चलते जब समवसरण के नजदीक आये, तब माताजी ने पूछा कि हे भरत! ये देवों के बाजे कहाँ बज रहे हैं? तब भरत ने कहा कि ये बाजे आपके पुत्र के आगे बज रहे हैं। पर माताजी ने यह बात नहीं मानी। फिर आगे बढ़ने पर जो अनेक देव-देवियाँ समवसरण की रचना करने और केवलज्ञान का महोत्सव करने के लिए आये थे, वे आपस में एक-दूसरे को आवाज दे रहे थे। वह आवाज सुन कर मरुदेवी ने भरत से पूछा कि यह कोलाहल कैसा हो रहा है? तब भरत ने कहा कि माताजी! ये देवीदेवता आपके पुत्र की पूजा करने के लिए आना-जाना कर रहे हैं। इस कारण से कोलाहल हो रहा है। तो भी माता ने नहीं माना। फिर आगे बढ़ने पर भरत महाराजा ने कहा कि हे माताजी! यह रूपा, सोना और रत्नों से बना हुआ आपके पुत्र का घर तो देखिये। इसकी शोभा का मैं क्या वर्णन करूँ? इसका वर्णन तो करोड़ों ब्रह्मा हजारों जिह्वाओं से भी नहीं कर सकते। यह बात सत्य मान कर मरुदेवीजी अपनी

आँखें हाथ से मलने लगीं। इससे पडल दूर हो गये और उन्होंने समवसरण के दर्शन किये।

वहाँ अनेक देव-देवियों को देख कर उन्होंने मन में विचार किया कि देखो तो सही, यह मोह की विकलता कैसी है। मैं तो ऐसा जानती थी कि मेरा पुत्र दुःखी है, पर यह तो बहुत ही सुख में मस्त है। मैं तो रो रो कर अंधी हो गयी, मेरी आँखों पर पडल आ गये, पर इसने तो मुझे याद तक नहीं किया। ऋषभ ऋषभ करते मेरी तो जीभ सूख गयी। मैं भरत को हमेशा उपालंभ देती थी कि मेरा पुत्र भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी तथा बरसात आदि की पीड़ा सहन करता है तथा उपानह (पगरखी) और वाहनरहित अकेला पहाड़, वन तथा अटवियों में भ्रमण करता है, उसे तू मना कर ले आ और यह तो मेरे दुःख को कुछ भी नहीं जानता तथा मुझसे सुखवार्ता भी नहीं पूछता। यह यहाँ आया तो सही, पर इसने मुझे संदेश तक नहीं भेजा। धिक्कार है ऐसे मोह को! तो अब मुझे भी पुत्र से क्या काम है? मैं कौन और यह पुत्र कौन? संसार में कोई किसी का नहीं है। सब स्वार्थी हैं। अरे! मेरे पुत्र ने मुझे इतना भी नहीं बताया कि मैं सुखी हूँ, मेरी चिन्ता मत करना। पर यह क्यों कहे? यह तो निरागी है। इसे किसी पर राग रहा नहीं है, पर मैं तो सरागी हूँ, इसलिए मुझे ऐसे विकल्प हों, तो इसमें कोई सन्देह नहीं है। तो अब मुझे भी ऐसे निरागी के साथ क्या प्रतिबंध रखना है? इस इकतरफा स्नेह को धिक्कार हो। इत्यादिक चिन्तवन कर के सब पदार्थों से ममत्वरहित हो कर श्री मरुदेवी माता ने शुभध्यान में अन्यत्व भावना भाते हुए केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तकृत् केवली हो कर उसी समय में श्री ऋषभदेव प्रभु से पहले मोक्ष प्राप्त किया। कवीश्वर कहते हैं कि-

पुत्रो युगादीशसमो न विश्वे, भ्रान्त्वा क्षितौ येन शरत्सहस्रम्।
यदर्जितं केवलरत्नमग्रं, स्नेहात्तदेवार्पित मातुराहुः।।१।।
मरुदेवीसमा नास्ति,याऽगात्पूर्वं किलेक्षितुम्।
मुक्तिकन्यां तनुजार्थं, शिवमार्गमपि स्फुटम्।।२।।

श्री युगादिदेव के समान पुत्र विश्व में अन्य कोई हुआ नहीं है और

होगा भी नहीं कि जिसने एक हजार वर्ष तक पृथ्वी पर भ्रमण कर के और अनेक कष्ट सहन कर के कमाया हुआ अमूल्य केवलज्ञानरूप महारत्न परम स्नेह से प्रथम अपनी माता को दिया।

इसी प्रकार मरुदेवी के समान कोई माता भी न तो हुई है और न ही होगी, क्योंकि जो पुत्र के विवाह के लिए मुक्तिकन्या देखने के लिए पहले से ही वहाँ चली गयी। इस तरह इस अवसर्पिणी काल में सबसे पहले श्री मरुदेवीजी मोक्ष गयीं। इन्द्रादिकों ने उनके शरीर का संस्कार कर के उसे क्षीरसमुद्र में विसर्जित किया।

फिर इन्द्र के वचन से शोक दूर कर के बावड़ी में स्नान कर के भरत महाराजा ने हर्षशोकाकुल होते हुए समवसरण में जा कर भगवान को वन्दन किया। इस तरह सबसे प्रथम केवली नाम प्रचलित हुआ।

श्री चतुर्विध संघ की स्थापना

भरत महाराज श्री ऋषभदेवस्वामी को नमस्कार कर के पर्षदा में बैठे। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। उस प्रथम देशना में ऋषभसेनप्रमुख पाँच सौ भरत के पुत्र तथा सात सौ भरत के पौत्र इस प्रकार कुल बारह सौ कुमारों ने दीक्षा ली। इन बारह सौ कुमारों में मरीचि भी साथ में जानना। भगवान ने वहाँ पुंडरीकादिक चौरासी गणधरों की स्थापना की। ब्राह्मी ने बाहुबली से पूछ कर दीक्षा ली। वह प्रथम साध्वी हुई और भरत महाराज प्रथम श्रावक हुए। सुन्दरी भी दीक्षा लेना चाहती थी, पर उसे अत्यन्त स्वरूपवान जान कर भरत ने स्त्रीरत्न के रूप में स्थापन करने की इच्छा से दीक्षा लेने की आज्ञा नहीं दी। इसलिए वह श्राविका हुई। इस तरह साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चतुर्विध संघ की स्थापना और धर्म की प्ररूपणा कर के भगवान ने प्रथम तीर्थंकर नाम धारण किया। जिस वृक्ष के नीचे प्रभु को केवलज्ञान हुआ, उसका नाम प्रयागवड प्रसिद्ध हुआ। उस वृक्ष की लोगों में पूजा शुरु हुई। आज भी वह प्रयागवड के नाम से पूजा जाता है। कच्छ और महाकच्छ ये दोनों तो तापस ही बने रहे। अन्य सब भद्रं परिणामी

तापसों ने भगवान के पास आ कर पुनः दीक्षा ली। भरत महाराज प्रभु को वन्दन कर के पुनः अयोध्या लौटे और श्री ऋषभदेव प्रभु ने अनेक जीवों के कल्याण के लिए अन्यत्र विहार किया।

भरत की षट्खंड विजय और सुन्दरी तथा अठानबे भाइयों की दीक्षा

भरतराजा ने अपने भवन में आ कर चक्ररत्न का अट्ठाई महोत्सव किया। फिर छह खंड पृथ्वी जीतने के लिए भरत महाराज सेना ले कर रवाना हुए। उनके आगे हजार देवताधिष्ठित चक्ररत्न चला। वह जितने योजन दूर जाता, उतने योजन तक सेना भी चलती। अनुक्रम से तमिस्रा गुफा के पास जा कर भरत ने डेरा डाला। वहाँ नित नयी रीति से और नये-नये वेश से भरत ने गंगादेवी के साथ विषयसुख भोगा। फिर गंगादेवी ने मार्ग दिया। तब तमिस्रा गुफा के मार्ग से आगे बढ़ कर म्लेच्छ देशों पर विजय प्राप्त की। इस तरह षट्खंड जीत कर साठ हजार वर्ष के बाद भरतजी पुनः अयोध्या लौटे। नमि विद्याधर के घर नया स्त्रीरत्न उत्पन्न हुआ। उसके साथ भरतजी ने विवाह किया। सुन्दरी ने भी साठ हजार वर्ष तक आयंबिल तप किया। इससे वह दुर्बल हो गयी।

जब भरतजी का आगमन हुआ, तब सुन्दरी ने उन्हें मोतियों से बधाया। सुन्दरी को दुर्बल देख कर भरतजी क्रोधित हुए। उन्होंने लोगों से पूछा कि तुम लोगों ने सुन्दरी की सार-सम्हाल क्यों नहीं ली? तब लोगों ने कहा कि इसने आयंबिल तप किया है, जिससे यह दुर्बल हो गयी है। फिर भरतजी ने उसे संयम लेने की आज्ञा दी। इस तरह सुन्दरी भी दीक्षा ले कर साध्वी बनी।

अब भरतजी अयोध्या में सुखपूर्वक रहने लगे। इतने में आयुधशाला के अधिष्ठायक पुरुष ने आ कर भरतजी से कहा कि हे स्वामिन्! चक्ररत्न आयुधशाला में प्रवेश नहीं कर रहा है। भरत के कारण पूछने पर अधिकारी ने बताया कि आपके भाई अभी तक आपकी आज्ञा में नहीं हैं, इसलिए चक्ररत्न आयुधशाला में प्रवेश नहीं कर रहा है। तब भरत ने अपने सब

भाइयों के पास दूत भेज कर कहलवाया कि यदि तुम राज करना चाहते हो, तो मेरी आज्ञा में रहो और मेरी सेवा करो, अन्यथा राज्य का त्याग करो। यह सुन कर अठानबे भाइयों ने सोचा कि हमें राज्य तो पिताजी ने दिया है, फिर हम भरत की सेवा क्यों करें? यह सोच कर वे भगवान के पास आये। भगवान ने उन्हें अंगारे बनाने वाले का दृष्टान्त दे कर सूत्रकृतांग सूत्र का वेतालिय अध्ययन सुनाया। इससे प्रतिबोध प्राप्त कर सब भाइयों ने दीक्षा ग्रहण की और वे भगवान के शिष्य हुए।

भरत-बाहुबली का युद्ध और बाहुबली की दीक्षा तथा केवलज्ञान

मुख्य अधिकारी पुरुष ने भरत से विनती की कि हे स्वामिन्! आपके अठानबे भाइयों ने दीक्षा ग्रहण कर ली है, तो भी चक्ररत्न आयुधशाला में प्रवेश नहीं कर रहा है। तब मंत्रीश्वर ने कहा कि हे स्वामिन्! अन्य तो सब आपकी आज्ञा मानते हैं, पर महा अभिमानी बाहुबली आपकी आज्ञा नहीं मानते। वे अपनी भुजा के बल का पराक्रम बहुत दिखाते हैं। इसलिए उन्हें मूल से उखाड़ देना चाहिये। यह एक ऐसा महारोग है, जो आपके लिए व्याधि उत्पन्न कर रहा है।

यह सुन कर भरतराजा ने अपने सुवेग नामक दूत को सब बात समझा कर बाहुबली के पास भेजा। उस दूत के रवाना होते समय पीछे छींक हुई, वस्त्र काँटों में उलझ गया, रथ का पिंजन टूट गया, दाहिनी ओर गधे की आवाज हुई इत्यादिक अनेक अपशकुन मार्ग में हुए, तो भी वह अनेक वन, अटवी और पहाड़प्रमुख पार कर बाहुबली के देश में जा पहुँचा। उसे मार्ग की धूल से भरा देख कर ग्वालिनों और पनिहारिनों ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? और तुम्हारा स्वामी कौन है? तब दूत ने कहा कि मैं भरतराजा का दूत हूँ। यह सुन कर उन्होंने कहा कि भरत क्या होता है? हमारे पहनने की कंचुली में जो कशीदाकारी करते हैं, वह भरत या बर्तन पर किया जाने वाला भरत या रोग से संबंधित भरत? ये तीन भरत तो हम जानती हैं, पर इन तीन के अलावा और कोई भरत है, यह तो हमने

सुना भी नहीं है। यह सुन कर दूत को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि यह बाहुबली का राज्य और उसकी प्रजा भी बड़ी जबरदस्त है।

ऐसी बातें सुनते हुए और सोचते हुए वह तक्षशिला नगरी के निकट पहुँचा। वहाँ दरवाजे पर द्वारपाल ने रोका। बाहुबली की आज्ञा आने पर नगर में प्रवेश कर वह राज्यसभा में गया। बाहुबली ने आसन पर बिठा कर उससे पूछा कि हे दूत! क्या भरत अपने सवा करोड़ पुत्रादिकों सहित सकुशल है? इस पर दूत ने कहा कि हे राजन्! लाखों देव जिसकी सेवा में तत्पर हैं, उसे कुशल क्यों न हो? उसे तो कुशल ही है। पर आप उसकी सेवा में उपस्थित नहीं हुए, इसलिए वे यह सब निष्फल मानते हैं। अतः आप भरत महाराज के पास पधारिये और इतने दिन तक न आने के अपराध की क्षमायाचना कीजिये। वे भी आपके बड़े भाई हैं और आपके पिता के स्थान पर हैं। वे आपका सब अपराध माफ कर देंगे। अनेक राजा उनकी सेवा कर रहे हैं। वे आपके लिए तो अवश्य पूज्य ही हैं।

दूत के ये वचन सुन कर बाहुबली उन वचनों का परमार्थ जान गये। उन्होंने भौंहें तान कर आँखें तरेर कर के कहा कि अरे दूत! तू मारने योग्य नहीं है, इसलिए मैं तुझे नहीं मारता। पर छोटे अठानबे भाइयों के राज्य तो उसने ले लिये और अब मेरा भी राज्य लेना चाहता है। इससे भाई का स्नेह तो मैं जान गया। अब तू उससे कहना कि बचपन में जब अपन दोनों खेलते थे, तब मैं तुझे उछाल कर गेंद की तरह मेरे हाथ में ले लेता था। वे दिन क्या तू भूल गया है। मैं तो वह का वही हूँ। मेरे द्वारा सेवा कराने की इच्छा रखना मौत को आमंत्रण देने जैसा समझना।

इस पर दूत ने कहा कि हे राजन्! यदि दो दिन सुखपूर्वक जीने की आपकी इच्छा हो और अपने परिवार के साथ आपका प्रयोजन हो, तो आप उनकी सेवा कीजिये। यह मैं आपसे सच सच कहता हूँ। यह सुनते ही क्रोधित हो कर बाहुबली ने धक्के मार कर दूत को बाहर निकाल दिया। दूत भी पिछले दरवाजे से निकल कर अपनी जान बचा कर भाग गया। फिर अयोध्या पहुँच कर भरतराजा के आगे उसने बढ़ा-चढ़ा कर सब बातें

कह सुनायीं।

तब भरत ने भी रणभेरी बजवायी। फिर श्री ऋषभदेवजी की पूजा कर के वज्रबख्तर पहन कर हाथी पर सवार हो कर चतुरंगिणी सेना साथ ले कर भरतजी युद्ध के लिए रवाना हुए। उनके पीछे उनके सवा करोड़ पुत्र तथा अनेक पौत्र भी चले। साथ में चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ, छियानबे करोड़ पायदल, सोलह लाख रणतूरवादक, दस करोड़ ध्वजाएँ, चौदह हजार महामंत्रीश्वर, अठारह करोड़ बड़े बड़े अश्व, पचास करोड़ मशालची, चौरासी लाख महानिशान, नौ निधान, चौदह रत्न, सोलह हजार यक्ष, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा, वारांगनासहित चौसठ हजार अन्तःपुर और बत्तीस हजार नाटक तथा अन्य भी बहुत से विद्याधर, यक्ष, किन्नरादिक अनेक प्रकार का परिवार चला। भरत ने रणपट्ट मस्तक पर बँधवा कर सुषेण नामक सेनाधिपति को आगे किया। अनुक्रम से बहुली देश की सीमा में जा कर सेना ने छावनी डाली।

बाहुबली भी भरत का आगमन सुन कर श्री ऋषभदेवजी की पूजा कर के वज्रबख़्तर पहन कर सारे संसार को तृण के समान मानते हुए भद्र नामक हाथी पर बैठ कर युद्ध के लिए रवाना हुए। उनके पीछे तीन लाख पुत्र तथा पौत्र, बारह हजार राजा तथा अनेक विद्याधर, अनेक योद्धा, हाथी, घोड़े, रथ, पायकप्रमुख सहित चले। बाहुबली ने अपने पुत्र सिंहरथ को सेनापति बना कर सबसे आगे चलाया। वह भी जा कर भरत की सेना से मिला।

दोनों सेनाएँ एकत्रित हो जाने से धरती काँपने लगी, समुद्र चलायमान हो गया और पर्वत के शिखर टूट कर गिर पड़े। भरत की सेना में सोलह लाख और बाहुबली की सेना में भी लाखों रणतूर बजने लगे तथा बन्दीजन बिरुदावली बोलने लगे। दोनों सेनाओं का आपस में युद्ध शुरु हुआ। हाथी से हाथी, अश्व से अश्व, विद्याधर से विद्याधर और पैदल से पैदल सैनिक लड़ने लगे।

इतने में सुषेण नामक सेनापति ने अपने सामने सिंहरथ को आते देख कर कहा कि मैं तो भरत का चाकर हूँ और तुम बाहुबली के पुत्र होने से

मेरे स्वामी हो, इसलिए तुम पहले मुझ पर शस्त्र चलाओ। यह सुन कर सिंहरथ ने सुषेण पर शस्त्र से वार किया, तब सुषेण सेनापति ने खड्ग चलाया। मार्ग में सिंहरथ के भाई सिंहकेतु ने वह खड्ग गिरा दिया। इससे सुषेण को बहुत क्रोध आया। वह बाहुबली की सेना का मथन कर बाहुबली के पास जा पहुँचा। इतने में अनिलवेग विद्याधर वहाँ आ गया। वह बाहुबली को नमस्कार कर सुषेण के साथ लड़ने लगा। वे दोनों जन मल्ल की तरह परस्पर मुक्कों से और लट्ठों से युद्ध करने लगे। उस समय सुषेण खड्ग ले कर सिंहरथ को मारने के लिए आगे बढ़ा। इतने में सूर्यास्त हो गया।

उनके संग्राम में यह मर्यादा थी कि यदि कोई ऋषभदेवजी की शपथ दे तो नहीं लड़ना, सूर्यास्त होने के बाद नहीं लड़ना और मेघ बरसता हो, तब नहीं लड़ना। संध्या होने के पूर्व जो मर गये, उनका तो कोई इलाज नहीं, पर जो अर्द्धमृत हुए हों, उन्हें भरतजी अपने काकिणीरत्न के जल से और बाहुबली सोमयश के हृदयाभरणों के जल से ठीक कर देते थे। ऐसी उनकी मर्यादा थी।

पुनः दूसरे दिन प्रभातकाल में युद्ध शुरु हुआ। सुषेण सेनापति अनिलवेग को देख कर आग के समान जलने लगा। वह अनिलवेग को मारने के लिए आगे बढ़ा। इतने में सिंहरथ बीच में आ गया और सुषेण के साथ लड़ने लगा। तब अनिलवेग ने भरतराजा की सारी सेना को पार कर जहाँ भरतजी हाथियों के तीन गढ़ बना कर लेटे हुए थे, वहाँ जा कर हाथियों को कंकड़ की तरह उछाल दिया। फिर महाविकराल रूप धारण कर सेना का मथन करते हुए भरत के पास जा पहुँचा।

तब भरत ने यह जान लिया कि यह विद्याधर दुर्द्धर है। यह मेरा ध्यान चुका देगा। यह न हो तो ही अच्छा है। यह सोच कर उन्होंने उस पर चक्ररत्न छोड़ा। चक्र देख कर अनिलवेग वहाँ से भागा। वह जहाँ जाता, वहीं चक्र उसके पीछे जाता। तब अनिलवेग वज्रपंजर बना कर छह महीने तक लवणसमुद्र में बैठ गया, पर चक्र उसके सिर पर घूमता ही रहा। छह

महीने बाद जब उसने समुद्र में से गरदन बाहर निकाली, तब चक्र ने उसकी गरदन काट डाली।

भरतपुत्र सूर्ययश बाहुबली की सेना पार कर बाहुबली के पास जा पहुँचा। उसने बाहुबली से कहा कि मुझ पर शस्त्र चलाओ। तब बाहुबली ने हँस कर कहा कि अरे! तू इक्ष्वाकुवंश में बड़ा पराक्रमी है, पर यदि मैं तुझे एक मुक्का मारूँगा, तो तेरा चूर्ण हो जायेगा। इसलिए दूर ही रह। फिर देवों ने उससे कहा कि अरे मूर्ख! बाहुबली के साथ तू क्यों लड़ने आया है? नाहक मारा जायेगा। इसलिए चला जा। तब वह वहाँ से चला गया।

इस तरह बारह वर्ष तक युद्ध जारी रहा। करोड़ों लोग मर गये। खून की नदियाँ बहने लगीं, पर कोई हारा नहीं। तब बहुत बड़ा अनर्थ होते देख कर सौधर्मेन्द्र और चमरेन्द्र ने भरत के पास आ कर कहा कि भगवान तो लोगों का पालन-पोषण कर के गये और तुम लोगों का नाश करने के लिए तैयार हुए हो। ऐसा क्यों? तब भरत ने कहा कि जब तक बाहुबली मेरी आज्ञा न माने, तब तक चक्र आयुधशाला में प्रवेश नहीं करता। बताइये अब मैं क्या करूँ? यह सुन कर इन्द्र ने कहा कि तुम दोनों भाई परस्पर एक-दूसरे के साथ युद्ध करो, पर अन्य लोगों का नाश मत होने दो। भरत ने यह बात कबूल की। फिर वे दोनों इन्द्र बाहुबली के पास गये और कहा कि इस तरह युद्ध में लोगों का नाश करना ठीक नहीं हैं। इसलिए तुम दोनों भाई ही आपस में युद्ध करो। बाहुबली ने भी उनकी बात मान्य की।

फिर इन्द्रों ने मिल कर एक दृष्टियुद्ध, दूसरा वाक्युद्ध, तीसरा बाहुयुद्ध, चौथा मुष्टियुद्ध और पाँचवाँ दंडयुद्ध ये पाँच युद्ध करने का प्रस्ताव किया और दोनों सेनाओं को श्री आदिनाथजी की शपथ दे कर दूर किया। फिर पानी छिड़का कर फूल बिछा कर भूमि शुद्ध कर के मुकुट, टोप, बख्तर, पहन कर दोनों भाई आमने-सामने लड़ने के लिए खड़े हुए। उनका युद्ध देवता आकाश में साक्षीधर हो कर देख रहे थे।

प्रथम भरत और बाहुबली दोनों भाई आँखें निकाल कर एक-दूसरे के सम्मुख आये। पलक झपकाये बिना वे आपस में एक-दूसरे को देखते रहे।

महापराक्रमी शूरवीर होने पर भी जैसे सूर्य की ओर देखने से आँखों में पानी आ जाता है, वैसे ही भरतराजा की आँखों में पानी आ गया। यह देख कर देव फूल बरसा कर बोले कि बाहुबली जीते, भरत हारे। यह प्रथम युद्ध।

फिर भरत ने सिंहनाद किया, जिससे पर्वत कंपायमान हो गये और जब बाहुबली ने सिंहनाद किया, तब ब्रह्मांड फूटने जैसा शब्द हुआ, जिससे भरत ने अपने कान ढँक लिये। यह देख कर देवों ने कहा कि बाहुबली जीते, भरत हारे। यह दूसरा युद्ध।

फिर बाहुयुद्ध में प्रथम भरतराजा ने हाथ लम्बा किया। उसे बाहुबली ने कमलनाल की तरह झुका दिया और जब बाहुबली ने अपनी बाँह लम्बी की, तब भरतराजा उसे झुकाने लगे, पर वह बिल्कुल नहीं झुकी, यहाँ तक कि भरतराजा उस पर झूले की तरह लटक गये। यह देख कर देवों ने कहा कि बाहुबली जीते, भरत हारे। यह तीसरा युद्ध।

फिर वे दोनों मुष्टियुद्ध करने लगे। उसमें सर्वप्रथम दोनों भाई मल्लों की तरह भुजास्फोट करते हुए एक-दूसरे से मिले। फिर भरत ने बाहुबली पर मुष्टिप्रहार किया। इससे बाहुबली की आँखें कुछ समय के लिए बन्द हो गयीं। फिर बाहुबली ने गेन्द की तरह भरत को उठा कर आकाश में उछाल दिया, पर पुनः अनुकंपा कर के अपने हाथ में झेल लिया। फिर उन पर मुष्टिप्रहार किया। इससे भरतजी जमीन में पैठ गये। यह देख कर देवों ने कहा कि बाहुबली जीते, भरत हारे। यह चौथा युद्ध

फिर वे पाँचवाँ दंडयुद्ध करने लगे। उसमें प्रथम भरत महाराज ने लोहदंड ले कर बाहुबली पर प्रहार किया। इससे बाहुबली का मुकुट मिट्टी के घड़े की तरह चूर्ण हो गया और बाहुबली घुटनों तक जमीन में धँस गये। फिर जमीन में से बाहर निकल कर बाहुबली ने लोहदंड से प्रहार किया। इससे भरत का मुकुट चूर्ण हो गया और उनका सम्पूर्ण शरीर धरती में प्रवेश कर गया। यह देख कर देवों ने कहा कि इस युद्ध में भी बाहुबली जीते और भरत हार गये। यह पाँचवाँ युद्ध।

इन पाँचों युद्धों में भरतजी हार गये। फिर वे चिन्तातुर हो कर सोचने

लगे कि यह तो मेरा राज्य ले लेगा। क्या यह कोई चक्रवर्ती हुआ है? यह सोच कर उन्होंने अपने हाथ में चक्र ले कर अपनी प्रतिज्ञा का भंग कर, उसे घुमा कर बाहुबली पर छोड़ा। पर अपने गोत्र में चक्र चलता नहीं है। इस कारण से वह चक्र बाहुबली को तीन प्रदक्षिणा दे कर पुनः भरत के हाथ में आ गया। इस तरह भरत ने अपनी प्रतिज्ञा का भंग किया, तब बाहुबली को बहुत गुस्सा आया। वे मुक्का तान कर भरत को मारने दौड़े। तब देवों ने कहा कि आप थोड़ा विचार कीजिये। यह सुन कर बाहुबली ने सोचा कि धिक्कार है इस राज्य को, जिसके कारण से मेरे मन में बड़े भाई को मारने का विचार हुआ। इस तरह वैराग्य प्राप्त कर बाहुबली ने भरत को मारने के लिए जो मुट्ठी उठायी थी, उसी मुट्ठी से अपने मस्तक का लोच कर के दीक्षा ग्रहण की। देवों ने उस समय पुष्पवर्षा की। फिर बाहुबलीजी ने वहाँ से विहार किया। बाहुबलीजी के चले जाने से भरतराजा विलाप करने लगे कि मेरे सब भाई दीक्षा ले कर जाते रहे। फिर बाहुबली के पुत्र सोमयश को तक्षशिला का राज्य सौंप कर भरतराजा अयोध्या नगरी में आये।

विहार के दौरान बाहुबली के मन में विचार आया कि मेरे छोटे अठानबे भाइयों ने श्री ऋषभदेवजी के पास पहले दीक्षा ली है और वे केवली हुए हैं, इसलिए यदि अब मैं भगवान के समवसरण में जाऊँगा, तो छोटे भाइयों को वन्दन करना पड़ेगा। इसलिए मैं यहीं काउस्सग्ग में रह कर केवलज्ञान प्राप्त कर के फिर भगवान के पास जाऊँगा। यह सोच कर मन में अभिमान धारण कर के वे वहीं काउस्सग्ग ध्यान में खड़े रहे।

इस तरह एक वर्ष बीत गया। बाहुबलीजी के सिर पर बेलें चढ़ गईं। उन्हें प्रतिबोध देने के लिए श्री ऋषभदेवस्वामी ने ब्राह्मी और सुन्दरी इन दोनों साध्वियों को भेजा। उन्होंने वहाँ जा कर बाहुबली से कहा कि हे वीर! हे भाई! तुम हाथी से नीचे उतर जाओ। हाथी पर सवार होने से केवलज्ञान नहीं होगा। उनके ये बोल सुनते ही बाहुबली ने सोचा कि ये साध्वियाँ कभी झूठ तो नहीं बोलेंगीं और हाथी तो मेरे पास नहीं है। पर हाँ, अहंकाररूप हाथी पर मैं सवार हूँ। यह सोच कर अभिमान का त्याग कर उन्होंने

भगवान के पास जाने के लिए ज्यों ही कदम बढ़ाया, त्यों ही उन्हें तुरन्त केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। फिर वे केवलियों की पर्षदा में जा कर बिराजमान हुए।

ब्रह्मभोजन और यज्ञोपवीत की प्रवृत्ति

एक दिन भगवान का अष्टापद पर्वत पर समवसरण हुआ। उस समय भरत महाराजा ने सोचा कि मुझसे अन्य तो कुछ नहीं होता, पर इन सब साधु-मुनिराजों को आहार वहोराऊँ, तो अवश्य कुछ लाभ मिलेगा। यह सोच कर पाँच सौ गाड़ियों में सुखड़ी भर कर वे अपने साथ ले गये। फिर उन्होंने भगवान से निवेदन किया कि हे स्वामिन्! आज के दिन इन सब साधुओं को आहार कराने का आदेश मेरे घर हो जाये, तो बहुत अच्छा होगा। तब भगवान ने कहा कि आधाकर्मिक राजपिंड साधुओं को लेना कल्पता नहीं है, इसी प्रकार सामने लाया हुआ आहार भी साधुओं को कल्पता नहीं है। यह सुन कर, भरतराजा ने जान लिया कि मैं तो सब प्रकार से भक्तिरहित हुआ। इस तरह वे चिन्ता करने लगे।

यह देख कर इन्द्र महाराज ने पूछा कि हे प्रभो! अवग्रह कितने हैं? तब भगवान ने कहा कि अवग्रह पाँच हैं। उनमें एक इन्द्र का अवग्रह, दूसरा राजेन्द्र का अवग्रह, तीसरा गृहपति का अवग्रह, चौथा सागारिक का अवग्रह और पाँचवाँ साधर्मिक का अवग्रह। ये पाँच अवग्रह जानने चाहिये। यह सुन कर इन्द्र ने कहा कि मैं आपके सब साधुओं को मेरे सब क्षेत्रों में सुखपूर्वक विचरने की आज्ञा देता हूँ। तब भरत महाराज ने कहा कि मैं भी मेरी छह खंड पृथ्वी पर आपके सब साधुओं को विचरने की आज्ञा देता हूँ। ऐसा कहने से भरत को बहुत सन्तोष हुआ।

फिर भरत ने इन्द्र से पूछा कि इस आहार का अब क्या किया जाये? तब इन्द्र ने कहा कि जो तुमसे अधिक गुणवान हों, उन्हें यह आहार खिला दो। फिर भरत ने वह आहार श्रावकों को जीमाया। इसके बाद भरत महाराजा सदा सर्वदा श्रावकों को जीमाने लगे। कुछ काल बाद जब जीमने

वाले अधिक हो गये, तब उनकी परीक्षा कर के पहचान के लिए हर श्रावक के शरीर पर काकिणीरत्न से देव, गुरु और धर्मरूप तीन तत्त्वों की प्रतीक तीन रेखाएँ खींचीं। फिर उन श्रावक ब्राह्मणों के स्वाध्याय के लिए भरतजी ने श्री ऋषभदेवस्वामी की स्तुतिगर्भित १. संसारदर्शन, २. संस्थापन परामर्शन, ३. तत्त्वावबोध और ४. विद्याप्रबोध इन चार वेदों की रचना की। तब से ब्रह्मभोज और जनेऊ पहनाने की प्रथा चली।

एक बार भरतराजा ने इन्द्र महाराज से पूछा कि आपका वास्तविक रूप कैसा है? तब इन्द्र ने उन्हें एक उँगली बताई। उसे महाज्वाला-मालाकुल देख कर भरत चमत्कृत हुए। इस कारण से प्रतिवर्ष इन्द्रमहोत्सव शुरु हुआ।

भरत चक्रवर्ती का निर्वाण

एक बार भगवान विहार करते-करते विनीता नगरी पहुँचे। भरतजी उन्हें वन्दन करने के लिए गये। भगवान ने अपनी देशना में संसार की अनित्यता प्रकट की। जीव कर्म के भार से तूँबा के दृष्टान्त से संसार में डूबता है। जैसे तूँबे पर मिट्टी का लेप कर के उसे पानी में छोड़ें तो वह नीचे चला जाता है, वैसे ही आठ कर्मों के बोझ से भारी हो कर जीव इस संसारसमुद्र में नीचे ही नीचे जाता है। भगवान की यह वाणी सुन कर भरतजी को वैराग्य हुआ। वे ज्ञानदशा में लयलीन हो गये। इस तरह अनुक्रम से एक बार भरत महाराजा आरीसाभवन में बैठे थे, तब अनित्यभावना में लीन होते हुए उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। फिर देहत्याग के पश्चात् वे मोक्ष गये।

उनके पाट पर आदित्ययशा राजा हुए। उन्होंने सोने का जनेऊ कर के श्रावकों को जीमाया। उनके पाट पर महायशा राजा हुए। उन्होंने रौप्य का जनेऊ कर के श्रावकों को जीमाया। ऐसे आठ पाट तक श्रावकों को भोजन कराया गया। उनमें से कितने ही राजाओं ने सूत्र का जनेऊ कर के भी भोजन कराया है। फिर ये जनेऊ पहनने वाले सब ब्राह्मण कहलाये।

आठवें तीर्थंकर के तीर्थ-विच्छेद के पश्चात् उन श्रावक ब्राह्मणों ने लोभ-लालच में पड़ कर और धर्मभ्रष्ट हो कर भरतरचित वेदों में परिवर्तन किया और उनमें स्वार्थलोलुपता के पाठ जोड़ कर ऋक् १, यजु २, साम ३ और अथर्व ४, ये कल्पित वेद बनाये।

भरत के पाट पर आदित्ययशा, उनके पाट पर महायशा, उनके पाट पर अभिबल, उनके पाट पर बलभद्र, उनके पाट पर बलवीर्य, उनके पाट पर कीर्तिवीर्य, उनके पाट पर जलवीर्य और उनके पाट पर दंडवीर्य, इन आठ राजाओं ने भगवान का मुकुट पहना। ये आठों राजा आरीसाभवन में केवली हो कर मोक्ष गये।

श्री ऋषभदेव प्रभु का परिवार और निर्वाण

भगवान श्री ऋषभदेवजी ने एक लाख पूर्व तक विचर कर अनेक जीवों को प्रतिबोध दिया। उनके ऋषभसेनप्रमुख चौरासी गणधर हुए, चौरासी गच्छ हुए तथा उन्हें ऋषभसेनप्रमुख चौरासी हजार साधुओं की उत्कृष्टी सम्पदा हुई। उन्हें ब्राह्मी और सुन्दरीप्रमुख तीन लाख साध्वियों की उत्कृष्टी सम्पदा हुई, श्रेयांसप्रमुख तीन लाख पाँच हजार श्रावकों की तथा सुभद्राप्रमुख पाँच लाख चौवन हजार श्राविकाओं की उत्कृष्टी सम्पदा हुई।

चार हजार सात सौ पचास चौदह पूर्वधर जो केवली तो नहीं पर केवलीसरीखे थे, ऐसे साधुओं की भगवान को उत्कृष्टी सम्पदा हुई। उन्हें नौ हजार अवधिज्ञानियों की, बीस हजार केवलज्ञानियों की तथा बीस हजार छह सौ वैक्रिय लब्धिवान साधुओं की उत्कृष्टी सम्पदा हुई। श्री ऋषभदेव अरिहन्त के ढाई द्वीप में संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ता जीवों के मन के परिणामों को जानने वाले बारह हजार छह सौ पचास विपुलमति मनःपर्यवज्ञान के धारक साधुओं की तथा बारह हजार छह सौ पचास वादी साधुओं की सम्पदा हुई। भगवान के बीस हजार साधु सिद्ध हुए तथा चालीस हजार साध्वियाँ सिद्ध हुईं। श्री ऋषभदेव अरिहन्त कौशलिक के बाईस हजार नौ सौ साधु अनुत्तर विमान में गये याने कि एकावतारी हुए।

श्री ऋषभदेव अरिहन्त के दो प्रकार से अन्तकृत् भूमि हुई। उसमें असंख्यात पाट तक मोक्ष मार्ग चलता रहा, उसे युगान्तकृत् भूमि कहते हैं तथा भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त्त बाद मरुदेवी माता मोक्ष गयी। इसे पर्यायान्तकृत् भूमि कहते हैं।

उस काल में उस समय में श्री ऋषभदेव अरिहन्त बीस लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहे और तिरसठ लाख पूर्व तक राज्यावस्था में रहे। इस तरह तिरासी लाख पूर्व[1] तक वे गृहवास में रहे, एक हजार वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहे तथा एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक केवलपर्याय में रहे। इस तरह सम्पूर्ण एक लाख पूर्व तक साधुपना पाल कर भवोपग्राही चार कर्मों का क्षय कर के, इस अवसर्पिणी का सुखमदुखमा नामक तीसरा आरा बहुत बीत गया, शेष तीन वर्ष साढ़े आठ महीने रहे तब, शीतकाल का तीसरा महीना पाँचवाँ पखवाड़ा माघ वदि तेरस के दिन अष्टापद पर्वत पर दस हजार साधुओं के साथ चौदह भत्त याने छह उपवास पानीरहित करते हुए अभीजित् नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, प्रथम प्रहर के बाद दोपहर के समय पालथी मार कर बैठने के आसन में रहते हुए भगवान कालगत हुए। यावत् सब दुःखों से रहित हुए।

शक्रादि इन्द्रकृत अग्निसंस्कारोत्सव

उस अवसर पर शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। तब वह अश्रुपूरित आँखों से अष्टापद पर आया। वहाँ आ कर भगवान को तीन प्रदक्षिणा दे कर वह नमस्कार कर के योग्य स्थान पर बैठ गया। अन्य भी इन्द्र वहाँ आ कर बैठे। फिर शक्रेन्द्र ने देवों को भेज कर नन्दनवन से चन्दन मँगवाया। फिर तीन चिताएँ बनवायीं। एक भगवान के शरीर के लिए, दूसरी गणधरों के शरीर के लिए और तीसरी सब साधुओं के शरीर के लिए। आभियोगिक देवों के द्वारा क्षीरसमुद्र का जल मँगवा कर शक्रेन्द्र ने भगवान के शरीर को स्नान कराया और सब वस्त्राभूषणप्रमुख पहनाये।

---

१. सत्तर लाख करोड़ वर्ष और छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व होता है।

फिर तीन पालकियाँ बनवायीं। एक पालकी में भगवान का शरीर, दूसरी में गणधरों के शरीर और तीसरी में मुनियों के शरीर रख कर उन्हें चिता के पास ले गये। शक्रेन्द्र ने भगवान का शरीर पालकी से निकाल कर चिता पर रखा तथा अन्य देवों ने अन्य गणधरादिकों के शरीर पालकी से उतार कर चिता पर रखे। फिर शक्रेन्द्र के आदेश से अग्निकुमारदेव मन में उदास होते हुए चिता में अग्नि जलाने लगे तथा वायुकुमारदेव भी मन में उदास होते हुए वायु बहाने लगे। अन्य देव भी चिता में घृतप्रमुख सींचने लगे।

फिर जब हड्डियाँ मात्र शेष रहीं और शरीर के अन्य सब भाग जल कर भस्म हो गये, तब मेघकुमारदेवों ने जल बरसा कर सब चिताएँ बुझा दीं। फिर शक्रेन्द्र ने भगवान की ऊपर की दाहिनी ओर की दाढ़ें लीं और ईशानेन्द्र ने ऊपर की बायीं ओर की दाढ़ें लीं। इसी प्रकार चमरेन्द्र ने नीचे की दाहिनी ओर की दाढ़ें लीं और बलेन्द्र ने नीचे की बायीं ओर की दाढ़ें लीं। फिर अन्य देवों में से कइयों ने जिनभक्ति के वश हो कर, कइयों ने अपना आचार मान कर और कइयों ने धर्म मान कर परमेश्वर के अंगोपांगों की सब हड्डियाँ ले लीं। फिर भगवान का जिस स्थान पर अग्निसंस्कार किया गया था, उस स्थान पर शक्रेन्द्र ने रत्नों के तीन पीठ बनवाये।

यह सब कर के सब देव नन्दीश्वरद्वीप में गये। वहाँ अट्ठाई महोत्सव कर के फिर अपने अपने स्थान पर गये। जो दाढ़ेंप्रमुख वे ले गये थे, उन्हें अपनी अपनी सभा में उन्होंने वज्रमय करंडक में रखा और वे उनकी गंधमालादिक से पूजा करने लगे तथा धूप देने लगे। इसी प्रकार का निर्वाणमहोत्सव सब तीर्थंकरों का जानना चाहिये।

श्री ऋषभदेवस्वामी के मोक्षगमन के बाद पचास लाख करोड़ सागरोपम बीत जाने पर श्री अजितनाथजी मोक्ष गये। श्री ऋषभदेव अरिहन्त मोक्ष जाने के बाद तीन वर्ष साढ़े आठ महीने तीसरा आरा शेष रहा था, वह बीत गया। फिर तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने तथा ऊपर बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ि सागरोपम बीतने पर श्री महावीरस्वामी मोक्ष गये। याने कि

उस समय तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने चौथे आरे के शेष रहे थे और पाँचवें आरे के इक्कीस हजार वर्ष तथा छठे आरे के इक्कीस हजार वर्ष इस तरह दोनों आरों के मिल कर बयालीस हजार वर्ष एक कोड़ाकोड़ि सागरोपम में कम हुए। इसलिए बयालीस हजार और तीन वर्ष साढ़े आठ महीने कम ऐसा एक कोड़ाकोड़ि सागरोपम काल चौथे आरे का बीतने पर महावीर प्रभु मोक्ष गये। उनके पश्चात् नौ सौ अस्सी वर्ष बीतने पर यह पुस्तक श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने लिखी और नौ सौ तिरानबेवें वर्ष में श्रीसंघ में इसका वाचन हुआ।

जैनाचार्य श्रीमद् भट्टारक विजय राजेन्द्रसूरीश्वर-सङ्कलिते श्री कल्पसूत्र बालावबोधे अष्टमं व्याख्यानं समाप्तम्।।

卐 卐 卐

नवम व्याख्यान

श्री स्थविरावली अधिकार

श्री महावीरस्वामी के ग्यारह गणधर और नौ गच्छ

उस काल में उस समय में भगवान श्री महावीरस्वामी के नौ गच्छ और ग्यारह गणधर हुए। यहाँ शिष्य प्रश्न पूछता है कि हे गुरु महाराज! मर्यादा तो यह है कि जितने गणधर हों, उतने ही गच्छ भी होने चाहिये, पर आप तो नौ गच्छ और ग्यारह गणधर फरमाते हैं, इसका कारण क्या है? गुरु कहते हैं कि श्री महावीरस्वामी के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार हुए। वे गौतम गोत्रीय थे और पाँच सौ साधुओं को वाचना देते थे। इसलिए उनका एक गच्छ था। जिसकी वाचना एक हो, उसे गच्छ कहते हैं।

यहाँ कोई शंका करे कि वाचना में अन्तर होता है, तो क्या केवली के कथन में अन्तर होता है? इसका उत्तर यह है कि केवली के कथन में अन्तर नहीं है, पर केवली के वचन सुन कर गणधर उन वचनों से सूत्ररचना करते हैं, उनकी रचना में (शब्दों में) अन्तर है, पर अर्थ में अन्तर नहीं है। मात्र शब्द अनेक प्रकार के हैं। उनमें रचना करते समय एक गणधर एक जाति के शब्द से गूँथता है, तो दूसरा गणधर दूसरी जाति के शब्दों से गूँथता है। इस कारण से शब्द रचना में फेरफार होता है।

दूसरा मँझला भाई-शिष्य अग्निभूति अनगार है। उनका गौतम गोत्र है और वे पाँच सौ साधुओं को वाचना देते हैं। यह दूसरा गच्छ। तीसरा छोटा भाई वायुभूति नामक शिष्य है। वे भी गौतम गोत्रीय हैं और पाँच सौ साधुओं को वाचना देते हैं। यह तीसरा गच्छ। ये तीनों गृहस्थावस्था में सगे भाई थे। चौथे स्थविर आर्यव्यक्त नामक भारद्वायण गोत्रीय हैं। वे पाँच सौ साधुओं को वाचना देते हैं। यह चौथा गच्छ। पाँचवें स्थविर आर्य सुधर्म नामक अग्निवैश्यायन गोत्रीय हैं। वे भी पाँच सौ साधुओं को वाचना देते हैं। यह पाँचवाँ गच्छ।

छठे स्थविर मंडितपुत्र वासिष्ठ गोत्रीय हैं। वे साढ़े तीन सौ साधुओं को वाचना देते हैं। यह छठा गच्छ। सातवें स्थविर मौर्यपुत्र काश्यप गोत्रीय हैं। वे साढ़े तीन सौ साधुओं को वाचना देते हैं। यह सातवाँ गच्छ। आठवें स्थविर अकंपित गौतम गोत्रीय हैं और नौवें स्थविर अचलभ्राता हारितायान गोत्रीय हैं। ये दोनों स्थविर तीन सौ तीन सौ शिष्यों को वाचना देते हैं। इन दोनों गणधरों की वाचना एक है। इसलिए इनका एक ही गच्छ है।

ये दोनों गणधर भाई हैं, परन्तु इनके माता एक और पिता दो हैं। इसलिए इनके गोत्र अलग-अलग कहे हैं। पूर्व में ब्राह्मणों में एक पति मर जाने के बाद स्त्री के दूसरा पति करने की प्रथा थी। इस कारण से दो पिता कहे। यह आठवाँ गच्छ।

दसवें स्थविर मेतार्य और ग्यारहवें स्थविर प्रभास ये दोनों कौडिन्य गोत्रीय भाई हैं। ये तीन सौ तीन सौ साधुओं को वाचना देते हैं। इन दोनों

की वाचना एक ही है, इसलिए एक ही गच्छ कहलाता है। यह नौवाँ गच्छ।

इस तरह हे शिष्य! हम श्री महावीर के ग्यारह गणधरों के नौ गच्छ कहते हैं। ये ग्यारहों गणधर द्वादशांगी के धारक, चौदह पूर्वधर, सम्पूर्ण आचार्य रत्नकरंडक के धारक याने कि द्वादश अंगरूप रत्नकरंडक के धारक जानना। ये ग्यारहों गणधर राजगृही नगरी में एकमासिक अनशन पानीरहित कर के कालगत हुए। इन्होंने मोक्ष प्राप्त किया और ये सब दुःखों से रहित हुए। इनमें से नौ गणधर तो श्री महावीरस्वामी की विद्यमानता में ही मोक्ष गये और स्थविर इन्द्रभूति तथा स्थविर आर्य सुधर्म ये दो गणधर श्री महावीर भगवान के मोक्ष जाने के बाद मोक्ष गये हैं तथा अन्य सब गणधरों के शिष्य भी काल कर गये थे। कोई भी शेष नहीं रहा था। इसलिए अब वर्तमान समय में जो जैन साधु विचरते हैं, वे सब सुधर्म गणधर के जानना। अन्य गणधरों के शिष्यों का विच्छेद हुआ है। इस कारण से एक सुधर्म गच्छ ही रहा।

गणधर	जन्मगाँव	पिता	माता	गृह-वास वर्ष	छद्मस्थ पर्याय वर्ष	केवल पर्याय वर्ष	सर्वायु वर्ष
इन्द्रभूति	गुब्बर	वसुभूति	पृथिवी	५०	३०	१२	९२
अग्निभूति	गुब्बर	वसुभूति	पृथिवी	४६	१२	१६	७४
वायुभूति	गुब्बर	वसुभूति	पृथिवी	४२	१०	१८	७०
व्यक्त	कोल्लाग	धनमित्र	वारुणी	५०	१२	१८	८०
सुधर्मा	कोल्लाग	धम्मिल	भद्दिला	५०	४२	८	१००
मंडित	मौरिक सन्निवेश	धनदेव	विजया	५३	१४	१६	८३
मौर्यपुत्र	मौरिक सन्निवेश	मौर्य	विजया	६५	१४	१६	९५
अकंपित	मिथिला	देव	जयन्ती	४८	९	२१	७८
अचलभ्राता	कोशला	वसु	नन्दा	४६	१२	१४	७२
मेतार्य	तुंगिक सन्निवेश (वत्सभूमि)	दत्त	वरुणदेवी	३६	१०	१६	६२
प्रभास	राजगृह	बल	अतिभद्रा	१६	८	१६	४०

श्री सुधर्मस्वामी और श्री जंबूस्वामी

श्री महावीरस्वामी काश्यप गोत्रीय थे। उनके पाट पर श्री सुधर्मस्वामी पाँचवें गणधर बैठे। उनका अग्निवैश्यायन गोत्र था। उनका संबंध इस तरह है-

कोल्लाग सन्निवेश नामक नगर में धम्मिल नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी भद्दिला नामक भार्या के पुत्र सुधर्म हुए। वे चौदह विद्या निधान और चार वेदों में पारंगत थे। पचास वर्ष तक गृहवास में रहने के बाद उन्होंने श्री महावीरस्वामी के पास दीक्षा ली। वे पाँचवें गणधर हुए। फिर तीस वर्ष तक वे श्री महावीरस्वामी के चरणकमलों की सेवा करते रहे और श्री महावीरस्वामी के निर्वाण के बाद बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में विचरे तथा आठ वर्ष तक केवली अवस्था में विचरे। इस तरह कुल एक सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर के वे मोक्ष गये। १

श्री सुधर्मस्वामी के पाट पर श्री जंबूस्वामी बैठे। उनका काश्यप गोत्र था। उनका संबंध इस प्रकार है-

एक बार श्री महावीरस्वामी का समवसरण राजगृह में हुआ। वहाँ एक महातेजवन्त देव अपनी चार अग्र महीषियों सहित तथा अन्य भी अनेक देव-देवियों के परिवार सहित भगवान को वंदन करने आया। तब श्रेणिक राजा ने भगवान से पूछा कि हे स्वामिन्! इस देवता की कान्ति अन्य देवों से अधिक क्यों दीखती है? तब भगवान ने कहा कि इस देव ने पूर्वभव में दस वर्ष तक नित्य तप किया है। उसके प्रभाव से यह पाँचवें ब्रह्म देवलोक में तिर्यग्जृंभक जाति में महर्द्धिक देव हुआ है।

यह देव आज से सातवें दिन देवलोक से च्यव कर राजगृही नगरी में ऋषभदत्त सेठ की धारिणी नामक भार्या की कोख में पुत्ररूप में उत्पन्न होगा। इसका जन्म महोत्सव कर के इसकी माता स्वप्न में जंबूवृक्ष देखने के कारण इसका नाम जंबू रखेगी। अनुक्रम से युवावस्था प्राप्त होने के बाद सुधर्म गणधर के पास धर्मदेशना सुन कर वैराग्य प्राप्त कर यह कहेगा कि मैं चारित्र लेना चाहता हूँ, इसलिए मेरे माता-पिता से पूछ कर आता हूँ।

यह कह कर यह घर जायेगा। रास्ते में यंत्र से उठाया हुआ पत्थर इसके पास आ कर गिरेगा। तब यह विचार करेगा कि यदि यह तोप का गोला अभी मुझे लग जाता, तो अव्रत अवस्था में मेरी मृत्यु हो जाती। ऐसा जान कर पुनः सुधर्मस्वामी के पास लौट कर एक बार तो सम्यक्त्व मूल बारह व्रत ग्रहण करेगा। उसमें चौथे व्रत में यह ऐसा त्याग करेगा कि माता-पिता के आग्रह से यदि स्त्रियों के साथ विवाह करना पड़े, तो विवाह करूँगा, पर उनके साथ विषयभोग नहीं करूँगा। फिर यह घर जा कर माता-पिता से कहेगा कि मैं सुधर्मस्वामी के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ। आप आज्ञा दीजिये। तब माता-पिता कहेंगे कि हे पुत्र! दीक्षा का पालन करना बड़ा दुष्कर है। इस तरह इसे बहुत समझायेंगे, पर यह नहीं मानेगा। तब माता-पिता कहेंगे कि हे पुत्र! आठ कन्याओं के साथ तेरी सगाई की हुई है, इसलिए उनके साथ विवाह कर के फिर दीक्षा ले लेना। यह सुन कर जंबूकुमार मौन धारण कर लेगा।

फिर माता-पिता आठों सेठों से कहेंगे कि हमारा पुत्र वैरागी हुआ है, इसलिए आपकी कन्याओं का विवाह करना हो, तो यह आपकी मर्जी की बात है, पर यदि यह कन्याओं का त्याग कर दीक्षा ग्रहण करे तो हमें दोष मत देना। यह सुन कर सब सेठ कहेंगे कि हम जंबूकुमार के साथ अपनी कन्याओं का विवाह नहीं करेंगे, पर उनकी कन्याएँ कहेंगीं कि हम तो जंबूकुमार के साथ ही विवाह करेंगीं। दूसरे के साथ विवाह करने का हमारे त्याग है। तब सेठ अपनी कन्याओं से कहेंगे कि वह तो दीक्षा लेगा। तो भी कन्याएँ कहेंगी कि वह दीक्षा ले तो भले ले, पर हम तो उसके साथ ही विवाह करेंगीं।

फिर जंबूकुमार का एक रात में आठों कन्याओं के साथ विवाह होगा। रात के समय शय्या पर बैठ कर वह आठों पत्नियों से कहेगा कि मैं तो दीक्षा लूँगा, क्योंकि यह सारा संसार अनित्य है। यहाँ कोई किसी के साथ नहीं जाता। तब स्त्रियाँ कहेंगीं कि हे स्वामी! आप इस समय दीक्षा मत लीजिये। अब तो संसार का जो सुख मिला है, उसे अच्छी तरह से भोग कर

फिर दीक्षा लेना, नहीं तो उस किसान की तरह पश्चात्ताप करना पड़ेगा, जिसने गेहूँ भी खोया और गन्ना भी खोया। उस किसान की कथा इस प्रकार है-

मारवाड़ देश का एक किसान अपने खेत में गेहूँ बो कर मेवाड़ देश में अपनी ससुराल गया। वहाँ सासु ने उसे थाली में रोटियाँ परोसीं और साथ में शीरा (काकब) भी परोसा। किसान को शीरा बड़ा स्वादिष्ट लगा। फिर उसने अपने साले से पूछा कि यह शीरा तुम कहाँ से लाये? तब साले ने कहा कि यह हमारे घर में होता है। फिर बहनोई ने पूछा कि कैसे होता है? तब साले ने गन्ना बोने की विधि बतायी। तब किसान ने अपने घर जा कर गन्ना बोने का निश्चय किया।

कुछ दिन बाद वह अपने घर गया। घर जा कर वह अपने पहले बोये हुए गेहूँ के खेत को उखाड़ने लगा। तब लोगों ने उससे पूछा कि यह तू क्या कर रहा है? उसने कहा कि मैं इस खेत में गन्ना बोऊँगा। तब लोगों ने उससे कहा कि अपने देश में पानी नहीं है, इसलिए यहाँ गन्ना नहीं ऊगेगा। फिर भी यदि गन्ना बोने की ही तेरी इच्छा हो, तो एक बार यह गेहूँ की फसल पक जाने दे, फिर गन्ना बोना। पर उसने लोगों की बात नहीं मानी और खेत में गन्ना बो दिया। गन्ना थोड़ा ऊगा, पर इतने में कुएँ का पानी खत्म हो गया। इससे जो गन्ना थोड़ा-सा ऊगा था, वह भी सूख गया। तब वह पश्चात्ताप करने लगा।

ऐसे ही आप भी पास में रहा हुआ सुख छोड़ कर अन्य नये सुख की कामना करते हैं, पर फिर आप पछतायेंगे। स्त्रियों की ऐसी वाणी सुन कर जंबूकुमार कहेगा कि मैं पूर्वोक्त दृष्टान्त से पश्चात्ताप नहीं करूँगा, पर तुम सब नहीं समझोगी, तो अन्त में पछताओगी। मैं तो ललितांगकुमार की तरह तुम्हारे फन्दे में नहीं पड़ूँगा। सुनो उसकी कथा-

एक नगर में एक सेठ का पुत्र ललितांगकुमार महारूपवान था। उसे एक दिन उस नगर के राजा की रूपवती रानी ने देखा। फिर वह उसे एकान्त में बुला कर उसके साथ संसार से संबंधित भोग-विलास करने

लगी। इतने में राजा वहाँ आ गया। तब भयभ्रान्त हो कर रानी ने ललितांगकुमार को महल की मोरी में छोड़ दिया और सोचा कि इसे बाद में बाहर निकाल लूँगी। बाद में रानी राजा के साथ रमण करने लगी और उसे भूल गयी। ललितांग उस मोरी में भूखा-प्यासा चार महीने तक पड़ा रहा। कोई उसमें जूठन फेंकता, तो वह खा लेता और कोई जूठा पानी डालता तो वह पी लेता।

ललितांग के माता-पिता ने उसकी बहुत खोज की, पर वह नहीं मिला। इससे वे शोक करने लगे। इतने में बरसात हुई। इससे मोरी में पानी भर गया। वह पानी निकालने के लिए मोरी खोल दी गयी। तब मोरी के पानी के साथ बहते बहते ललितांग भी नगर की बड़ी मोरी में जा गिरा। लोगों ने उसे देखा, तब उसके माता-पिता से जा कर कहा। माता-पिता उसे मोरी से निकाल कर घर ले आये। वहाँ वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा। उसका शरीर पीला पड़ गया था और उसकी हड्डियाँ दिखाई देने लगी थीं। माता-पिता ने अनेक प्रकार के तैलादिक मसलवां कर उसे सावचेत किया। फिर औषधोपचार करने पर बहुत दिन बाद उसका शरीर ठीक हुआ। तब पुनः वस्त्रप्रमुख पहन कर वह बाजार में घूमने निकला। रानी ने उसे पहचान कर पुनः बुलाया। तब उसने कहा कि अब मैं तुम्हारे फन्दे में नहीं फँसूँगा।

इस तरह आठों स्त्रियाँ सांसारिक सुख का त्याग न करने से संबंधित भिन्न-भिन्न कथाएँ जंबूकुमार से कहेंगीं और जंबूकुमार भी पुनः संसार की असारता बताने वाली भिन्न-भिन्न आठ कथाएँ उन आठों स्त्रियों से कहेगा। तब उन स्त्रियों को प्रतिबोध प्राप्त होगा।

इतने में प्रभव नामक एक चोर पाँच सौ चोरों को साथ ले कर जंबूकुमार के भवन में आयेगा। वह सबको विद्या के बल से अवस्वापिनी निद्रा देगा। इससे सब को नींद आ जायेगी, पर जंबूकुमार को नींद नहीं आयेगी। फिर ताले खोलने की विद्या से भंडार खोल कर निन्यानबे करोड़ सुवर्णमुद्राओं की गठरियाँ बाँध कर उन्हें ले कर वह चलने लगेगा।

इतने में जंबूकुमार को यद्यपि द्रव्य पर मूर्च्छा तो बिल्कुल नहीं है, तो

भी ऐसा विचार आयेगा कि मुझे तो सुबह दीक्षा लेनी है, आज यदि चोर लोग द्रव्य ले जायेंगे, तो लोग कहेंगे कि देखो! इसका सब धन चोर ले गये, इसलिए यह सिर मुँडा रहा है। इस तरह धर्म की निन्दा होगी। यह बात ठीक नहीं है। यह सोच कर वह नवकार गिनने लगेगा। इससे पाँच सौ चोरों के पाँव स्तंभित हो जायेंगे।

तब प्रभव सोचने लगेगा कि यह क्या हो गया? फिर देखेगा तो उसे जंबूकुमार जागता हुआ नजर आयेगा। तब वह जान लेगा कि इसके पास कोई महाप्रभावक विद्या है। यह जान कर वह जंबूकुमार से कहेगा कि मेरी विद्या आप लीजिये और आपकी विद्या मुझे दीजिये। तब जंबूकुमार कहेगा कि मेरे पास कोई विद्या नहीं है और किसी अन्य विद्या की मुझे आवश्यकता भी नहीं है। मुझे तो मात्र नवकार मंत्र का आधार है। ऐसा धर्मोपदेश देगा।

तब प्रभव पूछेगा कि इन नयी ब्याही हुई स्त्रियों का त्याग कर आप दीक्षा क्यों ले रहे हैं? संसार के सुख भोग कर फिर दीक्षा लेना। तब जंबूकुमार कहेंगे कि हे प्रभव! संसार में सुख है ही कहाँ, कि जिसे मैं भोगूँ? संसार का सुख तो मधुबिन्दु के समान है। उसके लालच में जीव संसार में भटकता है।

जैसे कोई एक पुरुष भूल से वीरान (उजाड़) में जा पहुँचा। उसके पीछे एक हाथी भागा। हाथी के भय से भागते भागते वह एक बड़ की शाखा से लटक गया। उस शाखा के नीचे एक कुआँ है। उसमें चार सर्प मुँह फाड़ कर बैठे हुए हैं तथा दो अजगर भी मुँह फाड़ कर बैठे हैं। बड़ के तने को हाथी हिला रहा है। जिस शाखा से वह पुरुष लटक रहा है, उस शाखा को एक काला और दूसरा उजला ऐसे दो चूहे कुतर रहे हैं। उस पर एक मधुमक्खी का छत्ता है। उसमें से मक्खियाँ उड़ उड़ कर उस पुरुष को काट रही हैं।

इतने में उस छत्ते में से मधु की एक बूँद नीचे गिरी। वह सीधे उस पुरुष की जीभ से जा लगी। तब वह ऊपर देखने लगा। उसने देखा कि छत्ते में से मधुबिन्दु गिर रहा है। यह जान कर उसने उस बिन्दु के नीचे मुँह खुला

रखा और बूँद के स्वाद में मग्न हो गया। वह यह भूल गया कि स्वयं पर पूर्वोक्त अनेक प्रकार के दुःख छाये हुए हैं।

इतने में एक विद्याधर ने उसके पास आ कर कहा कि हे पुरुष! तेरा दुःख देख कर मुझे दया आ रही है, इसलिए आ और मेरे विमान में बैठ जा। मैं तुझे दुःख से निकालने आया हूँ। तब उस पुरुष ने कहा कि हे विद्याधर! शहद की यह एक बूँद मेरे मुख में आ जाने दो। फिर मैं आपके साथ विमान में बैठ कर चलूँगा। फिर एक बूँद उसके मुँह में गिरी। पुनः उसने कहा कि यह दूसरी बूँद आ जाये तो चलूँ। इस तरह एक एक बूँद के स्वाद में ललचाते हुए वह उस विकट स्थान को छोड़ नहीं पा रहा था। तब विद्याधर ने जान लिया कि यह तो ऐसा ही मूर्ख है, लोभी है। यह इस दुःख में से निकलेगा नहीं। ऐसा जान कर उसे वहीं उसी स्थिति में छोड़ कर विद्याधर वहाँ से चला गया।

ऐसे ही हे प्रभव! यह जीव संसाररूप अटवी में आयुष्यरूप वृक्ष पर लटका हुआ है। वहाँ परिवार के रसरूप मधुबिन्दु को चाटते चाटते वह अपना आयुष्य घटा रहा है और मोह में मस्त हो कर रह रहा है। सद्गुरु उसके पास जा कर उसे चारित्ररूप विमान में बैठने के लिए कहते हैं, तब संसारी जीव स्त्री के भोगरूप मधुबिन्दु में ललचाते हुए संसार में से निकलने की इच्छा नहीं करता। इसलिए यह अवसर चूक गये, तो पुनः संसार में मनुष्य अवतार मिलना महादुर्लभ है।

ये वचन सुन कर प्रभव चोर भी प्रतिबोधित होगा। वह कहेगा कि हे जंबूजी! मैं भी आपके साथ दीक्षा लूँगा। फिर जंबूकुमार अपने माता-पिता को प्रतिबोध देगा तथा आठों कन्याएँ भी अपने-अपने माता-पिताओं को प्रतिबोध देंगीं और प्रभव भी पाँच सौ चोरों को प्रतिबोध देगा। इस तरह कुल मिला कर पाँच सौ सत्ताईस जनों के साथ सुबह के समय जंबूकुमार दीक्षा लेगा।

यह सब श्री महावीरस्वामी ने श्रेणिक राजा से कहा था। इसके अनुसार निन्यानबे करोड़ सुवर्णमुद्राएँ धर्मक्षेत्रों में खर्च कर के महा महोत्सव

सहित पाँच सौ सत्ताईस जनों के साथ श्री जंबूस्वामी ने श्री सुधर्मस्वामी के पास दीक्षा ली। फिर द्वादशांगी का अध्ययन कर वे श्री सुधर्मस्वामी के पाट पर बैठे। उन्होंने केवलज्ञान भी प्राप्त किया। फिर अपने पाट पर प्रभवजी को बिठा कर स्वयं मोक्ष गये।

कवीश्वर कहते हैं कि- बनिये बहुत लोभी होते हैं, ऐसा लोग इसलिए कहते हैं कि जंबूस्वामी के हाथ में जो केवलज्ञानरूप धन आया, वह उन्होंने अन्य किसी को नहीं दिया। अंतिम केवलज्ञान उन्होंने ही पाया है। वे मोक्षनगर का दरवाजा बन्द कर बैठे, इसलिए लोभी कहलाये। जंबूकुमार जैसा भाग्यवान अन्य कोई नहीं हुआ और होगा भी नहीं। मोक्षरूपिणी स्त्री ने भी उनके साथ विवाह करने के बाद अन्य किसी के साथ विवाह नहीं किया। उनके जैसा कोई कोटवाल भी नहीं हुआ, क्योंकि उन्होंने पाँच सौ चोरों को साधु बना दिया।

श्री जंबूस्वामी के मोक्षगमन के बाद दस वस्तुओं का विच्छेद हुआ। उनके नाम- एक मनःपर्यव ज्ञान, दूसरी परमावधि, तीसरी पुलाकलब्धि, चौथी आहारक शरीर, पाँचवी क्षपकश्रेणी, छठी उपशमश्रेणी, सातवीं जिनकल्पमार्ग, आठवीं परिहारविशुद्धि चारित्र, सूक्ष्म संपराय चारित्र और यथाख्यात चारित्र, नौवीं केवलज्ञान और दसवीं वस्तु मोक्षगमन।

श्री जंबूस्वामी सोलह वर्ष गृहस्थावास में, बीस वर्ष व्रत-पर्याय में और चवालीस वर्ष केवल-पर्याय में एवं सर्वायु अस्सी वर्ष की भोग कर के श्री महावीरस्वामी से चौसठवें वर्ष में मोक्ष गये। २.

श्री प्रभवस्वामी का संक्षिप्त वृत्तान्त

तीसरे पाट पर श्री प्रभवस्वामी कात्यायन गोत्रीय हुए। उन्होंने एक दिन अपने गच्छ में तथा श्रीसंघ में उपयोग दे कर विचार किया कि मैं किसे आचार्यपद अर्पण करूँ? उपयोग देने पर उन्हें गच्छ में तथा संघ में अपने पाट पर बैठने योग्य कोई पुरुष दिखायी नहीं दिया, तब अन्य मतों में उपयोग दिया। उसमें शय्यंभव भट्ट को देखा। फिर श्री प्रभवस्वामी ने दो

साधुओं को सिखा कर शय्यंभव के घर भेजा। वे शय्यभंव के घर जा कर कहने लगे कि- अहो कष्टमहोकष्टं, तत्त्वं न ज्ञायते पुनः। अर्थात् देखो! यह कष्ट कर रहा है, पर तत्त्व नहीं जानता। यह सुनते ही तत्काल खड्ग ग्रहण कर के वह गुरु के पास आया और तलवार निकाल कर बोला कि अरे! मुझे बताओ कि तत्त्व कैसा है?

तब गुरु ने विचार किया कि सिर कट जाने पर भी तत्त्व कहने में दोष नहीं है। यह सोच कर गुरु ने कहा कि अरे! तू जो यज्ञ कर रहा है, उस यज्ञ के कीलक के नीचे श्री शांतिनाथजी की प्रतिमा है। वह शान्तिकारक है। उससे शान्ति होती है, पर यज्ञ से कुछ नहीं होता। यह सुन कर घर जा कर उसने वहाँ से श्री शांतिनाथजी की प्रतिमा निकाली। उसे देख कर उसे प्रतिबोध हुआ। फिर अपनी गर्भवती स्त्री को छोड़ कर उसने दीक्षा ली।

श्री प्रभवस्वामी तीस वर्ष गृहस्थावस्था में रहे तथा उन्होंने पचपन वर्ष चारित्रपालन किया। कुल पिच्यासी वर्ष की आयु भोग कर श्री शय्यंभव को अपने पाट पर बिठा कर महावीरस्वामी से पचहत्तर वर्ष बाद वे देवलोक गये। ३

श्री शय्यंभवसूरिजी और मनकमुनि का संक्षिप्त वृत्तान्त

चौथे पाट पर श्री शय्यंभवसूरिजी वत्स गोत्रीय हुए। वे अपनी गर्भवती स्त्री को छोड़ कर आये थे। उसे एक पुत्र हुआ। उसका नाम मनक रखा गया। वह एक दिन पाठशाला में गया। वहाँ अन्य लड़कों के साथ पढ़ने बैठा। तब अन्य लड़कों ने ताना मारा कि हे निष्पितृक! हम तुझे जानते हैं। तेरे पिता तो हैं ही नहीं। यह बात सुन कर लड़का दुःखी हो कर अपनी माता के पास गया। उसने माता से पूछा कि मेरे पिता हैं या नहीं? तब माता ने कहा कि हे वत्स! पिता के बिना पुत्र कहाँ से हो? तेरे पिता शय्यंभव भट्ट हैं। तब लड़के ने पूछा कि वे कहाँ हैं? फिर माता ने कहा कि तेरे पिता को जैन साधु ठग कर ले गये हैं। इससे उन्होंने दीक्षा ली है।

यह सुन कर जिस गाँव में शय्यंभवसूरिजी थे, वहाँ मनक भी गया।

गाँव के बाहर उसे स्थंडिल जाते गुरु मिले। मनक ने उनसे पूछा कि महाराज! क्या यहाँ शय्यंभवसूरिजी हैं? तब गुरु ने पूछा कि तुझे उनसे क्या काम है? फिर मनक ने अपनी सब हकीकत कही और कहा कि मैं उनका पुत्र हूँ। गुरु ने उसे कुछ उत्तर दे कर उपाश्रय में भेज दिया और स्थंडिल से लौटने के बाद उसे प्रतिबोध दिया। फिर मनक ने कहा कि मुझे दीक्षा दीजिये। यह सुन कर गुरु ने कहा कि यदि तू हम दोनों का पिता-पुत्र का नाता अन्य साधुओं से न कहे, तो मैं तुझे दीक्षा दूँगा। तब मनक ने कहा कि मैं किसी से नहीं कहूँगा।

फिर गुरु ने उन्हें दीक्षा दी, पर मनक का आयुष्य स्वल्प जान कर उन्होंने सिद्धान्तों में से उद्धृत कर उसके लिए दशवैकालिक सूत्र की रचना की। यह सूत्र मनक ने छह महीने में पढ़ लिया। छह महीने से कुछ कम चारित्र-पालन कर मनक देवलोक गया। फिर मनक के शरीर का अग्निसंस्कार कर के श्रावक गुरु के पास आये। उस समय यशोभद्रप्रमुख अन्य बहुत से शिष्य गुरु के पास बैठे थे। गुरु ने श्रावकों को धर्मोपदेश दिया, पर उस समय गुरु की आँखों में आँसू आ गये।

यह देख कर यशोभद्रसहित संघ के लोगों ने पूछा कि हे पूज्य! आपके अनेक साधु परलोक जाते हैं, पर आपकी आँखों में हमने आँसू कभी नहीं देखे। आज आँसू कैसे आ गये? तब गुरु ने कहा कि मोह के कारण आँसू आये। फिर संघ ने पूछा कि मोह का क्या कारण है? तब गुरु ने कहा कि संसार-संबंध से वह मेरा पुत्र था, पर स्वल्प काल चारित्र पालन किया, इससे मोह उत्पन्न हो गया। तब साधुओं ने कहा कि महाराज! आपने हमें पहले कभी क्यों नहीं कहा कि वह आपका पुत्र है? उत्तर में गुरु ने कहा कि यदि मैं तुमसे ऐसा कहता, तो तुम उससे वैयावच्च नहीं करवाते। फिर उसे क्या लाभ होता? इसलिए उसके अल्प आयुष्य में इतना लाभ जान कर तुमसे नहीं कहा।

फिर गुरु दशवैकालिक सूत्र पुनः सिद्धान्तों में मिलाने लगे, तब संघ ने विनती की कि हे स्वामिन्! यह लघुग्रन्थ है, इसलिए भविष्य में अल्पबुद्धि

और अल्पायुषी लोगों के लिए बहुत उपकारक होगा। इसे ऐसा ही रहने दीजिये। यह सुन कर उसे वैसा ही रखा।

शय्यंभवसूरि अट्ठाईस वर्ष गृहस्थ पर्याय में, ग्यारह वर्ष दीक्षा पर्याय में और तेईस वर्ष युगप्रधानपद में एवं कुल आयु बासठ वर्ष की भोग कर और अपने पाट पर श्री यशोभद्रसूरि को बिठा कर श्री महावीरस्वामी के निर्वाण से अठानबेवें वर्ष में स्वर्गलोक गये।४.

श्री भद्रबाहु और वराहमिहर का संक्षिप्त वृत्तान्त

पाँचवें पाट पर श्री यशोभद्रसूरि तुंगीयायण गोत्रीय बैठे। वे बाईस वर्ष गृहस्थ पर्याय में, चौदह वर्ष व्रत पर्याय में और पचास वर्ष युगप्रधान पद में एवं सर्वायु छियासी वर्ष की भोग कर महावीर प्रभु से एक सौ अड़तालीस वर्ष बाद देवलोक गये।५.

उनके पाट पर दो शिष्य बैठे- एक आर्य संभूतिविजयजी माढर गोत्रीय और दूसरे श्री भद्रबाहुस्वामी पाईण (प्राचीन) गोत्रीय।

इनमें से भद्रबाहुजी का संबंध इस प्रकार है-

प्रतिष्ठानपुर के निवासी एक वराहमिहर और दूसरा भद्रबाहु ये दो ब्राह्मण भाई थे। इन्होंने श्री यशोभद्रसूरिजी के पास धर्मदेशना सुन कर दीक्षा ली। चौदह पूर्वों का अध्ययन हो जाने के बाद गुरु ने विनीतपना-नम्रतागुण देख कर भद्रबाहु को आचार्यपद दिया। अविनीत होने के कारण वराहमिहर को उन्होंने आचार्यपद नहीं दिया; क्योंकि जिस आचार्यपद को गणधरों ने धारण किया, वह आचार्यपद यदि अविनीत-अयोग्य को दे दिया जाये, तो आचार्यपद देने वाला गुरु भी अनन्त संसारी होता है।

अब भद्रबाहु को आचार्य पद मिला देख कर वराहमिहर कुपित हुआ। वह गच्छ से बाहर निकल कर गुरु से द्वेष करने लगा। वह चौदह पूर्व का अभ्यासी था, इसलिए वाराहीसंहिता प्रमुख ग्रंथ बना कर और साधुवेश का त्याग कर के ब्राह्मण वेश धारण कर लोगों के आगे निमित्त कह कर अपनी आजीविका चलाने लगा।उससे जब लोग पूछते कि तुमने यह सब कहाँ

सीखा? तब वह कहता कि-

एक दिन मैंने नगर के बाहर कुंडली बनायी थी। उस कुंडली को वैसे ही रख कर मैं वहाँ से चला गया। फिर जब याद आया, तब उसे मिटाने के लिए मैं पुनः वहाँ गया। वहाँ जा कर मैंने देखा तो पता चला कि कुंडली में सिंह लग्न का स्वामी सिंह अपनी पूँछ बढ़ा कर उस पर खड़ा है। फिर मैंने लग्न की भक्ति के कारण अपनी छाती मजबूत कर के सिंह के नीचे घुस कर लग्न मिटा दिया। मेरी भक्ति देख कर सिंह के अधिपति सूर्य ने मेरे पास आ कर मुझसे सन्तुष्ट हो कर कहा कि तुम जो माँगो सो मैं तुम्हें दे दूँगा। तब मैंने कहा कि नक्षत्रादिक का चार वास्तव में जैसा है, वैसा मुझे बता दीजिये। फिर सूर्य मुझे अपने ज्योतिष के मंडल-चार में मुझे ले गया। वहाँ मुझे सब चार बताये गये और उदयास्त चक्र भी बताया गया। उस ज्योतिष के बल से मैं तीनों कालों की बातें जानता हूँ।

ऐसी कल्पित बातें कह कर वह लोगों में सम्मान पाने लगा। वह राजाप्रमुख को निमित्त बता कर खुश करता और उन्हें चमत्कृत करता। इस तरह उसने अनेक लोगों को मिथ्यात्वी बनाया।

उस अवसर पर श्री भद्रबाहुस्वामी भी उस नगर में आये। श्रावकों ने महामहोत्सवपूर्वक नगरप्रवेश कराया। यह सब वराहमिहर से सहन नहीं हुआ। उसने सोचा कि इनका मान खंडित करूँ, तो अच्छा होगा। यह सोच कर एक दिन राजसभा में जा कर उसने राजा से कहा कि आज से पाँचवें दिन पूर्व दिशा से बरसात आयेगी। वह तीसरे प्रहर में बरसेगी। मैं यह वर्तुल बनाता हूँ। इसके बीच में बावन पल का एक मत्स्य गिरेगा। ऐसा निमित्त उसने कहा।

यह बात श्रावकों ने जा कर भद्रबाहुस्वामी से कही और पूछा कि हे स्वामिन्! वराहमिहर द्वारा कही गयी यह बात सत्य है या असत्य? तब भद्रबाहु ने कहा कि कुछ सत्य है और कुछ असत्य है। क्योंकि पूर्व दिशा से नहीं पर ईशानकोण से वर्षा आयेगी। वह छह घड़ी दिन शेष रहेगा, तब बरसेगी। तीसरा प्रहर कहा सो झूठ है। इसी प्रकार बावन पल का नहीं, पर

वायु से सूख जाने के कारण साढ़े इकावन पल का मत्स्य होगा। वह वर्तुल के मध्यभाग में नहीं, पर उसके किनारे पर एक तरफ गिरेगा। इसलिए वराहमिहर मिथ्यात्व के योग से इतना झूठ बोल रहा है।

यह बात श्रावकों ने जा कर राजा से कही। तब राजा ने कहा कि सच-झूठ की खबर अब तुरन्त पाँच दिन में मालूम हो जायेगी। इतने में पाँचवाँ दिन आ गया। तब वर्षा हुई और श्री भद्रबाहुस्वामी के कहने के अनुसार सब बात सत्य हुई। तब राजाप्रमुख सब लोगों ने श्री भद्रबाहुस्वामी के ज्ञान की प्रशंसा की और वराहमिहर की बात कुछ सच्ची व कुछ झूठी हो जाने के कारण उसकी मान्यता कम होने लगी।

एक दिन राजा के घर पुत्रजन्म हुआ। वराहमिहर ने उसकी जन्म पत्रिका बना कर उसमें कुमार की आयु एक सौ वर्ष की बतायी। तब सब लोग अक्षत ले कर राजा को बधावा देने गये। अन्यदर्शनी संन्यासी, योगी प्रमुख सब आशीर्वाद देने गये, पर श्री भद्रबाहु नहीं गये। तब वराहमिहर राजा से कहने लगा कि हे राजन्! आपके घर पुत्रजन्म हुआ, यह भद्रबाहु को नहीं रुचा। इसलिए वे आशीर्वाद देने नहीं आये।

यह बात भी श्रावकों ने जा कर श्री भद्रबाहुस्वामी से कही। तब भद्रबाहु ने कहा कि बार बार कैसे जाया जा सकता है? एक बार चले जायेंगे। श्रावकों ने कहा कि ऐसा क्यों? तब गुरु ने कहा कि आठवें दिन बिल्ली के योग से कुमार की मृत्यु होगी, तब वहाँ आयेंगे। श्रावकों ने यह बात राजा से कही। फिर राजा ने सब बिल्लियों को गाँव से बाहर निकलवा दिया तथा ऐसा प्रबंध किया कि किसी के घर में या गाँव में बिल्ली न आ सके। पर आठवें दिन दैवयोग से दासी के हाथ से किंवाड़ की ठांसणी बालक के सिर पर गिर गयी। इससे बालक की मृत्यु हो गयी। तब वराहमिहर ने कहा कि बालक बिल्ली से तो नहीं मरा। फिर गुरु ने ठांसणी पर काष्ठ में बिल्ली के मुख का आकार खुदा हुआ बताया। इससे वराहमिहर लज्जित हुआ। वह वहाँ से निकल कर अन्य स्थान पर जा कर रहने लगा। वहाँ अज्ञानकष्ट से मर कर व्यन्तर देव हुआ।

उसने नगर में आ कर श्रीसंघ में मरकी के रोग का उपद्रव किया। इससे अनेक लोग मरने लगे। तब श्रीसंघ का संकट दूर करने के लिए गुरु ने महामहिमावन्त 'उवसग्गहर' स्तोत्र बनाया। वह स्तोत्र घर घर में गिना जाने लगा। इससे सब उपद्रव दूर हो गया। फिर श्रावकों के घर में यदि छोटा सा काम हो, तो भी वे 'उवसग्गहर' का पाठ करने लगे, इससे उनका काम पूरा हो जाता। ऐसा करते करते अन्त में लोगों में ऐसी प्रथा चल पड़ी कि यदि गाय दूध न दे, तो भी वे उवसग्गहर स्तोत्र का पाठ करते। इससे गाय दूध देने लगती। इसी प्रकार यदि कोई स्त्री कंडे (छाणे) बीनने जाती और टोकरा उसके सिर पर रखवाने वाला अन्य कोई न मिलता, तो वह भी उवसग्गहर का पाठ करती। इससे नागेन्द्र को आ कर टोकरा उठवाना पड़ता। इसी तरह कोई स्त्री रोटी करने बैठती और उसका पुत्र टट्टी जाता, तब वह भी उवसग्गहर का पाठ करती। इससे तुरन्त नागराज को वहाँ आ कर लड़के को शौच कराना पड़ता।

उवसग्गहर स्तोत्र से ऐसे ऐसे नीच काम लोग नागराज के द्वारा करवाने लगे। तब नागराज खीझ गया। उसने गुरु के पास आ कर विनती की कि हे महाराज! मैं संघ से एक क्षणमात्र भी दूर नहीं रह सकता। लोग तो पूर्वोक्त हलके हलके काम मुझसे करवाते हैं। तब गुरु ने जाना कि ये अभागे लोग यदि देव को खिझायेंगे, तो उल्टे अनर्थ हो जायेगा। इसलिए इस स्तोत्र को भंडारना (विसर्जित करना) ही योग्य है। फिर नागेन्द्र ने कहा कि आप इस स्तोत्र की छठी गाथा को भंडार दीजिये, शेष पाँच गाथा से ही मैं अपने स्थान पर रहते हुए सब उपद्रव दूर करूँगा। यह सुन कर गुरु ने छठी गाथा भंडार दी। श्री भद्रबाहुस्वामी के रचे हुए आवश्यकनिर्युक्ति प्रमुख अनेक ग्रंथ वर्तमान में विद्यमान हैं।

श्री भद्रबाहुस्वामी पैंतालीस वर्ष गृहस्थ पर्याय में, सतरह वर्ष व्रत पर्याय में और चौदह वर्ष युगप्रधान पद में एवं सर्वायु छिहत्तर वर्ष का भोग कर श्री महावीरस्वामी से एक सौ सत्तर वर्ष बाद देवलोक गये तथा दूसरे श्री संभूतिविजयजी जानना। वे बयालीस वर्ष गृहस्थ पर्याय में, चालीस वर्ष

चारित्रपर्याय में और आठ वर्ष युगप्रधानपद में एवं सर्वायु नब्बे वर्ष की भोग कर स्वर्गलोक गये। यह छठा पाट जानना। ६

श्री स्थूलिभद्रजी और वररुचि का संक्षिप्त वृत्तान्त

श्री संभूतिविजयजी और श्री भद्रबाहुस्वामी के पाट पर आर्य स्थूलिभद्रजी गौतम गोत्रीय हुए। उनका संबंध इस तरह है-

पाटलीपुत्र नगर में नौवाँ नन्द राजा राज करता था। उसके शकटाल नामक प्रधान था। शकटाल के लाछलदे नामक पत्नी से दो पुत्र हुए- एक स्थूलिभद्र और दूसरा श्रीयक।

एक दिन वररुचि नामक एक ब्राह्मण राजा के पास आया। उसने एक सौ आठ काव्य नये रच कर सुनाये। फिर वह ब्राह्मण एक सौ आठ काव्य नये नये बना कर नित्य राजा को सुनाने लगा। उस समय यदि प्रधान उसकी प्रशंसा करता, तो राजा उसे दान देता, अन्यथा नहीं देता। पर प्रधान वरुरुचि को मिथ्यात्वी जान कर उसकी प्रशंसा नहीं करता। तब वररुचि भट्ट ने प्रधान की स्त्री लाछलदे से विनती की। स्त्री ने प्रधान से कहा कि उस बेचारे भट्ट को कुछ तो दिलवा देना। तब प्रधान के मन में यद्यपि कुछ न दिलाने का विचार था, पर स्त्री के कहने से उसने राज्यसभा में कहा कि ये काव्य अच्छे हैं। तब राजा ने सन्तुष्ट हो कर उसे नित्य एक सौ आठ सुवर्णमुद्राएँ देना शुरु किया। इस तरह देते हुए बहुत दिन बीत गये, तब प्रधान ने जाना कि इस तरह तो सब धन नष्ट हो जायेगा।

यह सोच कर उसने एक योजना बनायी। उसके सात पुत्रियाँ थीं, जो बड़ी बुद्धिमान थीं। पहली पुत्री यदि कोई काव्यप्रमुख एक बार सुन लेती, तो उसे वह मुखपाठ हो जाता और वह पुनः वह पाठ सुना देती। इसी तरह दूसरी पुत्री दो बार सुनती तो उसे मुखपाठ हो जाता। तीसरी तीन बार, चौथी चार बार इस तरह यावत् सातवीं सात बार सुन कर पाठ पुनः कह सुनाती। ये सातों पुत्रियाँ महाचतुर थीं। प्रधान ने उन्हें सिखा दिया कि तुम राजसभा में कह देना कि ये काव्य पुराने हैं और ये हमें आते हैं। ऐसा कंह कर

मुखपाठ सुना देना।

सुबह के समय वररुचि भी एक सौ आठ काव्य बना कर सभा में आ कर बोलने लगा। उस समय प्रधान ने कहा कि महाराज! पूर्व के अपने बड़े नन्द राजा के पास कहे हुए ये काव्य हैं। इन्हें नित्य आ कर यह भट्ट कहता है। ये काव्य तो मेरी सब पुत्रियों को भी आते हैं। तब राजा ने पुत्रियों को बुलवा कर उनसे सब काव्य कहलवाये। उन सातों ने अनुक्रम से एक के बाद एक मुखपाठ कह सुनाये। तब राजा ने निर्भर्त्सना कर के भट्ट को निकाल दिया।

फिर वररुचि ने गंगा नदी में एक यंत्र स्थापित किया। उसकी कल पर वह गुप्तरूप से पाँच सौ सुवर्णमुद्राएँ भरी हुई गेंद रख आता। फिर सुबह के समय लोगों को जमा कर वहाँ जा कर गंगा की स्तुति के नये काव्य बोल कर कल दबाता तब पाँच सौ सुवर्णमुद्राओं वाली गेंद हाथ में आ जाती। यह कौतुक देख कर लोग कहने लगे कि देखो! राजा ने देना बन्द कर दिया, तो भी इस पंडित को गंगादेवी देती है।

यह बात राजा ने सुनी। तब उसने प्रधान से कहा कि चलो, हम भी देखने चलें। प्रधान ने कहा कि कल चलेंगे। फिर प्रधान ने उस जगह पर अपने गुप्त लोग बिठाये। शाम के समय जब भट्ट वहाँ सुवर्णमुद्राओं की पोटली यंत्र में रख आया, तब छिप कर बैठे हुए उन लोगों ने वह पोटली निकाल कर प्रधान को सौंप दी। सुबह के समय राजाप्रमुख सब लोग देखने गये। तब वररुचि ने भी गंगादेवी की स्तुति कर के जोर से कल दबायी, पर हाथ में कुछ नहीं आया। फिर राजा ने पूछा कि ऐसा कैसे हो गया? उस समय प्रधान ने सब प्रपंच प्रकट कर पोटली बतायी। फिर वह भट्ट को सौंप दी। इससे लोगों में भट्ट की बहुत निन्दा हुई। भट्ट मंत्री से द्वेष करने लगा।

इसी अवसर पर प्रधान के पुत्र श्रीयक का विवाह आयोजित हुआ। उस समय प्रधान के घर में शस्त्रप्रमुख अनेक तरह की तैयारियाँ देख कर भट्ट ने एक दोहा बना कर अपने पास पढ़ने वाले लड़कों को सिखाया कि-

नंदराय जाणे नहीं, जे सिकडाल करेसि।

नंदराय मारी करी, सिरियो रज्ज ठवेसि।।१।।

वे लड़के यह दोहा गाते हुए राजा के महल के पास से निकले। राजा ने भट्ट से पूछा कि यह बात कैसे हो सकती है? तब भट्ट ने कहा कि आप जाँच करवाइये। सब प्रकार के शस्त्र तैयार हो रहे हैं। राजा ने जाँच कराई। युद्धसामग्री देख कर वह कुपित हुआ और उसने निश्चय किया कि शकटाल के पूरे परिवार को मरवा डालना चाहिये।

यह बात शकटाल ने जानी, तब वह राजा के पास आया। उसे देख कर राजा ने मुँह फेर लिया। तब प्रधान ने घर लौट कर श्रीयक से कहा कि तू मेरी बात सुन। जब मैं जा कर राजा को नमस्कार करूँ, उस समय तू मेरा मस्तक तलवार से काट देना। यह बात बड़ी कठिनाई से श्रीयक ने मान्य की। फिर शकटाल ने राजा को प्रणाम किया, तब राजा ने मुँह फेर लिया। फिर प्रधान ने अपने मुख में तालपुट विष डाल दिया। उस समय श्रीयक ने कहा कि जो राजा का द्वेषी होता है, उसे तो मारना ही चाहिये। यह कह कर उसने तलवार चलायी। इससे मस्तक कट गया।

राजा ने बहुत खेद कर के फिर श्रीयक से कहा कि तुम्हारे पिता का अधिकार तुम ग्रहण करो। तब श्रीयक ने कहा कि मेरे बड़े भाई स्थूलिभद्र हैं, उन्हें यह अधिकार देना चाहिये। राजा ने पूछा कि वह कहाँ है? तब श्रीयक ने कहा कि मेरा भाई बचपन में शास्त्र पढ़ने में कालनिर्गमन करता था। उसका विवाह हुआ था, पर वह अपनी स्त्री के पास जाता नहीं था। इससे मेरे माता-पिता ने जाना कि वह संसार की कला नहीं सीखेगा। यह सोच कर उन्होंने उसे कला सिखाने के लिए कोशा वेश्या को सौंप दिया। इस बात को बारह वर्ष हो गये हैं। वह वेश्या के यहाँ लुभा गया है। बारह करोड़ सुवर्णमुद्राएँ खर्च हो गयीं। इसलिए उसे बुला कर अधिकारी बनाइये।

राजा ने स्थूलिभद्र को बुलाने के लिए छड़ीदार भेजा। तब वेश्या ने स्थूलिभद्र से कहा कि आप राजा के पास मत जाइये। यदि आप जायेंगे, तो वह आपको मेरे पास आने नहीं देगा और मुझसे भी आपके बिना किसी

तरह रहा नहीं जायेगा। इसलिए आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये। तब स्थूलिभद्र ने कहा कि एक तो मेरे पिता की मृत्यु हो गई है और दूसरे राजा का हुक्म आया है। राजा का हुक्म टल नहीं सकता, तो भी एक बार तुमसे मिलने के लिए मैं अवश्य आऊँगा। यह कह कर स्थूलिभद्र अपने घर आये। भट्ट के प्रपंच की व पिता की मृत्यु की सब बातें सुन कर वे राजा के पास गये। राजा ने उनसे प्रधानपद ग्रहण करने के लिए कहा। तब स्थूलिभद्र ने कहा कि विचार कर के ग्रहण करूँगा। राजा ने कहा कि शीघ्र विचार कर लो।

फिर राजा की अशोकबाड़ी में जा कर उन्होंने विचार किया कि यह संसार तो मतलबी है। कोई किसी का सगा नहीं है। जैसी हालत मेरे पिता की हुई, वैसी ही मेरी भी एक दिन होना संभव है। इसलिए राज्य के काम में इस लोक का भी सुख नहीं है और परलोक में तो नरक की प्राप्ति होती है। इस तरह संसार को असार जान कर, वैराग्य रंग से रंगित हो कर उन्होंने रत्नकंबल का ओघा बनाया और लोच कर के साधु बन कर राजा के पास जा कर उसे धर्मलाभ दिया। राजा ने जाना कि यह व्यसनी है, इसलिए वेश्या के घर जायेगा। यह सोच कर वह देखने लगा। तब वे तो किसी महा दुर्गंधित गली में से हो कर गाँव के बाहर निकल गये, पर दुर्गन्ध से बचने के लिए नाक तक नहीं ढँका। इससे राजा ने जान लिया कि यह सचमुच वैराग्यवान है। फिर स्थूलिभद्रजी ने श्री संभूतिविजयजी के पास जा कर दीक्षा ली। राजा ने श्रीयक को मंत्रीपद की मुहर सौंप दी।

फिर चातुर्मास आने पर श्री स्थूलिभद्रजी गुरु के आदेश से कोशा वेश्या के घर चातुर्मास के लिए रहे। दूसरा साधु सिंह की गुफा में, तीसरा साधु साँप के बिल पर और चौथा साधु कुएँ के बीच के काष्ठ पर चातुर्मास के लिए रहा। इन चारों में से स्थूलिभद्रजी चातुर्मास में वेश्या के घर रहे थे। वहाँ चातुर्मास करना बड़ा कठिन था। एक तो वर्षाऋतु थी, जो काम जगाने वाली है, क्योंकि जिस काल में मेघ गर्जारव करते हैं, बिजली कौंधती है, मोर केकारव करते हैं, पपीहे पिउ पिउ करते हैं, उस काल में भोग की

वांछा अधिक होती है। तथा रहने के लिए चौरासी आसन चित्रित चित्रशाला जैसा स्थान हो और खाने के लिए षड्रस भोजन मिलता हो, ये सब भोग के अंग मिलें, पर यदि स्त्री रागवाली न मिले, तो सब निष्फल होता है। पर यहाँ स्थलिभद्रजी को तो कोशा वेश्या जैसी सब में अग्रसर रागवाली स्त्री मिली थी। उसने बड़ी उम्मीद से उन्हें चित्रशाला में उतारा, अनेक प्रकार के भोजन कराये, अनेक तरह के हावभाव किये, वह भोग-विलास के वचन बोली, तो भी इस महापुरुष का एक रोम भी चंचल नहीं हुआ।

अन्त में वेश्या ने कहा कि मैं इतने विलास करती हूँ, इनका कुछ प्रत्युत्तर तो दीजिये। उत्तर में मुनि ने कहा कि हे भोली! धर्म के बिना सब अवतार निष्फल है। इत्यादिक उपदेश सुन कर कोशा श्राविका बन गयी। राजा के हुक्मदार पुरुष को छोड़ कर अन्य किसी भी पुरुष को घर में प्रवेश करने नहीं देना, ऐसा अभिग्रह उसने लिया।

कोशा को श्राविका बना कर चातुर्मास पूर्ण होने पर श्री स्थूलिभद्र मुनि गुरु के पास आये और अन्य तीनों साधु भी आये। गुरु ने किंचित् उठ कर उन तीनों से कहा कि हे दुष्करकारक! तुम भले आये और स्थूलिभद्रजी को तो आते देखते ही गुरु उठ कर खड़े हो कर बोले कि भले आये अहो दुष्करकारक दुष्करकारक! यह सुन कर सिंहगुफावासी साधु ने अमर्ष ला कर विचार किया कि ये गुरु भी धनवान की गरज करनेवाले दीखते हैं। क्योंकि जो खूब माल खा कर मस्त हो कर आया है, उसे तो अहो 'दुष्कर दुष्करकारक' ऐसा कहा और मैंने इतना कठिन तप किया, तो मुझे 'दुष्कर कारक' इतना ही कहा।

ऐसा जान कर अगले चातुर्मास में सिंह गुफावासी साधु ने गुरु से कहा कि मैं वेश्या के घर चातुर्मास करने जाऊँगा। तब गुरु ने कहा कि वत्स! कामदेव की राजधानी जैसे घर में जा कर चातुर्मास करना बड़ा कठिन काम है। तू भ्रष्ट हो जायेगा, इसलिए तुझे वहाँ नहीं जाना है। तो भी वह नहीं माना और कोशा के घर चातुर्मास में रहने के लिए गया। वहाँ वेश्या ने उसे रहने के लिए एक सामान्य स्थान दिया और सामान्य वेश धारण कर वह

उसके पास बैठी। तो भी उसका रूप देख कर वह मुनि मुनिपद से डिग गया और भोग के लिए प्रार्थना करने लगा। तब वेश्या ने कहा कि धन के बिना तुम्हारी कामना सिद्ध नहीं होगी। साधु ने कहा कि धन कहाँ से लाऊँ? तब वेश्या ने कहा कि नेपाल देश का राजा साधुओं को रत्नकंबल देता है। वहाँ जा कर ले आओ।

वह साधु भोग-विलास का मतलबी हुआ, इसलिए बरसात के दिनों में कीचड़ रौंदते-रौंदते नेपाल देश गया। वहाँ के राजा से रत्नकंबल प्राप्त कर वापस मुड़ा। रास्ते में चोरों का तोता बोला कि 'लक्षं याति।' चोरों ने तोते की बोली सुन कर साधु के पास से रत्नकंबल छीन लिया। तब पुनः राजा के पास जा कर उसने कहा कि कंबल तो चोरों ने लूट लिया। तब राजा ने बाँस की लकड़ी में रत्नकंबल रख कर उसे दिया। लौटते समय रास्ते में पुनः तोता बोला कि 'लक्षं याति।' चोरों ने सुना, पर उन्हें कंबल दिखाई नहीं दिया, तो भी चोरों ने जाना कि हमारा तोता झूठ नहीं बोलेगा। इससे उन्होंने मुनि से कहा कि तुम्हारा कंबल हम नहीं लेंगे, पर सच कहो कि तुम्हारे पास कंबल है या नहीं? मुनि ने सत्य कहा। चोरों ने उन्हें छोड़ दिया।

मुनि ने रत्नकंबल ला कर वेश्या को दिया। वेश्या ने स्नान कर के कंबल से शरीर पोंछ कर उसे मोरी में फेंक दिया। यह देख कर साधु बोला कि हे भोली! ऐसे अमूल्य रत्नकंबल को मोरी में क्यों फेंक दिया? तब वेश्या बोली कि अरे मूर्ख! तू भी क्या करता है? यह महादुर्लभ, इहलोक और परलोक में सुखकारी, रत्नकंबल से भी अत्यन्त अधिक मूल्यवान ऐसा जो चारित्ररूप रत्न है, उसे तू मलमूत्र से भरी हुई ऐसी मेरी कायारूप दुर्गंधित मोरी में फेंकने के लिए तैयार हुआ है, इसलिए तू मुझ से भी अधिक मूर्ख दीखता है। यह सुन कर प्रतिबोध प्राप्त कर वह साधु गुरु के पास आ कर पुनः चारित्र ले कर शुद्ध हुआ।

एक दिन राजा का रथकार कोशा वेश्या को बहुत ही स्वरूपवती सुन कर उस पर मोहित हुआ। उसके पास जाने की उसकी इच्छा हुई। राजा के

हुक्म के बिना वह किसी अन्य को अपने घर में आने नहीं देती, यह जान कर उसने अपनी कोई कला बता कर राजा को प्रसन्न किया। तब राजा ने प्रसन्न हो कर कहा कि तू जो माँगेगा, वह मैं तुझे दूँगा। रथकार ने कोशा की माँग की। राजा ने उसे हुक्म दिया और कोशा को सौंप दिया।

कोशा नितप्रति रथकार के पास श्री स्थूलिभद्रजी का गुणगान करने लगी। यह देख कर रथकार ने सोचा कि यदि मैं इसे कोई कला बताऊँ, तो यह मेरे गुण जानेगी और मेरी स्तुति भी करेगी। यह सोच कर झरोखे में बैठ कर उसने एक बाण से आमों का झूमका बींधा। फिर उसके पीछे दूसरा बाण जोड़ा। इस तरह एक के पीछे एक बाण जोड़ कर झरोखे में बैठे हुए ही उसने आमों की लूम तोड़ कर वेश्या को दे दी। फिर वह कहने लगा कि देख मेरी कला कैसी है?

तब कोशा वेश्या ने सरसों का एक ढेर कर के उस पर फूल सहित एक सुई खड़ी की। फिर उस पर नृत्य किया। उसका नृत्य देख कर रथकार बहुत खुश हो कर कहने लगा कि माँग। माँग। मैं तुझसे सन्तुष्ट हुआ हूँ। तब कोशा ने पूछा कि तुमने कैसा तमाशा देखा कि जिसे देख कर तुम मुझ पर प्रसन्न हुए? मैंने सुई की नोंक पर यह जो नृत्य बताया, ऐसी कलाएँ यदि सीखने बैठें तो हजारों सीखी जा सकती हैं। इसी तरह आपने जो आम की लूम तोड़ कर बतायी, वह भी सीखना सरल है। उसमें कुछ कठिन नहीं है। अभ्यास करने से सब कलाएँ सीखी जाने जैसी हैं।

पर मेरे जैसी स्वरूपवती स्त्री पास में खड़ी थी, बरसात के दिन थे, काम को जागृत करने वाली चित्रशाला थी तथा शरीर को पुष्ट करने वाले श्रेय से श्रेय भोज्य पदार्थ मिलते थे। उन्हें खा कर वे मेरे पास रहते थे। इसी तरह मैं भी उन पर मोहित हो कर हमेशा सराग दृष्टि से बहुत प्रीतिपूर्वक उनसे विषयसेवन करने की याचना करती थी। इतना अनुकूल योग होते हुए भी एक क्षणमात्र भी जिनका मन चलायमान नहीं हुआ,उन श्री स्थूलिभद्रजी के पास जो ऐसी अद्‌भुत कला थी, उसे सीखना बड़ा कठिन है। उस महामुनि के आगे मैंने अनेक प्रकार के हावभाव किये, पर वे महापुरुष

किंचित् मात्र भी नहीं डिगे। धन्य है उनके माता-पिता को, जिनके कुल में ऐसा पुरुषरत्न उत्पन्न हुआ। ऐसा उपदेश दे कर रथकार का मन वैराग्य की ओर मोड़ कर उसे श्री स्थूलिभद्रजी के पास भेजा। उसने भी स्थूलिभद्रजी के पास दीक्षा ली।

उस समय बारह वर्ष तक अकाल पड़ा। तब सब मुनिराज ग्यारह अंग के जानकार रहे, पर द्वादशांगी का जानकार कोई न रहा। तब सकल संघ ने दो मनुष्य भेज कर श्री भद्रबाहुस्वामी को बुलाया। भद्रबाहुस्वामी ने कहा कि मैंने प्राणायाम ध्यान शुरु किया है, इसलिए मुझसे आया नहीं जा सकेगा। तब श्रीसंघ ने पुनः कहलवाया कि महाराज! जो श्रीसंघ की आज्ञा न माने, उसे किस प्रकार का दंड देना चाहिये? श्री भद्रबाहुजी ने कहा कि उसे गच्छ बाहर करना ऐसी आज्ञा है, पर मुझे ध्यान में अन्तराय होगा, इसलिए श्रीसंघ को ऐसा करना उचित है कि पढ़ने वाले साधुओं को मेरे पास भेज दिया जाये। इससे उन्हें पढ़ाने का कार्य हो सकेगा।

तब श्रीसंघ ने मिल कर श्री स्थूलिभद्रप्रमुख पाँच सौ साधुओं को श्री भद्रबाहुस्वामी के पास भेजा। वहाँ गुरु ने सब साधुओं को सात वाचनाएँ दीं। उसमें अन्य सब साधु तो पढ़ने से हार गये, पर श्री स्थूलिभद्रजी ने दो वस्तु कम दस पूर्व पढ़ लिये। इतने में श्री स्थूलिभद्रजी की सात बहनें- यक्षा, यक्षदिन्ना, भूता, भूतदिन्ना, सेना, वेना और रेना ये सातों साध्वियाँ जो श्री संभूतिविजयजी के पास दीक्षित हुई थीं, श्री स्थूलिभद्रजी को वन्दन करने के लिए आयीं। उन्होंने प्रथम श्री भद्रबाहुस्वामी से उन्हें वन्दन कर के पूछा कि स्थूलिभद्रजी कहाँ हैं? गुरु ने कहा कि वे पर्वत की गुफा में पढ़े हुए पूर्व की आवृत्ति कर रहे हैं। तब वे सातों वहाँ गयीं। उन्हें आते देख कर ज्ञान का चमत्कार दिखाने के लिए श्री स्थूलिभद्रजी सिंह का रूप बना कर बैठ गये। वहाँ सिंह को देख कर साध्वियाँ डर कर पुनः गुरु के पास आ कर बोलीं कि महाराज! वहाँ तो सिंह बैठा है। तब गुरु ने ज्ञान से जान लिया कि स्थूलिभद्रजी ने विद्या प्रकट की है, ऐसा लगता है। ऐसा विचार कर के कहा कि अब तुम जाओ, स्थूलिभद्रजी वहीं हैं। वे पुनः वहाँ गयीं

और भाई को देख कर हर्षसहित उन्हें वन्दन किया।

फिर गुरु के पास आ कर कहा कि महाराज! हमारे साथ श्रीयक ने दीक्षा ली थी। उसे यक्षा ने उपवास कराया। इससे उसका स्वर्गवास हो गया। फिर यक्षा ने प्रायश्चित्त देने के लिए श्रीसंघ से कहा। तब श्रीसंघ ने काउस्सग्ग कर के शासनदेवी को सीमंधरस्वामी के पास भेजा। सीमंधरस्वामी के मुख से दो चूलिकाएँ ले कर शासनदेवी लौट आयी। इतना कह कर गुरु को वन्दन कर वे अपने स्थान पर गयीं।

एक दिन श्री स्थूलिभद्रजी अपने ब्राह्मण मित्र के घर गये। वहाँ ब्राह्मण की स्त्री से पूछा कि मेरा मित्र कहाँ है? तब स्त्री ने कहा कि घर में खाने के लिए कुछ नहीं है, इसलिए गाँव में भिक्षा माँगने गये हैं। श्री स्थूलिभद्रजी ने ज्ञानबल से देखा, तो उसके घर में पितरोपार्जित बहुत धन भरा हुआ दिखाई दिया। ब्राह्मण को उसकी जानकारी न होने से वह भिक्षा माँगता था। फिर श्री स्थूलिभद्रजी ने अपनी दृष्टि से गड़े हुए धन का स्थान उसकी स्त्री को बता दिया और वहाँ से निकल गये। ब्राह्मण ने घर आ कर उसकी स्त्री के कहने से गड़े हुए धन का स्थान जान लिया और विचार किया कि पक्के प्रमाण के बिना मुनिराज दृष्टि देते नहीं हैं। इसलिए उसने जमीन खोद कर देखा, तो उसमें से बहुत धन निकला। उसके योग से वह ब्राह्मण सुखी हुआ।

इस तरह एक सिंह की विकुर्वणा की और दूसरा ब्राह्मण को धन दिखाया। ये दो अनुचित कार्य कर के श्री स्थूलिभद्रजी गुरु के पास वाचना लेने आये। तब गुरु ने कहा कि पूर्वोक्त दो काम करने से तुम वाचना के अयोग्य हुए हो। फूटे हुए बर्तन में दूध रहता नहीं है। इसी प्रकार तुम्हें भी अब वाचना नहीं दी जा सकती। यह सुन कर स्थूलिभद्रजी उदास हो गये। उन्होंने श्रीसंघ से विनती की कि मुझसे भूल होने के कारण अब मुझे गुरु वाचना देते नहीं हैं। तब श्रीसंघ ने मिल कर भद्रबाहु गुरु से स्थूलिभद्रजी को वाचना देने के लिए विनती की। इस कारण से गुरु ने उन्हें चार पूर्व मूल पाठ से पढ़ाये, पर अर्थ नहीं सिखाया और यह भी कहा कि ये चार पूर्व तुम

अन्य किसी को मत पढ़ाना। तब से पश्चात् के चार पूर्वों के ज्ञान का विच्छेद हुआ और दस पूर्व का ज्ञान शेष रहा।

ये श्री स्थूलिभद्रजी आचार्य गृहस्थावस्था में तीस वर्ष, व्रत पर्याय में चौबीस वर्ष और युगप्रधान पद में पैंतालीस वर्ष एवं सर्वायु निन्यानबे वर्ष की भोग कर श्री महावीरस्वामी के निर्वाण के बाद दो सौ पन्द्रहवें वर्ष में देवलोक गये।७. इनमें एक श्री जंबूस्वामी केवली हुए और शेष सब श्रुतकेवली हुए।

आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ति और राजा संप्रति का वृत्तान्त

श्री स्थूलिभद्रजी के पाट पर एक श्री आर्य महागिरि एलापत्य गोत्रीय और दूसरे श्री आर्य सुहस्ति वासिष्ठ गोत्रीय ये दो शिष्य आचार्य हुए। इनके समय में जिनकल्पमार्ग का विच्छेद हुआ था, तो भी श्री आर्य महागिरिजी ने जिनकल्प की तुलना की। याने ये जिनकल्प की मर्यादा के अनुसार चलने लगे।

एक दिन श्री आर्य सुहस्तिसूरि किसी सेठ के घर उपदेश दे रहे थे, उस अवसर पर श्री आर्य महागिरिजी गोचरी आये। उन्हें देख कर श्री आर्य सुहस्ति तुरन्त उठ कर खड़े हो गये। तब सेठ ने पूछा कि ये महात्मा कौन हैं? आर्य सुहस्तिसूरि ने सेठ के आगे आर्य महागिरिजी की स्तवना कर के सब वृत्तान्त कह सुनाया।

तथा इनके समय में अकाल पड़ा। खाने के लिए अनाज मिलना मुश्किल हो गया। इससे सब लोग दुःखी हुए। राजा जैसे लोग भी रंक जैसे हो गये, तो भी श्रावक लोग साधुओं को बहुत भिक्षा देते थे। साधुओं को अधिक भिक्षा मिलते देख कर एक भिखारी साधुओं के पीछे चलने लगा। उसने कहा कि मुझे खाने के लिए कुछ दो, तुम्हें बहुत खाना मिलता है। साधुओं ने कहा कि हमारे गुरु से पूछ कर तू उनकी आज्ञा ले आ। तब भिखारी गुरु के पास आया। गुरु ने कहा कि जो हमारे जैसा होता है, उसे हम देते हैं। तब भिखारी ने कहा कि ठीक है, आपके जैसा मुझे भी बना लो।

यह सुन कर गुरु ने भी भावी लाभ जान कर उसे दीक्षा दे कर उसकी इच्छा के अनुसार भोजन कराया और कहा कि पूर्वकृत पुण्य के उदय से तुम्हें चारित्र मिला है, इसलिए शुद्ध भाव रखना। इतने में उसे वमन हुआ। तब सब साधु उसकी वैयावच्च करने लगे। इससे भिक्षु ने चारित्र की अनुमोदना की और मर कर उज्जयिनी नगरी में श्रेणिक राजा के पाट पर कोणिक राजा, उसके पाट पर उदायिन राजा, उसके पाट पर नापित नन्द नामक नौ राजाओं के पाट हुए। तेरहवें पाट पर मौर्य चन्द्रगुप्त, चौदहवें पाट पर बिन्दुसार, पन्द्रहवें पाट पर अशोकश्री और सोलहवें पाट पर अशोकश्री का पुत्र कुणाल हुआ। उस कुणाल का पुत्र संप्रति नामक राजा हुआ। जन्मते ही उसके दादा ने उसे राज्य दिया। वह अनुक्रम से तीन खंड पृथ्वी का राज्य भोगने वाला हुआ।

एक दिन संप्रति राजा झरोखे में बैठे थे। उस समय उन्होंने रथयात्रा में आर्य सुहस्तिसूरि को जाते देखा। इससे उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ और पूर्व में भिक्षुक के भव में स्वयं साधु हुए थे, वह सब वृत्तान्त दिखाई दिया। तब झरोखे से नीचे उतर कर गुरु के पाँव पड़ कर पूछा कि हे स्वामिन्! अव्यक्त सामायिक का फल क्या है? तब गुरु ने कहा कि उससे राज्यादि की प्राप्ति होती है। यह सुन कर संप्रति राजा ने विशेष दृढ़ हो कर गुरु से पूछा कि हे स्वामिन्! क्या आप मुझे पहचानते हैं? गुरु ने उपयोग दे कर कहा कि तुम भिक्षुक के भव में हमारे शिष्य थे। अब तुम्हें राज्य मिला है, इसलिए धर्म की वृद्धि करो।

गुरु का यह वचन सुन कर राजा ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। फिर सवा लाख नये जिनमन्दिर बनवाये, सवा करोड़ जिनबिंबों की प्रतिष्ठा करवायी, तेरह हजार जीर्णोद्धार कराये, पचानबे हजार पीतल की प्रतिमाएँ बनवायीं, सात सौ दानशालाएँ स्थापित कीं, सारी धरती देवालयों से शोभायमान की, लोगों को करमुक्त किया और साधुवेश पहना कर अपने सुभटों को अनार्य देशों में भेज कर वहाँ के लोगों को समझा कर जैन साधुओं का अनार्य देशों में विहार करवाया।

तथा हलवाई लोगों को कहलवा दिया कि तुम लोग शुद्ध आहारादिक मुनियों को वहोराना और उसका मूल्य राजभंडार से ले जाना, पर इस बात की खबर साधुओं को मत पड़ने देना। फिर लोग भी इसी प्रकार साधुओं को आहारादिक देने लगे। साधु भी शुद्ध जान कर आहारादिक वहोरने लगे। इतने में आर्य महागिरिजी बोले कि हे शिष्यो ! ऐसा स्निग्ध सदोष आहार नित्य क्यों ले आते हो? तब शिष्यों ने कहा कि हम चौकसी तो नित्य करते हैं, पर हमें कुछ मालूम नहीं पड़ता। गुरु ने कहा कि अब अच्छी तरह चौकसी करना। फिर गोचरी के लिए घूमते समय लड़कों से पूछा कि तुम्हें नित्य लड्डू प्रमुख कहाँ से मिलते हैं? तब लड़कों ने कहा कि यह सब आपका प्रताप है। हम भी आपके प्रताप से लड्डू प्रमुख खाते हैं और आपको भी वहोराते हैं। राजा का भंडार अखूट है।

यह सुन कर शिष्यों ने आ कर आर्य महागिरिजी से सब बात कही। आर्य महागिरिजी ने राजद्रव्य जान कर आर्य सुहस्ती से कहा कि तुम आहार की चौकसी बराबर करते हो या नहीं? हमें राजद्रव्य मिलता है, वह कैसे? तब आर्य सुहस्ति बिना उपयोग के बोले कि राजद्रव्य तो सर्वत्र है। राजद्रव्य कहाँ नहीं है? आप ही बताइये। तब आर्य महागिरिजी बोले कि ऐसी शिथिलता की बात तुम क्यों करते हो? यदि तुम स्वयं ही ऐसा बोलोगे, तो फिर दोष का परिहार कैसे होगा? इसलिए अब तुम्हारे और हमारे सांभोगिता नहीं है ऐसा मानना। यह कह कर वे अन्यत्र विहार कर गये।

आर्य महागिरि तीस वर्ष गृहस्थावास में, चालीस वर्ष व्रत में और तीस वर्ष युगप्रधान पद में एवं सर्वायु एक सौ वर्ष की भोग कर स्वर्गवासी हुए। यहाँ तक तो एक ही समाचारी और एक ही गच्छ था, परन्तु श्री आर्य सुहस्तिसूरि से सांभोगिकता भिन्न हुई। आर्य सुहस्ति तीस वर्ष गृहस्थावास में, चौबीस वर्ष व्रत पर्याय में और छियालीस वर्ष युगप्रधान पद में एवं एक सौ वर्ष की सर्व आयु भोग कर वीर निर्वाण से दो सौ इकावन वर्ष बाद देवलोक गये। ८.

९. श्री आर्य सुहस्ति के दो शिष्य हुए- एक सुस्थित और दूसरे

सुप्रतिबद्ध। इन्होंने कोटि बार सूरिमंत्र का जाप किया था। ये काकन्दी नगरी में जन्मे थे और इनका व्याघ्रापत्य गोत्र था। इनके पाट पर १०. श्री आर्य इन्द्रदिन्नसूरि कौशिक गोत्रीय हुए। उनके पाट पर ११. श्री आर्य दिन्नसूरि गौतम गोत्रीय हुए। उनके पाट पर १२. श्री आर्य सिंहगिरि कौशिक गोत्रीय हुए, जिन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ था। उनके पाट पर १३. श्री आर्य वज्रसूरि गौतम गोत्रीय हुए। उनके पाट पर १४. श्री आर्य वज्रसेनसूरि उत्कौशिक गोत्रीय हुए। उनके चार शिष्य हुए- एक नाइल, दूसरा पोमिल, तीसरा जयंत और चौथा तापस। इन चारों के नाम से चार शाखाएँ निकलीं।

वज्रस्वामी और वज्रसेनसूरि

श्री आर्य सिंहगिरि से तीन पाट तक का संक्षिप्त स्वरूप बताते हैं- श्री सिंहगिरि के पास सुनन्दा के भाई समित तथा सुनन्दा के पति धनगिरि ने दीक्षा ली। सुनन्दा गर्भवती थी, उसे उन्होंने तुंबवनगाँव में रख दिया। फिर सुनन्दा के पुत्र हुआ। उस समय पड़ोसी की स्त्री ने कहा कि यदि आज इसके पिता ने दीक्षा नहीं ली होती, तो इस पुत्र के जन्म का महामहोत्सव होता, पर अब पिता के बिना अन्य कौन आ कर महोत्सव करे?

यह बात सुन कर उस बालक को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब बालक ने जाना कि यदि मेरी माता को मैं प्रसन्न रखूँगा, तो यह मुझे नहीं छोड़ेगी, इसलिए किसी तरह यह ऊब जाये, ऐसा कुछ उपाय करना चाहिये। इससे यह मुझे छोड़ देगी। फिर मैं दीक्षा ले लूँगा। ऐसा जान कर माता को उद्वेग कराने के लिए उसने नित्य रुदन करना शुरु किया, क्योंकि उसका चारित्र लेने का भाव चल रहा था। फिर बालक के रुदन से माता बहुत उद्वेग करने लगी और उसने सोचा कि इस पुत्र का मैं क्या करूँ? इसे किसी को दे दूँ तो ठीक रहेगा।

इसी अवसर में सिंहगिरि आचार्य वहाँ पधारे। जब धनगिरि गोचरी जाने लगे, तब गुरु ने ज्ञानदृष्टि से विचार कर कहा कि आज तुम्हें गोचरी

में सचित्त-अचित्त जो कुछ मिले, उसे ले लेना। फिर धनगिरि गोचरी घूमते घूमते सुनन्दा के घर गये। सुनन्दा ने कहा कि तुम्हारे इस पुत्र ने तो मुझे उल्टे सन्ताप कर दिया है, इसलिए इसे ले जाइये। तब धनगिरि ने कहा कि अब तो तू दे रही है, पर बाद में दुःख करेगी। सुनन्दा ने कहा कि मैं दुःख नहीं करूँगी। आप इसे सुख से ले जाइये। तब धनगिरिजी ने अनेक स्त्रियाँ और अन्य लोगों की साक्षी से पुत्र को ले कर झोली में डाला और उपाश्रय में आये। गुरु ने झोली उठायी, तब उसमें अधिक भार लगा। तब उन्होंने कहा कि क्या यह वज्र है? यह कह कर उन्होंने झोली खोली तो अन्दर बालक दिखाई दिया। उन्होंने उसका नाम वज्र रखा। उपाश्रय में आने के बाद बालक ने रुदन करना बन्द कर दिया।

गुरु ने शय्यातरनी श्राविका को वह बालक सौंपा। उसने उसे पलने में रखा। वह जब छह महीने का हुआ, तब वहाँ शाला में जो साध्वियाँ पढ़ा करती थीं, उनके वचन सुन कर पालने में लेटे लेटे उसने ग्यारह अंग पढ़ लिये। अनुक्रम से वह तीन वर्ष का हुआ, तब सुनन्दा ने कहा कि मैं अपना पुत्र वापस लूँगी। इस पर संघ ने कहा कि यह गुरु का माल है, इसलिए हम से दिया नहीं जा सकता। फिर वह राजदरबार में गयी। संघ की विनती से वहाँ गुरु भी आये। राजा ने न्याय किया कि यह बालक जिसके उपकरण ले, उसका ही पुत्र जानना। तब माता ने लड्डू तथा खिलौनेप्रमुख बालक को दिखाये, पर बालक ने उनकी तरफ देखा तक नहीं। फिर गुरु ने बालक से कहा कि यह ओघा (रजोहरण) तुझे चाहिये तो ले ले। तब बालक ने ओघा ग्रहण किया और वह नाचने-कूदने लगा। फिर राजा ने कहा कि न्याय हो चुका। यह कह कर उसने बालक गुरु को सौंप दिया। वह आठ वर्ष का हुआ, तब उसने दीक्षा ली। उस समय सुनन्दा ने कहा कि मेरा पुत्र भी तुमने ले लिया है, तो अब मुझे भी दीक्षा दे दो। फिर गुरु ने सुनन्दा को भी दीक्षा दी।

एक दिन उज्जयिनी के मार्ग में वज्रऋषि का पूर्वभव का मित्र कोई देव मनुष्य का रूप बना कर वज्रऋषि की परीक्षा लेने के लिए उन्हें कुम्हड़े

(कद्दू) की भिक्षा देने लगा। उस समय वज्रऋषि ने जाना कि कुम्हड़े की ऋतु तो अब नहीं है, तो इस समय यह कुम्हड़ा कहाँ से लाया? यह तो कोई देवमाया लगती है, इसलिए देवपिंड नहीं लेना चाहिये। ऐसा जान कर उन्होंने भिक्षा नहीं ली। तब देव ने सन्तुष्ट हो कर उन्हें वैक्रियलब्धि अर्पण की। पुनः एक बार गर्मी के दिनों में घेवर की परीक्षा में देव उन्हें डिगाने आया। तब भी वज्रमुनि चलायमान नहीं हुए। उस समय देव ने उन्हें आकाशगामिनी विद्या दी।

एक दिन गुरु स्थंडिलभूमि गये थे और अन्य साधु गोचरी गये हुए थे। उस समय वज्रमुनि बालक्रीड़ा से साधुओं के उपधि-प्रमुख उपकरण चारों ओर रख कर स्वयं बीच में बैठ कर जैसे गुरु वाचना देते हैं, वैसे ही भिन्न-भिन्न ग्यारह अंगों की वाचना देने लगे। गुरु ने दरवाजे में चुपचाप खड़े रह कर सब वाचना सुनी। फिर बालक को किसी प्रकार की शंका न हो, इस तरह उच्च स्वर में 'निसीहि' कह कर गुरु उपाश्रय में आये। वज्रऋषि ने भी अपना सब कार्य समेट लिया। फिर गुरु ने उस बालक के गुण प्रकट करने के लिए साधुमंडल से कहा कि तुम लोग यहीं रहना, मैं एक गाँव में जा कर आता हूँ। तब साधुओं ने कहा कि हमें वाचना कौन देगा? गुरु ने कहा कि वज्रऋषि वाचना देंगे। इतना कह कर गुरु दूसरे गाँव चले गये।

वे साधु गुरु का वचन प्रमाण करने वाले विनयवान थे, इसलिए वज्रमुनि का विनय कर के उनके पास वाचना लेने लगे। उन्हें वज्रमुनि ने ऐसी वाचना दी कि गुरु अनेक वाचनाओं से जितना पढ़ाते थे, उतना एक ही वाचना में पढ़ा दिया। साधुओं ने सोचा कि गुरु गाँव गये हैं, उन्हें लौटने में चार दिन अधिक लगें तो ठीक होगा। इतने में हमारा अमुक श्रुतस्कंध पूरा हो जायेगा। फिर कई दिन बाद गुरु लौटे। उन्होंने पूछा कि हे साधुओ! क्या तुम्हारी वाचना सुखपूर्वक हुई। साधुओं ने कहा कि हाँ महाराज! अब हमारे वाचनाचार्य वज्रमुनि होवें। फिर गुरु ने वज्रमुनि को वाचनाचार्य बनाया। गुरु की आज्ञा से वज्रमुनि उज्जयिनी नगरी में भद्रगुप्त आचार्य के पास दस पूर्व पढ़े और उन्होंने आचार्यपद प्राप्त किया।

एक दिन पाटलीपुर में धन सेठ के घर साध्वियाँ उतरी थीं। उन्होंने वज्रस्वामी के गुण और रूप का वर्णन किया। उसे सुन कर सेठ की पुत्री रुक्मिणी ने यह प्रतिज्ञा की कि मैं वज्रस्वामी को छोड़ कर अन्य किसी के साथ विवाह नहीं करूँगी। इतने में वज्रस्वामी भी पाटलीपुर आये। उन्होंने विचार किया कि मेरे रूप से लोग क्षुभित होते हैं, वे क्षुभित न हों इसके लिए अपना रूप सामान्य बना लेना चाहिये। फिर विद्या के बल से रूप संक्षेप कर के सामान्य रूप से वे धर्मदशना देने लगे। तब साधुओं ने लोगों के मुख से सुना कि गुरु की देशना तो अमृत जैसी है, पर रूप तो सामान्य है। यह बात वज्राचार्य को मालूम हुई। तब दूसरे दिन एक हजार दल का सुवर्णकमल रच कर वे उस पर बैठे और जैसा अपना मूलरूप था, उसी रूप में देशना दी। यह देख कर लोग विस्मित हुए। धनसेठ भी अपनी महारूपवती रुक्मिणी नामक पुत्री और एक करोड़ सुवर्णमुद्राएँ ले कर गुरु के पास आये और उन्हें भेंट करने लगे। गुरु ने कन्या को प्रतिबोध दिया। फिर धर्मज्ञान दे कर दीक्षा दी और उसे साध्वी बनाया।

एक बार वज्रस्वामी ने पदानुसारिणी लब्धि के बल से श्री आचारांग सूत्र के महापरिज्ञा नामक अध्ययन में से मानुषोत्तर पर्वत पर जाया जा सके, ऐसी आकाशगामिनी विद्या निकाली। फिर वे उत्तर दिशा में अकाल पड़ा जान कर श्रीसंघ को पट (वस्त्र) पर बिठा कर अन्य स्थान पर ले जाने के लिए तैयार हुए। इतने में शय्यातर ने कहा कि महाराज! मैं भी आपका साधर्मिक हूँ, इसलिए मुझे भी साथ ले चलो। तब उसे भी पट पर बिठा कर आकाश में रह कर चलते हुए जगह जगह श्री जिनचैत्यों को वन्दन कराते हुए ताकीद से वे महानसी नगरी में गये।

वहाँ यद्यपि सुकाल था, पर वहाँ का राजा बौद्ध मतावलंबी था। उसने बौद्धदर्शनी भक्त लोगों के कहने से पर्युषण के दिनों में श्री जैनमंदिरों में फूल नहीं ले जाये जा सकें, ऐसी व्यवस्था की। यह देख कर संघ ने श्री वज्रस्वामी से विनती की कि महाराज! फूलों की बन्दी हो गई है। तब वज्रस्वामी ने कहा कि तुम लोग चिन्ता मत करना। मैं उसका उपाय

करूँगा। यह कह कर आकाश में उड़ कर माहेश्वरीपुरी में हुताशन नामक देव के वन में वे अपने पिता के मित्र वनमाली के पास गये। वहाँ जा कर उससे कहा कि फूल तैयार रखना।

इतना कह कर वे हिमवन्त पर्वत पर गये। वहाँ पद्मद्रह की कमलनिवासिनी लक्ष्मीदेवी ने श्री वज्रस्वामी को वन्दन किया और कहा कि हे स्वामिन्! आपकी इस दासी को कुछ आदेश दीजिये। तब आचार्य ने कहा कि पूजा के लिए फूल चाहिये। लक्ष्मीदेवी स्वयं पूजा के लिए जो लक्षदल कमल ले कर आयी थी, उसे हाजिर किया। उसे ले कर लौटते वक्त हुताशन वन में से बीस लाख फूल ले कर विमान में बैठ कर पूर्वभव का मित्र तिर्यग्जृंभक जाति का देव भी आचार्य के साथ गीत-नृत्य-वाजित्रप्रमुख महोत्सव करते हुए आया। वज्रस्वामी ने सब पुष्प श्रावकों को दिये और जिनचैत्य की महिमा बढ़ायी। श्रीसंघ भी बहुत हर्षित हुआ। उस नगर का राजा भी बौद्ध धर्म का त्याग कर जिनधर्मी हुआ।

फिर एक दिन दक्षिण मार्ग में जाते हुए श्री वज्रस्वामी को श्लेष्म हुआ। उन्होंने साधुओं के पास गोचरी में सूँठ मँगायी। उसे कान पर रख कर सोचा कि बाद में खा लूँगा, पर भूल से वह वैसे ही रह गयी। प्रतिक्रमण करते समय वह नीचे गिरी। तब वज्रस्वामी ने सोचा कि मैं दस पूर्वधर हूँ, फिर भी मुझसे ऐसी भूल हुई है। इससे लगता है कि मेरी आयु अब स्वल्प रह गयी है, इसलिए अनशन करना ठीक है।

फिर उन्होंने अपने शिष्य वज्रसेन से कहा कि बारह वर्ष का अकाल पड़े, तब तुम सोपारापुर-पट्टन जाना। कोई तुमसे पूछे कि सुकाल कब होगा? तब तुम उत्तर देना कि जिस दिन लाख मूल्य की हंडी चूल्हे पर चढ़ेगी, उसके दूसरे दिन से सुकाल होगा। मैं तो अब अनशन करूँगा। यह कह कर उन्होंने वज्रसेन को सोपारापट्टन जाने के लिए बिदा किया।

अपने पास रहे हुए साधुओं को जब भिक्षा नहीं मिली, तब उन्होंने विद्यापिंड बना कर कइयों को भोजन कराया। फिर पाँच सौ साधुओं को साथ ले कर अनशन करने के लिए चले। उनमें एक छोटा था। उसे भरमाते

हुए कहा कि तुम यहाँ बैठो, मैं आता हूँ। पर उस शिष्य ने मोह से कहा कि मैं तो आपके पीछे आऊँगा। तो भी गुरु ने उसे समझा कर रखा। तब शिष्य ने सोचा कि गुरु महाराज को अप्रीति न हो, वैसा करना ही ठीक होगा। यह सोच कर पुनः पर्वत के मूल में आ कर उसने तपी हुई शिला पर अनशन कर लिया। बालक होने के कारण सुकुमारता से तत्काल शुभध्यान में मर कर वह देवलोक गया। देवों ने मिलकर उसकी महिमा की।

अन्य साधुओं ने भी विशेष दृढ़ हो कर अनशन किया। पर मिथ्यात्वी देव वहाँ आ कर उन्हें अनशन में मोदक के लिए निमंत्रण करने लगे। उन्होंने कहा कि हे महाराज! यह आहार शुद्ध व निर्दोष है। इसे आप लीजिये। तब साधुओं ने विघ्न का स्थान जान कर नजदीक के दूसरे पर्वत पर जा कर अनशन किया। शुभ ध्यान में काल कर के वज्रस्वामी आठ वर्ष गृहस्थावास में, चवालीस वर्ष व्रत में और छत्तीस वर्ष युगप्रधान पद में एवं अठासी वर्ष की सर्व आयु पूर्ण कर वीर निर्वाण के पाँच सौ चार वर्ष बाद देवलोक गये।

इन्द्र महाराज ने रथ पर बैठ कर पर्वत की प्रदक्षिणा कर के सब साधुओं को वन्दन किया। वहाँ इन्द्र महाराज के रथ की रेखा निर्माण हुई। इससे उस पर्वत का नाम रथावर्त्त पड़ा। वहाँ के वृक्ष भी साधुओं को नमने से आज भी झुके हुए दिखायी देते हैं।

श्री वज्रस्वामी के देवलोक गमन के बाद दसवाँ पूर्व तथा अर्द्धनाराच संहनन का विच्छेद हुआ। आर्य सुहस्ति तथा आर्य वज्रस्वामी के मध्य में १. गुणसुन्दरसूरि, २. कालिकाचार्य, ३. स्कंदिलाचार्य, ४ रेवतीमित्र, ५. धर्मसूरि, ६. भद्रगुप्ताचार्य और ७. श्रीगुप्ताचार्य ये सात युगप्रधान हुए, ऐसा कई पट्टावलियों में लिखा है।

वज्रसेनाचार्य सोपारा नगर में जिनदत्त श्रावक तथा उसकी ईश्वरी भार्या के घर गोचरी गये। इन दोनों को प्रथम से श्रीवज्रस्वामी का प्रतिबोध प्राप्त था। अकाल के कारण अनाज न मिलने से सेठ और सेठानी ने अपने चार पुत्रों सहित लाखमूल्य अनाज की हंडी चूल्हे पर चढ़ा कर विचार

किया कि अपन सब इस राँधे हुए अनाज में जहर मिला कर खा लेंगे और फिर अनशन कर लेंगे। यह सोच कर वे हंडी में जहर डालने के लिए तैयार हुए। इतने में वज्रसेनसूरि आये। उन्होंने यह कृत्य देख कर पूछा कि तुम लोग मरने का उपाय क्यों कर रहे हो? तब सेठानी ने कहा कि हमारे पास धन तो बहुत है, पर खाने के लिए अनाज नहीं मिलता। तब वज्रसेनसूरि ने कहा कि गुरु ने कहा है कि जिस दिन लाख द्रव्य की हंडी चढ़ेगी, उसके दूसरे दिन सुकाल होगा। यह सुन कर सेठानी को भी पूज्य के वचन की प्रतीति होने से उसने कहा कि यदि सुकाल हो जायेगा, तो ये मेरे चार पुत्र मैं आपको दे दूँगी। इन चारों को आप दीक्षा देना। ऐसी प्रतिज्ञा कर के उसने हंडी में जहर डालना बन्द कर दिया।

फिर बारह प्रहर बीतने के बाद कई जहाज जो तूफानी हवा के योग से दूर निकल गये थे, वे अच्छी हवा चलने से वापस आये। उनमें जुवार भरी हुई थी। लोगों को वह जुवार मिली। सुकाल हुआ। इस धान्य से युगोद्धार हुआ, इसलिए इसका नाम युगंधरी पड़ा। इसे लोकभाषा में ज्वार भी कहते हैं।

फिर सेठ-सेठानी ने एक नागेन्द्र, दूसरा चन्द्र, तीसरा निवृत्ति और चौथा विद्याधर इन चारों पुत्रों को दीक्षा दिलायी और स्वयं ने भी दीक्षा ली। ये चारों साधु बहुश्रुत आचार्य हुए। इनके नाम से चार शाखाएँ निकलीं। वज्रसेनसूरिजी नौ वर्ष गृहवास में एक सौ सोलह वर्ष व्रत में और तीन वर्ष युगप्रधान पद में एवं एक सौ अट्ठाईस वर्ष की सर्वायु पूर्ण कर वीर निर्वाण से छह सौ बीस वर्ष बाद स्वर्ग गये।

वज्रस्वामी और वज्रसेन के मध्य में आर्यरक्षित और दुर्बलिकापुष्य ये दो युगप्रधान हुए हैं।

यशोभद्रसूरि से विस्तृत स्थविरावली, गण, शाखा और कुल

तुंगीयायन आर्य यशोभद्रसूरि के दो शिष्य हुए- प्राचीन गोत्रीय भद्रबाहु और माढर गोत्रीय संभूतिविजय।

भद्रबाहु के काश्यप गोत्रीय चार स्थविर शिष्य हुए- १. गोदास, २. अग्निदत्त, ३. यज्ञदत्त और ४. सोमदत्त।

स्थविर गोदास से गोदास गण निकला और उसकी १. तामलित्तिया, २. कोड़िवरसीया, ३. पंडुबद्धणीया और ४. दासी खब्बडिया ये चार शाखाएँ हुईं।

संभूतिविजय के बारह शिष्य हुए- १. नन्दनभद्र, २. उपनन्दनभद्र, ३. तीसभद्र, ४. यशोभद्र, ५. सुमनोभद्र, ६. मणिभद्र, ७. पूर्णभद्र, ८. स्थूलिभद्र, ९. ऋजुमति, १०. जंबू, ११. दीर्घभद्र और १२. पांडुभद्र तथा १. यक्षा, २. यक्षदिन्ना, ३. भूता, ४. भूतदिन्ना, ५. सेना, ६. वेना और ७. रेना ये सात आर्यिकाएँ हुईं।

गौतम गोत्रीय स्थूलिभद्र के दो शिष्य हुए- एलापत्य गोत्रीय आर्य महागिरि और वासिष्ठ गोत्रीय आर्य सुहस्ति।

आर्य महागिरि के आठ शिष्य हुए- १. स्थविर उत्तर, २. बलिस्सह, ३. धनर्द्धि, ४. श्रीभद्र, ५. कौडिन्य, ६. नाग, ७. नागमित्र, ८. कौशिक गोत्रीय षडुलूक रोहगुप्त।

स्थविर रोहगुप्त से त्रैराशिकी शाखा निकली और उत्तर-बलिस्सह से उत्तरबलिस्सह गण निकला। इसकी १. कोसंबिया, २. सोइत्तिया, ३. कोडवाणी और ४. चन्दनागरी ये चार शाखाएँ हुईं।

आर्य सुहस्ति के बारह शिष्य हुए- १. आर्य रोहण, २. भद्रयश, ३. मेघ, ४. गणिक कामर्द्धि, ५. सुस्थित, ६. सुप्रतिबद्ध, ७. रक्षित, ८. रोहगप्त, ९. ऋषिगुप्त, १०. श्रीगुप्त, ११. गणिब्रह्मा और १२. गणिसोम।

काश्यप गोत्रीय आर्य रोहण से उद्देह गण निकला। उसकी १. उदुंबरिज्जिया, २. मासपूरिया, ३. मइपत्तिया और ४. पुन्नपत्तिया ये चार शाखाएँ हुईं तथा १. नागभूत, २. सोमभूतिक, ३. उल्लग, ४. हस्तलीय, ५. नन्दिज्ज और ६. पारिहासक ये छह कुल हुए।

हारियस गोत्रीय श्रीगुप्त से चारण गण निकला। उसकी १. हारिय

मालागरी, २. संकासीया, ३. गवेधुया और ४. वज्रनागरी ये चार शाखाएँ हुईं तथा १. वत्थलिज्ज, २. पीइधम्मिय, ३. हालिज्ज, ४. पूसमित्तिज्ज, ५. मालिज्ज, ६. अज्जचेडय तथा ७. कण्णसह ये सात कुल हुए।

भारद्वायस गोत्रीय भद्रयश से उडुवाडिय गण निकला। उसकी १. चंपिज्जिया, २. भद्दिज्जिया, ३. काकंदिया और ४. मेहलिज्जिया ये चार शाखाएँ हुईं तथा १. भद्दजसिय, २. भद्दगुत्तिय और ३. जसभद्द ये तीन कुल हुए।

कुंडिलस गोत्रीय स्थविर कामर्द्धि से वेसवाडिय गण निकला। उसकी १. सावत्थिया, २. रज्जपालिया, ३. अंतरिज्जिया और ४. खेमलिज्जिया ये चार शाखाएँ हुईं तथा १. गणिय, २. मेहिय, ३. कामड्ढिय और ४. इन्द्रपुरग ये चार कुल हुए।

वासिष्ठ गोत्रीय काकंदिक ऋषिगुप्त से माणव गण निकला। उसकी चार शाखाएँ हुईं- १. कासविज्जिया, २. गोयमिज्जिया, ३. वासिट्ठिया और ४. सोरट्ठिया तथा तीन कुल हुए- १. इसि गुत्तियत्थ, २. इसिदत्तिय और ३. अभिजयन्त।

व्याघ्रापत्य गोत्रीय कोटिक काकंदिक सुस्थित-सुप्रतिबद्ध से कोटिक गण निकला। उसकी चार शाखाएँ हुईं- १. उच्चनागरी, २. विज्जाहरी, ३. वइरी और ४. मज्झिमिल्ला तथा कुल भी चार हुए- १. बंभलिज्ज, २. वच्छलिज्ज, ३. वाणिज्ज और ४. पण्हवाहणय।

सुस्थित-सुप्रतिबद्ध के पाँच शिष्य हुए- १. आर्य इन्द्रदिन्न, २. प्रियग्रंथ, ३. काश्यप गोत्रीय विद्याधरगोपाल, ४. आर्य ऋषिदत्त और ५. स्थविर अरिहदत्त। आर्य प्रियग्रंथ से मध्यमा शाखा और विद्याधरगोपाल से विद्याधरी शाखा निकली।

आर्य इन्द्रदिन्न के शिष्य गौतम गोत्रीय आर्य दिन्न हुए। आर्य दिन्न के दो शिष्य हुए- १. माढरस गोत्रीय आर्य शान्तिसेनिक और २. कौशिक गोत्रीय आर्य सिंहगिरि।

आर्य शान्तिसेनिक से उच्चनागरी शाखा निकली। उनके चार शिष्य

हुए- १. आर्य सेनिक, २. आर्य तापस, ३. आर्य कुबेर और ४. आर्य ऋषिपालित। इन चारों शिष्यों के नाम से अनुक्रम से १. अज्जसेणिया, २. अज्जतावसी, ३. अज्ज कुबेरा और ४. अज्ज इसिपालिया ये चार शाखाएँ निकलीं।

आर्य सिंहगिरि के चार शिष्य हुए- १. आर्य धनगिरि, २. आर्य वज्र, ३. आर्य समित और ४. आर्य अरिहदिन्न।

आर्य समित से ब्रह्मद्वीपिका और आर्य वज्र से आर्यवज्री शाखा निकली। गौतम गोत्रीय आर्य वज्र के तीन शिष्य हुए- १. आर्य वज्रसेन, २. आर्य पद्म और ३. आर्य रथ।

आर्य वज्रसेन से आर्य नागिली, आर्य पद्म से अज्ज पउमा और आर्य रथ से अज्ज जयन्ती शाखा निकली। वत्स गोत्रीय आर्य रथ के शिष्य कौशिक गोत्रीय आर्य पूसगिरि हुए। उनके शिष्य गौतम गोत्रीय आर्य फल्गुमित्र, उनके शिष्य वासिष्ठ गोत्रीय आर्य धनगिरि, उनके शिष्य कुच्छस गोत्रीय आर्य शिवभूति, उनके शिष्य काश्यप गोत्रीय आर्यभद्र, उनके शिष्य काश्यप आर्य नक्षत्र, उनके शिष्य काश्यप आर्यरक्ष, उनके शिष्य गौतम गोत्रीय आर्य नाग, उनके शिष्य वासिष्ठ गोत्रीय आर्य जेहिल, उनके शिष्य माढरस गोत्रीय आर्य विष्णु और उनके शिष्य गौतम गोत्रीय आर्य कालक हुए।

आर्य कालक के दो शिष्य हुए- गौतम गोत्रीय आर्य संपलित और आर्य भद्र। इन दोनों के शिष्य गौतम गोत्रीय आर्य वृद्ध हुए। आर्य वृद्ध के शिष्य गौतम गोत्रीय आर्य संघपालित, उनके शिष्य काश्यप गोत्रीय आर्य हस्ती, उनके शिष्य सुव्रत गोत्रीय आर्य धर्म, उनके शिष्य काश्यप गोत्रीय आर्य सिंह, उनके शिष्य काश्यप आर्य धर्म और उनके शिष्य आर्य संडिल्ल हुए।

इस स्थविरावली के अन्त में पीछे से जो नमस्कारात्मक प्राकृत भाषामय गाथा जोड़ी गयी है, उसमें स्थविरों के नाम इस तरह व्यवस्थित किये गये हैं-

१. गौतम फल्गुमित्र, २. वासिष्ठ धनगिरि, ३, कुत्स शिवभूति, ४. कौशिक दुज्जन्त, ५. कौशिक कृष्ण, ६. काश्यप भद्र, ७. काश्यप नक्षत्र, ८. काश्यप रक्षित, ९. आर्य नाग, १०. वासिष्ठ जेहिल, ११. माढर विष्णु, १२. गौतम कालक, १३. गौतम संपलित, १४. गौतम भद्रक, १५. गौतम आर्यवृद्ध, १६. काश्यप संघपालित, १७. काश्यप आर्य हस्ती, १८. सुव्रत आर्य धर्म, १९. काश्यप हस्त, २०. काश्यप सिंह, २१. काश्यप धर्म, २२. गौतम आर्य जंबू, २३. काश्यप नन्दित, २४. माढर देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण, २५. वत्स्य स्थिरगुप्त, २६. गणि कुमारधर्म और २७. काश्यप देवर्द्धि क्षमाश्रमण।

उपर्युक्त सब स्थविर भगवन्तों को त्रिकरण-योग से नमस्कार हो।

त्रैराशिक शाखा और वैशेषिक मत की उत्पत्ति

श्री महावीर से पाँच सौ चवालीस वर्ष बीतने के बाद श्रीगुप्त आचार्य का शिष्य षडुलूक रोहगुप्त हुआ। एक बार वह अतिरंजिका नगरी में आया। उस समय एक बड़ा वादी पोट्टशाला नामक तापस भी उस नगरी में आया। वह बिच्छू, साँप, चूहा, हरिण, सूअर, काक और पक्षी ये सात पदार्थ बनाने की विद्या जानता था। इसके मद से वह सब लोगों से कहता कि मेरा पेट चीर कर विद्या बाहर चली न जाये, इस भय से मैंने पेट पर पट्टा बाँध रखा है तथा एक जामुन की डाली हाथ में रख कर वह यह सूचित करता था कि इस जंबूद्वीप में मेरे साथ वाद करने वाला अन्य कोई नहीं है।

फिर उस तापस ने नगर के राजा से कहा कि आपके नगर में कोई वाद करने वाला हो, तो उसे बुला कर मेरे साथ वाद कराइये, अन्यथा मुझे विजयपताका दीजिये। तब राजा ने पटह बजवाया कि जो वाद करना चाहता हो, वह इस पटह को झेल ले। इतने में श्रीगुप्ताचार्य का शिष्य रोहगुप्त गाँव में गोचरी के लिए आया। पटह सुन कर उसने कहा कि मैं वाद करूँगा।

यह कह कर गुरु के पास आ कर पटह की हकीकत कह सुनायी। गुरु ने कहा कि तुमने यह बात ठीक नहीं की, क्योंकि वह योगी क्रोधी है। इसलिए वह तुम पर विद्या चलायेगा। तब शिष्य ने कहा कि आपके होते हुए वह विजयपताका ले जाये, तो फिर अपनी क्या विशेषता रहेगी? शिष्य का ऐसा निश्चय जान कर

गुरु ने उसे १. मयूरी, २. नकुली, ३. बिडाली, ४. व्याघ्री, ५. सिंही, ६. उलूकी और ७. श्येनी ये सात विद्याएँ दे कर कहा कि यदि कदाचित् तुम्हें कोई अधिक उपद्रव हो, तो यह ओघा मंत्रित कर के देता हूँ। इसे फिराना। इससे उपद्रव दूर हो जायेगा।

इस तरह गुरु से आज्ञा ले कर बलश्री नामक राजा की सभा में आ कर रोहगुप्त ने योगी से कहा कि तेरा वाद क्या है? उसे सुना। तब योगी छल कर के बोला कि हमारे मत में एक जीवराशि और दूसरी अजीव राशि ये दो राशियाँ कही हैं। योगी के ऐसे बोल सुन कर रोहगुप्त ने विचार किया कि इस बात पर यदि मैं हाँ कहूँगा, तो यह कहेगा कि मैंने मेरी बात इसे मंजूर करा दी। मेरा मत इसने मान लिया। इससे लोग जानेंगे कि शिष्य हार गया।

यह सोच कर शिष्य ने भी कुतर्क कर के कहा कि तुम दो राशि कहते हो, वह गलत है। जीव, अजीव और नोजीव संसार में ये तीन राशियाँ हैं। तब योगी ने कहा कि तुम नोजीव राशि कैसे कहते हो? रोहगुप्त ने तुरन्त एक डोरा बट कर भूमि पर रखा। वह हिलने लगा, तब उसने कहा कि देख, यह नोजीव है। ऐसी अनेक युक्तियाँ लगा कर उसने संसार में जीव, अजीव और नोजीव ये तीन राशियाँ स्थापन कीं। इससे योगी हार गया।

फिर योगी विद्याएँ चलाने लगा। प्रथम उसने डंक मारने वाले बड़े बड़े बिच्छू बनाये। तब रोहगुप्त ने मोर बनाये। वे आ कर सब बिच्छू खा गये। फिर योगी ने साँप बनाये, तब शिष्य ने नेवले बनाये। योगी ने चूहे बनाये, तो शिष्य ने बिल्लियाँ बनायीं। योगी ने तीखे सींग वाले हिरन बनाये, तब शिष्य ने बाघ बनाये। उन्होंने सब हिरनों को मार डाला। योगी ने सूअर बनाये, तो शिष्य ने सिंह बनाये। योगी ने कौए बनाये, तो शिष्य ने उल्लू बनाये और योगी ने पक्षी बनाये, तब शिष्य ने बाज बनाये। आखिर इसमें भी योगी हार गया। तब योगी ने गर्दभी विद्या चलायी। उस समय शिष्य ने ओघा फिराया। इससे विद्या भाग गयी। इस तरह योगी हार गया।

शिष्य विजयी हो कर बहुत परिवार के साथ गुरु के पास आया। गुरु ने पूछा कि तुमने उसे किस तरह जीता? शिष्य ने कहा कि तीन राशि की स्थापना कर के जीता। गुरु ने कहा कि वत्स! तुमने यह बात अच्छी नहीं की। तुमने भगवान के मत से विपरीत कहा। इसलिए राजसभा में जा कर 'मिच्छा मि दुक्कडं' दे आओ। यदि 'मिच्छामि दुक्कडं' नहीं दोगे, तो जैनमत के उत्थापक बनोगे। शिष्य ने कहा कि मेरे मुख से मैं क्यों झूठा बनूँ? मुझ से तो मिच्छा मि दुक्कडं दिया नहीं जायेगा। मैंने

झूठी स्थापना नहीं की है। राशियाँ तो तीन ही हैं। तब गुरु ने कहा कि यदि मेरे साथ भी वाद करने की इच्छा हो, तो चलो, राजसभा में जा कर अपन वाद करें।

यह कह कर अपने शिष्य को साथ ले कर गुरु राजसभा में पहुँचे और कहने लगे कि हे राजन्! मेरे इस शिष्य ने वादी को जीतने के लिए जो तीन राशियों की स्थापना की है, वह असत्य है। यह मेरा कहा मानता नहीं है। यह मेरे साथ वाद करेगा। हम दोनों के मध्य आप साक्षीदार रहें, तो हम वाद करें। तब राजा ने कहा कि सुख से वाद करो। फिर गुरु-शिष्य वाद करने लगे। वाद छह महीने तक चला। शिष्य ने १४४४ प्रश्न पूछे। गुरु ने सब प्रश्नों के अकाट्य उत्तर दिये, तो भी वह नहीं समझा। राजा को बहुत समय खोना पड़ा। इससे राजा ने 'इनके झगड़े में मैं कितने दिन तक अपना समय गँवाऊँ' ऐसा विचार कर गुरु से कहा कि हे स्वामिन्! आपका कहना सब सत्य है, पर मेरे राज्य से संबंधित कामकाज में इससे बिगाड़ होता है, इसलिए अब आप मुझे साक्षी से मुक्त कीजिये। तब गुरु ने कहा कि कल सब झगड़ा मिटा दूँगा।

दूसरे दिन गुरु ने शिष्य से कहा कि 'कुत्रिकापण' की दूकान में तीन लोक की सब वस्तुएँ मिलती हैं। वहाँ नोजीव मिल जाये, तो तू सच्चा और न मिले तो मैं सच्चा। शिष्य ने भी यह बात मान्य की। फिर राजसभादि परिवार के साथ वे दोनों कुत्रिकापण में गये। शिष्य ने वहाँ जीव, अजीव और नोजीव माँगे। तब देव ने जीव के बदले चूहा और अजीव के बदले पत्थर ला कर दिया। फिर नोजीव माँगा, तब दो-तीन बार जीव और अजीव ये दो ही वस्तुएँ ला कर दीं, पर नोजीव नहीं दिया। इतने में आकाशवाणी हुई कि जगत में जीव और अजीव ये दो ही राशियाँ हैं, पर दूसरी कोई राशि नहीं है। तब सब लोग बोले कि गुरु सच्चे हैं।

फिर गुरु ने शिष्य से कहा कि क्यों, अब समझे या नहीं? यदि समझे हो, तो मिच्छा मि दुक्कडं दो। तब शिष्य ने कहा कि ऐसे मैं मानने वाला नहीं हूँ। तब गुरु ने भस्म की कुंडी (पात्र) उसके सिर पर डाल कर उसे गच्छ से बाहर किया।

फिर रोहगुप्त ने वैशेषिक मत की स्थापना की। उसने नौ द्रव्य, सतरह गुण, पाँच कर्म, तीन सामान्य, एक विशेष, और एक समवाय इन छह पदार्थों की प्ररूपणा की। इनके प्ररूपण से चौदह सौ चवालीस भेद हुए। इसका नाम गोत्र के मिलाप से स्थापन हुआ और इसी से त्रैराशिक शाखा हुई।

मध्यमा शाखा की उत्पत्ति

स्थविर प्रियग्रंथ से मध्यमाशाखा निकली। इसका अधिकार इस प्रकार है-

श्री हर्षपुर नगर जिसे आज अजमेर कहते हैं, वहाँ तीन सौ जैनमंदिर और चार सौ अन्य दर्शनीयों के मंदिर थे तथा आठ हजार घर ब्राह्मणों के और छत्तीस हजार घर महाजनों के थे तथा वहाँ नौ सौ बाग, सात सौ बावड़ियाँ और सात सौ दानशालाएँ थीं। राजा सुभटपाल वहाँ राज करता था।

एक दिन वहाँ ब्राह्मणों ने एक यज्ञ का आयोजन किया। इतने में वहाँ श्री प्रियग्रंथसूरिजी पधारे। उन्होंने वासक्षेप मंत्रित कर के श्रावकों के हाथ पर रखा। उन श्रावकों ने यज्ञमंडप में जा कर होम करने के लिए ब्राह्मण जो बकरा लाये थे, उस पर वह वासक्षेप डाला। इससे बकरे के शरीर में अंबिकादेवी ने प्रवेश किया। तब वह बकरा उड़ कर आकाश में जा कर मनुष्यवाणी में बोलने लगा कि अरे! निर्दयी ब्राह्मणो! जैसे तुम निर्दयता से निरपराध जीवों को मार डालते हो, वैसे यदि मैं अब निर्दय हो जाऊँ, तो तुम सबको मार सकता हूँ। जैसे हनुमान ने राक्षसों में किया था, वैसा मैं भी तुम्हें कर के दिखा सकता हूँ। पर मुझसे दया का उल्लंघन नहीं हो सकता, इसलिए मैं तुम्हारी तरह निर्दयी नहीं हो रहा हूँ। फिर भी तुम इन बेचारे कोमल-मूक पशुओं का हनन करते हो, इससे तुम महापापी बनते हो। जिस पशु को मारते हैं, उस पशु के जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्ष तक उस पशु को मारने वाला प्राणी नरक में पड़ कर दुःख भोगता है। इसी तरह यदि कोई मनुष्य मेरुपर्वत जितना सोना दान में दे अथवा समस्त पृथ्वी का दान करे, उतने दान से भी अधिक फल मरने वाले एक प्राणी को बचाने से होता है। इसलिए मरते हुए प्राणी को बचाने जितना फल सोने के दान से या पृथ्वी के दान से भी मिलता नहीं है, क्योंकि अन्य सब प्रकार के दानों का फल तो कालान्तर में समाप्त हो जाता है, पर अभयदान का फल कभी खत्म नहीं होता।

उसके वचन सुन कर निर्दयी ब्राह्मण बोले कि तुम कौन हो? बकरे ने कहा कि मैं अग्निदेव हूँ। बकरा मेरा वाहन है। तुम पशुओं को मारते हो, इसलिए तुम्हें बहुत दुःख भोगना पड़ेगा। इसीलिए तुम पर दया ला कर मैं तुम्हें उपदेश देने आया हूँ। तब ब्राह्मणों ने कहा कि हम धर्म के लिए मारते हैं। इसके उत्तर में बकरे ने कहा कि पशुवध से धर्म कहाँ होने वाला है। यदि इसका मुद्दा (रहस्य) पूछना हो, तो जैनाचार्य श्री प्रियग्रंथसूरिजी से पूछो। वे महाकृपापात्र हैं, इसलिए तुम्हें सब समझा कर तुम्हारा निस्तार करेंगे।

फिर ब्राह्मण प्रियग्रंथसूरिजी के पास पूछने आये। उन्होंने दयारूप शुद्ध धर्म बताया। उसे सुन कर ब्राह्मण प्रमुख अनेक लोग जैनी हुए। इस तरह श्री प्रियग्रंथसूरिजी

से मध्यमा शाखा निकली।

ब्रह्मद्वीपिका शाखा की उत्पत्ति

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य समित से ब्रह्मद्वीपिका शाखा निकली। उसका संबंध इस प्रकार है-

आभीर देश में अचलपुर नगर के नजदीक एक कन्ना और दूसरी वेन्ना ये दो नदियाँ बहती थीं। उनके बीच में ब्रह्म नामक एक द्वीप था। वहाँ पाँच सौ तापस बसते थे। एक तापस अपने पैरों में लेप लगा कर खड़ाऊँ पहन कर हमेशा वेन्ना नदी के जल में थल की तरह चल कर गाँव में पारणा करने आता था। तब लोग उसकी प्रशंसा करते कि इस तापस की कैसी अपार तपःशक्ति है! इस भ्रम में अनेक लोग मिथ्यात्वी हो गये और तापस की भक्ति करने लगे। वे श्रावकों से भी कहने लगे कि देखो, हमारे गुरु का कैसा प्रभाव है! इसके प्रभाव में कुछ भी न्यूनता नहीं है।

ऐसे उपदेश से अनेक लोगों को मिथ्यात्वी होते देख कर श्रावकों ने श्री वज्रस्वामी के मामा श्री आर्य समितसूरि को बुलाया। सूरिजी आये, तब श्रावकों ने पूछा कि हे स्वामिन्! इस तापस की किस प्रकार की तपःशक्ति है? आचार्य ने कहा कि तपःशक्ति कुछ भी नहीं है, पर पादलेपशक्ति है। तब श्रावक सब समझ गये।

फिर तापस का छिद्र प्रकट करने के लिए श्रावकों ने उस तापस को अपने घर भोजन के लिए निमंत्रण दिया। इससे मिथ्यात्वी लोग बहुत खुश हुए। वे सोचने लगे कि ये श्रावक भी अब हमारे धर्म में आ जायेंगे। ऐसा जान कर वे योगी को श्रावकों के घर ले आये। श्रावकों ने भक्ति के बहाने उस तापस के पैर रगड़ रगड़ कर धो डाले। इससे योगी को मन में तो बड़ा दुःख हुआ, पर शर्म के मारे वह 'ना' न कह सका। फिर उस तापस ने जल्दी जल्दी भोजन किया और वह तुरन्त वहाँ से उठा। श्रावक आदर दे कर उसे उसके स्थानक पर पहुँचाने के लिए पुनः उसके साथ चले। वे मन में तो ऐसा समझते थे कि देखें अब कैसा मजा आता है, पर बाहर से उसे पहुँचाने का दिखावा कर के उसके साथ गये। सब किनारे आ कर खड़े हो गये। तापस ने विचार किया कि यदि थोड़ा सा भी लेप रहा होगा, तो नदी पार कर लूँगा। यह सोच कर उसने नदी में पैर रखा, तो वह तुरन्त डूबने लगा। लोगों में उसकी निन्दा हुई। फिर दया ला कर श्रावकों ने उसे नदी में से खींच कर बाहर निकाला।

इतने में लोगों को प्रतिबोध देने के लिए श्री आर्य समितसूरि भी वहाँ आये और चुटकी बजा कर बोले कि हे वेन्ने-कन्ने! मुझे उस पार जाना है, इसलिए मार्ग दो। आचार्य के मुख से यह वचन निकलते ही नदी के दोनों किनारे आपस में मिल

गये। यह देख कर लोग विस्मित हुए। फिर आचार्य तथा नगर के अन्य सब लोग मिल कर ब्रह्मद्वीप गये। वहाँ तापसों को धर्मोपदेश दे कर प्रतिबोध दिया। तब पाँच सौ तापसों ने दीक्षा ली और यह बात सब लोगों में प्रसिद्ध हो गयी कि वह तापस चूर्ण के प्रयोग से नदी पर चलता था, पर उसमें तपस्या का कुछ भी प्रभाव नहीं था। जैन धर्म की महिमा-वृद्धि हुई। फिर संघसहित गुरु अपने स्थान पर आये। इन तापस साधुओं से ब्रह्मद्वीपिका शाखा सर्वत्र प्रसिद्ध हुई।

आर्यरक्षितसूरिजी का संक्षिप्त वृत्तान्त

इस स्थविरावली में यद्यपि श्री आर्यरक्षितप्रमुख आचार्यों के नाम लिखे नहीं हैं, तथापि ये भी स्थविर जैसे ही हुए हैं। इसलिए इनका संबंध कहते हैं-

दशपुर नगर में सोमदेव पुरोहित अपनी भार्या रुद्रा के साथ रहता था। उनके पुत्र आर्यरक्षितजी परदेश गये। वहाँ से चौदह विद्याएँ पढ़ कर आये। राजा ने उन्हें हाथी पर बिठा कर महोत्सव सहित नगर में प्रवेश कराया। सब सज्जन मित्र, कुटुंबादिक आ कर उनसे मिले, पर उनकी माता नहीं मिली। माता के पाँव छूने गये, तो भी माता नहीं बोली। तब आर्यरक्षितजी ने पूछा कि माताजी! आप आमण-दूमणी (बेचैन) दीखती हैं, पर कुछ भी आनन्द प्रकट नहीं करतीं, इसका क्या कारण है? माता ने कहा कि हे पुत्र! तू जो विद्याएँ सीख आया है, वे सब नरक में ले जाने वाली हैं, क्योंकि तू बहुत होमादिक लौकिक कृत्य करने के शास्त्र सीख आया है। मैं जैनी हूँ। दुर्गति प्रदान करने वाले इन शास्त्रों को मैं कैसे अच्छा मानूँ। मैं तो आत्मा का कल्याण करने वाले शास्त्र पढ़ने से खुश होने वाली हूँ। पुत्र ने कहा कि माताजी! आत्मा को तारने वाले शास्त्र कौन से हैं? मुझे बताइये, तो मैं उनका भी अभ्यास करूँ। माता ने कहा कि तू दृष्टिवाद पढ़। आर्यरक्षितजी ने पूछा कि दृष्टिवाद पढ़ने कहाँ जाऊँ? तब माता ने कहा कि तोसलीपुत्र आचार्य के पास जा कर ये शास्त्र पढ़।

प्रातःकाल उठ कर आर्यरक्षितजी ने पढ़ने के लिए प्रयाण किया। कुछ दूर जाने पर उनके पिता का मित्र एक ब्राह्मण गन्ने हाथ में ले कर आते हुए सामने मिला। उसने पूछा कि तुम कौन हो? उन्होंने कहा कि मैं आर्यरक्षित हूँ। फिर उसने कहा कि तुम्हें परदेश से आया जान कर मैं तुमसे मिलने आया हूँ और ये गन्ने भी तुम्हारे लिए लाया हूँ। आर्यरक्षित ने गन्ने गिन कर देखे। वे साढ़े नौ निकले। इससे उन्होंने जाना कि मैं दृष्टिवाद के साढ़े नौ भाग सीखूँगा। फिर उस ब्राह्मण से कहा कि तुम मेरी माता के पास जाओ। उनसे कहना कि आपके पुत्र आर्यरक्षित मुझे मिले थे। इतना कह कर आर्यरक्षित आगे बढ़ गये।

उस ब्राह्मण ने उनकी माता के पास जा कर गन्ने दे कर कहा कि आपका पुत्र आर्यरक्षित मुझे रास्ते में मिला था। माता ने जाना कि मेरे पुत्र को शकुन तो अच्छे हुए हैं। इसलिए वह साढ़े नौ पूर्व पढ़ेगा। ऐसा मन में जान लिया।

अब आर्यरक्षितजी जहाँ तोसलीपुत्र आचार्य थे, वहाँ गये। वे विचार करने लगे कि इन्हें मैं वन्दना किस तरह करूँ? यह सोच कर वे उपाश्रय के बाहर बैठ गये। इतने में ढड्ढर श्रावक निसीहि कह कर उपाश्रय में जा कर ऊँचे स्वर में वन्दन करने की इरियावहीप्रमुख क्रिया करने लगा। यह सुन कर सब विधि आर्यरक्षितजी सीख गये। फिर गुरु के पास आ कर उसी विधि से गुरु को वन्दन कर विनयपूर्वक आगे बैठे।

यह कोई नया श्रावक है, पर वन्दन की विधि तो बराबर जानता है, ऐसा जान कर गुरु ने ढड्ढर श्रावक से पूछा कि यह कौन है? ढड्ढर ने पहचान लिया कि यह गुरु का भानजा है। फिर गुरु से कहा कि यह तो आर्यरक्षित है, आपका भानजा है। फिर गुरु ने उसे धर्मोपदेश दिया। तब आर्यरक्षित ने कहा कि मुझे दीक्षा दीजिये। मेरी माता ने मुझे दृष्टिवाद पढ़ने की आज्ञा दी है। गुरु ने लोकभय से अन्य स्थान पर जा कर उन्हें दीक्षा दी और अपने पास जितनी विद्याएँ थी, वे सब उन्हें पढ़ायीं। फिर अधिक पूर्व पढ़ने के लिए वज्रस्वामी के पास भेज दिया।

रास्ते में उज्जयिनी नगरी में उन्हें श्री भद्रगुप्तसूरि मिले। उन्होंने कहा कि तुमने बहुत अच्छा काम किया है। मुझे अनशन करना है, इसलिए अनशन में मेरी मदद कर फिर आगे जाना। गुरु के ये वचन सुन कर वे अनशन में सहायक हुए। भद्रगुप्तसूरिजी ने कहा कि तुम वज्रस्वामी के पास पढ़ना अवश्य, पर रात में उनके साथ रहना मत। अलग उपाश्रय में रहना। वज्रस्वामी के साथ जो एक रात भी रहता है, वह यदि सोपक्रमी आयु वाला हो, तो भी उनके साथ ही उसका निधन होगा। यह बात सुन कर 'तह त्ति' कह कर उन्हें संथारा करा कर आर्यरक्षितजी श्री वज्रस्वामी के पास आये। रात को नगर के बाहर रहे।

उसी रात में श्री वज्रस्वामीजी ने स्वप्न में देखा कि मेरे पास पात्र में दूध भरा हुआ था, उसे कोई अतिथि आ कर पी गया। स्वल्पमात्र दूध शेष रहा। सुबह के समय आर्यरक्षितजी उनके पास आये। वज्रस्वामी ने पूछा कि तुम कहाँ से आ रहे हो? तब सब हकीकत बता कर कहा कि मैं अन्य उपाश्रय में रह कर आपके पास पढ़ूँगा। वज्रस्वामी ने पूछा कि मेरे पास पढ़ना और अन्य उपाश्रय में रहना, ऐसा क्यों? तब भद्रगुप्त आचार्य द्वारा बतायी गयी सब बात उन्हें बता दी। तब वज्रस्वामीजी

ने उपयोग दे कर विचार किया कि यह बात सत्य है। महापुरुष के वचन अप्रमाण नहीं होते।

फिर अभ्यास करते हुए आर्यरक्षितजी ने नौ पूर्व तो सम्पूर्ण मुखपाठ कर लिये और दसवाँ पूर्ण पढ़ने लगे। इतने में माता-पिता को अनेक दिन तक आर्यरक्षितजी का कोई समाचार न मिलने से उन्होंने अपने छोटे पुत्र फल्गुरक्षित को आर्यरक्षित के पास भेजा। उसने आ कर कहा कि माता-पिता के पास चलो। आर्यरक्षित ने कहा कि चल कर क्या करूँ? इस पर फल्गुरक्षित ने कहा कि उन्हें धर्मोपदेश दो, क्योंकि उनकी इच्छा दीक्षा लेने की हुई है। तब आर्यरक्षित ने कहा कि तू तो दीक्षा ले ले। इस पर फल्गुरक्षित ने कहा कि मुझे दीक्षा दे कर भी आप वहाँ चलिये।

तब फल्गुरक्षित को दीक्षा दे कर उन्होंने गुरु से पूछा कि दसवाँ पूर्व कितना शेष है? गुरु ने कहा कि अभी तो बहुत भाग शेष है। तुम उद्यम करो। तब वे पुनः पढ़ने का उद्यम करने लगे। फिर कई दिन बाद माता-पिता के पास जाने की बड़ी उमंग हुई और उन्होंने गुरु से पूछा कि प्रभो! अभी दसवाँ पूर्व कितना शेष रहा है? गुरु ने कहा कि दसवें पूर्व का बिन्दु मात्र तो तुमने पढ़ लिया है, पर सिंधु जितना पढ़ना शेष रहा है। इसलिए तुम उद्यम करो। तब पुनः पढ़ने का उद्यम करने लगे, पर चित्त बराबर लगता नहीं था। इससे कहा कि अब तो मैं जाऊँगा। तब वज्रस्वामी ने 'पूर्व का इतना भाग अब शेष रहेगा, बाकी विच्छेद हो जायेगा' ऐसा मन में विचार कर श्री आर्यरक्षितजी को माता-पिता के पास जाने की छुट्टी दी।

फिर दोनों भाई दशपुर नगर आये। राजा ने बड़े महोत्सव सहित उन्हें गाँव में प्रवेश कराया। फिर माता-पिताप्रमुख सब कुटुंब को धर्मोपदेश दे कर दीक्षा दी, पर पिता ने दीक्षा नहीं ली। कुटुंब के मोह के कारण वह उनके साथ घूमने लगा। आर्यरक्षितजी ने पूछा कि तुम दीक्षा क्यों नहीं लेते? पिता ने कहा कि मुझे एक तो बड़ी धोती, दूसरा जनेऊ, तीसरा छाता, चौथा जूते और पाँचवाँ कमंडल इन पाँचों के बिना नहीं चलता। इनके बिना चलने में मुझे शर्म आती है। यदि इन्हें रखने की छूट दो, तो मैं दीक्षा ले लूँ। आर्यरक्षितजी ने इन पाँचों की छूट दे कर उन्हें दीक्षा दी।

इस वृद्ध का उद्धार अवश्य करना ही चाहिये, यह निश्चय कर आर्यरक्षितजी ने लड़कों को सिखाया कि हम जब चैत्य के दर्शन करने जायें, तब तुम सब साधुओं को वंदन करना, पर इस वृद्ध साधु को वंदन मत करना। यदि यह तुम से कहे कि मुझे वन्दन क्यों नहीं करते? तो तुम कहना कि आप तो छत्र रखते हैं। लड़कों ने वैसा ही किया। तब वृद्ध ने कहा कि साधु छत्र नहीं रखते, तो मुझे भी नहीं रखना।

यह कह कर उसने छत्र छोड़ दिया। इसी तरह अनुक्रम से जनेऊ, खडाऊँ और कमंडल का भी त्याग कर दिया। फिर कहा कि धोती का तो मुझसे त्याग नहीं होगा। तब आर्यरक्षितजी बोले कि ठीक है, आप धोती रखिये।

एक दिन एक साधु ने अनशन कर काल किया। तब आर्यरक्षितजी ने अन्य साधुओं को सिखाया कि तुम लोग आपस में विवाद करना, पर साधु के शरीर को परठने के लिए मत उठाना। इस प्रकार सिखा कर वे बोले कि इस साधु के शरीर को जो परठ कर आयेगा, उसे महालाभ होगा। यह सुन कर सब साधु आपस में कहने लगे। एक ने कहा कि मैं जाऊँ, तब दूसरे ने कहा कि मैं ले जाऊँ। सोमदेव नामक वृद्ध साधु ने पूछा कि क्या यह काम करने से बहुत निर्जरा होती है? गुरु ने कहा कि हाँ, बहुत निर्जरा होती है। तब वृद्ध साधु ने कहा कि यह काम मैं ही करूँगा। गुरु ने कहा कि इसमें उपसर्ग बहुत आते हैं, इसलिए जिसमें उपसर्ग सहन करने की शक्ति हो, वह यह काम करे। नहीं तो अरिष्ट हो जाता है। इस पर वृद्ध साधु ने कहा कि मैं सब उपसर्ग सहन करूँगा। यह कह कर वह अनशनी साधु के शरीर को उठा कर चला।

आचार्य ने श्रावकों के लड़कों को सिखाया कि तुम इस वृद्ध साधु की धोती खींच लेना। इससे लड़कों ने हो-हल्ला मचा कर उसके पीछे पड़ कर धोती खींच ली। वृद्ध ने जान लिया कि यह तो उपसर्ग है। फिर आचार्य साधु-परिवार को साथ ले कर वृद्ध के पीछे गये। वृद्ध लज्जित हुआ। गुरु ने कहा कि बड़ा भारी उपसर्ग हुआ है, अब दूसरी धोती लाओ। साधुओं ने कहा कि धोती तो नहीं है। तब वृद्ध ने कहा कि लाज तो गयी। अब क्या है? इसलिए चोलपट्टा ही दे दो। इस तरह उस वृद्ध साधु को चोलपट्टा पहनाया।

अब वे वृद्ध मुनि गोचरी लाने नहीं जाते थे। इससे गुरु ने साधुओं से कहा कि मैं पास के गाँव जाता हूँ। तुम लोग गोचरी ला कर स्वयं उपयोग कर लेना। वृद्ध साधु को मत देना। यह कह कर गुरु दूसरे गाँव चले गये। बाद में साधुओं ने अपना अपना आहार ला कर खा लिया, पर वृद्ध को 'लो' कर के नहीं कहा। दूसरे दिन गुरु ने आ कर साधुओं से कहा कि वृद्ध साधु को आहार क्यों नहीं दिया? तब साधुओं ने कहा कि वृद्ध स्वयं गोचरी क्यों नहीं जाते?

फिर गुरु स्वयं गोचरी जाने लगे। तब 'यह तो गुरु का अविनय होगा;' यह सोच कर वृद्ध स्वयं ही गोचरी गये। एक सेठ के घर वे पिछले दरवाजे से प्रवेश करने लगे, तब घर के लोग बोले कि अगले दरवाजे से आइये। इस पर वृद्ध साधु

ने कहा कि अरे, लक्ष्मी तो मर्जी में आये, उस तरफ से आती है। जिस तरफ से आये, उस तरफ से शुभ जानना। इस विषय में कुछ विचार नहीं करना। सेठ ने खुश हो कर वृद्ध साधु को बत्तीस लड्डू वहोराये। उन्हें ले कर उपाश्रय में आ कर गुरु को दिखाया। उसे देख कर गुरु ने विचार किया कि मुझे बत्तीस शिष्य होंगे। वृद्ध ने कहा कि यह पहला लाभ हुआ है। इसे सब साधुओं को दे देना चाहिये। यह सोच कर सब मोदक साधुओं को दे दिये। फिर पुनः गोचरी जा कर खीर का भोजन ला कर स्वयं ने पारणा किया। इस तरह ये वृद्ध साधु भिक्षा में लब्धिवान हुए। वे जहाँ जाते वहाँ दाता यदि महालोभी होता, तो भी उत्तम भोजन उन्हें वहोराता। इस तरह वे वृद्ध साधु गच्छ के आधारभूत हुए।

श्री आर्यरक्षितजी के गच्छ में तीन साधु लब्धिवान हुए- एक दुर्बलिका पुष्यमित्र, दूसरे घृतपुष्यमित्र और तीसरे वस्त्रपुष्यमित्र तथा चार साधु महापंडित हुए- एक दुर्बलिका पुष्यमित्र, दूसरे वृद्ध सोमदेव, तीसरे फल्गुरक्षित और चौथे गोष्ठमाहिल।

एक दिन इन्द्र महाराज ने सीमंधरस्वामी से निगोदविचार के विषय में पूछा। तब भगवान ने निगोद का वर्णन कर के सुनाया। फिर इन्द्र ने पूछा कि भरतक्षेत्र में भी ऐसा स्वरूप कहने वाला कोई वर्तमान में विद्यमान है क्या? भगवान ने कहा कि आर्यरक्षितसूरि हैं। फिर इन्द्र ने वृद्ध का रूप बना कर आर्यरक्षितजी के पास आ कर पूछा कि महाराज! मेरी आयु अभी कितनी है? गुरु ने श्रुत का उपयोग कर के कहा कि तुम पहले देवलोक के इन्द्र हो। फिर इन्द्र ने निगोद के सूक्ष्म विचार पूछे। उन सबका गुरु ने खुलासा किया। फिर इन्द्र महाराज गुरु की स्तवना कर के उपाश्रय का द्वार फिरा कर चले गये। इससे शिष्यों को मालूम हुआ कि इन्द्र महाराज आये थे।

आर्यरक्षितसूरिजी ने बुद्धि की हानि होते देख कर सूत्रों के अलग अलग चार अनुयोग किये।

वृद्धवादी, सिद्धसेन-दिवाकर व कालिकाचार्य

एक साधु वृद्धावस्था में उच्च स्वर से पढ़ रहा था। उसे देख कर एक राजा ने कहा कि इतने जोर से रट कर क्या तू मूसल को फुल्लवित करेगा? यह सुन कर उस वृद्ध साधु ने सरस्वती को प्रत्यक्ष कर और उससे विद्यावर प्राप्त कर चौक में मूसल खड़ा कर के राजा आदि सब लोगों की उपस्थिति में फुल्लवित काव्य से उस मूसल को फुलाया। यह देख कर राजा प्रमुख सब लोग चमत्कृत हुए। इससे उसका नाम वृद्धवादी पड़ा। वृद्धवादीसूरि ने सिद्धसेन ब्राह्मण को प्रतिबोध दिया। उन

सिद्धसेन दिवाकर ने विक्रमादित्य राजा को प्रतिबोध दे कर श्री शत्रुंजय का संघ निकाला। उस संघ में एक सौ सत्तर सुवर्णमंदिर थे। उन्होंने शत्रुंजय का उद्धार कराया। श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी की सहायता से विक्रमादित्य राजा ने अपने नाम का संवत् चलाया। इसके पूर्व श्री वीर भगवान का संवत् था। ये वृद्धवादी और सिद्धसेनदिवाकर दोनों स्थविर हुए।

इसी तरह कालिकाचार्य तीन हुए हैं। इनमें से एक तो श्री वीर भगवान से तीन सौ छिहत्तर (३७६)वें वर्ष में हुए हैं। उन्होंने श्री पन्नवणा सूत्र बनाया है और सौधर्मेन्द्र को निगोद का विचार कहा है। कोई कोई आचार्य कहते हैं कि ये कालिकाचार्य श्री वीर निर्वाण से तीन सौ बीसवें वर्ष में हुए हैं, कोई कहते हैं कि तीन सौ पच्चीसवें वर्ष में हुए हैं। कोई ऐसा भी कहते हैं कि चौथ की संवत्सरी स्थापने वाले ये ही आचार्य हैं। इसमें सच-झूठ केवली भगवान जानें।

दूसरे कालिकाचार्य पूर्व में जो कालिकाचार्य कहे हैं, उनके मामा हुए। तीसरे कालिकाचार्य श्री वीरनिर्वाण के बाद नौ सौ तिरानबे (९९३)वें वर्ष में और विक्रम संवत् ५२३वें वर्ष में जिन्होंने चौथ की संवत्सरी की, वे हैं। इस विषय में कोई-कोई चूर्णीकार लिखते हैं कि कालिकाचार्य के कई शिष्यों ने चौथ की संवत्सरी मान्य की और श्री सुधर्मस्वामी के तीन शिष्यों ने पंचमी की संवत्सरी मानी। तत्त्व केवली जानें। इस विवाद में कुछ सार नहीं है।

तीन हरिभद्रसूरि का संक्षिप्त वृत्तान्त

हरिभद्रसूरि भी तीन हुए हैं। इनमें एक तो हरिभद्र नामक ब्राह्मण था। उसने व्याकरणादि पढ़ने के बाद यह प्रतिज्ञा की थी कि जिसका अर्थ मैं समझ न सकूँ, उस पद का अर्थ जो बता देगा, उसका मैं शिष्य हो जाऊँगा। एक दिन याकिनी महत्तरा साध्वी एक गाथा पढ़ रही थी कि- 'चक्कि दुगं हरिपणगं, पणगं चक्कीण केसवो चक्की.।' इस गाथा का अर्थ हरिभद्र से नहीं लग सका, तब उसने साध्वी से पूछा। साध्वी ने कहा कि यह हमारा अधिकार नहीं है, इसलिए गुरु से पूछिये। गुरु के पास गाथा का अर्थ सुन कर प्रतिज्ञापालन के लिए दीक्षा ली। फिर इन्होंने आचार्य पद प्राप्त किया। इन्होंने विक्रम संवत् ५८५ में आवश्यकनिर्युक्ति प्रमुख ग्रंथों की टीकाएँ लिखीं।

इनके दो शिष्य एक हंस और दूसरा परमहंस ये दोनों बौद्धों के पास पढ़ने गये। बौद्धों ने जाना कि ये दोनों जैनी जैसे दीखते हैं। इससे परीक्षा करने के लिए

जीने की सीढ़ियों पर जिनप्रतिमा रखी। उस पर पाँव रख कर सब बौद्धशिष्य तो चले गये, पर हंस और परमहंस जिनप्रतिमा देख कर प्रतिमा के हृदय पर खड़ी से जनेऊ कर के निकल गये। बौद्धों ने जाना कि ये जैनी हैं और हंस-परमहंस भी जान गये कि ये हमें अवश्य मार डालेंगे। फिर मरणभय से वे दोनों अपनी-अपनी पढ़ने की पोथियाँ हाथ में ले कर अपने देश की तरफ चल पड़े। बौद्धों ने दोनों को मारने के लिए राजा के सिपाही भेजे। उन्होंने जा कर प्रथम हंस को मार डाला और भागते हुए परमहंस को भी चित्तौड़ के पास मार डाला। यह समाचार सुन कर हरिभद्रसूरिजी महाकोपायमान हुए। एक तेल की कड़ाही उबाल कर वे मन्त्र जपने लगे और एक एक कंकर कड़ाही में डालने लगे। उस मंत्रित कंकर के प्रभाव के बौद्धों का एक एक तपस्वी उस कड़ाही में गिर कर भस्म होने लगा। इस तरह उन्होंने १४४४ बौद्धों का हनन किया। उस समय एक श्रावक बोला कि- 'जइ जलइ जलउ लोए।' यह सुनते ही उनका क्रोध उतर गया।

कई ग्रंथों में ऐसा भी लिखा है कि याकिनी महत्तरा साध्वी ने एक श्राविका को ला कर गुरु से कहा कि इसने पंचेन्द्रिय जीव का वध किया है। इसे क्या दंड देना चाहिये? गुरु बोले कि पाँच कल्याणकों का दंड देना चाहिये। तब साध्वी ने कहा कि महाराज! एक पंचेन्द्रिय के वध का इतना बड़ा दंड दिया जाता है, यह आप जानते हैं, तो फिर इन बौद्धों को क्यों मारते हैं? तब गुरु का क्रोध उतर गया। फिर इसके प्रायश्चित्त के लिए उन्होंने पंचाशकप्रमुख १४४४ प्रकरण ग्रंथ बनाये।

एक पट्टावली में ऐसा भी लिखा है कि- हंस और परमहंस अवसर देख कर बौद्ध मठ से निकल गये। मठ के कुलपति ने इन दोनों को पकड़ने के लिए पीछे से बड़ा लश्कर भेजा। लश्कर को आते देख कर हंस ने कहा कि "हे परमहंस! तू पास के नगर में चला जा। वहाँ का सूरपाल राजा तेरी रक्षा करेगा।" हंस सहस्रयोद्धा था। उसने लश्कर का मुकाबला किया। पर लश्कर में १४४४ योद्धा थे। हंस उनके बाणों से बिंध गया और मर गया। परमहंस सूरपाल राजा के पास सही-सलामत पहुँच गया। राजा ने सब हकीकत सुन कर उसकी मदद की। बौद्ध लश्कर ने राजा के पास परमहंस की माँग की। राजा ने कह दिया कि मैं लड़ने के लिए तैयार हूँ, पर वह नहीं मिलेगा। आखिर यह तय हुआ कि परमहंस बौद्धों के साथ वाद करे। यदि वह जीते तो छूट जायेगा। खूब वाद-विवाद हुआ। अन्त में परमहंस जीता। सूरपाल ने सम्मान के साथ परमहंस को वहाँ से बिदा किया। रास्ते में बौद्धों ने पकड़ने के अनेक प्रयत्न किये, पर वह अपने गुरु हरिभद्राचार्य के पास पहुँच

गया। हंस के मारे जाने की सब हकीकत गुरु को बता कर परमहंस भी प्राणमुक्त हो गया।

इस घटना से आचार्य को बहुत क्रोध चढ़ा। वे उसी समय सूरपाल राजा के नगर की तरफ चल पड़े। थोड़े ही समय में वहाँ पहुँच कर राजा द्वारा बताये गये क्षात्रतेज को असीम धन्यवाद दिया। फिर सूरपाल के दरबार में ही बौद्ध मठपति के साथ वाद-विवाद कर के अपनी प्रबल विद्वत्ता से उन्होंने बौद्धों को परास्त किया। उसी समय वह मठपति खौलते तेल की कड़ाही में जा गिरा और देखते देखते तल दिया गया। इस तरह एक के बाद एक बौद्ध भजिये की तरह कड़ाही में तले जाने लगे।

इतने में दो जैन मुनि वहाँ आये। उन्होंने एक पत्र हरिभद्राचार्य के हाथ पर रखा। उसमें लिखा था कि- वीतराग के वचन को जो समझता है, उसमें क्रोध नहीं होता। पत्र भेजनेवाले उनके गुरु जिनभद्र ही थे। पत्र पढ़ते ही हरिभद्र शान्त हो गये। वहाँ से रवाना हो कर वे अपने गुरु के पास आये और क्रोध में हुए अकार्य का प्रायश्चित्त माँगा। गुरु ने कहा कि १४४४ बौद्धों का संहार करने का तुम्हारा संकल्प था, इसलिए इतने ही ग्रंथ बना कर तुम निर्मल हो जाओ। हरिभद्राचार्य ने यह मंजूर किया। हंस और परमहंस सांसारिक संबंध से उनके भानजे थे।

दूसरे हरिभद्रसूरि विक्रम संवत् ९६२ में हुए हैं। उनके शिष्य सिद्धर्षि गणि थे। वे बौद्धों के पास इक्कीस बार गये और आये। उन्हें प्रतिबोध देने के लिए इन्होंने शक्रस्तव की ललितविस्तरावृत्ति बनायी।

तीसरे हरिभद्रसूरि विक्रम संवत् की बारहवीं सदी में हुए। उनके बनाये हुए मुनिपति चरित्र आदिक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

तथा श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण भी स्थविर हुए हैं। उन्होंने विशेषावश्यक भाष्य बनाया है।

इसी प्रकार श्री शीलांकाचार्य, अभयदेवसूरि और मलयगिरिप्रमुख टीकाकार भी हुए हैं।

ये सब स्थविर जानना। इति स्थविरावली-शेष संबंधः।

अट्ठाईस प्रकार की साधुसमाचारी

१. उस काल में उस समय में श्रमण भगवंत श्री महावीरस्वामी आषाढ़ सुदि पूनम से एक महीना और बीस दिन बरसात के जाने के बाद पर्युषण

करें ऐसा नियम है। शिष्य पूछता है कि चौमासे के पचास दिन जाने के बाद ही क्यों पर्युषण करें? (१) गुरु कहते हैं कि हे शिष्य! गृहस्थ श्रावक अपने घर को खड़ीप्रमुख से धो कर ऊपर छाया कर के घठारते हैं, मठारते हैं, परनालाप्रमुख पानी के मार्ग बनाते हैं, इत्यादिक सब काम गृहस्थ अपने लिए कर लेते हैं और स्वयं उपयोग कर के प्रासुक कर लेते हैं। इस कारण से बरसात के पचास दिन बाद पर्युषण करें। कदाचित् साधु पहले से ही कहे कि मैं चौमासे में रहूँगा, तो वह गृहस्थ साधु के निमित्त घरप्रमुख का आरम्भ करेगा। इसलिए पचास दिन बीतने के बाद साधु कहे कि हम यहाँ चौमासा करेंगे। (२) इस तरह भगवान स्वयं पचास दिन बीतने के बाद पर्युषण करें, तो उनके गणधर भी पचास दिन बीतने के बाद पर्युषण करें। (३) और गणधर पचास दिन बीतने के बाद पर्युषण करें, तो गणधरों के शिष्य भी बरसात के पचास दिन बीतने पर पर्युषण करें। (४) गणधरों के शिष्य पचास दिन बीतनें पर पर्युषण करें, तो स्थविर भी बरसात के पचास दिन बीतने पर पर्युषण करें। (५) स्थविर बरसात के पचास दिन बीतने पर पर्युषण करें, तो आज के समय में जो श्रमण निर्ग्रंथ विचरते हैं, वे भी पचास दिन बीतने पर पर्युषण करें। (६) आज वर्तमान श्रमण निर्ग्रंथ बरसात के पचास दिन बीतने पर पर्युषण करें, तो हमारे आचार्य-उपाध्याय भी पचास दिन बीतने पर पर्युषण करें। (७) हमारे आचार्य-उपाध्याय पचास दिन बीतने पर पर्युषण करें, तो हम भी बरसात के पचास दिन बीत जाने पर पर्युषण करते हैं।

अपवाद कहते हैं कि भाद्रपद सुदि पंचमी के एक दिन पूर्व अर्थात् भाद्रपद सुदि चतुर्थी के दिन पर्युषण करना कल्पता है, पर भाद्रपद सुदि पंचमी का उल्लंघन कल्पता नहीं है। याने कि इकावनवें दिन संवत्सरी करना कल्पता नहीं है, परन्तु उनचासवें दिन कारण से करना कल्पता है। इसलिए कारण से चतुर्थी की संवत्सरी करना, पर षष्ठी की संवत्सरी तो अपवाद से भी करना नहीं कल्पता। (८) इन आठ आलापों से पर्युषण करने के आश्रय से प्रथम समाचारी जानना।

२. वर्षाकाल में चातुर्मास रहे हुए साधु और साध्वी को पाँच कोस (सोलह किलोमीटर) का चारों ओर अवग्रह रखना चाहिये, पर अवग्रह से बाहर हाथ सूखे वहाँ तक भी खड़े नहीं रहना चाहिये। साधु-साध्वी को बरसात के चातुर्मास में गोचरी के लिए पाँच कोस तक जाना-आना कल्पता है। यह जाने-आने से संबंधित दूसरी समाचारी जानना।

३. बीच में नदी बहती हो तो नदी उतर कर पाँच कोस तक जाना-आना नहीं कल्पता, पर कुणालानगरी के पास ऐरावती नदी है। वह नित्य बहती रहती है, पर उसका पाट बहुत चौड़ा है और पानी भी स्वल्प है। इसलिए एक पैर जल में और एक पैर ऊँचे आकाश में जमीन पर रखते हुए नदी उतरे, तो चारों ओर पाँच कोस जाना-आना कल्पता है। ऐसी नदी न हो, तो नहीं कल्पता। यह नदी उतरने से संबंधित तीसरी समाचारी जानना।

४. बरसात में रहे हुए साधु और साध्वी से गुरु ने कहा हो कि तुम ग्लान (रुग्ण) को आहार-पानी देना, तो उसके लिए आहार ला कर देना कल्पता है, पर अपनी मति से ग्लान के लिए आहार ला कर देना कल्पता नहीं है और यदि गुरु ने कहा हो कि तुम तुम्हारे लिए ही ले आओ, तो अपने लिए ही लाना कल्पता है, पर अन्य को देना नहीं कल्पता। यदि गुरु ने कहा हो कि तुम ग्लान को आहार ला कर देना और तुम भी खाना, तो लाना और देना कल्पता है। यह साधुओं को परस्पर देने-लेने से संबंधित चौथी समाचारी जानना।

५. चौमासे में रहे हुए साधु-साध्वी को १. दूध, २. दही, ३. मक्खन, ४. घृत, ५. तेल, ६. गुड़, ७. शहद, ८. मदिरा और ९. मांस इन नौ विगइयों में से मदिरा, मांस, शहद और मक्खन ये चार विगइयाँ तो प्रथम से ही सब प्रकार से वर्जित (त्याज्य) होती हैं। इसलिए इन्हें छोड़ कर शेष पाँच विगइयाँ बलवान और रोग-रहित शरीर वाले को नित्य लेना नहीं कल्पता, पर कारण से लेना पड़े, तो ली जा सकती हैं। यह विगय-निषेध से संबंधित पाँचवीं समाचारी जानना।

६. चातुर्मास में रहे हुए साधु-साध्वी से यदि कोई ग्लान कहे कि मेरे

लिए अमुक वस्तु गृहस्थ के घर से ले आना, तब लाने वाला साधु गुरु से पूछे कि हे स्वामिन्! ग्लान साधु अमुक चीज मँगाता है, क्या मैं ले आऊँ? गुरु कहे कि कितनी मँगाता है? तब ग्लान से पूछे। ग्लान कहे कि इतनी चीज चाहिये। फिर गुरु से कहे कि हे स्वामिन्! अमुक चीज ग्लान इतनी मँगाता है। तब गुरु कहे कि इतनी चीज इतने प्रमाण में लाना। फिर वह साधु जब गोचरी जाये, तब ग्लान की जरूरत से ज्यादा चीज श्रावक देने लगे, तो कहना कि इतनी ही चीज की ग्लान को आवश्यकता है। फिर भी यदि श्रावक कहे कि आप ज्यादा ले जाइये। आप भी खाना, पीना और उपयोग में लेना। मेरे घर में बहुत है, इसलिए सुखपूर्वक लीजिये, तो लेना, पर ग्लान के नाम से स्वयं ले कर उपयोग करना नहीं कल्पता। यह ग्लान की जरूरत की वस्तु ला कर देने से संबंधित छठी समाचारी जानना।

७. बरसात में रहे हुए स्थविरकल्पी साधुओं को श्रावकों के घरों में जो नये श्रावक हुए हों, उनके घर हर कोई छोटे अथवा बड़े साधु जायें और वे जो कुछ माँगें, वह देते हैं, पर ना नहीं कहते। वे छोटे-बड़े साधु की तरफ नहीं देखते, पर चौरासी गच्छ के साधुओं को देने की ही इच्छा रखते हैं। तथा जहाँ साधुओं को भी ऐसा विश्वास होता है कि जो चीज अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलेगी, वह इनके घर में तो जरूर मिलेगी, ऐसे श्रावक जो होते हैं उनके घर में साधुओं को दिखाई न देने वाली चीज नहीं माँगनी चाहिये। क्योंकि वे श्रावक तो हर चीज का दान देने की इच्छा वाले होते हैं, इसलिए वे ऐसा जान सकते हैं कि यह चीज इन्हें कहीं भी नहीं मिली होगी, इसलिए माँगने आये हैं। इस कारण से वह बाजार से मोल ला कर अथवा नासमझ नया श्रावक हो, तो बाहर से चुरा ला कर भी साधु को दे दे। इसलिए ऐसे घरों में अनदेखी वस्तु माँगना नहीं कल्पता। यह अदृष्टयाचनवर्जन से संबंधित सातवीं समाचारी जानना।

८. बरसात में रहे हुए साधुओं को नित्य एक बार भोजन करना चाहिये और गृहस्थों के घर गोचरी के लिए भी एक बार ही जाना चाहिये। पर आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, ग्लान, जिन्हें दाढ़ी-मूछें नहीं आई हैं, ऐसे

लघुवय के शिष्य तथा जिसे स्तन न हों ऐसी लघुवय की शिष्याएँ प्रमुख की वैयावृत्त्य करने के लिए यदि एक दिन में दो-तीन बार गृहस्थ के घर जाना पड़े, तो भी उसकी मनाई नहीं है। पर अपने लिए तो एक बार ही जाना कल्पता है। उपरांत जाना नहीं कल्पता। तथा एक उपवास करने वाले को एक बार गोचरी ला कर खा पी कर तृप्त होने के बाद, पात्रप्रमुख पोंछ लेने के बाद पुनः दूसरी बार गोचरी नहीं जाना चाहिये। पर यदि तृप्ति न हुई हो, तो दूसरी बार गोचरी जाना कल्पता है। बेले की तपस्या वाले को दो बार और तेले की तपस्या वाले को तीन बार गोचरी जाना कल्पता है। तीन उपवास से उपरान्त तपस्या करने वाले को मर्जी में आये उतनी बार गोचरी जाना कल्पता है। यह गोचरी जाने से संबंधित आठवीं समाचारी जानना।

९. बरसात में रहे हुए साधु-साध्वी जो नित्य भोजन करने वाले हैं, उन्हें श्री आचारांग सूत्र में कहा हुआ इक्कीस[1] प्रकार का जल लेना कल्पता है। एक उपवास वाले साधु को एक आटे का धोवन, दूसरा पान का धोवन और तीसरा चावल का धोवन ये तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है। छट्ठ के तपवाले साधु को एक तूस (कूकस) का धोवन, दूसरा जव का धोवन और तीसरा तिल का धोवन, ये तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है तथा अट्ठम के तप वाले साधु को एक ओसामण, दूसरा काँजी और तीसरा तीन बार उबला हुआ गरम पानी, ये तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है और तीन उपवास से अधिक तप करने वाले साधु को तो केवल उष्ण जल ही लेना कल्पता है तथा अनशन वाले साधु को एक उष्ण पानी ही कल्पता है। वह भी छना हुआ हो और वह भी थोड़ा-थोड़ा पीना, परन्तु अधिक पीना नहीं कल्पता। यह पानी पीने से संबंधित नौवीं समाचारी जानना।

---

१. ओसामण (माँड), २. पिष्टोदक, ३. संस्वेदिम, ४. तंदुलोदक, ५. तुषोदक, ६. तिलोदक, ७. यवोदक, ८. सौवीर, ९. अंबोदक, १०. अंबाडोदक, ११. कपित्थोदक, १२. मातुलिंगोदक, १३. द्राक्षोदक, १४. दाडिमोदक १५. खर्जूरोदक, १६. श्रीफलोदक, १७. करीरोदक, १८. बदरोदक, १९. आमलकोदक, २०. चिंचोदक, २१. उष्णोदक।

१०. बरसात में रहा हुआ साधु जिसने मर्यादा की है कि पाँच दात पानी की और पाँच दात भोजन की लेना, पर यदि पानी की चार दात मिले और भोजन की पाँच दात मिले, पर उन पाँच दात में भोजन स्वल्प आया, उससे पेट भरे नहीं, तब वह विचार करे कि पानी की चार दात मिली हैं, पर पाँच दात मिली नहीं हैं, तो अब एक दात भोजन में मिला लूँ, तो उसे ऐसा करना कल्पता नहीं है। जो जितना मिला, उतना ही खा कर संतोष करना चाहिये। पर दात अदल-बदल करना नहीं।

वहोरते समय पात्र में मात्र एक ही चावल का दाना गिरे, तो वह एक दात जानना। इसी प्रकार सब अन्न एक साथ पात्र में गिर जाये, तो भी एक ही दात जान लेना। इसी प्रकार पानी का भी वहोरते समय यदि एक ही बिन्दु पात्र में गिरे, तो वह एक ही दात जानना और पानी की धारा खंडित न हुई हो, अस्खलित धार चलते हुए सम्पूर्ण पात्र भर जाये, तो भी एक दात समझना। परन्तु धार खंडित होने के बाद पुनः जो पानी पात्र में गिरता है, वह दूसरी दात कही जाती है। यह दात से संबंधित दसवीं समाचारी जानना।

११. वर्षाकाल में जिस उपाश्रय में साधु चौमासे के लिए रहा हो, उस स्थान से ले कर सात घर तक गोचरी के लिए नहीं जाना। गाँव में जीमन हो, तो कई आचार्य कहते हैं कि उपाश्रय सहित आठ घर तक नहीं वहोरना। यह संखडी से संबंधित ग्यारहवीं समाचारी जानना।

१२. चौमासे में रहे हुए पाणिपात्रधारी (जिनकल्पी) मुनि को फुसार मात्र (अति सूक्ष्म) पानी बरसता हो, तो भी गृहस्थों के घर गोचरी जाना नहीं कल्पता। इसी प्रकार बिना ढँके स्थानक में गोचरी करना भी नहीं कल्पता। गोचरी करते अकस्मात् जल बरसने लगे, तो भुक्तावशिष्ट आहार को हाथ में ढँक कर और छाती या कक्षामूल में रख कर ढँकी हुई जगह अथवा वृक्ष के मूल तल में आ कर यदि उसमें बरसात के छींटे न लगे हों, तो उपयोग में लेना कल्पता है। यदि पानी के छींटे लगे हों, तो उपयोग में लेना नहीं कल्पता। यह जिनकल्पी मुनि के लिए गोचरी करने से संबंधित बारहवीं समाचारी जानना।

१३. बरसात में चातुर्मास में रहे हुए स्थविरकल्पी साधुओं को तो जिसकी धारा रोकी नहीं जा सके ऐसा मेघ अखंडधारा से बरसता हो, तो गोचरी नहीं जाना चाहिये। यदि कोई साधु ग्लान हो अथवा अशक्त हो, एक-दो दिन का भूखा हो और अधिक भूख सहन करने की शक्ति न हो, तो एक सूती वस्त्र पर ऊनी वस्त्र ओढ़ कर थोड़े छींटे पड़ते हों, तो गोचरी जाना कल्पता है। यह अपवाद सूत्र है।

तथा गृहस्थ के घर गोचरी जाने के बाद रह रह कर थोड़ा थोड़ा पानी बरसता हो, तो आराम में, उपाश्रय में, मंडप के नीचे तथा वृक्ष के नीचे आना कल्पता है तथा गृहस्थ के घर गोचरी गये हुए साधु को बरसात आ जाये तो, उसके घर जिस समय साधु आया, उस समय से पहले यदि भात उतरा हो और दाल बाद में उतरी हो, तो साधु भात वहोरे, पर दाल वहोरे नहीं और यदि दाल पहले उतरी हो और चावल बाद में उतरे हों, तो दाल वहोरे पर चावल वहोरे नहीं और यदि चावल तथा दाल दोनों पहले उतर गये हों, तो दोनों लेना कल्पता है और बाद में उतरें हों तो दोनों चीजें लेना नहीं कल्पता।

तथा गोचरी गये हुए साधु को आहार मिलने के बाद बरसात रह रह कर बरसती हो तो बाग में, उपाश्रय में, ढँकी हुई जगह में अथवा पेड़ के नीचे आ कर प्राप्त आहार खा लेना चाहिये। पर आहार अधिक देर तक रखना नहीं और पात्र पोंछ कर, उन्हें इकट्ठे बाँध कर दिन रहते ही उपाश्रय में आ जाना चाहिये, पर रात को उपाश्रय के बाहर नहीं रहना चाहिये।

बरसात में रहे हुए साधु को गृहस्थ के घर गोचरी जाने के बाद रह रह कर बरसात होने लगे, तो बागादिक में अथवा उपाश्रय में आ जाना चाहिये। पर बागादिक स्थान में एक साधु और एक साध्वी को, एक साधु और दो साध्वियों को, दो साधु और एक साध्वी को तथा दो साध्वी और दो साधुओं को (इन चार भंगों से) खड़े रहना नहीं कल्पता तथा पाँचवें भंग में दो साधु और दो साध्वियाँ हों और उनमें एक वृद्ध साध्वी हो तथा एक लघु साधु-साध्वी हो और जगह बहुत खुली हो तथा सब लोग देखते हों, ऐसी जगह

में रहना कल्पता है। ऐसे ही चार भंग साधु के लिए श्राविका के साथ कहना तथा ऐसे ही चार भंग साध्वी के लिए श्रावक के साथ कहना। पूर्वोक्त पाँचवें भंग में एक स्थान पर रहना कल्पता है। यह स्थविरकल्पी के लिए गोचरी तथा साधु-साध्वी के एकत्र वास से संबंधित तेरहवीं समाचारी जानना।

१४. बरसात में रहे हुए साधु अथवा साध्वी को किसी साधु के कहे बिना उसके लिए अशनादिक चार प्रकार का आहार लाना कल्पता नहीं है। ऐसा किसलिए? इसलिए कि उसकी इच्छा हो, तो वह आहार खाये और इच्छा न हो, तो न खाये। अतः कहे बिना आहार लाना नहीं। यह पूछे बिना आहार न लाने से संबंधित चौदहवीं समाचारी जानना।

१५. बरसात में रहे हुए साधु-साध्वी को जब तक शरीर भीगा हुआ हो, तब तक अशनादिक चार आहारों में से कोई भी आहार करना नहीं कल्पता। ऐसा किसलिए? इसलिए कि अधिकतर सात स्थान भीगे हुए रहते हैं। उनमें एक हाथ, दूसरा हाथ की रेखा, तीसरा नख, चौथा नख के सिरे, पाँचवाँ भुँहारे (भौहें), छठा निचले होंठ और निचला दाढ़ी का स्थान और सातवाँ ऊपर के होंठ और ऊपर की मूँछें। ये सातों गीले न हों, बिल्कुल सूख गये हों, तब चार प्रकार का आहार करना कल्पता है। यह आर्द्र शरीर से आहार न करने से संबंधित पन्द्रहवीं समाचारी जानना।

१६. चातुर्मास में स्थित साधु-साध्वियों को सूक्ष्म आठ वस्तुएँ बार-बार सूत्रज्ञान से जाननी चाहिये। उन्हें अपनी आँखों से देखना चाहिये और उनकी बार-बार पडिलेहना करनी चाहिये। उनमें एक प्राण सूक्ष्म, दूसरा पनक सूक्ष्म, तीसरा बीज सूक्ष्म, चौथा हरित सूक्ष्म, पाँचवाँ पुष्प सूक्ष्म, छठा अंड सूक्ष्म, सातवाँ गृह सूक्ष्म और आठवाँ स्नेह सूक्ष्म ये आठ सूक्ष्म जानना।

(१) इनमें प्रथम प्राण सूक्ष्म याने झीने झीने जंतु। काले, नीले, लाल,पीले और सफेद ऐसे पाँच रंग वाले अनुद्धरी (कुंथुआ) जीव होते हैं। ये जीव एक स्थान पर बिना हिले-डुले रहते हैं। ज्ञानरहित छद्मस्थ साधु-साध्वियों को नजर से दिखाई नहीं देते। इसलिए इन जीवों को बार बार

सूत्र सुन कर के जानते रहना और देखते रहना।

(२) दूसरा पनक सूक्ष्म याने नीलफूल (फूलण)। यह काली, हरी, लाल, पीली और सफेद ऐसे पाँच प्रकार की होती है। ये जीव जिस वस्तु में पड़ते हैं, उस वस्तु के रंग जैसे देखने में आते हैं। इससे छद्मस्थ को नजर नहीं आते। इसलिए इन्हें भी बार बार देखते-जाँचते रहना।

(३) तीसरा बीज सूक्ष्म- ये भी काले, नीले, सफेद, पीले और लाल इस तरह पाँच प्रकार के हैं। ये शालिप्रमुख के जैसे वर्ण वाले होते हैं। ये भी छद्मस्थ के जानने में नहीं आते, इसलिए इनकी भी बार बार पडिलेहणा करना।

(४) चौथा हरित सूक्ष्म याने नीलोत्री। यह भी सूक्ष्म और पूर्वोक्त पाँच रंग वाली होती है। पृथ्वी के रंग जैसी बहुत सूक्ष्म होती है। साधु-साध्वियों को इसकी भी बहुत सावधानीपूर्वक आँखों से देख कर पडिलेहणा करनी चाहिये।

(५) पाँचवाँ पुष्प सूक्ष्म (सूक्ष्म फूल)। ये पूर्वोक्त रीति से पाँच रंग के होते हैं। ये वृक्ष का जैसा रंग होता है, वैसे रंग वाले होते हैं। ये भी जानने में नहीं आते। इनकी भी पडिलेहणा करना।

(६) छठा अंड सूक्ष्म- इनमें प्रथम मधुमक्खी के अंडे, दूसरे कलातरा (माँकडी) के अंडे, तीसरे कीड़ी के अंडे, चौथे गिरोली (छिपकली) के अंडे और पाँचवें काकीड़ा (गिरगिट) के अंडे। इन सब जीवों के अंडे भी सूक्ष्म होते हैं। इसलिए इन्हें बार बार देखना और पडिलेहणा करना।

(७) सातवाँ गृह सूक्ष्म- ये भी पाँच प्रकार के हैं। एक भूमि में गद्दहिया जैसे घर किये हुए होते हैं। दूसरा पानी सूख जाने के बाद जमीन पर पपड़ी पड़ती है वह, तीसरा बिल, चौथा ताड़प्रमुख वृक्षों के मूल में छोटे छोटे घर होते हैं वे और पाँचवाँ भ्रमरों के घर। इन पाँच प्रकार के घरों की पडिलेहणा करना।

(८) आठवाँ स्नेह सूक्ष्म- ये भी पाँच प्रकार के हैं। एक ओस का पानी, दूसरा हेमारा का पानी, तीसरा धुँहरी का पानी, चौथा करों (ओलों)

का पानी और पाँचवाँ डाभप्रमुख की नोक पर रहा हुआ पानी। यह पाँच प्रकार का पानी है। छद्मस्थ इसे भी जान कर पडिलेहणा करे। यह आठ सूक्ष्म जीवों से संबंधित सोलहवीं समाचारी जानना।

१७. बरसात में रहे हुए साधु-साध्वी को जब गृहस्थों के घर गोचरी (आहारप्रमुख) लाने जाना हो, तब आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणि, गणधर, गणावच्छेदक तथा जिनकी आज्ञा में चलते हों, उन्हें पूछ कर ही जाना। उनसे यह कहना कि हे भगवन्! आपकी आज्ञा हो, तो गृहस्थों के घर आहार-पानी आदि लेने जाऊँ। वे आचार्य आदिक यदि जाने की आज्ञा दें तो जाना कल्पता है, बिना आज्ञा नहीं। शिष्य पूछता है कि ऐसा किसलिए? गुरु कहते हैं कि आचार्य आदिक जो साधु अमुक दिशा में गया, उसे अधिक समय क्यों लगा? इत्यादिक उपद्रव टालने का उपाय जानते हैं।

इसी तरह यदि श्री जिनचैत्य में दर्शन करने, स्थंडिलभूमि या अन्य किसी काम के लिए जाना हो या गाँव गाँव विचरना हो, तो भी पूछे बिना नहीं जाना तथा चौमासे में रहे हुए साधु-साध्वी को विगय का आहार करने की इच्छा हो, तो आचार्यादिक से पूछे बिना विगय लेना कल्पता नहीं है। इसलिए आचार्यादिक से पूछना कि हे महाराज! आपकी आज्ञा हो तो मैं दूध प्रमुख विगय गृहस्थ के घर से ला कर आहार करूँ। आचार्यादिक कहें कि अमुक परिमाण में विगय ला कर आहार करना। शिष्य आशंका करता है कि आज्ञा लेने का क्या प्रयोजन है? गुरु उत्तर देते हैं कि विगयादिक खाना या नहीं खाना, उससे होनेवाले गुण तथा अवगुण ये सब आचार्यादिक जानते हैं, इसलिए पूछना चाहिये।

तथा चौमासे में कोई साधु अपने आरोग्य के लिए औषधि करने की चाहना रखता हो, तो आचार्यादिक को पूछ कर ही औषधि करना कल्पता है। इसी प्रकार चौमासे में कोई साधु शुभ, कल्याणकारी, उपद्रवरहित, धन्यकारी, मंगलकारी, शोभावंत और महाप्रभावक ऐसा तप करने की चाहना रखता हो, तो आचार्यादिक से पूछ कर ही तप करना तथा कोई

साधु अनशन करने की चाहना रखता हो और आहार-पानी त्याग कर के मृत्यु को नहीं चाहते हुए पादोपगमन अनशनप्रमुख करता हो, तो उसे भी आचार्यादिक से पूछे बिना अनशन नहीं करना चाहिये।

इसी प्रकार आहार करना, मात्रा-स्थंडिल (लघुशंका-दीर्घशंका) जाना, सज्झाय-ध्यान करना, धर्मजागरण करना, काउस्सग्गप्रमुख करना ये सब आचार्यादिक से पूछ कर ही करना। पूछे बिना कोई भी काम करना कल्पता नहीं है। यह आचार्यादिक से पूछ कर ही प्रत्येक कार्य करने से संबंधित सतरहवीं समाचारी जानना।

१८. वर्षाकाल में रहे हुए साधुओं को अपनी उपधि धूप में तपाना हो, तो स्वयं वहाँ ध्यान रखना, पास में बैठना, पर उपधि को धूप में रख कर गोचरी जाना नहीं, आहार करना नहीं, चैत्य जाना नहीं, स्थंडिल जाना नहीं, सज्झाय करना नहीं और काउस्सग्ग करना नहीं। इतने काम करने हों, तो दूसरे साधु से कहना कि हे आर्य! मुझे गोचरीप्रमुख अमुक कार्य करना है, इसलिए तुम हमारी उपधि की निगाह रखो, तो मैं गोचरीप्रमुख कार्य करूँ। यदि वह साधु कहे कि मैं निगाह रखूँगा, तो गोचरीप्रमुख कार्य करना कल्पता है, पर यदि वह कहे कि मुझे अन्य काम है, इसलिए बैठ नहीं सकूँगा, तो पूर्वोक्त गोचरीप्रमुख कार्य करना कल्पता नहीं है। यह उपधि धूप में तपाने से संबंधित अठारहवीं समाचारी जानना।

१९. बरसात में रहे हुए साधु-साध्वी को एक हाथ ऊँची, शब्द न करने वाली, न हिलने-डुलने वाली (अडिग) और फिरती काठी बाँधी हुई ऐसी शय्या के बिना रहना कल्पता नहीं है। यदि ऐसे शय्यासन को बिना रहे, तो दोष लगता है। यह कर्मबंध का कारण है। इसी प्रकार उस शय्यासन को बार बार पडिलेहना, धूप में रखना और पूँजते रहना चाहिये। यदि ऐसा न करे तो चारित्र पालना दुर्लभ होगा। यह शय्यासन ग्रहण करने से संबंधित उन्नीसवीं समाचार जानना।

२०. चौमासे में रहे हुए साधु-साध्वी को स्थंडिल-मात्रा के तीन स्थान रखने चाहिये और उन स्थानों की बार बार पडिलेहना करनी चाहिये, पर

सर्दी और गर्मी की तरह चौमासे में नहीं रहना चाहिये। शिष्य पूछता है कि सर्दी-गर्मी के दिनों की तरह चौमासे में क्यों नहीं रहना चाहिये? गुरु उत्तर देते हैं कि प्रायः चौमासे में हरी-नीली वनस्पतिप्रमुख जीव बहुत उत्पन्न हुए होते हैं, इसलिए चौमासे में अलग प्रकार कहा। यह स्थंडिल-मात्रा की जगह रखने से संबधित बीसवीं समाचारी जानना।

२१. चौमासे में साधु-साध्वी को एक स्थंडिल (जंगल जाने) का, दूसरा मात्रा (पेशाब करने) का और तीसरा खेल (खंखार थूकना) प्रमुख का ऐसे तीन मात्रक (पात्र) रखने चाहिये। यह तीन मात्रक रखने से संबंधित इक्कीसवीं समाचारी जानना।

२२. पर्युषण कर के रहे हुए साधु-साध्वी को गाय के बाल जितने सूक्ष्म बाल भी अपने सिर पर नहीं रखने चाहिये, क्योंकि पंचमी की रात को यदि मस्तक पर केश रह जायें, तो दंड आता है। यदि कोई अशक्त, ग्लान (रुग्ण) और टाटिया हो, तो उसे छुरी (उस्तरे) से मुंडन करा लेना चाहिये या कतरनी (कैंची) से बाल कटवा लेने चाहिये।

उत्सर्ग से तो लोच ही करना चाहिये। यदि कतरने हों, तो पुनः पन्द्रह-पन्द्रह दिन में कतरना चाहिये और गुरुमासिक दंड लेना चाहिये तथा हर महीने क्षुरमुंड करना चाहिये और लघुमासिक प्रायश्चित्त लेना चाहिये। युवान साधु को हर चार महीने में लोच करना चाहिये। स्थविर और जर्जर साधु को आँखों का तेज रखने के लिए छह महीने में एक बार लोच करना चाहिये अथवा स्थविर (अतिवृद्ध) के सिर पर बाल कम आते हों तो बारह महीने में एक बार लोच करना चाहिये। यह लोच करने से संबंधित बाईसवीं समाचारी जानना।

२३. बरसात में रहे हुए साधु-साध्वी को संवत्सरी होने के बाद पहले हुए कलह को खमाना चाहिये, पर क्रोध नहीं रखना चाहिये। यदि कोई निर्ग्रंथ या निर्ग्रंथिनी पर्युषण बीतने के बाद क्रोध करे, क्रोध रखे, तो वह अनाचारी है, ऐसा जानना। उनसे अन्य साधु कहे कि हे आर्य! तुम क्रोध रखते हो यह ठीक नहीं है। ऐसा कहने से नहीं समझे और पर्युषण बीतने के बाद कषाय

की क्षमायाचना न करे, तो जैसे तंबोली सड़े हुए पान को बाहर फेंक देता है, वैसे ही क्रोधी साधु-साध्वी को भी संघ से बाहर निकाल देना चाहिये। यह अधिकरण न उदीरने से संबंधित तेईसवीं समाचारी जानना।

२४. वर्षाकाल में रहे हुए साधु-साध्वी को यदि पर्युषण के दिनों में कलह हुआ हो, कटुक बोलना पड़ा हो, उद्वेग किया हो, तो शिष्य को जा कर रत्नाधिक (आचार्य) प्रमुख को खमाना चाहिये और आचार्यादिक भी शिष्य को खमाये। इस तरह स्वयं खमना और अन्य को खमाना। स्वयं उपशम करना और दूसरे को भी उपशम कराना। अनेक प्रकार से राग-द्वेष रहित होना चाहिये। जो क्रोधादिक का उपशमन नहीं करता, वह ज्ञानादिक का विराधक होता है। ऐसा जान कर नियम से उपशम करना चाहिये। भगवान उपशम को ही सार पदार्थ कहते हैं, इसलिए उपशम अवश्य अंगीकार करना चाहिये। यह परस्पर खमत-खामणा से संबंधित चौबीसवीं समाचारी जानना।

पाँच समिति के पालन पर भिन्न-भिन्न दृष्टान्त

(१) साधु-साध्वी को चौमासे में विशेष रूप से पाँच समिति का पालन करना चाहिये। प्रथम इरियासमिति पालने से संबंधित वरदत्त मुनि का दृष्टान्त-

एक दिन इन्द्र महाराज ने अपनी सभा में कहा कि आज भरतक्षेत्र में वरदत्त मुनि के समान इरियासमिति का पालन करने वाला कोई नहीं है। इन्द्र के मुख से वरदत्त मुनि की प्रशंसा सुन कर कोई एक देव उनकी परीक्षा लेने आया। उसने हाथी का रूप बना कर सूँड में पकड़ कर मुनि को आकाश में उछाला और देवमाया से जमीन पर बहुत सी छोटी-छोटी मेंढकियाँ निर्माण कीं। आकाश से नीचे गिरते हुए मुनि विचार करने लगे कि मुझे तो मरने का भय नहीं है, पर ये मेंढकियाँ मेरे शरीर के गिरने से मर जायेंगीं। इनकी विराधना न हो तो अच्छा है। ऐसा जान कर आकाश से गिरते हुए भी ओघे (रजोहरण) से जमीन पूँजने लगे। यह देख कर देव ने जाना कि धन्य है इसे, जो इस तरह जीव-विराधना से डरता है। फिर उस देव ने प्रकट हो कर अपना अपराध खमाया। फिर वह अपने स्थान पर गया।

(२) भाषासमिति पर संगत साधु का दृष्टान्त- जिस नगर में संगत साधु थे, उस नगर के बाहर किसी शत्रु राजा ने सेना ला कर नगर को घेर लिया। फिर संगत

मुनि से पूछा कि हे साधु! नगर में फौज कितनी है? साधु ने कहा कि बहुत सुना कानों ने, बहुत देखा आँखों ने। नहीं देखा सब सुना, नहीं सुना सब देखा। जब जब उनसे पूछा जाता, तब तब वे ऐसा ही बोलते। सेना के लोगों ने जाना कि यह पढ़ पढ़ कर पागल हो गया है। ऐसा विचार कर उन्हें छोड़ दिया।

(३) एषणासमिति पर नंदीषेण का दृष्टान्त- वसुदेवजी का जीव पूर्वभव में नन्दीषेण था। उन्होंने ग्लान मुनि की वैयावच्च करने का अभिग्रह लिया था। वे स्वयं छट्ठ के पारणे छट्ठ करते थे। उनकी इन्द्र ने प्रशंसा की। तब किसी देव ने आ कर अतिसार के रोग वाला साधु बना कर उसे नन्दीषेण के पास भेजा। नन्दीषेण उसके लिए पानी लाने गये। देव ने जल अशुद्ध कर दिया। नन्दीषेण ने वह जल नहीं लिया। उन्होंने ग्लान को कंधे पर बिठाया। ग्लान ने उन पर अशुचि की, तो भी उन्होंने घृणा नहीं की। तब देव ने उनकी बहुत स्तुति की। यह कथा श्री नेमिप्रभु के चरित्र में लिखी गयी है।

(४) आदान-भंड-मत्त-निक्खेवण समिति पर सोमिल साधु का दृष्टान्त- एक दिन कुछ साधु विहार कर के किसी गाँव में आये। दिन कितना शेष है? इस बात की बराबर खबर न पड़ने के कारण उन्होंने जल्दी पडिलेहण कर ली। बाद में समय की खबर पड़ी। तब गुरु ने कहा कि पडिलेहणा करने का समय तो अब हुआ है, इसलिए पुनः पडिलेहणा करो। यह सुन कर सब साधुओं ने पुनः पडिलेहणा की, पर सोमिल मुनि ने कहा कि पडिलेहणा तो पहले ही कर ली है। इतने में क्या साँप घुस गया है? फिर सुबह के समय पडिलेहणा की, उस समय पात्र बँधे हुए थे, फिर भी देवप्रयोग से सर्प निकला। उससे डर कर गुरु के पास आ कर उसने कहा कि महाराज! साँप निकला है। गुरु ने कहा कि तू उलंठ वचन क्यों बोला? ऐसा वचन आज के बाद मत बोलना। पडिलेहणा करने में तो बहुत निर्जरा है। फिर उस साधु ने अभिग्रह लिया कि आज से सब साधुओं के दंडों की मैं पडिलेहणा करूँगा और पडिलेहण करने में सब मुनियों की मदद करूँगा। अभिग्रह पालते हुए सोमिल मुनि ने बहुत कर्मों का क्षय किया।

(५) उच्चार-प्रस्रवण समिति पर सुव्रताचार्य के शिष्य का दृष्टान्त- सुव्रताचार्य के एक लघु शिष्य था। गुरु ने उससे कहा कि मांडले कर, तो भी उसने मांडले नहीं किये और वह कहने लगा कि बाहर क्या ऊँट बैठे हैं? फिर रात में वह मात्रा (पेशाब) परठने के लिए बाहर गया। वहाँ किसी देव ने उसे ऊँट का रूप बना कर डराया। उसने कहा कि अरे! इस गच्छ में एक भी साधु मंडल किये बिना मात्राप्रमुख

करता नहीं है। फिर एक दिन उसने मंडल नहीं किये और उसे रात में मात्रा की बहुत बाधा हुई, पर उसने परठा नहीं। फिर उस देव ने उद्योत किया। शिष्य ने जगह देख कर मात्रा को परठा। इसलिए यदि कोई मंडल देख कर परठवणा करेगा, तो उसे देव मदद करेगा, ऐसा निश्चय कर के क्षुल्लक भी पारिष्ठापनिका समिति में सावधान हुआ।

तीन गुप्ति के पालन पर भिन्न भिन्न दृष्टान्त

(१) इसी तरह चौमासे में तीन गुप्ति का पालन भी अच्छी तरह करना चाहिये। मनगुप्ति पर कोंकण साधु का दृष्टान्त-

कोंकण मुनि को काउस्सग्ग में बहुत देर लगने से गुरु ने पूछा कि अधिक देर क्यों लगी? साधु ने कहा कि जीवदया का चिन्तन करने से देर हो गयी। गुरु ने कहा कि कैसी जीवदया का चिन्तन किया? साधु ने कहा कि मेरे घर में लड़के आलसी हैं। वे खेत में सूड निदानादिक नहीं करेंगे, तो धान्य कम उत्पन्न होगा। इससे वे दुःखी होंगे। गुरु ने कहा कि तुमने सावद्य चिन्तन किया। इसलिए मिच्छा मि दुक्कडं दो। यह सुन कर साधु ने मिच्छा मि दुक्कडं दिया।

(२) वचनगुप्ति पर गुणदत्त साधु का दृष्टान्त- गुणदत्त साधु एक दिन अपनी संसार से संबंधित माता को दर्शन देने-वंदाने जा रहा था। रास्ते में चोर मिले। उन्होंने साधु को पकड़ा और कहा कि इस रास्ते से बारात आयेगी। उन लोगों के आगे तुम हमारा नाम मत लेना। साधु ने कहा कि मैं तो नहीं बोलूँगा। चोरों ने उसे छोड़ दिया। वह अपने स्थान पर जा कर अपने परिवार को दर्शन दे कर उनसे वन्दना करा कर पुनः बारात के साथ उसी मार्ग से आया। चोरों ने बारात लूट ली। फिर वे कहने लगे कि यह साधु कैसा सत्यवादी है कि अपने घर के लोगों से भी यह नहीं कहा कि चोर रास्ते में बैठे हैं। यह वचन साधु की माता ने सुना। वह गुणदत्त साधु से कहने लगी कि हे दुष्ट! तूने तेरे हाथों चोरों को माल लुटा दिया। तूने हमें पहले से क्यों नहीं कहा? साधु को बहुत कष्ट होते देख कर चोरों ने लूटा हुआ सब धन वापस दे दिया। बारात वाले खुश हो गये, पर साधु कुछ नहीं बोला।

(३) कायगुप्ति पर अर्हन्नक साधु की कथा- अर्हन्नक मुनि विहार करते हुए किसी स्थान पर पानी का नाला बहते देख कर विचार करने लगे कि यदि मैं इस नाले में पैर रखूँगा, तो जीव विराधना होगी, इसलिए कूद कर निकल जाऊँ। यह सोच कर वे कूद कर उस पार गये। किसी देव ने उनके पैर छेद डाले। इससे वे दुःखी हुए। देव ने कहा कि अब आगे से कभी कूद कर मत जाना। कदाचित् जीव

मरे तो भी इसे जयणापूर्वक पार करने की केवली भगवान की आज्ञा है। इसलिए उतर कर जाना, पर कूद कर नहीं जाना।

क्षमायाचना कर के ही प्रतिक्रमण करना कल्पता है। इस पर उदायी राजा का दृष्टान्त

पर्युषण आते ही तुरन्त सबके साथ खमतखामणा करना चाहिये, कारण खमतखामणा किये बिना प्रतिक्रमणादिक क्रिया करना कल्पता नहीं है। इसलिए यदि किसी के साथ वैरभाव हुआ हो, तो उदायी राजा की तरह खमाना चाहिये। जैसे-

चंपानगरी में कुमारनन्दी नामक एक सुनार रहता था। वह जन्म से स्त्रीलोलुपी था। धन दे कर महास्वरूपवान पाँच सौ स्त्रियों के साथ उसने विवाह किया था। एक दिन हासा और प्रहासा नामक देवियों को देख कर वह मोहित हुआ। उसने देवियों से कहा कि तुम मेरे साथ भोगविलास करो। देवियों ने कहा कि यदि तू पंचशैलद्वीप में आ जाये, तो हमारे भोगयोग्य हो सकता है। इतना कह कर वे देवियाँ अपने स्थान पर चली गयीं।

फिर सुनार ने गाँव में पटह बजवाया कि जो कोई मुझे पंचशैलद्वीप ले जायेगा, उसे मैं एक करोड़ सुवर्णमुद्राएँ दूँगा। यह सुन कर एक वृद्ध खलासी लोभ के वश से, घर के लोग द्रव्य से सुखी होंगे, ऐसा विचार कर बोला कि मैं ले जाऊँगा। फिर दोनों जहाज में बैठे। जहाज रवाना हुआ। आगे जाने पर एक वटवृक्ष दिखाई दिया। नाविक ने कहा कि इस बड़ पर तुम चढ़ जाना। मैं तो पानी के भँवर में जहाज डूबेगा, उसके साथ डूब जाऊँगा। तुम बड़ पर बैठे रहना। रात में भारण्डपक्षी आयेंगे। उनके पैरों में तुम अपने शरीर को बाँध देना। वे पंचशैलद्वीप में जायेंगे और वहाँ तुम्हें रख देंगे। फिर तुम बन्धनमुक्त हो कर हासा-प्रहासा देवियों के पास चले जाना।

इतने में जहाज बड़ के पास आ गया। सुनार बड़ पर चढ़ गया और जहाज टूट गया। नाविक भी मर गया। भारंड पक्षियों के पैरों में बँध कर सुनार हासा-प्रहासा के पास गया और भोग भोगने के लिए याचना करने लगा। देवियों ने कहा कि तेरा शरीर अशुद्ध है। इस कारण से हम भोग नहीं कर सकतीं। यह कह कर उन्होंने उसे पुनः चंपानगरी में रख दिया और उससे कहा कि अभी जो देव हमारा पति है, उसका च्यवन होने वाला है। इसलिए तू यदि मर कर उस देव की शय्या में उत्पन्न हो जाये, तो काम सिद्ध हो सकता है।

सुनार भी अज्ञान से चिता में पड़ कर मरने लगा। उस अवसर पर सुनार के

मित्र नागिल श्रावक ने कहा कि अरे! तू इस तरह मत मर। देवियों के लिए मरना योग्य नहीं है। तो भी वह नहीं माना। काष्ठ में जल कर भस्म हो कर मर कर हासा-प्रहासा के ध्यान से वह उनका पतिदेव हुआ और उनके साथ भोग भोगने लगा।

एक बार इन्द्र महाराज सब देव-देवियों सहित नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा पर जाने के लिए तैयार हुए। हासा-प्रहासा के पतिदेव के नाम यह हुक्म आया कि तुम सब देवों के आगे मृदंग बजाते हुए चलो। हासा-प्रहासा ने उस देव के गले में मृदंग डाला। देव ने वह मृदंग उतार कर फेंक दिया, पर मृदंग उसके गले में पुनः आ गया। देव ने उसे पुनः फेंक दिया। इस तरह दो-तीन बार किया। तब हासा-प्रहासा ने कहा कि हमारे भरतार की यही मर्यादा है कि मृदंग बजाये बिना वह छूट ही नहीं सकता। लोक में ऐसी कहावत भी है कि हासा-प्रहासा का मृदंग गले में पड़ने पर बजाये ही छुट्टी।

फिर वह विद्युन्माली देव हासा-प्रहासा सहित मृदंग बजाते हुए आगे चलने लगा और वहाँ महर्द्धिक देवों को देख कर अपने भव की निन्दा करने लगा। इतने में नागिल श्रावक का जीव जो बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुआ था, वह भी साथ में आया और विद्युन्माली से कहने लगा कि क्या तुम मुझे पहचानते हो? देव ने उपयोग दे कर कहा कि हाँ, मित्र नागिल! तुमने मुझे बहुत रोका, पर मै तुच्छ भोग की खातिर मनुष्य जन्म गँवा कर ऐसे पुण्यहीन देवों में उत्पन्न हुआ हूँ। बताओ, अब मैं क्या करूँ? नागिल ने कहा कि तुम गोशीर्ष चन्दनमय श्री महावीरस्वामी की प्रतिमा बना कर उसकी पूजा करो, जिससे तुम्हें सम्यक्त्व की प्राप्ति हो।

फिर विद्युन्माली ने श्री महावीरजी की प्रतिमा बना कर बहुत काल तक उसकी पूजा की। जब उसकी अल्पायु रही तब उस प्रतिमा को सन्दूक में रख कर, लोगों के जहाज समुद्र में अटके हुए थे, उन्हें निकाल कर और उन लोगों को सन्दूक सौंप कर कहा कि इस पेटी में श्री देवाधिदेव की प्रतिमा है। इसे तुम वीतभयपट्टन जा कर उदायी राजा को दे देना।

जहाज के लोगों ने वह सन्दूक उदायी राजा की सभा में रख कर कहा कि यह श्री देवाधिदेव की प्रतिमा है और इसे किसी देव ने भेजा है। राजा ने जाना कि देवाधिदेव तो ब्रह्मा का नाम है, इसलिए वह ब्रह्मा का नाम ले कर खोलने लगा, पर वह सन्दूक नहीं खुली। इसी प्रकार विष्णु के नाम से भी नहीं खुली और महेश्वर के नाम से भी नहीं खुली। राजा के भोजन का समय हो गया। तब राजा की रानी प्रभावती बोली कि देवाधिदेव श्री अरिहन्त वीतराग हों, तो यह सन्दूक खुल जाये।

बस इतना कहते ही सन्दूक खुल गयी। उसमें से प्रतिमा निकली। उसे ले जा कर मंदिर में उसकी स्थापना की। उसे प्रभावती रानी नित्य पूजने लगी।

एक दिन प्रभावती रानी ने दासी के हाथों पूजा के श्वेत वस्त्र मँगवाये। दासी ने वस्त्र ला कर दिये, पर रानी को अपने दृष्टिभ्रम से वे वस्त्र लाल दिखाई दिये। इस कारण से वह दासी के साथ लड़ने लगी, पर थोड़ी देर बाद वे वस्त्र उसे सफेद दिखाई दिये। तब उसने जाना कि अब मेरी आयु छह महीने शेष है। इसलिए उसने राजा के पास दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी। राजा ने कहा कि तू देवलोक जाये तब कष्ट के समय मुझे सान्निध्य करना कबूल करे, तो मैं तुझे आज्ञा दूँ। प्रभावती ने यह मान्य किया और राजा ने आज्ञा दी।

फिर प्रभावती ने दीक्षा ली। संयमपालन कर आयु पूर्ण कर वह देवलोक गयी। फिर योगी का रूप कर के राजा को अमृतफल दिखा कर जंगल में ले गयी। वहाँ बहुत से योगी बैठे थे। वे राजा को मारने उठे। राजा ने डर कर देव को याद किया। देव ने आ कर राजा को वहाँ से उठा कर साधु के पास रखा। संसार में सच्चे आधारभूत तो ये ही हैं, ऐसा जान कर उनके पास श्रावक के व्रत ग्रहण कर राजा श्रावक हुआ।

अब श्री वर्द्धमानस्वामी की प्रतिमा को प्रभावती रानी दीक्षा लेते समय देवदत्ता दासी को पूजने के लिए कह गयी थी। तदनुसार वह दासी नित्य पूजा करती थी। एक दिन कोई गंधार नामक श्रावक सब गाँवों के मंदिरों की वन्दना के लिए निकला। वह वीतभयपट्टन आया। उसने उस प्रतिमा की पूजा की। वहाँ गंधार श्रावक बीमार हो गया। देवदत्ता दासी ने उसकी चाकरी की। इससे उसका रोग मिट गया। इस उपकार के बदले उसने देवदत्ता दासी को दो गोलियाँ दे कर कहा कि इन गोलियों में से एक गोली खाने से तू महास्वरूपवती हो जायेगी और दूसरी गोली खाने से तू जिसे चाहेगी, वह पुरुष तेरे वश में हो जायेगा। इतना कह कर गंधार श्रावक वहाँ से चला गया।

फिर देवदत्ता ने एक गोली खायी। इससे उसका रूप दिव्य हो गया और उसका नाम सुवर्णगुलिका पड़ गया। दूसरी गोली खा कर उसने चंडप्रद्योतन राजा की मन में चाहना की। गुटिका के अधिष्ठायकदेव ने उज्जयिनी जा कर चंडप्रद्योतन राजा के आगे दासी के रूप का वर्णन कर के उसे दासी का अनुरागी बनाया। फिर वह राजा अनलगिरि हाथी पर सवार हो कर वहाँ गया। उसने दासी को बुलाया। दासी ने कहा कि इस वीर प्रतिमा के बिना मुझसे आया नहीं जा सकता। इसलिए

पुनः उज्जयिनी जा कर चंडप्रद्योतन राजा ने उस प्रतिमा के जैसी दूसरी प्रतिमा तैयार करवायी। फिर उसे ले कर पुनः वीतभयपट्टन आ कर उसने वह प्रतिमा वहाँ रखी। फिर देव द्वारा दी गयी मूल प्रतिमा दासी सहित ले कर वह उज्जयिनी चला गया।

सुबह के समय उदायी राजा ने अपने हाथियों का मद उतरा हुआ देख कर यह जान लिया कि अनलगिरि हाथी पर बैठ कर चंडप्रद्योतन राजा यहाँ आया था। वह सुवर्णगुलिका दासी और प्रतिमा ले कर चला गया। फिर उदायी राजा ने दस मुकुटबद्ध राजा और सेना साथ ले कर उज्जयिनी की ओर प्रयाण किया। मार्ग में जेसलमेर के ब्रह्मसर के पास आया, पर वहाँ पानी नहीं मिला। इससे वह निराश हो गया। फिर उसने प्रभावती देव को याद किया। उसने आ कर वहाँ अखूट पानी भर दिया। उस स्थान पर पुष्करप्रमुख अनेक तालाब पानी से भर गये।

फिर उदायी राजा ने उज्जयिनी की सीमा में डेरा डाला। उसने चंडप्रद्योतन राजा के पास दूत भेजा और उसे कहलवाया कि यदि तू दासी नहीं लौटाये, तो भले ही रख, पर हमारे प्रतिमाजी हमें लौटा दे। चंडप्रद्योतन ने प्रतिमा नहीं दी और चौदह मुकुटबद्ध राजाओं को साथ ले कर वह लड़ने आया। अनलगिरि हाथी को अलग रख कर लड़ाई करने का प्रस्ताव हुआ, तो भी चंडप्रद्योतन अनलगिरि हाथी पर चढ़ कर संग्राम में आया। आपस में युद्ध करते करते अन्त में चंडप्रद्योतन हार गया। उसे अनलगिरि हाथी पर से उतार कर, बाँध कर और उसके ललाट पर 'दासी का पति चंडप्रद्योतन है' ऐसा दाग दे कर उदायी राजा प्रतिमा लेने गया। पर प्रतिमा वहाँ से नहीं उठी। इतने में आकाशवाणी हुई कि प्रतिमा मत ले जाना, क्योंकि वीतभयनगर में धूल का ढेर गिरने वाला है।

फिर प्रतिमा को वहीं रख कर चंडप्रद्योतन को साथ ले कर उदायी राजा अपने नगर की तरफ चला। मार्ग में पर्युषण पर्व आया। उदायी राजा ने वहाँ पड़ाव किया। पर्युषण किये। उसने स्वयं उपवास कर के रसोई करने वाले से कहा कि चंडप्रद्योतन को जो रुचे वह रसोई कर के खिलाना। यह कह कर उदायी राजा जिनपूजादिक करनी में प्रवृत्त हुआ। रसोई करने वाले ने चंडप्रद्योतन से पूछा कि आपके लिए कैसी रसोई बनाऊँ? चंडप्रद्योतन ने कहा कि उदायी कहे, वह बनाओ। रसोइये ने कहा कि उन्हें तो आज पर्युषण पर्व है, इसलिए उपवास है। चंडप्रद्योतन ने विचार किया कि आज मुझे जहर देने का विचार रखा है, इसलिए अलग रसोई कराते हैं। इस भय से उसने कहा कि मैं भी आज उपवास करूँगा। उदायी राजा मेरा साधर्मिक भाई है। मैं भी यही धर्म पालता हूँ। रसोइये ने उदायी राजा से यह बात कही।

उदायी राजा ने जाना कि यह धूर्तता से बोला है, तो भी मेरा साधर्मिक हुआ। इसे खमाये बिना प्रतिक्रमण करना कल्पता नहीं है।

फिर चंडप्रद्योतन को बन्दीखाने से छुड़ा कर, अपने पास बुला कर, उसके ललाट पर सोने का पट्ट बँधा कर क्षमायाचना कर के और सत्कार कर के उदायी राजा ने उसे अवन्ती (उज्जयिनी) नगरी भेज दिया। इस तरह भव्य जीवों को भी उदायी राजा की तरह क्षमायाचना करना, क्षमा करना और क्रोध का त्याग करना चाहिये।

कुम्हार और धूर्तों की कथा

अपराध कर के नहीं खमाये तो महा अनर्थ की वृद्धि होती है। एक गाँव में कोई कुम्हार गाड़ी में बर्तन भर कर बेचने आया। वहाँ उसका एक बैल हड़पने के लिए गाँव के धूर्त आपस में बोले कि देखो, यह एक बैल की गाड़ी चल रही है। गाड़ीवाले ने जाना कि ये दुष्ट लोग एक बैल छीन लेने का उपाय कर रहे हैं, इसलिए ये प्रत्यक्ष चोर हैं। क्योंकि बैल तो दो हैं और ये लोग कहते हैं कि एक है। यह सोच कर कुम्हार अपने बर्तन बेचने में लग गया। एक बैल को धूर्त ले गये।

कुम्हार बर्तन बेच कर जाने के लिए तैयार हुआ, पर एक बैल उसे दिखाई नहीं दिया। उसने बहुत आवाज लगायी कि मेरा एक बैल कौन ले गया है? तब लोगों ने कहा कि हमने तो एक ही बैल देखा था। कुम्हार बहुत दुःखी हुआ और निराश हो कर अपने स्थान पर आया, पर क्रोध में आ कर उसने उन धूर्त लोगों के खेत-खलिहान सात वर्ष तक जलाये।

एक बार किसी यक्ष की यात्रा में गाँव के लोग जमा हुए। उस समय उन्होंने पटह बजवाया कि जो हमारे धान्य के खेत-खलिहान जलाता है, वह प्रकट हो जाये। उस समय कुम्हार अपना वेश बदल कर बोला कि तुमने जिसकी एक बैल की गाड़ी देखी थी, वह तुम्हारे अनाज के खलिहान जलाता है। फिर कुम्हार को उसका बैल दे कर धूर्तों ने अपना अपराध खमाया।

इसलिए प्रथम तो हो सके वहाँ तक अपराध करना ही नहीं, पर यदि हो जाये तो तुरन्त खमतखामणा कर के अपराध की क्षमा माँगना कि जिससे कोई अनर्थ न हो।

क्रोध न छोड़े, इस पर क्रोधी ब्राह्मण का दृष्टान्त

पर्युषण में जो क्रोध का त्याग न करे, उसे सड़े हुए पत्ते की तरह संघ से बाहर कर देना चाहिये। जैसे कि-

एक खेड़ा गाँव का निवासी कोई ब्राह्मण था। वह खेती करता था। खेती का व्यवसाय करते हुए एक दिन हल चलाते समय उसका एक बैल अडियल (गलीया) हो कर बैठ गया। उसे उठाने के बहुत प्रयत्न किये, लातें मारीं, तो भी वह नहीं चला। ब्राह्मण क्रोध से तमतमा कर उसे मिट्टी के ढेले मारने लगा। ढेलों से पूरा बैल ढँक गया। अन्त में बैल का दम घुट जाने से वह मर गया।

इस पाप का ब्राह्मण ने महापुरुषों के पास प्रायश्चित्त माँगा। महापुरुषों ने पूछा कि तेरा क्रोध उतरा या नहीं? उत्तर में ब्राह्मण ने कहा कि अभी उसे देखूँ तो मार डालूँ। महापुरुषों ने विचार किया कि ऐसे पापी को क्या दंड दिया जाये? इसकी शुद्धि तो किसी तरह हो ही नहीं सकती। यह कह कर उसे जाति से बाहर कर दिया। इस तरह जो क्रोध का त्याग नहीं करता, उसे संघ से बाहर कर देना चाहिये।

कृत अपराध की क्षमा माँगने पर मृगावती का दृष्टान्त

अपने से अपराध हुआ हो, तो मृगावती की तरह खमाना चाहिये। अपना मन शुद्ध कर के मिच्छा मि दुक्कडं देना चाहिये। जैसा कि-

एक दिन श्री महावीरस्वामी का कौशांबी नगरी में समवसरण हुआ। वहाँ चन्द्र और सूर्य ये दोनों अपने मूल विमानों में बैठ कर वन्दन करने आये। चन्दनबाला, मृगावतीप्रमुख वहाँ बैठी थीं। उनमें से चन्दनबाला तो सूर्यास्त होते जान कर उठ कर अपने उपाश्रय में आ गयी, पर मृगावती भगवान की देशना में मोहित (मग्न) हो कर वहीं बैठी रहीं। जब सूर्य और चन्द्र अपने स्थान पर चले गये, तब अंधेरा हो गया।

मृगावती चन्दना को न देखने से भयभीत हो कर अकेली ही उपाश्रय में आयी। फिर इरियावही पडिक्कमण कर के पाँव दबाते हुए चन्दनबाला से बोली कि हे स्वामिनी! मैं रात में अकेली आयी, इसलिए अपराधिनी हूँ। इस अपराध के लिए आप मुझे माफ कीजिये। चन्दना ने कहा कि हे भद्रे! तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हो, इसलिए तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है। मृगावती ने कहा कि आगे से मैं ऐसी भूल नहीं करूँगी। इस तरह बार-बार चन्दनबाला के पाँव पड़ते हुए, शुद्ध मन से खमाते हुए मृगावती को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

फिर चन्दना को तो पाँव दबाने से नींद आ गयी। उस समय अंधकार में साँप आया जान कर मृगावती ने चन्दना का हाथ उठा कर संथारे पर रख दिया। तब चन्दना जागृत हो कर कहने लगी कि मेरा हाथ किसने उठाया? मृगावती ने कहा कि साँप का संघट्ट होते देख कर मैंने आपका हाथ ऊँचा रखा। चन्दना ने कहा कि

ऐसे अंधकार में साँप को आते तुमने कैसे देखा? मृगावती ने कहा कि आपके प्रताप से। तब चन्दना ने कहा कि क्या तुम्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है? मृगावती ने कहा कि आपकी कृपा से। तब 'अरे! मैंने केवली की आशातना की' यह सोच कर बार बार खमाती हुई चन्द्रना मिच्छा मि दुक्कडं देने लगी और उसे भी केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

इस तरह भव्य जीवों को भी मिच्छा मि दुक्कडं देना चाहिये। परन्तु कुम्हार और चेले की तरह नहीं करना चाहिये। जैसे कि-

एक लघु शिष्य किसी कुम्हार के धूप में सूखते हुए बर्तनों को कंकर मार कर फोड़ने लगा। कुम्हार ने कहा कि महाराज! बर्तन मत फोड़िये। तब शिष्य ने कहा कि मिच्छा मि दुक्कडं। कुम्हार ने जाना कि अब यह बर्तन नहीं फोड़ेगा। पर शिष्य तो पुनः कंकरों से बर्तन फोड़ने लगा और कुम्हार हाँक मारे तब मिच्छा मि दुक्कडं देने लगा।

यह देख कर कुम्हार ने भी एक कंकर ले कर उस शिष्य के कान पर रख कर कान मसला। तब शिष्य ने कहा कि अरे! कान दुखता है। कुम्हार ने कहा कि मिच्छा मि दुक्कडं। इसं तरह बार बार वह कान मसलता जाता और मिच्छा मि दुक्कडं देता जाता।

इस तरह ऐसा मिच्छा मि दुक्कडं देने से कार्यसिद्धि नहीं होती। बार बार पाप करना और बार बार मिच्छा मि दुक्कडं देना काम नहीं आता।

अलिया-गलिया करने पर सासु-दामाद का दृष्टान्त

अन्तरंग शत्रुता न मिटे तो भी व्यवहारशुद्धि रखने के लिए सासु-दामाद की तरह अलिया-गलिया तो अवश्य करना चाहिये।

एक वृद्ध स्त्री थी। उसके पास द्रव्य बहुत था, पर उसके पुत्र नहीं था। वह स्वयं विधवा थी और बहुत लोभी व कंजूस थी। वह धन का संग्रह करती थी, पर कुछ खाती नहीं थी। उसके एक पुत्री थी। उसका विवाह उसने एक कुलीन लड़के के साथ किया, पर स्वयं लोभी होने के कारण दामाद को दहेजप्रमुख कुछ नहीं दिया। इससे दामाद नाराज हुआ। होली-दीपावली प्रमुख किसी भी पर्व पर वह भोजन के लिए नहीं आया।

लोग उस वृद्धा स्त्री से कहने लगे कि हे पापिनी! यह तेरा एक ही दामाद है। उसे भी तू भोजन नहीं कराती? तेरे पुत्र तो है नहीं, फिर तेरा यह धन कौन खायगा?

और यह किसके काम आयेगा? फिर उस वृद्धा ने लौकिक रीति सम्हालने के लिए दामाद को बहुत मनुहार कर के बुलाया और कहलवाया कि आप अकेले ही पधारना। यह सुन कर दामाद के मित्र कहने लगे कि आज तुम्हें सास सब द्रव्य दे देगी।

फिर दामाद सासु के घर अकेला भोजन के लिए गया। सासु ने खीर परोसी। फिर कटोरी में रुई का फाहा डाल कर घी परोसने आयी और कटोरी में से घी की एक एक बूँद थाली में डालने लगी। वह थाली में घी अधिक गिरने नहीं देती थी। वृद्धा ने सोचा कि दामाद अब ना कहेगा। दामाद ने जाना कि यह मुझे ठगने आयी है। इसलिए सासु का हाथ पकड़ कर कटोरी थाली में उँडेल दी। फिर वह सास से कहने लगा कि जी! जी! अब बहुत हो गया। मुझे अधिक नहीं चाहिये।

वृद्धा ने विचार किया कि कटोरी तो खाली हो गयी है और सब घी अकेला दामाद खा लेगा। इसलिए कुछ उपाय करूँ। यह सोच कर उसने दामाद से कहा कि दामादजी! तुम्हारे हमारे जो रूठना था, वह सब आज मिट गया है, इसलिए हम दोनों एक ही थाली में भोजन करेंगे। यह कह कर दामाद के साथ वह भोजन करने बैठी। दामाद की तरफ थाली की ढलान होने से सब घी दामाद की तरफ था। इसलिए सास उलाहना देने के बहाने उँगली से घी अपनी तरफ खींचती जाती और कहती कि देखो, तुममें इतने दोष हैं- एक तो तुम होली पर नहीं आये, दूसरे दीवाली पर नहीं आये और तीसरे अक्षयतृतीया पर भी नहीं आये। इस प्रकार बोल बोल कर उसने सब घी अपनी ओर खींच लिया।

'सास तो बहुत समझदार दीखती है। इसने घी तो सब खींच लिया।' ऐसा जान कर थाली में हाथ फिरा कर दामाद बोला कि हे सासुजी! जो होना था सो हो गया। अब तुम्हारा और मेरा मन एक कर लीजिये। आज से सब अपराध अलिया-गलिया (आये-गये) जानना। यह कह कर थाली उठा कर घी-शक्कर सहित सारी खीर दामाद पी गया और बोला कि अब अपना सब रूठना मिट गया है, इसलिए तुम प्रसन्न रहना।

इस तरह धर्मार्थी जीव को भी कोई राग-द्वेष उत्पन्न हुआ हो, तो सब खमा लेना चाहिये, पर पर्युषण में राग-द्वेष नहीं रखना। मिच्छा मि दुक्कडं दे देना।

पर्युषण पर्व में क्रोध, मान, माया और लोभ से आहारादि ग्रहण नहीं करना। ऐसा करने से चारित्र धर्म का विनाश होता है।

क्रोधपिंड से संबंधित घेवरिया मुनि का दृष्टान्त

हस्तिकल्प नगर में एक साधु मासिक तप के पारणे में गोचरी करने के लिए ब्राह्मणों में किसी के यहाँ मृतक-भोज था, वहाँ गया। ब्राह्मण घेवर खा रहे थे। साधु बहुत देर तक खड़ा रहा, पर किसी ने साधु को नहीं दिया। तब साधु ने क्रोध कर के कहा कि आज के भोजन में न दो, तो पुनः भोजन हो तब देना।ऐसा कह कर चला गया। इतने में दूसरे महीने पारणे के दिन पुनः किसी ब्राह्मण की मृत्यु हुई। उसके भोजन में वही साधु पारणा करने के लिए पुनः गोचरी आया, पर किसी ने वहोराया नहीं। तब पुनः क्रोध से बोला कि तीसरे भोजन में वहोराना। यह कह कर चलता बना। तीसरे महीने में भी किसी की मृत्यु हुई। उसके भोजन में भी किसी ने नहीं वहोराया। तब साधु क्रोध से चौथे भोजन में वहोराने का बोला। ये शब्द किसी बूढ़े के कानों में पड़े। बूढ़े ने गृहस्वामी से कहा कि इस साधु को घेवर दे कर खुश करो, नहीं तो और कोई मरेगा। ऐसा समझ कर साधु को बुला कर घेवर वहोराये।

जैसे इस साधु ने क्रोध से घेवर वहोरे, वैसे अन्य साधुओं को कभी वहोरना नहीं चाहिये।

मानपिंड पर सेवैया मुनि का दृष्टान्त

कोशल देश में गिरिपुष्प नामक नगर में सेवइयों का पर्व आया, तब युवान साधु इकट्ठे हुए। उनमें से एक साधु बोला कि आज तो सेवैया पर्व है, इसलिए सेवई वहोर कर लायें, इसमें कौनसी बड़ी बात है? परन्तु कल सुबह शक्कर-घी सहित सेवई ला कर जो साधुओं को भोजन कराये, उसे लब्धिवान जानना। तब एक शिष्य अभिमान से बोला कि यदि मैं कल सेवई ला कर सब साधुओं को भोजन कराऊँ, तो ही मेरा नाम सच्चा जानना।

दूसरे दिन बड़े-बड़े पात्र झोली में रख कर वह गोचरी गया। वहाँ एक सेठ के घर सेवई देख कर माँगने लगा। पर सेठानी लोभी थी, इसलिए बोली कि जा, जा, तुझे सेवई नहीं मिलेंगीं। इस प्रकार ललकार कर उसे निकाल दिया। तब चेले ने कहा कि तू देख तो सही। मैं तेरे यहाँ से ही किसी भी तरह सेवई अवश्य ले कर जाऊँगा। सेठानी ने कहा कि यदि तू सेवई ले जाये, तो मेरी नाक गयी जानना। परन्तु जब तक मेरी नाक है, तब तक तो तुझे सेवई ले जाने नहीं दूँगी।

साधु ने वहाँ से निकल कर आगे जा कर किसी से पूछा कि यह घर किसका है? इस घर का मालिक कहाँ है? उसने उत्तर दिया कि यह देवदत्त का घर है। वह

इस समय पंचायत में बैठा हुआ है। फिर वह साधु वहाँ जा कर कहने लगा कि आप लोगों में देवदत्त कौन है? उन्होंने पूछा कि क्या काम है? साधु ने कहा कि मुझे उसके पास कुछ माँगना है। तब पंचों ने कहा कि वह तो कंजूस है। जो कुछ माँगना है, सो हमसे माँगो। तब देवदत्त ने कहा कि हे साधुजी! आप जो माँगेंगे, वह मैं दूँगा। तब साधु ने कहा कि हे देवदत्त! जैसे छह जन स्त्रियों के वश में थे, वैसा तू भी स्त्री के वश न हो, तो मैं तेरे पास कुछ माँगूँ। तब पंचों ने कहा कि वे छह जन कौन थे? उनकी कथा कहिये। साधु ने कहा-

एक कुलपुत्र था। वह विवाह के बाद स्त्री के वश हुआ। सुबह उसे भूख लगी। उसने स्त्री के पास खाने के लिए माँगा। वह स्त्री खाट पर बैठे बैठे ही कहने लगी कि यदि तू भूखा हो, तो चूल्हे में से राख निकाल कर बाहर डाल, ईंधन ला, चूल्हे में आग जला, उस पर हंडी चढ़ा और उसमें पानी डाल। फिर कोठे में से चावल ला कर उन्हें साफ कर हंडी में डाल कर पका कर तैयार कर। तैयार होने के बाद मुझे आवाज देना। फिर मैं उठ कर परोस दूँगी। यह बात सुन कर कुलपुत्र ने कहा कि तू जो कहती है, वह सत्य है। यह कह कर वह पूर्वोक्त सब काम नित्य करने लगा। हमेशा चूल्हे की राख निकालते रहने से उसकी उँगलियाँ सफेद हो गयीं। तब लोगों ने उसका नाम श्वेतांगुली रखा।

वैसे ही हे देवदत्त! तू भी स्त्री के वश में न हो, तो मैं याचना करूँ। देवदत्त ने कहा कि मैं स्त्री के वश में नहीं हूँ।

एक कुलपुत्र था। वह स्त्री के वश हुआ। उसे स्त्री खाट पर बैठ कर कहने लगी कि मैं पानी नहीं लाऊँगी, इसलिए तू जा कर तालाब से पानी भर ला। मैं रोटियाँ बना दूँगी। वह भी लोक-लाज के कारण पिछले एक प्रहर रात रहती तब सिर पर घड़ा ले कर नित्य पानी भर कर लाने लगा। रात में बगुलेप्रमुख पक्षी डर कर तालाब पर से उड़ने लगे। इससे कोलाहल हुआ। तब लोगों ने सोचा कि यह नित्य उपद्रव क्यों होता है? बगुले क्यों उड़ते हैं? फिर खोज करने से मालूम हुआ कि कुलपुत्र पानी भरने जाता है, इससे बगुलेप्रमुख उड़ते हैं। फिर लोगों ने उसका नाम बगोड्डाही रख दिया।

इसलिए हे देवदत्त! तू भी ऐसा न हो, तो मैं याचूँ। देवदत्त ने कहा कि मैं ऐसा नहीं हूँ।

एक कुलपुत्र किसी स्त्री से विवाह कर उसके वश हुआ। वह नित्य सुबह उठ कर हाथ जोड़ कर स्त्री से कहता कि मैं क्या काम करूँ? स्त्री कहती कि सब रसोई

कर। रसोई तैयार कर के स्त्री से पुनः पूछता कि अब क्या करूँ? स्त्री कहती कि गद्दी बिछा कर पाट रख। यह काम भी कर के पूछता कि अब क्या करूँ? स्त्री कहती कि मेरी बाँह पकड़ कर मुझे गद्दी पर बिठा। वह बाँह पकड़ कर स्त्री को गद्दी पर बिठा कर पूछता कि अब क्या करूँ? स्त्री कहती कि रसोई परोस। रसोई परोस कर पूछता कि अब क्या करूँ? स्त्री कहती कि मक्खियाँ उड़ा। मक्खियाँ उड़ा कर पूछता कि अब क्या करूँ? स्त्री कहती कि मल-मूत्र फेंक आ। मल-मूत्र फेंक कर कहता कि अब क्या करूँ? स्त्री कहती कि मैं सो रही हूँ। तू मेरे पाँव दबा। तब वह पगचंपी करने लगता। यह देख कर लोग बोले कि यह स्त्रीकिंकर है।

वैसे ही हे देवदत्त! तू भी उसके जैसा हो, तो मैं याचना नहीं करता। देवदत्त ने कहा कि मैं उसके जैसा नहीं हूँ।

एक कुलपुत्र स्त्री के वश हो कर उसके वस्त्रप्रमुख धोने का काम नित्य करता था। लोगों ने उसका नाम तीर्थस्नात रखा। इसी प्रकार पाँचवें का नाम गधापरखी रखा।

एक कुलपुत्र स्त्री के वश हुआ। उसके पुत्र हुआ। स्त्री कहती कि बच्चे को हगा लाओ। वह नित्य बच्चे को हगाता और स्नान कराता। यह देख कर लोगों ने उसका नाम हगनीया रखा।

इसलिए उसके जैसा यदि तू स्त्री के वश में न हो, तो मैं तेरे पास याचना करूँ। देवदत्त ने कहा कि मैं वैसा नहीं हूँ। आप सुख से माँगिये। उस समय दूसरे पंच हास्यपूर्वक बोले कि साधुजी! स्त्री के वश हुए पुरुष के सब दोष इसमें हैं। तब देवदत्त ने कहा कि भगवन्! ये मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। आपको जो चाहिये, वह सुख से माँगिये। साधु ने कहा कि घी और शक्कर सहित सेवई वहोराओ। फिर देवदत्त ने कहा कि चलिये, मैं आपको वहोराता हूँ।

इतना कह कर वह साधु को अपने साथ ले कर घर आया। रास्ते में साधु ने कहा कि तुम्हारी स्त्री तो मेरे साथ लड़ चुकी है। इस पर देवदत्त ने कहा कि आप घर के बाहर खड़े रहना और मैं बुलाऊँ तब आना। फिर साधु बाहर खड़ा रहा। देवदत्त घर में जा कर स्त्री से कहने लगा कि आज ब्राह्मणों को भोजन के लिए कहा है। वे भोजन करने आयेंगे। घर में कुछ पका हुआ है या नहीं? उसने कहा कि सेवई तैयार हैं। देवदत्त ने स्त्री से कहा कि सीढ़ी पर चढ़ कर मेड़ी पर से घी-शक्कर ले आ। स्त्री घी-शक्कर लेने सीढ़ी पर चढ़ कर मेड़े पर गयी। देवदत्त ने साधु को अन्दर बुलाया। साधु ने कहा कि हे देवदत्त! यह सीढ़ी जरा अलग कर दो। देवदत्त

ने सीढ़ी दूर की। फिर साधु के पात्र अच्छी तरह सेवई और घी -शक्कर से भर दिये। ऊपर खड़े-खड़े सेठानी हाँका करने लगी कि इसे क्यों वहोराते हो? यह तो मुंडा है। पर उसका कुछ जोर चला नहीं। साधु ने भी पात्र भर कर निकलते वक्त नाक पर ऊँगली फेर कर स्त्री को जताया कि तेरी नाक कट गयी। फिर उपाश्रय में आ कर सब साधुओं को भोजन कराया।

इस तरह इस साधु ने जैसे अभिमान कर के आहार लिया, वैसे अन्य साधुओं को आहार नहीं लेना चाहिये।

मायापिंड पर आषाढ़भूति का दृष्टान्त

गुरुप्रेरणा से आषाढ़भूति मुनि एक बार राजगृह नगर में किसी नट के घर गोचरी के लिए गये और विद्याबल से रूप परिवर्तन कर के पाँच बार मोदक वहोरे। यह देख कर उस नट ने मुनि को अपनी रूपवती दो कन्याओं के मोहजाल में फँसाया। आषाढ़भूति मुनि उपकरण गुरु को सौंप कर, जो मद्यमाँस का सेवन न करे उसके साथ ही रहना, ऐसी प्रतिज्ञा ले कर पुनः नट के घर आये। नट ने उन्हें अपनी दो कन्याएँ ब्याह कर अपना घरजमाई बनाया। मुनि नटकन्याओं के साथ विविध विषयसुख भोगने लगे।

उसी समय नगर में किसी विदेशी नट ने आ कर यह उद्घोषणा करवायी कि जो कोई नटविद्या में पारगामी हो, वह मेरे साथ वाद करने के लिए तैयार हो। उस उद्घोषणा को रोक कर नट ने अपने दामाद आषाढ़भूति को विदेशी नट के साथ विवाद करने के लिए राजसभा में भेजा। उनके जाने के बाद आषाढ़भूति की स्त्रियों ने मद्य-मांसभक्षण करना शुरु किया। अपने विद्याबल से उस विदेशी नट को क्षणभर में परास्त कर आषाढ़भूति पुनः अपने घर लौटे और किंवाड़ खटखटाये। तब स्त्रियाँ यह सोच कर घर के बाड़े में जा कर वमन करने लगीं कि दुर्गंध के कारण मद्य-मांस का भक्षण किया वे जानेंगे, तो छोड़ कर चले जायेंगे।

आषाढ़भूति दीवार पर चढ़ कर बाड़े में उतरे और वमन में मांस देख कर विरक्त हो गये। फिर ससुर के कहने से स्त्रियों के खाने के खर्च का बन्दोबस्त करने के लिए राजा के पास जा कर उन्होंने भरत चक्रवर्ती का नाटक शुरु किया। उसमें भरत चक्रवर्ती की तरह सोलह शृंगार से सुसज्जित हो कर आरीसाभवन में जा कर एकत्व भावना का चिन्तन शुरु किया। इससे थोड़ी ही देर में शुभध्यान के प्रभाव से आषाढ़भूति को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवों ने साधुवेश दे कर सुवर्णकमल की रचना की। उस पर बैठ कर आषाढ़भूति ने धर्मदेशना दी। उसे सुन कर राजा-रानी

और एक हजार राजकुमारों ने दीक्षा ली। फिर शिष्यमंडल सहित वहाँ से विहार कर आषाढ़भूति अपने गुरु के पास आये। गुरु ने भी भावना भाते हुए केवलज्ञान प्राप्त किया।

जैसे आषाढ़भूति मुनि ने रूप परिवर्तित कर के कपट से मोदक वहोरे, वैसे अन्य साधुओं को मायापिंड ग्रहण नहीं करना चाहिये।

लोभपिंड पर सिंहकेसरिया साधु का दृष्टान्त

चंपानगरी में उत्सव के दिन एक साधु ने मासखमण के पारणे में अभिग्रह लिया कि आज सिंहकेसरिया मोदक ही वहोरना। फिर वह घर घर घूमा, पर सिंहकेसरिया मोदक कहीं नहीं मिले। इससे मुनि का मन गाफिल हो गया। वह आधी रात तक घर घर धर्मलाभ देते घूमा। लोभ के वश से रात की खबर भी नहीं रही।

फिर किसी एक श्रावक के घर जा कर धर्मलाभ दिया। वह श्रावक गंभीर और माता-पिता के समान था। उसने रात के समय धर्मलाभ सुन कर विचार किया कि किसी कर्म के वश से साधु का मन डगमगा गया है। ऐसा जान कर वह उठा और उसने मुनि को वन्दन किया। फिर उसने देखा तो साधु महातपस्वी दिखाई दिया। श्रावक ने पूछा कि महाराज! आपको क्या चाहिये? मुनि ने कहा कि सिंहकेसरिया मोदक खपते हैं। तब श्रावक ने कहा कि हमारे घर में मोदक बहुत हैं। इतना कह कर वह सिंहकेसरिया मोदक से भरा थाल ले आया। फिर उसने मुनि को मोदक वहोराये।

फिर श्रावक ने पूछा कि हे स्वामिन्! पुरिमार्द्ध के पच्चक्खाण का समय आया कि नहीं? मुनि ने आकाश में देखा, तो निर्मल तारों और नक्षत्र की श्रेणी सहित चन्द्र दिखाई दिया। इससे मुनि का चित्त ठिकाने आ गया। फिर मुनि ने पश्चात्ताप किया कि अरे! धिक्कार है मुझे! मैंने यह क्या कर डाला? रात को गोचरी करने निकला? मेरा साधु का आचार कहाँ गया? इस तरह पश्चात्ताप करते हुए नगर के बाहर जा कर सूत्रोक्त विधि सहित मोदक परठते हुए विचार करने लगे कि अरे! कर्म को जीतना बहुत मुश्किल है। मैंने यह गलत काम किया। धर्म की निन्दा करायी। इस तरह पश्चात्ताप करते हुए और शुक्लध्यान ध्याते हुए क्षपकश्रेणी पर चढ़ कर उस मुनि ने केवलज्ञान प्राप्त किया।

जैसे इस मुनि ने लोभ के वश से सिंहकेसरिया मोदक वहोरे, वैसे अन्य साधुओं को लेना नहीं चाहिये।

२५. बरसात में रहे हुए साधु-साध्वी को जीवादिक की उत्पत्ति के कारण चौमासे में तीन उपाश्रय रखने चाहिये। उनमें से जिस उपाश्रय में स्वयं रहे, उस उपाश्रय को प्रतिदिन तीन बार पूँजना चाहिये और अन्य दोनों उपाश्रयों को एक बार पूँजना चाहिये। उनकी पडिलेहणा करनी चाहिये। यह प्रमार्जन-पडिलेहणा करने से संबंधित पच्चीसवीं समाचारी जानना।

२६. बरसात में रहे हुए साधु-साध्वी को अपनी मर्जी में आये, वहाँ जाना हो तो गुरु से पूछ कर और दिशा या स्थान बता कर ही जाना कल्पता है। बिना पूछे जाना नहीं कल्पता। शिष्य पूछता है कि किसलिए? गुरु कहते हैं कि साधु चौमासे के बिना शेष काल में तो सामान्य प्रकार के तप करता है, पर चौमासे में अनेक प्रकार के विशेष तप करता है। कोई तपस्वी दुर्बल हो और मूर्च्छा खा कर गिर जाये, तो जिस दिशा में वह गया हो, उस दिशा में आचार्य याद रख कर निगाह कराते हैं कि इतना समय क्यों लगा? इसलिए आचार्य से पूछ कर बाहर जाना चाहिये।

यह प्रतिजागरण (पूछ कर जाने) से संबंधित छब्बीसवीं समाचारी जानना।

२७. वर्षाकाल में चौमासे में रहे हुए साधु-साध्वी को औषधिप्रमुख काम के लिए वैद्य के पास जाना पड़े, तो जो गाँव चार योजन अथवा पाँच योजन तक अपने गाँव से दूर हो, वहाँ जाना कल्पता है। याने कि सोलह या बीस कोस (पचास या चौसठ किलो मीटर) दूर जा कर उस गाँव से औषधि ले कर वापिस लौटते समय यदि अपने रहे हुए गाँव के उपाश्रय में दिन रहते आया न जा सके, तो उस गाँव के बाहर आ कर रहना, पर जिस गाँव में औषधादिक लेने गये, उस गाँव में रात में रहना नहीं अथवा दिन रहते गाँव के बाहर न पहुँचा जा सके, तो मार्ग में भी रहना कल्पता है।

यह औषधादिक लाने गमनागमन से संबंधित सत्ताईसवीं समाचारी जानना।

२८. इत्यादिक संवत्सरी का स्थविरकल्प जिस तरह कल्पसूत्र में कहा है, उस विधि से आराधन करे। ज्ञान, दर्शन और चारित्र का मार्ग जिस

रीति से भगवान ने कहा है, वैसे पालन करे। भले प्रकार से मन, वचन और काया से स्पर्शे, अतिचाररहित पाले, विधिसहित शोभा कर के दीपाये, यावज्जीव पाले, किनारे पहुँचाये और लोगों में कीर्ति करे।

इस समाचारी की आराधना कर और आज्ञासहित इसे पाल कर कई निर्ग्रंथ तो उसी भव में सिद्ध होते हैं। तत्त्व को जान कर, कर्मों से रहित हो कर सब दुःखों से छूटते हैं- मोक्ष जाते हैं। कई तीसरे भव में सिद्ध होते हैं यावत् मोक्ष जाते हैं, परन्तु सात-आठ भव तो पार नहीं करते। सातवें-आठवें भव में तो अवश्य मोक्ष जाते हैं।

यह समाचारी (मर्यादा-पालन) फल से संबंधित अट्ठाईसवीं समाचारी जानना।

उस काल में उस समय में श्रमण भगवन्त श्री महावीरस्वामी राजगृह नगरी के गुणशील यक्षायतन में अनेक साधुओं में, अनेक साध्वियों में, अनेक श्रावकों में, अनेक श्राविकाओं में और अनेक देवों में, अनेक देवियों में बैठे हुए (बारह पर्षदा में बैठे ही) ऐसे वचन कहते हैं, इस कल्प को पालने का फल बताते हैं, ऐसी प्ररूपणा करते हैं। यह पर्युषणकल्प अध्ययन- दशाश्रुतस्कंध का आठवाँ अध्ययन अर्थसहित, हेतुसहित, कारणसहित, सूत्रसहित, अर्थसहित, सूत्रार्थसहित, दृष्टान्तसहित बार बार उपदेश कर के बताते हैं।

इस तरह श्री भद्रबाहुस्वामी ने यह सूत्र दशाश्रुतस्कंध में आठवें अध्ययन के रूप में रचा है, पर वाचना सब सुधर्मास्वामी और जंबूस्वामी की ही जानना।

जैनाचार्य श्रीमद् भट्टारक विजय राजेन्द्रसूरीश्वर -सङ्कलिते श्री कल्पसूत्र-बालावबोधे नवमं व्याख्यानं समाप्तम्।।

卐 卐 卐

अथ प्रशस्तिः

सर्वेषु सूत्रेषु वर प्रशस्तिर्यस्यास्ति सर्वेष्वतिमुख्यता च।
कल्पद्रुकल्पं मम कल्पसूत्रं, चारित्रकार्ये शुभकृत्सदाऽस्तु।।१।।
सौधर्मपट्टे सुपरम्परायां, सूरीश्वरा ये च वरा बभूवुः।
वन्दे सदा तान् वरसूत्रदातॄन्, श्री रत्नसूरीन् विदुषो मुनीशान्।।२।।

श्रीमत् क्षमादिगुणराशियशः शमाऽऽढ्यो,
जातः क्षमागणधरः प्रवराम्ल कर्त्ता।
चित्रालता चरणसेवन तत्पराभूत्,
तामप्यहो! हृदि गुरुः स च नो दधार।।३।।
देवेन्द्रविजयो वन्द्यः, तच्छिष्यो बहुकीर्त्तिभाक्।
कल्याणविजयस्तस्य, प्रमोदश्च प्रमोदयुक्।।४।।
सुधर्मस्वामिनो गच्छे, सन्ति राजेन्द्रसूरयः।
तेनेयं कल्पसूत्रस्य, वार्त्ता बालावबोधिनी।।५।।
कृता सूत्रपदैर्युक्ता, सर्वसारांशसंयुता।
सा योगोद्वहनं येन, न कृतं तस्य हेतवे।।६।।
अब्दे खवेदनन्दैके (१९४०), माधवे च सितेतरे।
पक्षे दिने द्वितीयायां, मङ्गले लिखिता त्वियम्।।७।।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सकलजैनागमपारदृश्व कलिकालसर्वज्ञकल्प जङ्गमयुगप्रधान परमयोगिराज जगत्पूज्य गुरुदेव श्रीमद् भट्टारक जैनाचार्य श्री विजय राजेन्द्रसूरीश्वरसङ्कलितः 'कल्पसूत्र- बालावबोधः' समाप्तः।

卐 卐 卐

हिन्दी अनुवाद प्रशस्ति

सप्तपदी

कल्याणकारी प्रभु वीरनाथ, श्री इन्द्रभूति गणधार साथ।
तत्पट्ट संवाहक सोहमादि, पादाम्बुजों में नित वन्दनादि।।१।।
तत्पट्ट शोभा महिमा विकासी, श्री रत्नसूरीश प्रभा प्रकाशी।
पट्ट प्रभावी हि क्षमासूरीन्द्र, देवेन्द्र कल्याण मुनीन्द्र चन्द्र।।२।।
सद्ज्ञानदाता हि प्रमोदसूरि, जिनेन्द्र आज्ञा अनुसारी धूरि।
राजेन्द्रसूरीन्द्र प्रभावशाली, ज्ञानी तपस्वी भुवि अंशुमाली।।३।।
उत्कृष्ट चारित्र चरित्र शुद्ध, कर्त्ता क्रियोद्धार सदा प्रबुद्ध।
पट्टे प्रतापी धनचन्द्रसूरि, भूपेन्द्रसूरीश कषाय चूरि।।४।।
व्याख्यान-वाचस्पति श्री यतीन्द्र, मेरे गुरुश्री सही थे मुनीन्द्र।
पट्टे सदा शोभित चन्द्रविद्या, गच्छेश राजीव समान नित्या।।५।।
तत्पट्टधारी विजयन्तसेन, हिन्दी किया है अनुवाद जेण।
दो शून्य पंचावन वर्ष तंत, कुक्षी खिला था अनूठा बसंत।।६।।
मैंने किया था चउमास इष्ट, देवाधिदेवा प्रभु शान्ति श्रेष्ठ।
सद्भावभक्त्या अनुवाद हिन्दी, चौमास की याद सदा हि जिन्दी।।७।।

卐 卐 卐